सतसई-सप्तक

अर्थात्

तुलसी, बिहारी, मतिराम, रसनिधि,
रामसहाय, वृंद और विक्रम
सतसइयों का संग्रह

संग्रहकर्ता और संपादक

श्यामसुंदरदास

प्रयाग

हिंदुस्तानी एकडेमी, संयुक्त प्रांत

१९३१

Published by
The Hindustani Academy, U. P.,
Allahabad.

First Edition
Price Rs. 6/—

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

सतसई-सप्तक

भूमिका

आज दो वर्ष के लगभग होता है जब एक दिन मेरे मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि हिंदी की प्रसिद्ध प्रसिद्ध सतसइयों का एक संग्रह निकाला जाय तो अच्छा हो। तुलसी, बिहारी, मतिराम, रामसहाय और वृंद की सतसइयों पर तो सहसा ध्यान चला गया और यह विचार हुआ कि सतसई-पंचक के नाम से यह ग्रंथ प्रकाशित किया जाय। फिर ध्यान आया कि हिंदी में रसनिधि के दोहे प्रसिद्ध हैं और अधिक संख्या में मिलते भी हैं। उनमें से यदि ७०० दोहे चुन लिए जायँ तो एक नई सतसई प्रस्तुत हो सकती है। इस विचार के अनुसार रसनिधि के दोहों का चुनना आरंभ हुआ और साथ ही एक सातवीं सतसई की खोज हुई। चंदन की सतसई भी प्रसिद्ध है, पर वह कहीं मिलती नहीं। इस बीच में एक दिन स्वर्गवासी लाला भगवानदीन ने विक्रम सतसई का ध्यान दिलाया। खोज करने पर कुँअर कन्हैया जू की कृपा से चरखारी से उसकी एक प्रति प्राप्त हुई। एक दूसरी प्रति के प्राप्त करने का भी उद्योग किया गया पर उसमें सफलता न हुई। अस्तु इस प्रकार इन सात सतसइयों का संग्रह प्रस्तुत हो गया। हिंदुस्तानी एकडेमी ने इस सतसई-सप्तक के प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की और इस प्रकार इस ग्रंथ का छपना आरंभ हो गया। इसकी दीपिका तथा प्रस्तावना लिखने और मूल दोहों को पुनः संपादित करने में मेरे प्रिय शिष्य पंडित पीतांबरत्त बडथ्वालद ने मेरी विशेष सहायता की है जिसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ। साथ ही मित्रवर रत्नाकरजी ने कठिन

स्थलों का अर्थ सुलझाने तथा संदिग्ध पाठों के संशोधन में मेरी विशेष सहायता की है, जिसके लिये मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ।

प्रतीकानुक्रमणिका भी यथासमय तैयार हो गई थी पर जब दुहराकर उसकी जाँच करने का समय आया तब पता लगा कि उसमें बहुत सी त्रुटियाँ हैं। यह काम पुनः करना पड़ा। इससे पुस्तक के प्रकाशन में डेढ़ महीने का विलंब हो गया।

काशी
१३-५-३१

श्यामसुंदरदास

सूची

प्रस्तावना

रचना-शैली के विचार से काव्य दो प्रकार का होता है—एक मुक्तक और दूसरा प्रबंध। प्रबंध-काव्य में सब पद्य एक दूसरे के आसरे खड़े रहते हैं। वह एक सुसंगठित समाज है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के कार्य से लाभ उठाता है और स्वयं अपने कार्य से दूसरों को लाभ पहुँचाता है। एक के बिना दूसरा रह नहीं सकता। परंतु मुक्तक के राज्य में प्रत्येक पद्य स्वयं पूर्ण है। मुक्तक पद्य उस व्यक्ति के समान है जो स्वयं अपने लिये खेती करता है, कपड़ा बुनता है तथा अपने अस्तित्व के लिये सभी आवश्यक कार्यों को स्वयं करता है। मुक्तक काव्य में एक ही पद्य अपनी एक अलग दुनिया बनाकर रहता है। उसमें प्रत्येक पद्य की अलग सत्ता रहती है। अपने अस्तित्व के लिये उसे दूसरे पद्यों का सहारा नहीं लेना पड़ता। यद्यपि अभिनवगुप्ताचार्य ने कहा है—

'पूर्वापरनिरपेक्षापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्।'

अर्थात् पूर्वापर प्रसंग के निर्देश के लिये और पद्यों का सहारा न होने पर भी जिसमें रस की अभिव्यक्ति हो जाय उसे मुक्तक कहते हैं, फिर भी यह आवश्यक नहीं कि मुक्तक पद्य में किसी रस की निष्पत्ति हो ही। उसमें सुभाषित मात्र भी हो सकता है, जिसमें केवल वाग्वैदग्ध्य की चमक हो। सुभाषित से हमारा तात्पर्य नीति-धर्म के उपदेश से युक्त सूक्ति से है। वास्तव में मुक्तक की स्वाभाविकता नीति-सुभाषित ही में परिलक्षित होती है। इसी लिये उसकी रचना में भी सौकर्य होता है। नीति-सुभाषित को पूर्वापर प्रसंग की

इतनी आवश्यकता नहीं रहती। परंतु जहाँ मुक्तक में रस का विचार रखा जाता है वहाँ मुक्तक-रचना बहुत कठिन हो जाती है। साहित्य-शास्त्र के अनुसार रस की निष्पत्ति के लिये विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि बहुल सामग्री का स्थायी भाव के साथ मिश्रण आवश्यक है। प्रबंध की विस्तृत भूमि में इस सामग्री को जुटा रखने के लिये पर्याप्त स्थान रहता है। परंतु मुक्तक की संकीर्ण नली में इस सामग्री को ला भरना बहुत कठिन काम है। प्रबंध में तो प्रसंग की परिस्थिति के साहचर्य्य से शब्द की अभिधा शक्ति द्वारा इस विषय में काम निकाल लिया जा सकता है, परंतु मुक्तककार को बार बार व्यंजना का आश्रय लेना पड़ता है। यह होते हुए भी यह बात नहीं है कि प्रत्येक दशा में मुक्तक-रचना प्रबंध-रचना से कठिन ही हो। दोनों की अपनी अपनी कठिनताएँ और सुविधाएँ हैं। मुक्तक में बहुधा पूर्वापर प्रसंग की कल्पना का कार्य सहृदय पाठक या श्रोता पर छोड़ दिया जाता है। श्रोता को मुक्तक का आनंद लेने के लिये एक पूरे प्रसंग का स्वतः अध्याहार करना पड़ता है। इससे बहुधा मुक्तककार को स्वतः सहृदय-समाज की प्रतिभा का श्रेय भी मिल जाता है और कवि की क़ल्पना पर अप्रासंगिकता का दूषण नहीं लगने पाता, चाहे वस्तुतः वह उसमें हो ही। परंतु इस विषय में मुक्तककार से प्रबंधकार का उत्तरदायित्व बहुत बढ़ा-चढ़ा रहता है। उसकी रचना का सारा सौंदर्य उसी की कल्पना पर अवलंबित रहता है और प्रसंग का थोड़ा भी अनौचित्य सहसा खटक जाता है।

मुक्तक और प्रबंध में भेद होने पर भी वे ऐसी परस्पर-विरोधिनी शैलियाँ नहीं हैं कि उनमें एक दूसरे का साथ ही न बन पड़े। बिना एक पूरे प्रसंग की कल्पना के बहुधा मुक्तक पद्यों का समझ में न आना इस बात का प्रमाण है कि उसका स्वाभाविक स्थान प्रबंध

के बीच में ही है। मुक्तक एक ऐसी मुक्तामणि है जिसे चाहे आप शतकों, सप्तशतकों वा सहस्रकों की छोटी-बड़ी पिटारी में संग्रह करें अथवा किसी प्रबंध के सूत्र में गूथें। गोसाईं तुलसीदासजी की दोहावली और सतसई में कई मुक्तक दोहे ऐसे हैं जो रामचरित-मानस के प्रबंध-सूत्र से अलग करके संचित किए हुए मुक्ता-मणि हैं। यद्यपि मुक्ताएँ एक दूसरे से असंबद्ध एक राशि के रूप में कोष में भी जमा रखी जा सकती हैं, तथापि उनकी पूर्ण शोभा तभी खिल सकती है जब वे सूत्र में पिरोई जाकर हार में गुथ जायँ। इसी प्रकार मुक्तक पद्य भी अपना पूर्ण प्रभाव तभी डाल सकता है जब वह अपनी गर्वीली स्वच्छंदता को त्यागकर प्रबंध के बीच में अपना उचित आसन ग्रहण करे। प्रबंध का प्रभाव स्थायी होता है और मुक्तक का क्षणिक। प्रबंध में "उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संघटित पूर्ण जीवन" का दर्शन करते हुए "कथा-प्रसंग की परि-स्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है।" किंतु "मुक्तक में रस के ऐसे स्निग्ध छींटे पड़ते हैं जिनसे हृदय-कलिका थोड़ी देर के लिये खिल उठती है।" उसमें अधिक से अधिक "एक मर्मस्पर्शी खंड-दृश्य" के सहसा सामने ले आए जाने के कारण पाठक या श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाता है सही, किंतु कुछ क्षणों ही के लिये। शैली की अत्यंत संक्षिप्तता के कारण प्रभाव भी कुछ क्षीण हो जाता है।

परंतु इस स्वावलंबी संक्षिप्तता का अपना ही उपयोग और महत्त्व है। इसके कारण मुक्तक का वहाँ उपयोग हो सकता है जहाँ प्रबंध का नहीं हो सकता। प्रबंध का आनंद उठाने के लिये स्वच्छंद अवकाश की आवश्यकता है। जहाँ मनुष्य एक दूसरे का समय कुछ आनंद-विनोद में व्यय कर रहे हैं वहाँ प्रबंध के लिये स्थान नहीं है। सभा-समाजों के लिये मुक्तक की ही संक्षिप्त रचना उपयुक्त है। विद्वान्

आलोचक पंडित रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, जिनके एक दो वाक्यों का अवतरण हम ऊपर दे चुके हैं, "यदि प्रबंध-काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।" सभा-समाजों की शोभा बढ़ाने के लिये एक वनस्थली की वनस्थली नहीं उठा ले आई जा सकती, जब कि गुलदस्तों और स्तवकों से सभा-मंडपों की सजावट करना अवसरोचित और स्वाभाविक है। मुक्तकों के इतने अधिक प्रचार का यही मूल कारण है। राजा-महाराजाओं की सभाओं तथा सहृदय कवि-मंडलियों में, जहाँ अनेक कवि अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाने को लालायित रहते हैं वहाँ, अपनी कवित्व-शक्ति का चमत्कार दिखाने के उद्देश्य से यदि कोई कवि प्रबंध-काव्य लिखकर ले जाय तो वह कहाँ तक अपने महत्त्व की सद्यःस्वीकृति की आशा कर सकता है? इसके लिये मुक्तक का ही आश्रय लिया जा सकता है। फलतः मुक्तक काव्य ने सभा-समाजों की चहल-पहल की वृद्धि में योग दिया और सभा-समाजों की चहल-पहल ने मुक्तक काव्य के प्रचार में। इन्हीं मुक्तकों का संग्रह हमें आजकल नाना शतकों, सप्तशतियों और भांडागारों में मिलता है।

मुक्तकों के संग्रहों में सात सौ की संख्या के लिये जितना आग्रह दिखाई देता है उतना और किसी संख्या के लिये नहीं। अमरुक ने शतक लिखा और रसनिधि ने हजारा लिखकर मुक्तक को हजारी का मनसब दिया सही, परंतु विशेषतः लोगों ने यही प्रयत्न किया कि उनके संग्रहों में लगभग सात सौ पद्य रहें। सात सौ से कुछ अधिक पद्य रहने पर भी उनके संग्रहों के नाम सप्तशती या सतसई ही रखे गए। 'सतसई' संस्कृत 'सप्तशती' का ही हिंदी रूप है। संस्कृत में गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती है, प्राकृत में सातवाहन की संग्रह की हुई गाथासप्तशती है। हिंदी में तो आठ नौ सतसइयों के नाम कहे जाते हैं जिनमें से छः के साथ रसनिधि

के रतनहजारा का संक्षिप्त संस्करण जोड़कर यह सतसई-सप्तक प्रस्तुत किया गया है। एक धार्मिक ग्रंथ दुर्गा सप्तशती में भी इसी संख्या को आदर दिया गया है। हाल में 'वियोगी-हरि' जी की वीर-सतसई निकली है। नहीं जानते कि इस सात सौ की संख्या में क्या विशेषता है, जिससे लोग इसे इतना पसंद करते हैं या यों ही अनुकरण मात्र पर 'सतसई' लिखने की प्रथा चल पड़ी है। कहते हैं मंत्र-साहित्य में भी सात की संख्या को महत्त्व दिया गया है। कदाचित् इसी कारण से साहित्य-क्षेत्र में भी उसका आदर हुआ हो। सप्तशती और सतसई श्रुति-मधुर नाम तो अवश्य हैं।

यदि सतसई लिखने की प्रथा अनुकरण ही पर चली हो तो इसमें संदेह नहीं कि आदिम आदर्श सातवाहन की गाथासप्तशती ने ही उपस्थित किया। गोवर्धनाचार्य्य ने गाथासप्तशती की ही देखा देखी संस्कृत में अपनी आर्यासप्तशती लिखी। उनकी एक आर्या से इस बात का संकेत मिलता है—

वाणी प्राकृत समुचितरसा बलेनैव संस्कृतं नीता।
निम्नानुरूपनीरा कलिंदकन्येव गगनतलम्॥

(वाणी प्राकृत ही में रसीली लगती है, उसे मैं बलपूर्वक संस्कृत में बदल रहा हूँ, नीचे बहनेवाली यमुना को आकाश की ओर ले जाने का प्रयत्न कर रहा हूँ।) "वाणी प्राकृत समुचितरसा" कहते हुए गाथासप्तशती पर उनकी दृष्टि थी इसमें संदेह नहीं, और "बलेनैव संस्कृतं नीता" से ध्वनित होता है कि उन्होंने किसी सीमा तक प्राकृत से अनुवाद किया है। आर्यासप्तशती में गाथासप्तशती का विषय और छंद-संख्या दोनों दृष्टियों से अनुकरण किया गया है। दुर्गासप्तशती और गाथासप्तशती में यदि कोई संबंध हो सकता है तो यही कि उसमें इसकी छंद-संख्या भर का अनुकरण है।

हिंदी में भी यह बात पाई जाती है। विहारी तथा उन्हीं के ढंग के कुछ कवियों की सतसइयों में गाथासप्तशती और आर्या-सप्तशती को विषय और छंद-संख्या दोनों के संबंध में आदर्श माना गया है, जब कि तुलसीदास आदि कुछ कवियों ने केवल छंद-संख्या के संबंध में अपनी सतसइयों में इन प्राचीन सप्तशतियों का अनुसरण किया है। इन पिछली सतसइयों के लिये विषय की दृष्टि से महाभारत में विदुर अथवा भीष्म पितामह-कथित नीति का आदर्श चुना गया है। इनमें भक्ति-संबंधी कुछ मुक्तकों को छोड़कर, जिनकी गणना शांतरस में की जा सकती है, अधिकांश पद्य सूक्ति मात्र ही हैं। प्रस्तुत संग्रह में उपर्युक्त दोनों प्रकार की रचनाएँ संगृहीत हैं। तुलसीदास और वृंद की सतसइयाँ सूक्ति-सतसइयाँ हैं और शेष शृंगार-सतसइयाँ।

पहले सूक्ति-सतसइयों को लीजिए। सूक्ति या सुभाषित का अर्थ ही अच्छे कथन से है। सूक्ति का प्रधान उद्देश्य उपदेश है। नित्य प्रति के व्यवहार में जिन बातों से लाभ उठाया जा सकता है उन्हीं बातों को सूक्तिकार एक मार्मिक और हृदयग्राही ढंग से कहता है, जिससे वह जनसाधारण के मन में चुभ जाती हैं। सूक्तिकार कोई नई बात कहने नहीं जाता। सामान्य अनुभूति के क्षेत्र के सामाजिक, नैतिक, धार्मिक और कभी कभी पारमार्थिक तथ्यों को ही वह एक नए और विशेष ढंग से कहता है। सामान्य अनुभूति-क्षेत्र की बात होने के कारण उसकी तथ्यता के विषय में किसी को अधिक संदेह में पड़ने की अथवा छानबीन करने की आवश्यकता तो पड़ती नहीं, "यह बात कितनी सच्ची है, इस ढंग से यह मेरे मन में पहले क्यों नहीं आई" कुछ ऐसी मनोवृत्ति के साथ वह श्रोता के मन में अपने लिये और भी गहरा स्थान कर लेती है। सूक्ति का आधार वह चमत्कार है जिसमें कोई पुरानी बात आश्चर्य

के साथ नए रूप में देखी जाती है। इस प्रभाव को लाने के लिये सूक्तिकार के पास कई साधनों का होना आवश्यक है। सबसे पहले उसके कथन में कुछ वक्रता या बाँकापन होना चाहिए। उसे घुमाव-फिराव से बात कहनी चाहिए। बिल्कुल सीधे ढंग से कहने से बात का महत्त्व बहुत कुछ घट जाता है। सिंहद्वार या सदर फाटक से आक्रमण करनेवाले को दृढ़ अवरोध का सामना करना पड़ता है। इसी लिये किले में प्रवेश करने के लिये आक्रमण-कारी ऐसे किसी किनारे के छोटे-मोटे दरवाजे की टोह में रहते हैं जिसका कोट के निवासियों को उतना खयाल न हो। दिल में प्रवेश करने के लिये भी बात को ऐसे ही मार्ग ढूँढ़ने चाहिएँ। विदग्ध वाणी को ऐसे मार्ग सहज ही मिल जाते है। जो बात बहुत दिनों के शास्त्रार्थ और तर्क-वितर्क से किसी के मन में न जमाई जा सके वह सहसा किसी चतुराई भरी एक छोटी सी बाँकी उक्ति से एक क्षण में सुझाई जा सकती है। 'सहसा' शब्द पर विशेष ध्यान देना चाहिए। क्योंकि विदग्ध वाणी का प्रभाव भी बिना सहसा कहे बहुत कुछ क्षीण हो जाता है। अचानक और शीघ्र आक्रमण प्रभावशाली होता है। यदि आक्रांतों को तैयारी का अवसर दे दिया जाय तो फिर विजय अनिश्चय में पड़ गई। विजय आक्रांत को आश्चर्य में डालने में है। आश्चर्य उतना अधिक गहरा होगा जितनी मात्रा में उक्ति सहसा कही जायगी और वेग-पूर्ण होगी। इन्हीं गुणों के कारण कोई व्यक्ति प्रत्युत्पन्नमति कहलाता है। अवसर पर फबती बात को अचानक कह बैठना यही प्रत्युत्पन्न मति का लक्षण है। सूक्तिकार को प्रत्युत्पन्नमति होना चाहिए। यह बात तो बिना कहे ही माननी चाहिए कि सूक्तिकार के पास ज्ञान का भांडार पर्याप्त होना चाहिए, परंतु उससे अधिक उसके पास अवसर के उपयुक्त उचित उपयोग करने की शक्ति होनी चाहिए।

जो व्यक्ति सुप्त स्मृति-भांडार में से प्रस्तुत घटना से मेल खाती हुई बातों को चुनकर एकाएक संबंध न घटित कर सके उसे अपनी प्रत्युत्पन्न मति और सभा-चातुरी का गर्व न करना चाहिए। दृष्टांत सूक्तिकार का सबसे बड़ा बल है। यदि उक्ति का बाँकपन तलवार की धार है तो दृष्टांत तलवार की मूठ है। मूठ पर जितना अधिकार रह सकेगा, प्रहार उतना ही गंभीर और मर्मभेदी होगा।

ऊपर हम सूक्ति में वक्रता अथवा उक्ति-वैचित्र्य का उल्लेख कर आए हैं। वक्रोक्ति से यह न समझना चाहिए कि अर्थ बिलकुल गोरखधंधे ही में बंद कर दिया जाय। ऐसा करना सूक्ति को उद्देश्य-भ्रष्ट करना होगा। जो बात समझ ही में न आवे उसका प्रभाव क्या हो सकता है? किसी उक्ति की प्रभविष्णुता की रक्षा तभी तक हो सकती है जब तक उसमें भाषा की स्वाभाविकता की रक्षा हो। भाषा बनावटी न होनी चाहिए। जहाँ तक हो उसे नित्य की बोलचाल की भाषा की तरह चलती होना चाहिए। बोलचाल की भाषा का संपूर्ण माधुर्य्य निचुड़कर मुहावरे में आता है। परंतु मुहावरे का पूरा सौंदर्य बोलचाल की सरल और स्वाभाविक भाषा के संसर्ग में ही खिल सकता है। कृत्रिम भाषा के मेल में तो वह बहुत विरूप हो जायगा। कृत्रिम शैली के उदाहरण में गोसाईंजी के कूट रखे जा सकते हैं, जो हमारी समझ में किसी प्रकार भी उनके गौरव को बढ़ानेवाले नहीं हो सकते। क्लिष्ट कल्पना और विदग्धता इन दोनों के प्रभाव परस्पर विरोधी होते हैं। बल्कि यों कहना चाहिए कि जिस रचना में क्लिष्ट कल्पना आ जाती है उसका कोई प्रभाव ही नहीं होता, जब कि विदग्धता-सिद्ध वाणी अत्यंत प्रभविष्णु होती है। प्रभविष्णुता और प्रसाद गुण अगल-बगल चलते हैं। जो बात जितनी सुगमता से समझ में आवेगी

वह हृदय पर उतना ही अधिक भी प्रभाव डालेगी। यही संक्षेप में सूक्ति के गुण हैं।

हम कह चुके हैं कि प्रस्तुत संग्रह में तुलसी-सतसई और वृंद-सतसई सूक्ति सतसइयों के अंतर्गत आती हैं। तुलसी-सतसई गोसाईं तुलसीदासजी के फुटकर दोहों का संग्रह है। गोसाईंजी की शिष्य-परंपरा में उनका जन्म-संवत् १५५४ माना जाता है। शिवसिंह सेंगर ने संवत् १५८३ में इनका जन्म होना लिखा है। पंडित रामगुलाम द्विवेदी के मत का समर्थन करते हुए डाकृर ग्रिअर्सन १५८९ में उनका जन्म मानते हैं। हमने गोसाईंजी के जीवन-चरित में वेणीमाधवदास के साक्ष्य पर सं० १५५४ को ही ठीक माना है। वेणीमाधवदास के मूल गोसाईं-चरित के अनुसार इनका जन्म राजापुर में हुआ था। इनकी माता का नाम हुलसी था। इसका संकेत गोस्वामीजी की रचनाओं से भी मिलता है। इनके पिता राजगुरु थे। किंवदंती के अनुसार उनका नाम आत्माराम दूबे था। माता के गर्भ में ही इनके दाँत उग आए थे। जन्मते ही ये रोए-चिल्लाए नहीं बल्कि इन्होंने स्पष्टतया 'राम' शब्द का उच्चारण किया। इससे पहले कि बिरादरी के लोगों की सम्मति से पिता यह निश्चय कर सकें कि बालक का क्या करना चाहिए, हुलसी ने उसे अपनी एक दासी की सास के पास भेज दिया, जिसने पाँच वर्ष तक हरिपुर में उसका पालन-पोषण किया। हुलसी तो बालक को जन्म देने के दो ही तीन दिन पीछे मर गई थी। अब यह स्त्री भी साँप के डसने से मर गई। कुलक्षणी समझकर पिता ने भी बालक की सँभाल नहीं की। कुछ दिनों तक तो बालक दरवाजे दरवाजे राम का नाम लेकर माँगता फिरा। इसलिये लोग इसे रामबोला कहते थे। जन्मते ही राम कहना भी उसके रामबोला कहलाए जाने का एक कारण

था। इस दशा में स्वामी रामानंद के शिष्य अनंतानंद के चेले नरहर्यानंद ने उसका उद्धार किया और अपना शिष्य बनाकर वे उसका पालन-पोषण करने लगे। उन्होंने इनके सब संस्कार किए और रामबोला से बदलकर तुलसीदास नाम रखा। कुछ समय तक तुलसीदास अपने गुरु के साथ भ्रमण करते रहे और समय समय पर रामचंद्र की कथा सुनते रहे, जिससे इनके हृदय में उत्कट राम-भक्ति का बीज बोया गया। फिर पंद्रह वर्ष तक ये काशी में शेषसनातनजी के पास शिक्षा पाते रहे। उनके स्वर्गवासी होने पर जब ये राजापुर गए तो इनका सारा परिवार नष्ट हो चुका था। इनका विवाह यमुना के दूसरे तट पर स्थित तारपिता गाँव के किसी ब्राह्मण की कन्या के साथ हुआ था। अतिशय प्रेम के कारण एक दिन इनकी स्त्री के अपने मायके चले जाने पर ये भी उसके पीछे पीछे हो लिए। इस पर उसने इन्हें बहुत झिड़का जिससे इनको वैराग्य हो आया। इन्होंने चारों धाम की यात्रा की और जीवन पर्यंत अपने इष्टदेव का निरंतर आराधन करते हुए संवत् १६८० में अपनी इहलोक-लीला संवरण की।

सतसई के अतिरिक्त इन्होंने रामचरितमानस, गीतावली, विनय-पत्रिका, कवितावली, दोहावली आदि लगभग बारह उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना की। पंडित रामगुलाम द्विवेदी के साथ कुछ लोगों को सतसई के गोसाईंजी रचित होने में संदेह है, क्योंकि इसमें कूट रचनाओं की अधिकता है। महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी ने उसे किसी गाजीपुर-निवासी तुलसी कायस्थ की रचना माना है, क्योंकि उसमें गणित का बहुत गहरा ज्ञान प्रदर्शित किया गया है, जो एक कायस्थ के ही उपयुक्त हो सकता है। कुछ ऐसे शब्दों का भी व्यवहार हुआ है जो गाजीपुर के अतिरिक्त

और कहीं प्रयोग में नहीं आते। यदि इस प्रकार की तर्क-शैली से काम लिया जाय तो गोसाईंजी के गनी गरीब इत्यादि शब्दों के प्रयोग करने से कोई गोसाईंजी को ईरान ले दौड़ेंगे और उनकी ज्योतिष-संबंधी रचनाओं के कारण उन्हें एक अन्य तुलसी जोशी की कल्पना करनी पड़ेगी। फिर जो लोग सतसई को गोसाईंजी की नहीं मानते वे दोहावली को उनकी मानते हैं। परंतु दोहावली के लगभग डेढ़ सौ दोहे सतसई में मिलते हैं और दोहावली भी कूट रचनाओं से खाली नहीं है। सतसई में की जानकी-उपासना से भी लोगों को इसके तुलसीकृत होने में संदेह होता है। परंतु वेणीमाधवदास के मूलचरित्र से स्पष्ट है कि जिस समय उन्होंने सतसई की रचना की उस समय उनका झुकाव जानकीजी की ओर अधिक हो रहा था। गोसाईंजी ने स्वयं सतसई का रचना-काल यों दिया है—

अहि-रसना (२) थन-धेनु (४) रस (६) गनपति (१) द्विज गुरुवार।
माधव सित सिय जनम तिथि सतसैया अवतार॥

इससे संवत् १६४२ वैशाख मास में सीता की जन्म-तिथि पर यह ग्रंथ लिखा गया है। वेणीमाधवदास ने भी इस ग्रंथ के लिखे जाने का यही समय दिया है। सं० १६४० में गोसाईंजी ने जनकपुर-यात्रा की। वेणीमाधवदास ने तो उन्हें जानकीजी के हाथ की खीर तक खिलाई है। तुलसी-सतसई के राजनीति और आत्मबोध-निरूपण सर्ग राजा जनक के स्मारक से लगते हैं। फिर जानकी-भक्ति राम-भक्ति की विरोधिनी भी नहीं है। उन्होंने सतसई में भिन्न भिन्न विषयों पर जो मत प्रकट किए हैं उनका अन्य ग्रंथों से विरोध भी नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त इस सतसई के कर्त्ता ने अपना निवास-स्थान गंगा किनारे लोलार्क के पास बताया है जो गोसाईं

तुलसीदासजी के सिवाय और किसी का निवास-स्थान नहीं हो सकता—

रवि चंचल अरु ब्रह्मद्रव, बीच सुबास विचारि।
तुलसिदास आसन करे, अवनिसुता उर धारि॥

इन सब बातों से हमें इस सतसई को गोसाईंजी कृत मानने में कोई अड़चन नहीं जान पड़ती।

तुलसी-सतसई में सात सर्ग हैं। प्रथम सर्ग में भक्ति-विषयक दोहे हैं, द्वितीय में उपासना पराभक्ति के, तीसरे में सांकेतिक वक्रोक्ति से राम-भजन किया गया है। चौथे, पाँचवें और छठे में क्रमशः आत्मबोध, कर्म-सिद्धांत और ज्ञान-सिद्धांत संबंधी दोहे और सातवें सर्ग के दोहों में राजनीति का निरूपण किया गया है। सूक्ति की जो कसौटी ऊपर निर्धारित की गई है उस पर गोसाईंजी के सब दोहे खरे नहीं उतरते। कुछ कबीर की साखी के ढंग पर कोरे उपदेश मात्र हैं जिनका महत्त्व यही है कि उनमें एक महान् तथ्य का कथन है। परंतु कथन में कितना ही महत्त्वपूर्ण तथ्य क्यों न हो जब तक वह प्रभावपूर्ण भी न हो तब तक उसका उतना मूल्य नहीं हो सकता।

ज्ञान गरीबी गुरुधरम, नरम बचन निरमोख।
तुलसी कबहुँ न छाँड़िए, सील सत्य संतोख॥

इस सामान्य उपदेश से हमारा ज्ञान भर बढ़ सकता है, उसका कुछ प्रभाव भी हमारे ऊपर पड़ेगा या नहीं यह बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर है; स्वयं इस उक्ति में कोई शक्ति नहीं है। प्रभावशाली होने के लिये सूक्ति में ज्ञान और शक्ति दोनों का सम्मिश्रण होना चाहिए। भारतीयों का सा अशक्त ज्ञान दुनिया के किसी काम में नहीं आ सकता, चाहे प्रत्येक देश के दो चार व्यक्ति उसकी प्रशंसा के पुल बाँधते रहें।

इसी प्रकार तुलसी-सतसई का एक सर्ग का सर्ग कूट-कविताओं से भरा है जिनकी रचना केवल इसलिये की गई जान पड़ती है कि गोसाईंजी अपने समय की सभी प्रचलित शैलियों में अपनी सिद्धहस्तता दिखाना चाहते थे। अन्यथा उनसे कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध होता नहीं दिखाई देता। अर्थ तक पहुँचने के लिये ऐसी भूलभुलैयाँ से जाना पड़ता है कि लक्ष्य तक पहुँचने में कठिनता होती है। इस भूलभुलैयाँ के विशेषज्ञ टीकाकारों का भी विश्वास नहीं किया जा सकता। तुलसी-सतसई पर दो टीकाएँ हैं और दोनों में कूटों के संबंध में मतभेद दिखाई देता है। सचमुच कूटों की रचना से गोसाईंजी का गौरव नहीं बढ़ा है, परंतु केवल इसी कारण हम एक तथ्य का अस्तित्व नहीं मिटा सकते।

इतना होने पर भी गोसाईंजी की सतसई में सुंदर मार्मिक सूक्तियाँ जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी हैं। उदाहरण-स्वरूप थोड़ी सी यहाँ पर दी जाती हैं—

हरे चरहिं तापहिं बरे, फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत जग, परमारथ रघुनाथ॥

जगत् की स्वार्थपरता का कैसा स्पष्ट चित्र है। जब तक लता-वृक्षादि हरे रहते हैं वे चरे जाते हैं, जब उन पर फल लगते हैं तब सब लोग उनके फलों को खाते हैं परंतु जब पेड़ सूख जाते हैं तब उनके उपकार भुला दिए जाते हैं और लोग उन्हें जलाकर तापने लगते हैं।

स्वामी होनो सहज है, दुरलभ होनो दास।
गाडर लायो ऊन को, लाग्यो चरन कपास॥

नाम मात्र को स्वामी होना तो सहज है परंतु वास्तविक स्वामी वही हो सकता है जो उनकी सेवा करे जिनका वह स्वामी बनता है। ऊन के लिये यदि कोई भेड़ें लावे और उनकी देख-भाल और टहल-

सेवा न कर सके तो वे उसकी कपास भी चर लेंगी और शायद ला-परवाही के कारण लूट हो जाने से ऊन भी उनसे न मिल सकेगा।

चलब नीति-मग राम-पग प्रेम निबाहब नीक।
तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारब फीक।

इस बात को सभी पसंद करेंगे कि कपड़ा वही पहनना चाहिए जिसकी चटक धोने से फीकी न पड़े। जब सुननेवाले को मालूम होता है कि राम के चरणारविंद के सहारे न्याय-पूर्वक चलते हुए भगवत्-प्रेम का निर्वाह करना सदा एकरस चटकवाले वस्त्र को पहनने के समान है तब उसकी रुचि उस दिशा की ओर मुड़ ही जाती है।

राजा को कैसा होना चाहिए, जरा यह भी सुन लीजिए—

बरखत हरखत लोग सब, करखत लखै न कोइ।
तुलसी भूपति भानु सम, प्रजा भाग बस होइ॥

सूर्य कब और कैसे पृथ्वी से रस को खींच लेता है, यह प्रकट रूप से किसी को भी नहीं देख पड़ता। किंतु जब पृथ्वी से खिंचा हुआ जल बरसता है तब सभी देखते हैं और प्रसन्न होते हैं। इसी प्रकार राजा को भी चाहिए कि वह कर इस प्रकार से उगाहे कि प्रजा को जान न पड़े और फिर कर रूप में आई हुई धनराशि को प्रकट रूप से प्रजा के हित में खर्च करे।

ऊपर दी हुई सूक्तियों में रचना-चातुर्य के सहारे अप्रस्तुत दृष्टांत का प्रभाव प्रस्तुत में आरोपित कर दिया गया है। इसी प्रकार की सूक्तियाँ कविता के अंतर्गत आ सकती हैं। कूट रचनाओं को कविता मानना प्रायः कविता का निरादर ही करना है। कभी कभी कूट में भी वाग्विदग्धता के दर्शन हो सकते हैं, जैसे नीचे लिखे इस कूट में—

जग ते रहु छत्तीस है, राम चरन छव-तीन।
तुलसी देखु बिचारि हिय, है यह मतो प्रवीन॥

इसमें बात को दृष्टि-पथ में प्रस्तुत करने का जो आकस्मिक और आश्चर्यकर ढंग है उससे मन पर बहुत शीघ्र और गहरा प्रभाव पड़ता है।

परंतु इसके लिये गोसाईं तुलसीदास के सदृश शक्तिशाली और तीव्र कल्पनावाले कवि की आवश्यकता है। गोसाईंजी में भी एक ही दो ऐसे कूट मिलते हैं और यह भी संभव है कि कुछ लोग इनको कूट मानने के लिये ही तैयार न हों।

इस संग्रह में दूसरी सूक्ति-सतसई वृंद की है। वृंद का जन्म संवत् १७०० के आश्विन की शुक्ला प्रतिपदा गुरुवार को मेड़ते में हुआ। इनके पिता कविरूपजी डिंगल भाषा के कवि थे। वृंद की शिक्षा काशी में हुई। इनके गुरु तारा पंडित ने इन्हें संस्कृत और पिंगल का अच्छा अध्ययन कराया था। काशी से लौटने पर पहले ये कुछ समय तक जोधपुर के महाराज जसवंतसिंह के दरबार में रहे। सं० १७३० में वजीर नवाब मुहम्मदशाह के द्वारा इनकी पहुँच औरंगजेब के दरबार में हुई, जहाँ इनको १०) प्रति दिवस के हिसाब से वेतन मिलता रहा। कुछ वर्ष पीछे औरंगजेब की आज्ञा से ये उसके नाती अजीमुश्शान के साथ रहने लगे। सं० १७४२ में कृष्णगढ़ के महाराज मानसिंह ने इन्हें अपने राजकुमार राजसिंह की शिक्षा के लिये नियुक्त किया। कुछ समय तक ये अजमेर के सूबेदार मिरजा कादरी की कन्या के शिक्षक भी रहे। समय समय पर ये दिल्ली बराबर आते रहते थे, क्योंकि ये स्थायी रूप से दरबारी कवि थे। अंत में औरंगजेब के पुत्रों में उत्तराधिकार के युद्ध होने पर नए बादशाह से महाराजा राजसिंह ने, जो उनकी तरफ से लड़कर विजयी हुए थे, वृंद को माँग लिया। तब से लगभग पंद्रह वर्ष तक वे इन महाराज के दरबार में रहे और अंत में कृष्णगढ़ ही में इन्होंने ८० वर्ष की आयु भोगकर संवत् १७८० में इस नश्वर शरीर को छोड़ा।

वृंद बड़ी स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे। इनको बादशाह ने 'सच्चो कहनेवाला कविराज' की उपाधि दी थी। यद्यपि ये औरंगजेब के दरबारी कवि थे फिर भी इन्होंने अपनी स्वतंत्र प्रकृति का त्याग नहीं किया। संवत् १७३६ में जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंहजी के स्वर्गवासी होने पर औरंगजेब ने पचास मंदिर तुड़वाने का हुक्म दिया था। इस अवसर पर औरंगजेब की आड़े हाथों खबर लेते हुए वृंद ने कुछ कवित्त बनाए थे। उनमें से एक यहाँ दिया जाता है—

एहो शाह औरंग कहावत हो पातिशाह
आप ही बिचारो यह कैसी सुबहानगी।
जब महाराज लाल ने डेरा लगाइ लूटे
तब क्यों न लरिकै दिखाई तेग-बानगी॥
देस पर देस सूबा केतक इनाम दीन्हें
कीन्हीं दिलजोई प्यार परवानगी।
जब जसवंत सुरपुर को सिधाए तब
तेग बाँध आए, यह कैसी मरदानगी?

वृंद ने सत्य-स्वरूप रूपक-वचनिका, अलंकार-सतसई, शृंगार-शिक्षा, हितोपदेशाष्टक, भाव-पंचाशिका आदि कई ग्रंथ लिखे, परंतु कोई उतना प्रसिद्ध नहीं हुआ जितनी कि उनकी रची हुई वृंद-विनोद सतसई, जो इस संग्रह में वृंद-सतसई के नाम से दी गई है। इस ग्रंथ की रचना ढाका में संवत् १७६१ में हुई, जैसा कि कवि ने स्वयं ही ग्रंथ के अंत में कहा है—

संवत् ससि(१)रस(६)बार (७) ससि (१) कातिक सुदि ससि बार।
सातैं ढाका शहर मैं, उपज्यो इहै विचार॥

गोसाईंजी की भाँति वृंद ने अपनी रचना में कूटों अथवा कोरे उपदेशों को स्थान नहीं दिया है। उनकी सूक्तियों में सर्वत्र एकरस

विदग्धता है। सूक्तियों के उपयुक्त कोई ऐसे गुण नहीं जो उनकी सूक्तियों में न पाए जाते हों। भाषा की सरलता, मुहावरों की प्रचुरता, कहावतों का बहुल प्रयोग ये सब बातें उनकी सूक्तियों में मिलती हैं।

वृंद की सतसई में भाषा के असाधु प्रयोग का एक ही उदाहरण इमें मिलता है—

खलजन सौं कहिए नहीं गूढ़ कबहुँ करि मेल।
यौं फैलै जग माहिं ज्यौं जल पर 'बूँद कि तेल'॥

'तेल की बूँद' न कहकर 'बूँद की तेल' कहना यह एक बड़ा दोष है। परंतु अन्यत्र कहीं वाक्य-रचना का व्यतिक्रम वृंद की रचना में नहीं हुआ है इसी से इसको देखकर आश्चर्य होता है। और जगह भाषा बिल्कुल साफ है। बड़े चमत्कारी दृष्टांतों को ढूँढ़ने में जितनी सिद्धहस्तता वृंद में दिखाई देती है उतनी और किसी सूक्तिकार में नहीं मिलती। साधारण सी साधारण घटना में से वे ऐसे आश्चर्यकर असाधारण दृष्टांत निकाल लेते हैं कि सुननेवाले को चकित रह जाना पड़ता है। ऊपर कहे गए तथ्यों के साक्षीभूत उनकी सूक्तियों के कुछ थोड़े से उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं—

पिसुन छल्यौ नर सुजन सों करत बिसास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध कौ पीवत छाछहि फूँकि॥
बनती देख बनाइयै परन न दीजै खोट।
जैसी चलै बयार जब तैसी दीजै ओट॥
विधि के बिरचे सुजनहू दुरजन सम ह्वै जात।
दीपहि राखै पवन ते अंचल वहै बुझात॥
भले बुरे सब एक से जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक ऋतु बसंत के माहिं॥
जैसौ बंधन प्रेम कौ तैसौ बंध न और।
काठहिं भेदै कमल कौ छेद न निकरै भौंर॥

जे चेतन ते क्यों तजैं जाकौ जासौं मोह।
चुंबक के पीछे लग्यो फिरत अचेतन लोह ॥
हरत दैव निबल अरु दुर्बल ही के प्रान।
बाघ सिंह को छाँड़िकै देत छाग वलिदान ॥

वृंद की टक्कर का एक ही सूक्तिकार हुआ है, रहीम। कहते हैं कि रहीम ने भी एक सतसई लिखी थी परंतु उसके अब कुछ ही दोहे मिलते हैं। बिहारी, मतिराम आदि शृंगार-सतसईकारों ने भी अपनी सतसइयों में कहीं कहीं पर सूक्तियाँ कही हैं और बड़ी सुंदर कही हैं, परंतु वे संख्या में बहुत कम हैं। अतएव उनकी गिनती सूक्तिकारों में नहीं हो सकती। गोसाईंजी ने भी कोई कोई सूक्तियाँ ऐसी कही हैं कि उनकी तुलना की सूक्ति हिंदी में ढूँढ़ निकालना कठिन है। परंतु ऐसी सूक्तियाँ उन्होंने बहुत कम कही हैं। उनमें अधिकांश कोरे उपदेश या कूट ही हैं। यदि गोसाईंजी और बिहारी आदि कवियों की कीर्ति केवल सूक्तियों पर ही अवलंबित रखी जाय तो संभवतः उनको कल ही लोग भूल जायँ परंतु वृंद की कीर्ति सूक्तिकार होने ही में है। कविता के और क्षेत्रों में भी उन्होंने अपना हाथ आजमाया है, परंतु उन्हें सर्वत्र घोर असफलता हुई। हाँ, सूक्ति कहना उनकी अपनी विशेषता है जिसमें वे पूर्णतया सफल हुए हैं।

शृंगार-सतसइयाँ 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' की परिभाषा के अंतर्गत आती हैं। सूक्ति में रचना-चमत्कार मात्र के आ जाने से उसका उद्देश्य सिद्ध हो जाता है, परंतु शृंगारी कविता में जब तक रस का परिपाक न हो तब तक वह अपने उच्चतम आसन पर नहीं बैठ सकती। यहाँ पर थोड़े में इस बात पर विचार कर लेना आवश्यक है कि रस है क्या वस्तु।

"काव्य के आस्वाद को रस कहते हैं। रसों के आधार भाव हैं। जो भाव मन में बहुत काल तक रहकर उसे तन्मय कर दें, वे ही रस हो जाते हैं। ऐसे भाव स्थायी भाव कहलाते हैं। अब तक प्रेम, हास, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, आश्चर्य, शोक और शांति ये नौ स्थायी भाव माने गए हैं। जो भाव मन में केवल अल्प काल तक संचरण कर चले जाते हैं वे संचारी भाव कहलाते हैं। ये प्रवृत्ति के अनुसार भिन्न भिन्न स्थायी भावों को रस की उच्च भूमि तक पहुँचाने में सहायक होते हैं। संचारी और स्थायी भावों के अतिरिक्त रस की निष्पत्ति के लिये विभावों और अनुभावों की आवश्यकता होती है। रसों को उदित और उद्दीप्त करनेवाली सामग्री विभाव कहलाती है। इसके तीन अंग हैं—आश्रय, आलंबन और परिस्थिति। विषयी आश्रय, विषय आलंबन और अनुकूल देशकाल परिस्थिति है। जैसे—सीता-विषयक प्रेम यदि राम में है तो राम को उसका आश्रय, सीता को आलंबन और जनकपुर के उपवन को परिस्थिति समझना चाहिए। परिस्थिति को साहित्यिक भाषा में उद्दीपन विभाव कहते हैं। अनुभाव आंतरिक मनोभाव का बाहरी शारीरिक लक्षण है। मुखमंडल की मुद्रा आदि भीतर के भावों को प्रकट करती ही हैं। जब ये कायिक लक्षण स्थायी भाव से मन की अत्यंत और विह्वलकारी तन्मयता सूचित करते हैं तब ये सात्त्विक कहलाते हैं। रोमांच, स्वेद, वैवर्ण्य, कंप, अश्रु, प्रलय, स्वरभंग और स्तंभ ये आठ सात्त्विक माने गए हैं। सात्त्विक लक्षण स्वतः प्रकट हो जाते हैं। परंतु कुछ कायिक परिवर्त्तन ऐसे भी होते हैं जिनमें प्रयत्न अपेक्षित रहता है। आँख नचाना, गर्दन मोड़ना, किसी अंग को दिखलाना, ये सब कार्य किए तो स्थायी भाव की उमंग की लपेट में जाते हैं परंतु किए जाते हैं इच्छावश। इन्हें 'हाव' कहते हैं। हावों का संबंध आलंबन से होता है और

सात्त्विक भावों का आश्रय से। इनमें कार्य-कारण का संबंध होता है। हावों को देखकर ही बहुधा सात्त्विक भावों का उदय होता है। परंतु यह अनिवार्य भी नहीं है। बिना हावों के भी सात्त्विक हो सकते हैं। हावों और सात्त्विक भावों की भी अनुभावों के ही अंतर्गत गणना की जानी चाहिए, यद्यपि इनके अतिरिक्त और भी अनुभाव हो सकते हैं जिनकी गिनती ही नहीं हो सकती। अतएव आश्रय के हृदय में आलंबन को विशेष परिस्थिति में देखकर जो विशेष प्रकार का बहुत देर तक उसे मग्न कर देनेवाला उसकी आकृति से लक्ष्यमाण भाव उदय होता है उसकी अनुभूति का पाठक या श्रोता के हृदय में, रस के रूप में, आविर्भाव होता है। दांपत्य प्रेम से शृंगार, संतान-प्रेम से वात्सल्य, हास से हास्य, क्रोध से रौद्र, उत्साह से वीर, भय से भयानक, घृणा से वीभत्स, शोक से करुण, आश्चर्य से अद्भुत और शांति अथवा निर्वेद से शांत-रस का उदय होता है।"

इन सब रसों में से शृंगार-रस जितना सर्वप्रिय हुआ उतना कोई और रस नहीं। इसका भी कारण है। दांपत्य रति जितना व्यापक भाव है उतना संभवतः और कोई भाव नहीं। मनुष्य की वासना-वृत्ति को जितनी तृप्ति इस भाव से मिलती है उतनी और भावों से नहीं। इसके अतिरिक्त रस की आद्यंत संपूर्ण योजना की विवृति, शृंगार रस के अतिरिक्त और किसी रस में नहीं होती। अनुभावों के अंतर्गत हावों तथा सात्त्विक भावों का और रसों में कोई स्थान नहीं। शृंगार-रस में आश्रय और आलंबन दोनों की क्रीड़ा-स्थली हृदय हो सकता है, और आश्रय और आलंबन का विभेद कवि के ही दृष्टि-कोण से होगा, वास्तविक नहीं और फिर भी वे स्थान बदलते हुए दिखाई देंगे। अन्य रसों के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। उनमें आलंबन की अनुभूति आश्रय के स्थायी भाव का विषय

हो सकती है। किंतु स्थायी भाव आलंबन की अनुभूति का विषय कदापि नहीं हो सकता। जिसको देखकर आपको हँसी आती है वह आपसे रुष्ट होगा, आप पर हँसेगा नहीं। आपको आश्चर्य में डालनेवाला दृश्य अथवा व्यक्ति आपको आश्चर्य में पड़ा हुआ देखकर आश्चर्य-चकित न होगा। जो स्वयं करुण दशा में है उसके प्रति करुणा दिखलाने से वह कृतज्ञ होगा पर उसके हृदय में आपके प्रति करुणा का भाव उदय नहीं होगा। यही बात और रसों के विषय में समझिए। ऊपर संचारी भावों का उल्लेख हो चुका है। संचारी भाव तेंतीस होते हैं—१ चिंता, २ निद्रा, ३ सुप्त, ४ मद, ५ स्मृति, ६ अमर्ष, ७ गर्व, ८ त्रास, ९ ईर्ष्या, १० दैन्य, ११ जड़ता, १२ हर्ष, १३ धृति, १४ शंका, १५ श्रम, १६ ग्लानि, १७ निर्वेद, १८ व्रीड़ा, १९ विबोध, २० मोह, २१ अपस्मार, २२ आवेग, २३ सुमति, २४ अवहित्थ, २५ तर्क, २६ उन्माद, २७ विषाद, २८ व्याधि, २९ चपलता, ३० उत्सुकता, ३१ उग्रता, ३२ मरण, ३३ अलसता। इनमें से अंतिम तीन को छोड़कर शेष सब शृंगार-रस की निष्पत्ति में सहायक होते हैं। और रसों में इतने संचारियों का उपयोग नहीं हो सकता। हास्य में केवल तीन, अद्भुत में चार, वीभत्स में पाँच, वीर में छः, रौद्र में आठ, भयानक में दस और करुण में ग्यारह संचारियों का उपयोग हो सकता है। कवि देव की सम्मति में छल एक और संचारी भाव है, इसका भी शृंगार-रस में उपयोग हो सकता है। शृंगार-रस की इसी व्यापकता के कारण वह रसराज कहलाता है और इसी व्यापकता के कारण रस-विषयक ग्रंथ लिखनेवाले कवियों को रस-योजना को पूर्ण रूप से सोदाहरण समझाने के लिये उसका ही आश्रय लेना पड़ा है। रस-विषयक किसी ग्रंथ को ले लीजिए। उसमें शृंगार-रस का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलेगा। अन्य रसों का वर्णन बहुत

संक्षेप में किया हुआ पाइएगा। मध्य युग के साहित्य-प्रेमी राजा-महाराजाओं की विलास-प्रियता का भी शृंगार-रस के इस प्रचार में कुछ हाथ था, यह बात निस्संकोच कही जा सकती है। शृंगार-सतसइयों का रूप यद्यपि लक्षण-ग्रंथों का सा नहीं है तथापि इसमें कोई संदेह नहीं कि उनमें के पद्य भी साहित्य-शास्त्र के लक्षणों को ही सामने रखकर रचे गए हैं।

रस का जो निरूपण ऊपर किया गया है उससे रसीले मुक्तक रचने-वाले कवियों की कठिनता का अनुमान किया जा सकता है। परंतु सप्तशतियों और सतसइयों के संबंध में यह कठिनता और भी बढ़ जाती है, क्योंकि इनके लिये बहुत छोटे छंद चुने गए हैं। हम यह देख चुके हैं कि शृंगार-सतसइयों का आदर्श प्राकृत गाथा-सप्तशती ने प्रस्तुत किया। उसके अनुकरण पर संस्कृत में आर्या-सप्तशती लिखी गई। दोनों को ध्यान में रखकर बिहारी ने हिंदी में अपनी सतसई लिखी और हिंदी-सतसईकारों ने बिहारी-सतसई को अपना आदर्श बनाया। इन सब ग्रंथों को देखने से पता चलता है कि शार्दूलविक्रीड़ित, शिखरिणी आदि लंबे लंबे वृत्तों को छोड़कर प्राकृत में गाथा और संस्कृत में आर्या छंद चुने गए तथा हिंदी में सवैए, कवित्त आदि लंबे छंदों को छोड़कर छोटा सा दोहा छंद चुना गया। कहीं कहीं दोहे के स्थान पर सोरठा भी देखा जाता है और विक्रम ने अपनी सतसई में कुछ बरवै भी कहे हैं। परंतु इससे वस्तु-स्थिति में कोई अंतर नहीं आता क्योंकि सोरठा और दोहे में कोई विशेष अंतर नहीं। दोहे के पहले और दूसरे तथा तीसरे और चौथे चरणों के स्थान परिवर्तन कर देने मात्र ही से दोहा सोरठे में बदल जाता है। बरवै दोहे से छोटा ही छंद है, बड़ा नहीं। इतने छोटे छोटे छंदों में भी रस की इस विशद और पेचीली सामग्री को भर देना, यह सतसईकारों

का कठिन कर्त्तव्य है। इसमें वह जहाँ तक कृतकार्य होगा वहाँ तक साहित्य-शास्त्र की परिभाषा तथा रसिकों की दृष्टि में वह सफल कवि समझा जायगा।

प्रस्तुत संग्रह में पाँच शृंगार-सतसइयाँ हैं। समय तथा उत्कृष्टता दोनों की दृष्टि से पहला स्थान बिहारी-सतसई का है। बिहारी का जन्म संवत् १६५२ में ग्वालियर में हुआ था। उनके पिता का नाम केशवराय था और उनके दादा का वासुदेव। ये धौम्य-गोत्री घरबारी माथुर चौबे थे। इनकी माता के मर जाने पर इनके पिता ग्वालियर छोड़कर ओड़छे चले गए। उसके पास ही गुढ़ौ ग्राम में उनके गुरु टट्टी संप्रदायी सरसदेवजी के शिष्य नरहरिदासजी रहते थे जिनके यहाँ प्रसिद्ध आचार्य केशवदास भी आया-जाया करते थे। बाबू जगन्नाथदास जी रत्नाकर का अनुमान है कि नरहरिदासजी के अनुरोध से केशवदासजी ने बिहारी को कुछ काल तक अपने साथ रखा और काव्य-रीति की शिक्षा दी। अब सं० १६७० में नरहरिदास की अनुमति से बिहारी के पिता रहने के लिये वृंदावन आए तो बिहारी को भी साथ लेते आए। वृंदावन में भी बिहारी को नागरीदासजी जैसे कई साहित्य-मर्मज्ञों की संगति का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहीं सं० १६५७ में उनकी शाहजादा शाह-जहाँ से भी जान-पहचान हुई। शाहजहाँ अपने पिता जहाँगीर के साथ आया था। जहाँगीर ने अपनी तुजुक जहाँगीरी में वृंदावन आने और वहाँ चित्सखानंद स्वामी के दर्शन करने की बात का उल्लेख किया है। बिहारी की कविता सुनकर शाहजहाँ बड़ा प्रसन्न हुआ और उन्हें अपने साथ आगरे ले गया। यहाँ उनका खानखाना अब्दुर्रहीम के साथ परिचय हुआ। खानखाना ने भी उनकी कविता की प्रशंसा की। इनकी ख्याति और मान दिन दिन बढ़ने लगा। अपनी गुणग्राहकता का प्रदर्शन और शाहजहाँ को

प्रसन्न रखना ये दोनों शिकार एक ही ढेले से होते देख बहुत से राजा महाराजा बिहारी पर अपनी कृपा की वर्षा करने लगे। बहुत रियासतों से उनकी वार्षिक वृत्ति बँध गई और वे भिन्न भिन्न राजाओं के पास आने-जाने लगे।

सं० १६८१ के आस पास एक बार वे अपनी वार्षिक वृत्ति के संबंध में आमेर पहुँचे। उस समय महाराज जयसिंह आमेर की गद्दी पर थे। उन्होंने हाल ही में नया ब्याह किया था। नई रानी के प्रेम में वे इतना रम गए थे कि राज-काज की देख-भाल छोड़कर रात-दिन उसी के महल में पड़े रहते थे, बाहर निकलने का नाम न लेते थे। अंदर किसी की पहुँच नहीं होती थी। कहते हैं कि बाहर यह भी सुना गया कि महाराजा साहब कहते हैं कि कोई यदि हमारे रंग में भंग करेगा तो हम उसका अंग-भंग कर देंगे। मंत्री लोग चिंतित थे और महारानी अनंतकुमारी (चौहानी रानी) को भी अत्यंत दुःख था। बिहारी के वहाँ पहुँचने पर मंत्रियों ने उनसे प्रार्थना की कि कोई ऐसा उपाय सोचिए जिसमें राजा चेतें और राज-काज निभे तथा चौहानी रानी प्रसन्न हों। बिहारी शाहजहाँ के प्रीतिपात्र थे। वे जानते थे कि महाराजा मुझे छेड़ने का साहस नहीं कर सकते। इस-लिये उन्होंने निर्भय होकर यह दोहा लिखकर राजा के पास भिजवा दिया—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं बिकास इहि काल।
अली कली ही सौं बँध्यौ आगैं कौन हवाल॥

दोहा पढ़ते ही राजा को चेत हुआ। 'आगैं कौन हवाल' की गूढ़ व्यंजना भी राजा को सूझ गई। 'इस तरह बेखबर रहोगे तो आगे कैसे निभेगी। शाहजहाँ तुमसे भिड़ने का अवसर ही देख रहा है।' महाराज ने बिहारी का बड़ा उपकार माना। बहुत सी

स्वर्ण-मुद्राएँ उनकी भेंटकर उन्होंने उनका सम्मान किया और आगे के लिये भी प्रति दोहा एक अशर्फी देने की प्रतिज्ञा की। राजा के बाहर आने से चौहानी रानी बड़ी प्रसन्न हुईं। उन्होंने भी बिहारी को बहुत पारितोषिक और काली पहाड़ी का गाँव भेंट किया तथा उन्हें अपनी ड्योढ़ी का कवि बना लिया। उन्होंने उक्त अवसर का एक चित्र भी खिंचवाया जो अब तक जयपुर के महल में लगा है।

इस प्रकार बिहारी के आमेर में रहने का आयोजन हुआ और वे समय समय पर दोहे रचकर राजा जयसिंह को दिखाने और प्रतिज्ञानुसार अशर्फियाँ पाने लगे। येही दोहे आगे चलकर सतसई के रूप में संगृहीत हुए। यह बात तो स्वयं बिहारी ने भी स्वीकार की है कि महाराजा जयसिंह के कहने पर ही सतसई के दोहों की रचना हुई—

हुकुम पाइ जय साहि को, हरि राधिका प्रसाद।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद॥

अनुमान होता है कि सतसई संवत् १७०४ के शीतकाल में पूर्ण हुई होगी, क्योंकि अंतिम दोहों में बलख की लड़ाई का उल्लेख है जो इसी संवत् में समाप्त हुई थी। इस लड़ाई में महाराज जयसिंह भी औरंगजेब की सहायता के लिये गए थे। वहाँ उन्होंने बड़ी वीरता से पठानों पर जय पाई और बड़ी युक्ति से सेना को बर्फ में दब जाने से बचाया—

सामाँ सेन, सयान की, सबै साहि कैं साथ।
बाहु-बली जयसाहि जू, फते तिहारैं हाथ॥
यौं दल काढ़े बलक तैं, तैं जयसिंह भुआल।
उदर अघासुर कैं परैं, ज्यौं हरि गाइ गुवाल॥

सुना जाता है कि बिहारी के एक भाई और एक बहिन भी थी। भाई इनसे बड़ा था और बहिन छोटी। इनका भानजा कुलपति मिश्र भी अच्छा कवि हुआ। बिहारी को कोई संतान नहीं

हुई। उन्होंने अपने भतीजे निरंजनकृष्ण को गोद ले लिया था। इसी से उनका वंश चला। पत्नी की मृत्यु होने पर बिहारी वृंदावन चले गए। निरंजनकृष्ण को वे आमेर ही छोड़ गए। इन्हीं निरंजनकृष्ण के गोकुलदास, उनके खेमकरन, उनके दयाराम, उनके मानिक-मनि, उनके गनेस और उनके बालकृष्ण हुए। इन बालकृष्ण के पुत्र अमरकृष्ण हुए। ऐसा जान पड़ता है कि निरंजनकृष्ण का दूसरा नाम कृष्णलाल था। कृष्णदत्त कवि ने सतसई पर सवैए लिखे हैं। वे इन कृष्णलाल से भिन्न हैं। लोग इन दूसरे कृष्ण कवि को भ्रमवश बिहारी का पुत्र मानते हैं।

सतसई के अतिरिक्त कोई और भी रचना बिहारी नें की है या नहीं इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। कुछ लोगों को तो सतसई के भी बिहारी कृत होने में संदेह है। बिहारी का एक दोहाबद्ध जीवन-वृत्त मिला है जिसमें लिखा है कि सतसई के दोहे वास्तव में बिहारी के नहीं उनकी स्त्री के बनाए हुए हैं। उसके अनुसार उनकी स्त्री घर पर कविता बनाया करती थी और ये राजाओं के दरबारों में जाकर उसे पढ़ आया करते थे। उसी वृत्त में यह भी लिखा है कि इनकी स्त्री ने चौदह सौ दोहे बनाए थे जिनमें से सात सौ चुनकर सतसई में रखे गए। स्त्री के द्वारा दोहों का रचा जाना किसी की उपजमात्र जान पड़ती है। उसको प्रमाणित करने के लिये कोई अन्य साक्ष्य नहीं मिलता। परंतु इससे यह जान पड़ता है कि बिहारी ने केवल सात सौ दोहे नहीं रचे थे। कहते हैं, जोधपुर में दूहा-संग्रह नाम से पंद्रह सोलह सौ दोहों का एक संग्रह है जिसमें बहुत से दोहे बिहारी के हैं। हो सकता है कि यह संपूर्ण संग्रह बिहारी-कृत हो।

बिहारी ने सतसई के अतिरिक्त कोई और रचना की हो या न की हो, परंतु उनके कीर्ति-विस्तार के लिये एक सतसई ही पर्याप्त है। जितना प्रचार उनकी सतसई का हुआ, रामचरितमानस को

छोड़कर उतना कदाचित् ही किसी अन्य ग्रंथ का हुआ हो। उसपर दर्जनों टीकाएँ हो चुकी हैं और अब तक होती जा रही हैं। कई कवियों ने उन पर सवैए, कुंडलिए और छप्पय बैठाने के प्रयत्न किए हैं परंतु कोई भी सफल न हुए और न हो ही सकते थे। इस सतसई के उर्दू और संस्कृत अनुवाद भी हो चुके हैं। संस्कृत अनुवाद शृंगार-सप्तशतिका नाम से पंडित परमानंद ने किया है और उर्दू अनुवाद गुलदस्तए-बिहारी नाम से बुंदेलखंड निवासी मुंशी देवीप्रसाद 'प्रीतम' ने। आधुनिक टीकाओं में पंडित पद्मसिंह शर्म्मा का संजीवन-भाष्य जितना प्रकाशित हुआ है उतना बहुत चुटीला और देखने ही योग्य है। परंतु न जाने क्यों उन्होंने अब तक उसे पूर्ण करने का कष्ट नहीं उठाया। बिहारी की सबसे गंभीर और मार्मिक टीका व्रजभाषा के दिग्गज विद्वान् बाबू जगन्नाथदासजी की बिहारी-रत्नाकर है।

रसिक समाज में बिहारी की सतसई का इतना प्रचार यों ही नहीं हुआ। उसका दृढ़ कारण था। काव्यरीति का कोई ऐसा अंग नहीं जिसकी खूबियाँ बिहारी की कविता में न मिलें। कहीं कहीं तो एक ही दोहे में रस की मधुर व्यंजना, अलंकारों की सुष्ठु योजना और शब्दों का लालित्य साथ साथ देखने को मिलता है—

जुरे दुहुनु के दृग झमकि, रुके न झीनैं चीर।
हलुकी फौज हरौल ज्यौं, परै गोल पर भीर॥
लाज लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं।
ये मुँह जोर तुरंग ज्यौं, ऐंचत हू चलि जाहिं॥

इनकी पर्यवेक्षण शक्ति बहुत तीव्र थी। बारीक से बारीक बात भी इनकी आँखों से नहीं बच सकती थी। जिस दृश्य या चेष्टा को एक बार देख लेते उसका चित्र इनके मस्तिष्क में खिंच जाता था। उस आंतरिक सूक्ष्म चित्र को शब्द-चित्र में अभिव्यक्त

करने की इनकी शक्ति अतुलनीय थी। नहाकर तालाब से निकलकर आती हुई इस स्त्री का चित्र देखिए—

बिहँसति सकुचति सी दिएँ, कुच आँचर विच बाँह।
भीजैं पट तट कौं चली, न्हाइ सरोवर माँह॥

इनके सरस हावों का वर्णन पढ़ते हुए एक चलचित्र सा आँखों के सामने खिंच जाता है, और ऐसा जान पड़ने लगता है मानों उन चेष्टाओं का हमारे सामने अभिनय हो रहा है। अपने कथन की पुष्टि में हम यहाँ पर केवल दो दोहे उदाहरण स्वरूप देते हैं—

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै, भौंहनु हँसै, दैन कहैं नटि जाइ॥
भौंह उँचै आँचरु उलटि, मौरि मोरि मुँह मोरि।
नीठि नीठि भीतर गई, दीठि दीठि सौं जोरि॥

ऐसे ही सजीव चित्रों के कारण इनकी कविता में हृदय को आकर्षित कर लेने की शक्ति आई है। इस सूझ की स्वाभाविकता देखिए—

कर मुँदरी की आरसी, प्रतिबिंब्यौ प्यौ पाइ।
पीठि दियैं निधरक लखै, इकटक डीठि लगाइ॥

प्रेम के कारण बुद्धि को जो अभिनव स्फूर्ति प्राप्त हो जाती है उसमें प्रेमी व्यक्ति अपने ऐसी ही प्रेम के विषय को देखने के लिये अनेक युक्तियाँ निकाल लेते हैं। किसी के पाँव में काँटा चुभ जाता है तो किसी का अंचल किसी झाड़ी से उलझ जाता है। परंतु ऐसी नायिकाएँ भी अपने नायकों को क्षण भर ही देख सकती हैं। निधड़क पर्याप्त समय तक प्रिय को देख सकने की युक्ति बिहारी की ही नायिकाओं को सूझती है, जिससे न प्रिय से झेपना पड़े और न लोगों का डर रहे। एक और युक्ति का दर्शन कीजिए—

मंजन करि खंजन-नयनि, बैठी ब्यौरति बार।
कच अँगुरिन बिच दीठि दै, चितवति नंदकुमार॥

यह स्वाभाविक बात है कि अपने प्रिय के संबंध में सब कोई सभी बातें जानना चाहते हैं। वह कैसी स्थिति में रहता है, क्या करता है, हमें भी कभी याद करता है, यदि याद करता है तो प्रेम से या घृणा से। ये सब बातें हम जानना चाहते हैं और यदि हमें प्रिय के पास से आया हुआ कोई आदमी मिल जाता है तो हम उस पर इन प्रश्नों की झड़ी सी लगा देते हैं और उत्तर पाने पर भी हमारा जी नहीं भरता, बार बार पूछते ही जाते हैं। यही बात नीचे के दोहे में बिहारी की नायिका कर रही है—

फिरि फिरि बूझति कहु कहा, कह्यौ साँवरे गात ?
कहा करत, देखे कहाँ, अली चली क्यौं बात ?

कभी आप की ऐसी दशा हुई है कि हँसने का भी जी करता है और रोने का भी। ऐसी दशा को व्यक्त करना बड़ा कठिन होता है। इस दोहे में ऐसा ही भाव दिखाया है।

बालमु बारैं सौति कै, सुनि पर-नारि बिहार।
भो रसु अनुरसु रिस रली, रीझ खीझ इक बार॥

बिहारी जो अपने छोटे छोटे दोहों में एक साथ रस की सारी सामग्री भर सके हैं उसका कारण यह है कि उन्होंने व्यंजना का बहुत अधिक आश्रय लिया है। हम यहाँ एक उदाहरण देंगे—

बिथुरयौ जावकु सौति पग, निरखि हँसी गहि गाँसु।
सलज हँसौंहीं लखि, लियौ, आधी हँसी उसाँसु॥

सौत के पाँवों पर मेंहदी का रंग अच्छा नहीं लगा था, फैला हुआ सा था, जिससे मेंहदी लगानेवाला अनाड़ी मालूम पड़ता था। अपनी सौत से किसे द्वेष नहीं होता। यह देखकर नायिका को भी द्वेषपूर्ण हँसी आई है। उसने समझा, सौत को मेंहदी लगाना भी नहीं आता, वह नायक को क्या वश करेगी। सौत के लिये यह बड़ी लज्जा की बात थी। उसे नायिका के सामने लज्जा से गड़

जाना चाहिए था। पर वह उलटे सलज्ज हँसी हँसती है। इससे नायिका को विदित हो गया कि मेरा अनुमान गलत है। सौत ने अपने हाथ से मेंहदी नहीं लगाई है, नायक ने लगाई है। यह वस्तु-व्यंजना हुई। इससे भी फिर यह भाव व्यंजित हुआ कि नायक का सौत पर अत्यंत प्रेम है। यही समझकर अभी आधी हँस भी नहीं सकी थी कि नायिका विषाद के उच्छ्वास छोड़ने लगी।

इनके अलंकार भी बहुत स्वाभाविक लगते हैं। वे सिर उछाल उछालकर अपना अस्तित्व प्रकट नहीं करते। असंगति एक ऐसा अलंकार है कि जिसमें बहुत गढ़ंत की आवश्यकता होती है—परंतु इनके असंगति भी सुसंगति-पूर्ण होने से गढ़े से नहीं लगते। दो उदाहरण लीजिए—

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हिए, दई नई यह रीति॥
दृगनु लगत, बेधत हियहिं, बिकल करत अँग आन।
ए तेरे सब तैं विषम, ईछन तीछन बान॥

इसमें तो संदेह नहीं कि जहाँ गागर में सागर भरना होता है वहाँ बिना प्रयत्न के काम नहीं चल सकता। बिहारी की कविता भी बहुत परिश्रम से लिखी गई है। परंतु परिश्रम-प्रभव होने पर भी उसमें अस्वाभाविकता नहीं आई है, क्योंकि वास्तव में उनका परिश्रम उनकी काव्यानुभूति का सहायक मात्र है। इसी कारण उनकी कविता में बहुत कम उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनमें केवल चमत्कार हो। भाषा भी वे बहुत साफ और अधिकतर व्रज की बोलचाल की प्रयोग में लाए हैं, जिसमें कुछ बुंदेलखंडीपन भी आ गया है।

उन्होंने शब्दों के साथ बलात्कार बहुत कम किया है। व्याकरण के नियमों का व्यतिक्रम उनकी रचनाओं में बहुत कम पाया जाता है। कहीं कहीं पर जो उनके शब्द अजनबी से लगते हैं वे इस

कारण कि उनका प्रयोग बहुत कम होता है जैसे बादल के अर्थ में वार्द और साफ के लिये अच्छे। ये शब्द अव्यवहृत अवश्य हैं पर हैं शुद्ध संस्कृत के। जहाँ कहीं इन्हें शब्दों को विकृत भी करना पड़ा है वहाँ पर इन्होंने ऐसा तोड़ मरोड़ नहीं किया है कि शब्द का रूप ही कुछ का कुछ हो जाय और भावाभिव्यक्ति में अड़चन पड़ने लगे। इसके एक दो ही अपवाद मिलते हैं, अधिक नहीं, जैसे स्मर के लिये समर और साँस के लिये संसे। फारसी, अरबी के भी कई शब्दों का इन्होंने प्रयोग किया है जैसे किबिलनुमा, ताफता, सबील, गनी इत्यादि। इनकी वाक्य-रचना बहुत गठी हुई है। उसमें एक भी शब्द भरती का नहीं पाया जा सकता। प्रत्येक शब्द किसी विशेष अभिप्राय से व्यवहृत हुआ है। परंतु इस ठूसाठूसी के कारण दूरान्वय का दोष तो इनकी कविता में पाया ही जाता है, भाव भी कहीं कहीं दुरूह हो गए हैं।

परंतु जहाँ इनमें इतनी विशेषताएँ हैं वहाँ एकाध त्रुटियाँ भी मिलती हैं। ऊपर हम इनकी स्वाभाविकता का उल्लेख कर आए हैं। परंतु ऐसे भी स्थल मिलते हैं जहाँ इन्होंने अपने इस गुण को छोड़ दिया है। और जहाँ पर यह बात हुई है वहाँ पर इन्होंने अस्वाभाविकता की हद कर दी है। इनकी अतिशयोक्तियों में संभव असंभव का कुछ भी ध्यान नहीं किया गया है—

जिहिं निदाघ दुपहर रहै, भई माघ की राति।
तिहिं उसीर की रावटी, खरी आवटी जाति॥
आड़े दै आले बसन, जाड़े हूँ की राति।
साहसु ककै सनेहवस, सखी सबै ढिग जाति॥

इसी प्रकार इन्होंने व्रज में गली गली में कृष्ण-विरह में आँसुओं की नदियाँ बहाई हैं, नायिका के घर के चारों पास से पूर्णिमा को छोड़कर सब तिथियों को निकलवा दिया है और विरह के दीर्घ

श्वासोच्छ्वासों को नायिका के दुर्बल शरीर के लिये हिंडोला बना दिया है।

मतिराम सतसई के रचयिता मतिराम त्रिपाठी हैं। इनका जन्म सं० १६७४ के लगभग हुआ था। ये तिकवाँपुर जिला कानपुर के रहनेवाले थे और बहुत बड़े कवि थे। परंपरा से यह सुना जाता है कि हिंदी के प्रसिद्ध कवि चिंतामणि इनके बड़े भाई थे और भूषण छोटे। तिकवाँपुर से दो तीन कोस पर बिलग्राम एक प्रसिद्ध कसबा है। यहाँ के रहनेवाले गुलामअली ने भी अपने ग्रंथ तजकिरा सर्व आजाद हिंद (सं० १८१०) में लिखा है कि चिंतामणि और भूषण इनके भाई थे। गुलामअली के मामा मीर जलील जाजमऊ और बैसवाड़े के दीवान रहिमतुल्ला के मित्र थे। रहिमतुल्ला बड़े गुणग्राही सज्जन थे और चिंतामणि का बड़ा आदर करते थे। अतएव गुलाम अली ऐसी स्थिति में थे कि उनको इस विषय में तथ्य मालूम हो जाता। इससे मालूम होता है कि चिंतामणि, मतिराम और भूषण के भाई होने की बात तथ्य है, परंपरागत किंवदंती मात्र नहीं है। कुछ लोग कवि जटाशंकर को भी भाई मानते हैं परंतु इसके कोई प्रमाण नहीं मिलते।

ये बूँदी-नरेश छत्रशाल के पुत्र भावसिंह के आश्रित थे। भावसिंह के लिये इन्होंने 'ललित ललाम' की रचना की थी। इनका सबसे उत्कृष्ट ग्रंथ 'रसराज' है जिसको ये इससे पहले बना चुके थे। शिवाजी के पुत्र शंभाजी के दरबार में भी इनका रहना पाया जाता है। कमायूँ के राजा उदोतचंद के पुत्र ज्ञानचंद को इन्होंने 'अलंकार-चंद्रिका' लिखकर समर्पित की। जान पड़ता है कि ये कमायूँ से होकर गढ़वाल भी गए थे। वहाँ की राजधानी श्रीनगर में इन्होंने 'छंदसार पिंगल' ग्रंथ फतेहशाह को समर्पित किया था। कई राज्यों के पुस्तकालयों में उनके अन्य ग्रंथ भी मिलते हैं।

इनसे जान पड़ता है कि वहाँ के राजाओं को उन्होंने ये ग्रंथ समर्पित किए थे।

अपनी सतसई इन्होंने किसी भोगनाथ नामक राजा को समर्पण की थी। भोगनाथ का नाम सतसई में कई बार आता है। ग्रंथ की समाप्ति में इस प्रकार भोगनाथ की शुभ कामना की गई है।

तिरछी चितवनि स्याम की लसति राधिका ओर।
भोगनाथ कौं दीजियै, यह मन-सुख बर जोर॥

मतिराम की रस-प्रसविनी लेखिनी ने कविता की स्वाभाविक धारा को बहाया। उनकी कविताओं में उनके हार्दिक भाव देखने को मिलते हैं। उनकी कविता बिहारी की कविता की भाँति प्रयत्न-प्रसूत नहीं है। यह उनकी तन्मयता का फल है। यद्यपि उनके पद्यों की गठन इतनी चुस्त नहीं है जितनी बिहारी के पद्यों की; पर वह शिथिल भी नहीं है। उनके न भाव कृत्रिम हैं और न भाषा। उनकी सतसई को उनकी संपूर्ण रचना का रस समझना चाहिए। उसके अधिकांश दोहे उनके सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों, रसराज और ललित-ललाम, से लिए गए हैं। अतएव उनमें मतिराम-प्रतिभा की संपूर्ण प्रभा चमक उठी है।

लिखति अवनि तल चरन सौं, बिहँसत बिमल कपोल।
अधनिकरे मुख-इंदु तैं, अमृत बिंदु से बोल॥

इस एक दोहे में काव्य के न जाने कितने गुण आ गए हैं। इसमें स्पष्ट दो चित्र सामने आते हैं। एक तो तथ्य के लोक से संबंध रखता है और दूसरा कल्पना-जगत् से उसकी सौंदर्य-वृद्धि के लिये उतर आता है। यहाँ पर नायिका किसी ऐसे पुरुष से बातें कर रही है जिससे उसका नया नया स्नेह हुआ है। स्नेह-पात्र नायक के साथ बातें करने में उसे आनंद आ रहा है। इसलिये उसके कपोल हँसते हुए से मालूम पड़ते हैं। परंतु साथ ही

उसे बड़ी ब्रीड़ा भी हो रही है। खुलकर बात करते नहीं बनता। ऐसे धीरे धीरे बोलती है मानों उसके वचन आधे ही मुँह से बाहर निकलते हों। जब मनुष्य को झेंप होने लगती है तब वह उसे छिपाने और स्वस्थचित्त होने के लिये कुछ और काम करने लगता है। कोई उँगली से बदन खुरचने लगता है, कोई पाँव के अँगूठे से पृथ्वी। यहाँ पर नायिका भी अपनी झेंप मिटाने के लिये पाँव से पृथ्वी पर कुछ लिख सी रही है। कैसा जीता जागता यथार्थ चित्र है। नायिका के अधनिकले 'बोल' की पूर्ण अनुभूति कराने के लिये तुलना में अमृत टपकाते हुए चंद्रमा का चित्र सामने लाया गया है। नायिका के वचन न पूरे बाहर ही निकलते हैं न मुँह के अंदर ही रहते हैं, वैसे ही जैसे चंद्रमा से अमृत की बूँद पसीज रही हो परंतु अभी आधी ही बाहर निकल पाई है। इसमें सादृश्य के साथ साथ मुख की शोभा और वाणी की मिठास की कितनी तीव्र अनुभूति होती है। कितनी सुंदर और सार्थक अलंकार योजना है। इसके अतिरिक्त पूरे दोहे से शृंगार रस की जो अत्यंत मधुर व्यंजना निकल रही है उसके विषय में तो कोई कह ही क्या सकता है। इतना होने पर भी क्या दोहे का भाव समझने में कोई देर लगती है? प्रसाद गुण तो इनकी अपनी विशेषता है जो इनकी कविता के माधुर्य को हृदयंगम करने में सहायक होता है।

वेदांत में उपालंभ का आरोप कर विप्रलंभ की सरस व्यंजना का अवलोकन कीजिए—

बरनत साँच प्रसंग कै, तुम कौं बेद गोपाल।
हियैं हमारे बसत हौ, पीर न पावत लाल॥

मतिराम की भाषा ब्रज की शुद्ध और साफ बोली है। उन्होंने अपनी कविता में बिहारी की तरह अप्रचलित और विकृत शब्दों का प्रयोग कहीं नहीं किया है। उनके भाव मधुर, भाषा प्रांजल और रचना प्रवाहमयी है।

रसनिधि-सतसई रसनिधि कवि के 'रतन-हजारा' का संक्षिप्त संस्करण है। रसनिधि उपनाम है। इनका वास्तविक नाम पृथ्वीसिंह था। ये दतिया रियासत के अंतर्गत बरौनी इलाके के जागीरदार थे। इनकी जीवनी के विषय में बहुत बातें नहीं मालूम हैं। इनका रचनाकाल संवत् १६६० से संवत् १७१७ तक पाया जाता है। इन दोनों संवतों की इनकी रचनाएँ मिलती हैं। रतन-हजारा के अतिरिक्त इनके विष्णुपद और कीर्तन (स्तुति), कवित्त (प्रेम विषयक), बारहमासी, गीतसंग्रह, स्फुट दोहा, रसनिधिसागर, अरिल्ल, हिंडोले आदि कई ग्रंथ खोज में मिले हैं जो अधिकतर प्रेम से संबंध रखते हैं। ये बड़े प्रेमीजन जान पड़ते हैं। जो प्रेम इनके जीवन में व्याप्त था उसके ये अंध-भक्त थे। इनकी कविता से इनके प्रेम की तन्मयता झलकी पड़ती है। पर इस तन्मयता के साथ साथ इनकी अभिव्यंजना में संयम नहीं है। कहीं कहीं इन्होंने फारसी तबीयतदारी के फेर में पड़-कर, अत्यधिक अश्लीलता में पड़कर, सुरुचि की अवहेलना की है। जिन दोहों में यह बात पाई जाती है वे सतसई में नहीं आने पाए हैं। इनकी कविता की सरसता के कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं—

रसनिधि जब कबहूँ बहै, वह पुरवइया बाइ।
लगी पुरातन चोट जो, तब उभरति है आइ॥
तौ तुम मेरे पलन तैं, पलक न होते ओट।
व्यापी होती जो तुमैं, ओट भए की चोट॥
वह पीतांबर की पवन, जब तक लगै न आइ।
सुमन कली अनुराग की, तब तक क्यों बिगसाइ॥
दरदहि दै जानत लला, सुध लै जानत नाहिं।
कहौ बिचारे नेहिया, तुब घाले किन जाहिं॥

जिहि ब्राह्मण पिय गमन कौ, सगुन दियौ ठहराइ।
सजनी ताहि बुलाइ दै, प्रान-दान लै जाइ॥
जो कहिए तो साँच कर, को मानै यह बात।
मन के पग छाले परे, पिय पै आवत जात॥

इन्होंने शृंगार-संबंधी चमत्कारी उक्तियाँ भी खूब कही हैं जिनमें यमक और श्लेष का अधिकतर आश्रय लिया गया है—

जो कछु उपजत आइ उर, सो वे आँखैं देत।
रसनिधि आँखैं नाम इन, पायौ अरथ समेत॥
स्रवन सुनौ है यह नयौ, नेह नगर मैं भाव।
देत न तहँ मन भावतौ, मन के साटै पाव॥

एक ही भाव को इन्होंने कई बार दुहराया भी है, जिससे उनका रस किरकिरा हो जाता है। पुनरुक्ति वही सह्य हो सकती है जिसमें कुछ नवीनता भी हो। यह शक्ति इनमें नहीं देखी जाती। कहीं कहीं इनकी रचना शिथिल भी होती है। बिहारी के अनुकरण पर तो इन्होंने अपने दोहे प्रायः लिखे ही हैं। उनके भावों और यहाँ तक कि पदावली को भी ज्यों की त्यों ले लिया है परंतु इनके हाथ लगाने से ही उनकी कांति जाती रही है।

इन्होंने आत्म तत्त्व पर भी कुछ कहा है और सूफियों के संसर्ग से वे हिंदू-मुस्लिम ऐक्य के प्रयासी भी हुए हैं—

हिंदू मैं क्या और हैं, मुसलमान मैं और।
साहब सबका एक है, व्याप रहा सब ठौर॥

राम-सतसई के रचयिता रामसहाय दास हैं जो काशीनरेश महाराजा उदितनारायणसिंह के आश्रित कवि थे। इनके पिता का नाम भवानीदास था। ये चौबेपुर बनारस के रहनेवाले और जाति के अस्थाना कायस्थ थे। ये बड़े भक्तजन थे। लोग इन्हें भगत कहा करते थे। कविता में अपना उपनाम भी इन्होंने भगत

ही रखा था। इनका कविता काल संवत् १८६० से १८८० तक ठहरता है। इनकी सतसई मतिराम ही की भाँति सरस और स्वाभाविक है। उसमें माधुर्य और प्रसाद गुण की प्रचुरता है। पर ये भी सुरुचि का सर्वत्र विचार रख सके हैं, यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी इनकी कविता रसवती होती थी, जिसके थोड़े से उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं—

जान कहौ तौ जाइए, कुसल रहौ हे कंत।
हौं बाचिहौं हिमंत सौं, सुख साचिहौं बसंत ॥
निज घट उठवाती अरी, मो देती न उठाय।
आन कका के माथ की, साथ न जाउँ लवाय ॥

जरा उल्लास का यह कौतुक देखिए—

आज रही गृह काज तजि, अजब तमासे माहिं।
डारि तुला तोली तियै, तुली छमासे नाहिं ॥

उल्लास के आधिक्य से मनुष्य को ऐसा जान पड़ने लगता है जैसे वह बिल्कुल हलका हो गया हो, जैसे वह आकाश में उड़ रहा है, पृथ्वी पर उसके पाँव ही नहीं पड़ते। ऊपर की अतिशयोक्ति में इसी बात की व्यंजना है। सबकी भाँति इन्होंने भी अपनी सतसई बिहारी के अनुकरण पर लिखी है।

विक्रम-सतसई के रचयिता महाराज विक्रमसाहि बुंदेलखंड की चरखारी रियासत के राजा थे। इनका राजत्वकाल संवत् १८३९ से १८८६ तक रहा। इनका पूरा नाम विक्रमादित्य था। ये बड़े साहित्यानुरागी और गुणग्राही नरेश थे। इनके यहाँ कवियों का बड़ा सम्मान होता था। चतुर्दिक से कविवृंद यहाँ घिर आते थे। खुमान, भोज, प्रताप, प्रयागदास, विजयबहादुर और बिहारीलाल सदृश गुणी और अच्छे कविगण इनके आश्रय में रहते थे। इनके दरबार में रहनेवाले कवि बिहारीलाल सतसई के रचयिता

प्रसिद्ध कवि बिहारीदास से भिन्न थे। वे तिकवाँपुर के रहनेवाले थे। विक्रमादित्य स्वयं बहुत अच्छे कवि थे और विक्रम साहि के नाम से कविता किया करते थे। सतसई के अतिरिक्त इन्होंने श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध का हरिभक्ति-विलास नाम से हिंदी पद्यानुवाद किया और ब्रजलीला इत्यादि अन्य ग्रंथ भी लिखे। इनकी कविता साधारणतया अच्छी और सरस है। अपनी सतसई को इन्होंने बिहारी का आदर्श सामने रखकर बनाया है, परंतु अनुकरण अनुकरण ही है। कला का वह उत्कर्ष इनकी कविता में नहीं पाया जाता जो बिहारी और मतिराम की कविता में पाया जाता है। इनमें कोई ऐसी विशेषता नहीं दिखाई देती जो इनकी अपनी कही जाय। फिर भी इनकी कविता में रस की पर्याप्त व्यंजना है। यहाँ पर दो एक उदाहरण दे देना अच्छा होगा—

मिलत अगाऊ बिन कहे, यहै दोष इन माहिं।
उर उरझावत हठ नयन, सुरझावत फिर नाहिं॥
मुख मीड़त अनखाति कति, कर कर टेढ़ो भौंह।
होरी में यों होत है, मेरी तेरी सौंह॥
होरी में जोरी करत, भोरी करि ब्रजबाल।
कहूँ तकत घालत कहूँ, भरि भरि मूठ गुलाल॥

खिले हुए कमलों के बीच में बैठी हुई रस कली के अप्रस्फुट नवल लावण्य को देखिए—

गौने आई नवल तिय, बैठी तियन समाज।
आस पास प्रफुलित कमल, बीच कली छबि साज॥

वय:संधि का यह कैसा सुंदर और स्वाभाविक चित्र है—

अरुन उदै लौं तरुनई, अँग अँग झलकी आइ।
छन-छन तिय तन औस सी मिटत लरिकई जाइ॥

हम ऊपर कह चुके हैं कि बिहारी ने सतसई के दोहों की रचना करते समय अपने सामने गाथा-सप्तशती और आर्या-सप्तशती का आदर्श रखा था। बिहारी के पीछे के सतसई-कारों ने बिहारी को अपना आदर्श बनाया। यह दिखलाने के लिये हम शृंगार-सतसई-कारों के कुछ ऐसे पद्य यहाँ दे देना आवश्यक समझते हैं जिनमें भाव-सादृश्य हो। इससे जहाँ यह स्पष्ट हो जायगा कि किसने कहाँ तक किसका अनुकरण किया है, यह अनुमान करने में भी सहायता मिलेगी कि किस कवि का कितना महत्त्व है। 'अनुमान' इसलिये कहते हैं कि हमारे विचार में किसी कवि को बड़ा और किसी को छोटा मानना साहस का काम है, क्योंकि किसी कवि का वास्तविक महत्त्व उन पद्यों में हो ही नहीं सकता जिन्हें उसने दूसरों की नकल करके बनाया हो। जिस किसी को किसी कवि का महत्त्व देखना हो वह उसे नकल में नहीं, असल में देखे। भिन्न-भिन्न कवियों के हार्दिक भाव भी टक्कर खा जाते हैं, परंतु उन्हीं के आधार पर फैसला दे देना न्याय-निपुणता नहीं है, क्योंकि बहुत से हार्दिक भाव टक्कर नहीं भी खाते और ऐसे टक्कर न खानेवाले भावों की तुलना करना मानों अपनी हँसी उड़ाना है। यह बात ठीक है कि संसार में कोई बात नई नहीं है। जो इस बात का गर्व करे कि मैं बिल्कुल नई और सार्थक बात कह रहा हूँ, वह या तो मूर्ख है या पाखंडी। हाँ, निरर्थक नई बात कदाचित् कही जा सके, परंतु उस दशा में कहनेवाला कवि न होगा, पागल होगा। किंतु यह बात भी उतनी ही ठीक है कि बात पुरानी होकर भी नई हो सकती है। किसी दूसरे ने एक बड़ी अच्छी बात कही है, जो लोगों को पसंद आती है, हमें भी वही बात कहनी चाहिए, नक्काल की यह मानसिक स्थिति होती है। नक्काल दूसरों की पूँजी के आसरे पर अपना व्यापार चलाने की आशा रखता है, जब कि वास्तविक कवि को

अपने ही बल का भरोसा रहता है। वह उसी भाव को व्यक्त करता है जिसकी उसे स्वयं अनुभूति होती है। जिस बात का एक पूर्ववर्ती कवि अनुभव कर चुका है, उसी बात की अनुभूति परवर्ती कवि को भी हो सकती है। यही अनुभूति पुरानी बोतल में नई मदिरा भरती है। परवर्ती कवियों को पूर्ववर्ती कवियों के व्यक्त किए हुए भावों की जब गहरी अनुभूति होती है तब उन पर इस नवीन कवि के व्यक्तित्व की छाप लग जाती है। हम यहाँ पर यही बताने की चेष्टा करेंगे कि यह छाप हमारे कवियों की भाव-सादृश्ययुक्त कविताओं में कहाँ तक पाई जाती है। इससे आगे बढ़कर कौन बड़ा और कौन छोटा कवि है, इस बखेड़े में हम नहीं पड़ेंगे।

यद्यपि उनकी भाषा की उछल-कूद में समालोचना के महत्त्व की बहुत कुछ हानि हुई है, फिर भी हिंदी-साहित्य के क्षेत्र में तुलनात्मक समालोचना की ओर सबसे पहला प्रबल प्रयत्न पंडित पद्मसिंह शर्म्मा ने किया है। उन्होंने इस बात को भली भाँति सिद्ध कर दिया है कि बिहारी ने अपने बहुत से दोहों के भाव सातवाहन की गाथाओं और गोवर्धनाचार्य की आर्याओं से पाए हैं, परंतु उन्होंने यह भी दिखलाया है कि बिहारी ने उन पर अपनी छाप लगा दी है, केवल नकल नहीं उतारी है। उनकी पुस्तक से इसके एक आध उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं।

गाथा-सप्तशती की एक गाथा है—

अव्वो दुक्करआरअ पुणो वि तंति करेसि गमणस्स।
अज्जवि ण होंति सरला वेणीअ तरंगिणो चिउरा॥ (३। ७३)
[अव्वो दुष्करकारक ! पुनरपि चिंता करोषि गमनस्य।
अद्यापि न भवंति सरला वेण्यास्तरंगिणश्चिकुराः॥]

वाह ! क्या अनहोनी बात कहते हो। फिर जाने की सोचने लगे। अरे देखते नहीं गुलझट पड़े हुए बाल तो अभी तक सीधे ही नहीं हो रहे हैं।

इसी भाव को बिहारी ने यों प्रकट किया है—

अजौं न आए सहज रँग बिरह दूबरै गात।
अब ही कहा चलाइयति ललन चलन की बात ॥

आर्या और दोहा अपने अपने ढंग के दोनों अच्छे हैं। परंतु जिस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर यह उक्ति कही जा रही है उसकी पूर्ति की ओर दोहा अधिक अग्रसर है। गाथा को सुनकर विदेश जाने को प्रस्तुत नायक को यही खयाल आयगा कि मैं बहुत जल्दी परदेश चला जा रहा हूँ और दूसरे यह कि मेरे चले जाने पर नायिका अपने बालों के संबंध में कुछ लापरवाह सी रहने लगेगी। उसे थोड़ा सा दुःख तो अवश्य होगा कि उसकी प्रिया के ऐसे सुंदर बालों की ऐसी दुर्दशा होगी, परंतु वह नायक को परदेश जाने से कदाचित ही रोक सके। अधिक संभावना यह है कि 'अच्छा !' कहकर वह चल देगा। किंतु दोहे को सुनकर निर्मम होकर उससे चले जाते नहीं बनेगा, क्योंकि उससे मन पर गहरी ठेस लगती है। गुलझट पड़े बालों की जगह दुबले अंगों की ओर नायक का ध्यान खींचकर बिहारी ने नायक को उसके चले जाने से नायिका पर आनेवाली शारीरिक विपत्ति की सूचना दी है, जिसे पाने पर यदि वह सच्चा प्रेमी है तो उसे अपने कार्य पर फिर से बहुत सोच-विचार करने को बाध्य होना ही पड़ेगा। इसी से दोहा गाथा से अधिक प्रभविष्णु है।

अब एक आर्या लीजिए—

भ्रामं भ्रामं स्थितया स्नेहे तव पयसि तत्र तत्रैव।
आवर्तपतितनौकायितमनया विनयमपनीय ॥ ४२२ ॥

नायक के स्नेह-जल में पड़ी हुई नायिका (अपनी सखी की) विनय को न मानकर जलावर्त में पड़ी हुई नौका के समान फिर फिर वहीं घूम जाती है।

बिहारी ने इसी भाव को लेकर यह दोहा कहा है—

फिर फिर चित उतहीं रहतु टुटी लाज की लाव।
अंग अंग छवि भौंर मैं भयो भौंर की नाव॥

आर्या की नायिका में पर्याप्त तल्लीनता नहीं दिखाई देती। नायक के पास उसे ठहरने के लिये कुछ अपनी तरफ से भी जोर लगाना पड़ रहा है। उसके सब अंग उसके हृदय का साथ नहीं दे रहे हैं। उसके कान तो स्पष्ट ही हृदय का कहना नहीं मानते। उसके पास विनय को सुनने का अवसर है तभी तो वह उसे 'अपनीय' कर सकी है, हटा सकी है। साथ ही उससे निर्लज्जता व्यंजित होती है। ऐसी निर्लज्जता कहीं देखी नहीं। मानो पहले ही से समाज की मर्यादा के बंधन तोड़ बैठी है। सखियाँ अवश्य उस पर कुढ़ती होंगी। परंतु बिहारी की नायिका हमारी सहानुभूति को आकर्षित करती है। वह निर्लज्ज नहीं है, विवश है। अपनी ओर से उसने पूरा प्रयत्न किया कि शिष्टाचार की रक्षा की जाय। परंतु जब लज्जा की रस्सी स्वतः टूट गई तब वह बेचारी क्या करती। उसका कोई अपराध नहीं था, उसकी विवशता का अपराध था जो उसकी तन्मयता का द्योतन करती है। केवल 'विनयमपनीय' और 'टुटी लाज की लाव' ने भेद किया है किंतु भेद है आकाश पाताल का।

जैसे बिहारी ने अपने से पहले के कवियों से भाव लिए हैं, वैसे ही उनसे पीछे के कवियों ने भी उनसे लिए हैं। पर जैसे बिहारी ने दूसरों से लिए हुए भावों पर अपनी छाप लगा दी है वैसे ही उनसे पीछे के कवि बिहारी से लिए गए भावों पर अपनी छाप लगाने को तो लगा गए हैं, पर वे अधिकतर सफल नहीं हुए हैं।

ऐसे उदाहरण बहुत दिए जा सकते हैं जिनमें बिहारी के पद्य औरों के उन्हीं भावों पर बैठाए हुए पद्यों से स्पष्ट ही उत्तम हैं।

भाषा की समास शक्ति और भाव की समाहार शक्ति बिहारी में चरम सीमा को प्राप्त हुई थी, इसी से उनकी कविता का अनुकरण करना कठिन काम था। जिस भाव को उन्होंने एक दोहे में कहा है उसी के लिये अन्य कवियों को कहीं कहीं दो दो दोहे कहने पड़े हैं और उस पर भी वे उसे पूरा नहीं प्रकाशित कर पाए हैं—

(१) दृग अरुझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हिऐं दई नई यह रीति॥

बिहारी के इस एक दोहे का भाव प्रकाशित करने के लिये रसनिधि ने निम्नलिखित दो दोहे कहे हैं—

उरझत दृग बँधि जात मन कहो कौन यह रीति।
प्रेम नगर में आइकै देखो बड़ो अनीति॥
अद्भुत गति यह प्रेम की लखौ सनेही आय।
जुरै कहूँ टूटै कहूँ कहूँ गाँठ परि जाय॥

इतना वाग्विस्तार होने पर भी ये दोहे असमर्थ से हैं। दूसरा दोहा तो अपने भाव को स्वयं प्रकाशित कर ही नहीं सकता है। जो बिहारी के दोहे को नहीं जानता उसके लिये वह बुझौवल है।

(२) बर जीते सर मैन के ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनानु तें हरि नीके ये नैन॥

यह दोहा बिहारी का है। इसी भाव को लेकर रामसहाय कहते हैं—

खंजन कंज न सरि लहैं बलि अलि को न बखानि।
एनी की अँखियानि तें ए नीकी अँखियानि॥

उत्तरार्द्ध तो दोनों का एक ही है। हरिनी की जगह एनी रख दिया गया है। इतना भेद अवश्य है कि रामसहाय के दोहे में दूसरा अँखियानि व्याकरण के अनुसार अशुद्ध है। पूर्वार्द्ध में कुछ भेद है। रामसहाय आँखों को खंजन और कमल से बढ़-

कर बताते हैं। खंजन, कंज और मृग-नयन तीनों एक ही गुण, सुंदरता, के द्योतक हैं। आँखों को तीनों में से एक से भी बढ़ा देना पर्याप्त होता। बिहारी ने यही किया है। और इस प्रकार थोड़े में उसका उपयोग उन्होंने बड़ी अच्छी तरह किया है जिससे उन्होंने रामसहाय से दो बातें अधिक कह डाली हैं। रामसहाय की नायिका की आँखें केवल सुंदर हैं, बिहारी की नायिका की आँखें मार करनेवाली हैं और विशेषता यह कि ये किसी बात में अपना सानी नहीं रखतीं—'ऐसे देखे मैं न'। मैन और मैं न के यमक की दाद देने का अवसर नहीं है।

(३) आँख मिचौनी हो रही है। बिहारी कहते हैं—

दृग मिहचत मृग-लोचनी भरयो, उलटि भुज, बाथ।
जान गई तिय नाथ के हाथ परस हीं हाथ॥

मतिराम ने भी इस दोहे का अनुकरण करने की चेष्टा की है—

खेलत चोरमिहीचिनी परे प्रेम पहिचानि।
जानी प्रगटत परस तैं तिय-लोचन पिय-पानि॥

परंतु नकल अधूरी ही रह गई है। बिहारी ने घटना का पूर्ण चित्र अंकित किया है। चित्र गतिवान् है। प्रिय ने पीछे से आकर पत्नी की आँखें मीचीं। स्त्री ने भुजाएँ पीछे की ओर उलटकर उसका आलिंगन किया। क्यों? क्योंकि वह आँखों पर उसका हाथ लगते ही पहिचान गई कि ये पति के हाथ हैं। मतिराम का दोहा इसके सामने कुछ नहीं है। 'परे प्रेम पहिचानि' और 'जानी प्रगटत परस तैं' में शब्दों की कितनी फिजूल खर्ची की गई है। स्पर्श से ही जब पहचानना कहना था तो "परे प्रेम पहिचानि" की भूमिका बाँधने की क्या आवश्यकता थी। क्या उसी से प्रेम की व्यंजना नहीं हो जाती? और 'भरयौ, उलटि भुज, बाथ' ने बिहारी के दोहे में जो सजीवता डाल दी है वह मतिराम के दोहे में कहाँ है?

(४) एक उदाहरण विक्रम से भी दे देना ठीक होगा। सखी मुग्धा नायिका की मिष्ट-भाषिता की नायक से प्रशंसा करना चाहती है। बिहारी उससे कहलाते हैं—

छिनकु छबीले लाल वह, जौ लगि नहिं बतराति।
ऊख महूख पियूख की, तौ लगि भूख न जाति॥

नायिका के बोल इतने मीठे होते हैं कि यदि नायक उन्हें सुन ले तो उसे ऊख, मधु और अमृत की इच्छा ही न हो, इनकी इच्छा तभी तक रहती है जब तक वह बोलती नहीं है।

इसी के अनुकरण पर विक्रम कहते हैं—

कह मिश्री कह ऊखरस नहीं पियूष समान।
कलाकंद कतरा अधिक तुअ अधरारस पान॥

विक्रम ने 'बतराति' की जगह अधरारस पान रखा है। अच्छा, कोई बात नहीं। इससे कुछ विशेष अंतर नहीं पड़ता। परंतु जब मिश्री कह दी तब ऊख क्या चीज है और जब पीयूष का नाम ले चुके तब कलाकंद कहने की क्या आवश्यकता ? ऊख महूख पियूख के क्रमोत्कर्ष के सामने विक्रम का दुष्क्रमत्व कितना बुरा लगता है। और कतरा हिंदी के लिये इतना अकाव्योपयोगी शब्द है कि उसके रहते कविता को कदाचित् कतराकर चला जाना पड़े। बिहारी की वचन-विदग्धता भी इसमें नहीं है।

(५) फिर देखिए बिहारी ने कहा है—

लिखन बैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥

कुछ यही भाव रसनिधि भी इस दोहे में लाए हैं—

चतुर चितेरे तुव सबी लिखत न हिय ठहराइ।
कलम छुवत कर आँगुरी कटी कटाछन जाइ॥

रामसहाय ने इस दोहे में इस भाव को लिया है—

सगरब गरब खींचैं सदा चतुर चितेरे आय।
पर वाकी बाँकी अदा नेकु न खींची जाय॥

तीनों कवियों के चित्रकार चित्र नहीं खींच सके। रामसहाय का चित्रकार तो नायिका की बाँकी अदा के कारण चित्र खींचने में असमर्थ रहा। रूपाकार तो चित्रकार कागज पर बना सकता है। पर वह अदा को कैसे अंकित करेगा। रसनिधि के चित्रकार की तो उँगली ही कट गई है, नायिका के कटाक्ष इतने तेज हैं, फिर चित्र कैसे खींचे। यहाँ पर कहा जा सकता है कि कटाक्ष मर्म को बेधते हैं, हृदय पर प्रभाव डालते हैं। कुछ चाकू तो वे हैं नहीं कि चीर फाड़ के काम आवें। ठीक है जो लोग कटाक्षों से छुरी का काम लेते हैं वे कवित्व के क्षेत्र से बाहर चले जाते हैं।

राधा के दृग खेल मैं मूँदे नंदकुमार।
करनि लगी दृग कोर सो भई छेदि उर पार॥

यहाँ पर मतिराम ने कटाक्षों से हाथ भी छिदवा दिया है जो असंभव के साथ साथ अस्वाभाविक भी है। इसके विरोध में मतिराम के ही इस दोहे की स्वाभाविकता को देखिए जिसमें कटाक्षों की मार काट करने की शक्ति अपनी स्वाभाविक सीमा के अंतर्गत है—

लाल तिहारे नैन सर, अचिरज करत अचूक।
बिन कंचुक छेदे करैं, छाती छेदि छटूक॥

पहले बाहर की वस्तु पर छेद होना चाहिए तब उसके नीचे की। यहाँ ऊपर की वस्तु पर आँच भी नहीं आई है और नीचे की वस्तु कटकर छः टुकड़े हो गई है। बात है आश्चर्य की। असंभव को संभव कर दिया है। और वह भी स्वाभाविकता के साथ बिना किसी कष्ट-कल्पना के।

परंतु हमें तो रसनिधि का प्रयोग देखना है—

कलम छुवत कर आँगुरी कटी कटाछन जाइ।

पहली दृष्टि में तो यह प्रयोग अनुचित लग सकता है परंतु विचार करने से मालूम होगा कि यदि अभिधा से काम न लेकर लक्षणा से काम लें तो इसमें कोई अनौचित्य न देख पड़ेगा। कटाक्षों से उँगली कट गई। अभिप्राय यह कि कटाक्षों ने उँगलियों को बेकाम कर दिया। यह उनकी सामर्थ्य के बाहर की बात है कि कटाक्षों को चित्र पर उतार सकें।

रामसहाय के चित्रकार का घमंड नायिका की अदा ने उतार दिया, और रसनिधि की उँगलियाँ उसके कटाक्षों से कट गईं। पर बिहारी का चित्रकार क्यों क्रूर हुआ, क्यों मूर्ख बना? बिहारी स्वयं मौन हैं। वे इस विषय में कुछ नहीं कहते। क्या अदा से? या कटाक्षों से? या इसलिये कि—

अरुन उदै लौं तरुनई अँग अँग झलकी आइ।
छिन छिन तिय तन औस सी मिटत लरिकई जाइ॥

[लड़कपन के जाने और यौवन के आगम से पल पल में नायिका में परिवर्तन हो रहा है।]

जब तक चित्रकार एक बार चित्र बनाकर फिर नायिका की ओर देखता है तब तक उसका रूप बदल जाता है। परंतु किसी एक कारण से, कदाचित् सभी कारणों से जिनमें से सब का ऊपर उल्लेख नहीं हुआ है, मौन भी रहे तो ऐसा जिससे श्रेय बढ़े।

परंतु इससे यह न समझना चाहिए कि बिहारी से पीछे के कवि सदा उनसे पिछड़े ही रहे। कई स्थलों पर निस्संदेह उनमें से कोई कोई बिहारी से आगे भी बढ़ गए हैं। प्रमाण प्रस्तुत हैं। (१) बिहारी नायिका की एड़ी की लाली पर अतिशयोक्ति करते हुए कहते हैं—

पाइ महावरु दैन को नाइनि बैठी आइ।
फिरि फिरि जानि महावरी एड़ी मीड़ति जाइ॥

रामसहाय ने भी यही बात कही है, यद्यपि केवल एड़ी के लिये नहीं—

छैल छबीली की छटा लहि महावरी संग।
जानि परै नाइन लगै जबहिं निचोरन रंग॥

और विक्रमसाहि ने भी—

सहज अरुन एड़ीनि की लाली लखै बिसेखि।
जावक दीवै जकि रही नाइन पाइन पेखि॥

विक्रमसाहि ने ऐसा ही कुछ पाँव की उँगलियों के विषय में भी कहा है—

पांइन लखि लाली ललित नाइन अति सकुचात।
चितै चितै मृदु आँगुरिन फिरि फिरि मीड़त जात॥

बिहारी की नाइन को नायिका की एड़ी में और महावर की गोली में कोई भेद नहीं दिखाई देता, वह एड़ी को महावर की गोली समझकर उसे मीड़ती जाती है, निस्संदेह बहुत भद्दी एड़ी है! या नाइन अपने काम से अनभिज्ञ है। रामसहाय की नाइन को भी कुछ देर तक यह भ्रम रहता है किंतु वह अपना काम जानती है। अधिक रंग निकालने की इच्छा से वह एँड़ी या उँगली को निचोड़ने लगती है। जब रंग नहीं निकलता है, तब भेद खुलता है। जहाँ उँगलियों की लाली के संबंध में विक्रमसाहि ने बिहारी की नकल की है वहाँ पर वे भी उसी भ्रम में पड़े हैं। इतना अवश्य है कि उनकी नाइन को डर है कि कहीं महावर और उँगली में भेद न जान पड़ने से नायिका की उँगली न मीड़ी जाय। इतनी होशियारी पर भी वह करती वही है जिससे बचना चाहती है। स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ भ्रमालंकार न होकर वास्तविक भ्रम है। चमत्कार भ्रम का नहीं है, अतिशयोक्ति का है। बात का बतंगड़ जहाँ पर बनाया जाता है, वहाँ पर गुल गपाड़ा भी हो सकता है, पर रस नहीं आ सकता।

किंतु पहले दोहे में जहाँ विक्रम ने बिहारी से केवल संकेत लिया है वहाँ उनके दोहे में बड़ी सरस स्वाभाविकता आ गई है।

सहज अरुन एड़ीनि की लाली लखै बिसेखि।
जावक दीवै जकि रही नाइन पाइन पेखि॥

नाइन ने अभी एँड़ियों पर महावर नहीं लगाई है। परंतु नायिका की एँड़ियों की स्वाभाविक लाली से नाइन को भान होता है कि मानो उनपर महावर लग चुकी है। इसी से वह कुछ सहमी सी सोच रही है कि महावर लगाऊँ या न लगाऊँ।

(२) नायक परदेश जाना चाहता है, उसे रोकने के लिये बिहारी की नायिका ने एक युक्ति सोची है—

पूस मास सुनि सखिनु पैं साईं चलत सवारु।
गहि कर बीन प्रबीन तिय राग्यौ राग मलारु॥

यही भाव विक्रम ने लिया है—

माँगी बिदा बिदेस कौ दै जराइ अनमोल।
बोली बोल न सुघर तिय दिय अलाप हिंडोल॥

मतिराम भी कुछ ऐसा ही कहते हैं—

प्राननाथ परदेस कौं चलियै समौ बिचारि।
स्याम नैन घन बाल के बरसन लागे बारि॥

बिहारी की नायिका जानती है कि यदि बरसात आरंभ हो जाय तो नायक को भी विरह की वेदना का शीघ्र अनुभव होने लगेगा और वह विदेश न जायगा। इसी लिये वह मलार राग गाती है। लोगों का विश्वास है कि मलार राग गाने से पानी बरसने लगता है। विक्रम की नायिका मलार की जगह हिंडोल गाती है। यह राग वसंत में गाया जाता है। प्रवीण गानेवाला हो तो, कहते हैं, हिंडोल गाने से वसंत ऋतु का आभास बिना ऋतु के भी मिल जाता है। यहाँ भी वही प्रभाव उद्दिष्ट है। बात एक ही है। दोनों नायिकाएँ

बड़ी प्रवीण जान पड़ती हैं। दोनों की प्रत्युत्पन्न मति है। परंतु इतने पर भी क्या हुआ? कौन जानता है कि मलार गाने से बरसात और हिंडोल गाने से वसंत ऋतु हो ही जायगी। यह विश्वास भर है। हम समझते हैं कि दोनों को अंत में हताश होना पड़ा होगा। परंतु मतिराम की नायिका के साथ वह बात नहीं है। क्योंकि उसने तो साक्षात् बरसात की झड़ी लगा दी—

स्याम नैन घन बाल के बरसन लागे वारि।

मलार और हिंडोल गाकर क्रमशः बरसात और बसंत लाने के कृत्रिम प्रयत्नों के विरोध में आँखों से बरसती हुई यह झड़ी कितनी स्वाभाविक है! उसके पीछे कितनी द्रवणशीलता छिपी है। इसी से उसमें द्रावकता भी है।

(३) पहुँचति डटि रन-सुभट लौं रोकि सकैं सब नाहिं।
लाखनहूँ की भीर मैं आँखि उहीं चलि जाहिं॥

यह दोहा बिहारी का है। इसी की टक्कर पर रामसहाय ने लिखा है—

धीर अभय भट भेदि कै भूरि भरी हू भीर।
झमकि जुरहिं दृग दुहुँनि के नेकु मुरहिं नहिं बीर॥

बिहारी ने नायिका की आँखों को सुभट माना है। उनका सुभटत्व इसी में है कि उन्हें नायक की ओर जाने से कोई नहीं रोक सकता, वे वहाँ चली ही जाती हैं। वहाँ जाकर भी कुछ सुभटत्व करती हैं या नहीं, बिहारी नहीं जानते। 'पहुँचति डटि रन सुभट लौं' के अनंतर 'उहीं चलि जाहिं' बहुत शिथिल लगता है। रामसहाय ने नायक-नायिका दोनों की आँखों को 'धीर अभय भट' बनाया है और उनके अभय भटत्व का पूरा निर्वाह किया है। 'भूरि भरी हू भीर' को बेधकर वे आपस में जुट जाती हैं—खूब मार करती हैं। फिर 'रोकि सकैं सब नाहिं' यह बड़ा असमर्थ

वाक्य है। बिहारी कहना चाहते हैं कि सब मिलकर भी नहीं रोक सकते, अर्थात् कोई नहीं रोक सकता परंतु वस्तुतः उसका अर्थ हो गया है—'सब नहीं' रोक सकते। कोई ही कोई रोक सकते हैं। इसके विरोध में 'नेकु मुरहिं नहिं बीर' कितना जोरदार वाक्य है।

(४) कहा भयौ जो बीछुरे मो मन तो मन साथ।
उड़ो जाउ कितहूँ तऊ गुड़ी उड़ाइक हाथ॥

बिहारी के इस दोहे को देखकर रसनिधि को क्या अच्छी सूझी है—

उड़ी गुड़ी लौं मन फिरै डोर लाल के हाथ।
नैन तमासे को रहे लगे निरंतर साथ॥

बिहारी के दोहे का भाव रसनिधि के दोहे के पूर्वार्ध में आ गया है और उत्तरार्ध में एक अनूठी उक्ति ने चमत्कार को और भी बढ़ा दिया है। नायिका का मन उड़ा हुआ है। वह पतंग हो रही है जिसकी डोर नायक के हाथ में है। मन को तो नायक उड़ा रहा है, पर तुम्हारी आँखों को क्या हो गया, वे क्यों वहीं चली जाती हैं जहाँ तुम्हारा मन उड़कर जाता है। जब गुड़ी उड़ाई जा रही है तो आँखें क्या तमाशा न देखेंगी। आँखें तटस्थ नहीं रह सकतीं, जब से गुड़ी का उड़ना आरंभ हुआ है तब से उसको देखते रहना उनकी टेव हो गई है।

हमने ये उदाहरण इस उद्देश्य से नहीं दिए हैं कि शृंगारी कवियों में बिहारी को जो उच्च स्थान प्राप्त है उससे वे गिराए जायँ। परंतु हमारा तात्पर्य यह दिखलाने का है कि और कवि भी बिल्कुल बेकाम नहीं हैं। बिहारी बड़े हैं सही, लेकिन छोटे कवियों का भी अपना मूल्य है। साथ ही जैसा हम ऊपर स्पष्ट कर आए हैं, यह भी हमारा उद्देश्य है कि लोग यह जान जायँ कि दो कवियों के कुछ चुने हुए पद्यों को लेकर तुलना करने से चटपट किसी परिणाम

पर पहुँच जाना कितना भयावह है। ऐसे उदाहरण कम नहीं हैं जिनमें विशेषकर मतिराम और उनके बाद विक्रम बिहारी की बराबरी करने में समर्थ होते हैं, और कहीं कहीं तो वे उनसे बढ़ भी जाते हैं। रसनिधि और रामसहाय में भी ऐसे पद्य मिलते हैं परंतु बहुत कम। बिहारी के अनुकरण पर बहुत अच्छी कविता न लिख सकने के कारण हम किसी कवि के विषय में सामान्य मत नहीं स्थापित कर सकते। उन पद्यों के आधार पर जो मत निर्धारित होगा वह उन्हीं के संबंध में ठीक हो सकता है, वह सामान्य नियम के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता।

फिर भी तुलना के लिये प्रस्तुत कवियों की समस्त रचनाओं को पढ़कर उनके संबंध में मन पर जो कोई सामान्य प्रभाव पड़ते हैं उनके आधार पर उनका थोड़ा बहुत आपेक्षिक महत्त्व अवश्य स्थिर किया जा सकता है। जैसे हम कह सकते हैं कि बिहारी के ऐसी भाषा की चुस्ती प्रस्तुत कवियों में से किसी में नहीं मिलती। परंतु जहाँ उनमें भाषा की चुस्ती है वहाँ ही कई स्थानों पर अभिव्यक्ति की कृत्रिमता और दूरान्वय आदि दोष भी आ गए हैं। मतिराम में भाषा की वैसी समास-शक्ति के वैसे दर्शन नहीं होते जैसे बिहारी में होते हैं, परंतु साथ ही उनकी भाषा शिथिल भी नहीं है। उसके साथ शैली और भाव की अकृत्रिमता के योग से उनकी रचनाएँ और भी चमक उठती हैं। हाव-विभावों और चेष्टाओं की जैसी सुंदर और सजीव योजना बिहारी में मिलती है वैसी और कवियों में नहीं देख पड़ती। यदि इस विषय में कोई बिहारी के निकट पहुँच सका है तो वह मतिराम ही हैं। विक्रम की रचनाओं में भी स्वाभाविकता का माधुर्य पर्याप्त है परंतु वे प्रत्यक्षवाद के इतने पक्षपाती मालूम होते हैं कि व्यंजना का उनके यहाँ कोई मूल्य ही नहीं माना जाता। जिस बात को और कवि केवल व्यंजित करते हैं उसे वे प्रत्यक्ष या नग्न रूप में कहकर

कभी कभी बहुत अश्लील हो जाते हैं। रसनिधि और रामसहाय भी समय समय पर जब अपने वास्तविक रूप में प्रत्यच होते हैं तब उनके पद्य कविता की उच्च भूमि में पहुँच जाते हैं परंतु बहुधा उन्होंने बिना गहन अनुभूति के औरों के ही भावों को प्रदर्शित करने में अपना बल लगाया है, जिससे उनमें स्थान स्थान पर भावों और भाषा दोनों की शिथिलता आ गई है। परंतु जैसा हम कह चुके हैं, जहाँ तहाँ उनकी प्रतिभा वास्तविक काव्य के रूप में जगमगा उठी है।

अशुद्धि-पत्र

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
३	२४	मोह	मोर
२४	६	ंस	हंस
४२	१६	कह तब	कहतब
६६	१७	गा ँ	गाढ़ैं
१०६	८	सैनन	सैन न
,,	१४	ँक	नैंक
१२१	२३	दियो	हियो
१२३	८	देह रहचटौ	नेह रहचटौ
१४७	२३	बिकल	बिकच
१५२	१४	मदर से	मदरसे
२१५	२१	बसनिका	बरुनिकं
२३१	१४	ँसिकै	हँसिकै
२३४	३	तू सतुराई	तूस तुराई
२३५	१०	चोट न	चोटन
२३७	२५	काया	का या
२३९	६	गरवाहीं	गर वाहीं
२४३	४	के दार	केदार
२४४	६	मैन	मैं न
२५६	१०	पीक हवह	पी कह वह
२५७	४	कुकुद	कुमुद
२५८	२६	त ँ	तहँ
२६१	६	न ओढ	नवोढ़
२७०	२	उतरत	उत रत
२८१	६	रज के	रजनी

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
३००	१८	जग	जन
३०५	२६	मन	मग
३१७	१२	उसारे	उखारे
३४८	२	सपनि	सवति
३५२	१२	राजत'''वनी	राजति रवन- वह रवनी
३५३	१३	लूं	तूं
३५५	६	चचतौ	चलतौ
,,	१०	अरवस	अर-बस
३६२	१९	मूंदत	मूंदै
,,	२०	खूदै	कूंदै
३६३	,,	अरोरैं	मरोरैं
३७५	८	जाती	जानी
३७६	३	देखिस चिह्न	देखि स-चिह्न
,,	,,	बाधिमान	बाँधि मान
३७६	२६	मद	मम
,,	,,	गडुवा-...भेरि	गडु बागड़ तन बेरि
३७७	१२	नूह	नेह
३७८	३	वंशीवट	बंसी बट
,,	१६	गरभ	गरम
,,	२६	गाधर	आगर
३८०	२	हरदफ	हरदब
,,	,,	हरदफ	अरदब
३९१	१	नारद	भा रद

(१) तुलसी-सतसई

प्रथम सर्ग

नमो नमो श्रीराम प्रभु परमातम परधाम ।
जेहि सुमिरे सिध होत है तुलसी जन-मन-काम ॥ १ ॥
राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर ।
ध्यान सकल कल्यानमय तुलसी सुर-तरु तोर ॥ २ ॥
परम पुरुख पर-धाम बर जापर अपर न आन ।
तुलसी सो समुझत सुनत राम सोई निरबान ॥ ३ ॥
सकल सुखद गुन जासु सो राम कामना-हीन ।
सकल-काम-प्रद सरब-हित तुलसी कहहिँ प्रबीन ॥ ४ ॥
जाके रोम रोम प्रति अमित अमित ब्रह्मंड ।
सो देखत तुलसी प्रगट अमल सु-अचल प्रचंड ॥ ५ ॥
जगत-जननि श्री जानकी जनक राम सुभ-रूप ।
जासु कृपा अति अघ-हरनि करनि बिबेक अनूप ॥ ६ ॥
तात मातु पर जासु के तासु न लेस कलेस ।
ते तुलसी तजि जात किमि निज घरतर पर-देस ॥ ७ ॥
पिता बिबेक-निधान बर मातु दया-जुत नेह ।
तासु सुअन किमु पाइहैं अनत अटन तजि गेह ॥ ८ ॥
बुद्धि-विनय-गति-हीन सिसु सुपथ कुपथ गत-ग्यान ।
जननि जनक तेहि किमि तजहिँ तुलसी सरिस अजान ॥ ९ ॥
मात तात सिय राम रुख बुद्धि बिबेक प्रमान ।
हरत अखिल अघ तरुन-तर तब तुलसी कछु जान ॥ १० ॥

जिनतें उदभव बर बिभव ब्रह्मादिक संसार।
सुगति तासु तिनकी कृपा तुलसी बदहि बिचार॥ ११॥
ससि रबि सीता राम नभ तुलसी उरसि प्रमान।
उदित सदा अथवत न सो कुतसित तम कर हान॥ १२॥
तुलसी कहत बिचारि गुरु राम सरिस नहिँ आन।
जासु कृपा सुचि होत रुचि बिसद बिबेक अमान॥ १३॥
राम सरूप अनूप जल हरत सकल मल-मूल।
तुलसी मम हिय जो लगहि उपजत सुख अनुकूल॥ १४॥
रेफ रमित परमातमा सह अकार सिय रूप।
दीरघ मिलि बिधि जीव इव तुलसी अमल अनूप॥ १५॥
अनुस्वार कारन जगत औकर करन अकार।
मिलित अकार मकार भौ तुलसी हर-दातार॥ १६॥
ग्यान बिराग5रु भगति सह मूरति तुलसी पेखि।
बरनत गति मति अनुहरत महिमा बिसद बिसेखि॥ १७॥
नाम मनोहर जानि जिय तुलसी करि परिमान।
बरन-बिपरजय भेद तें कहौं सकल सुभ ग्यान॥ १८॥
तुलसी सुभ-कारन समुझि गहत राम रस नाम।
असुभ-हरन सुचि-सुभ-करन भगति-ग्यान-गुन-धाम॥ १९॥
तुलसी राम समान बर सपनेहुँ अपर न आन।
तासु भजन-रति-हीन अति चाहसि गति परमान॥ २०॥
अहि-रसना थन-धेनु रस गनपति-द्विज गुरु बार।
माधव सित सिय-जनम-तिथि सतसैया अवतार॥ २१॥
भरन हरन अति अमित बिधि तत्त्व-अरथ कबि-रीति।
सांकेतिक सिद्धांत-मत तुलसी बदत बिनीति॥ २२॥
बिमल बोध कारन सु-मति सतसैया सुख-धाम।
गुरु-मुख पढ़ि गति पाइहैं बिरति भगति अभिराम॥ २३॥

म-न-भ-य-ज-र-स-त-लाग-जुत प्रगट छंद जत होय।
सो घटना सुखदा सदा कहत सु-कबि सब कोय ॥ २४ ॥
जत समान तत जान लघु अपर बेद गुरु मान।
संजोगादि बिकल्प पुनि पदन अंत कहु जान ॥ २५ ॥
दीरघ लघु करि तहँ पढ़ब जहँ मुख लह बिसराम।
प्राकृति प्रगट प्रभाव यह जनित बुधाऽबुध बाम ॥ २६ ॥
दुइ गुरु सीता सार गन राम सो गुरु लघु होइ।
लघु गुरु रमा प्रतच्छ गन जुग लघु हर गन सोइ ॥ २७ ॥
सहस नाम मुनि-भनित सुनि तुलसी-बल्लभ नाम।
सकुचत हिय हँसि निरखि सिय धरम-धुरंधर राम ॥ २८ ॥
दंपति रस रसना दसन परिजन बदन सु-गेह।
तुलसी हर-हित बरन सिसु संपति सहज सनेह ॥ २९ ॥
हिय निरगुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट-संपुट लसत तुलसी ललित ललाम ॥ ३० ॥
प्रभु-गुन-गन भूखन बसन बचन बिसेखि सुदेस।
राम-सु-कीरति कामिनी तुलसी करतब केस ॥ ३१ ॥
रघुबर-कीरति तिय-बदन क्यों कह तुलसी-दासु।
सरद प्रकास अकास छबि चारु चिबुक तिल जासु ॥ ३२ ॥
तुलसी सोहत नखत-गन सरद सुधाकर साथ।
मुकुता झालर झलक जनु राम सु-जस - सिसु-हाथ ॥ ३३ ॥
आतम बोध बिबेक बिनु राम भजत अलसात।
लोक सहित परलोक की अवसि बिनासी बात ॥ ३४ ॥
बरु मराल मानस तजै चंद सीत रबि घाम।
मोह मदादिक कै तजै तुलसी तजै न राम ॥ ३५ ॥
आसन दृढ़ आहार दृढ़ सुमति ग्यान दृढ़ होय।
तुलसी बिना उपासना बिनु दुलहे की जोय ॥ ३६ ॥

राम-चरन-अवलंब बिनु परमारथ की आस।
चाहत बारिद-बुंद गहि तुलसी चढ़न अकास ॥ ३७ ॥
राम नाम तरु-मूल रस आठ पात फल एक।
जुग लसंत सुभ चारि जग बरनत निगम अनेक ॥ ३८ ॥
राम-काम-तरु परिहरत सेवत कलि-तरु ठूठ।
स्वारथ परमारथ चहत सकल मनोरथ झूठ ॥ ३९ ॥
तुलसी केवल काम-तरु रामचरित आराम।
निसिचर कलि-कर निहृत तरु मोहि कहत बिधि वाम ॥ ४० ॥
स्वारथ परमारथ सकल सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर ॥ ४१ ॥
हित सन हित रति राम सन रिपु सन वैर विहाय।
उदासीन संसार सन तुलसी सहज सुभाय ॥ ४२ ॥
तिल पर राखेउ सकल जग विदित विलोकत लोग।
तुलसी महिमा राम की को जग जानन जोग ॥ ४३ ॥
जहाँ राम तहँ काम नहिं जहां काम नहिं राम।
तुलसी कबहूं होत नहिँ रवि रजनी एक ठाम ॥ ४४ ॥
राम दूरि माया प्रबल घटत जानि मन मांह।
बढ़त भूरि रवि दूरि लखि सिर पर पग-तर छांह ॥ ४५ ॥
संपति सकल जगत्र की स्वासा सम नहिँ होइ।
सो स्वासा तजि राम-पद तुलसी अलग न खोइ ॥ ४६ ॥
तुलसी सी अति चतुरता राम-चरन लवलीन।
पर-मन पर-धन हरन को गनिका परम प्रवीन ॥ ४७ ॥
चतुराई चूल्हे परे जम गहि ग्यानहिँ खाय।
तुलसी प्रेम न राम-पद सब जर मूल नसाय ॥ ४८ ॥
प्रेम सरीर प्रपंच रुज उपजी अधिक उपाधि।
तुलसी भली सो बैदई बेगि बांधई व्याधि ॥ ४९ ॥

राम विटप तरु बिसद वर महिमा अगम अपार।
जा कहँ जहँ लगि पहुँच है ता कहँ तहँ लगि डार॥ ५० ॥
तुलसी कोसल-राज भजु जनि चितवै केहुँ ओर।
पूरन राम मयंक मुख करु निज नयन चकोर॥ ५१ ॥
ऊंचे नीचे कहुँ मिलै हरि-पद परम पियूख।
तुलसी काम मयूख तें लागै कवनिहुँ रूख॥ ५२ ॥
स्वामी होनो सहज है दुरलभ होनो दास।
गाडर लाए ऊन को लाग्यो चरन कपास॥ ५३ ॥
चलव नीति-मग राम-पग प्रेम निवाहव नीक।
तुलसी पहिरिय सो वसन जो न पखारत फीक॥ ५४ ॥
तुलसी राम कृपालु तें कहि सुनाउ गुन दोस।
होय दूवरी दीनता परम पीन संतोस॥ ५५ ॥
सुमिरन सेवन राम-पद राम-चरन पहिचानि।
ऐसेहु लाभ न ललक मन तौ तुलसी हित-हानि॥ ५६ ॥
सब संगी बाधक भए साधक भए न कोय।
तुलसी राम कृपालु तें भली होय सो होय॥ ५७ ॥
तुलसी मिटइ न कलपना गए कलप-तरु छांह।
जौं लगि द्रवइ न करि कृपा जनक-सुता को नाह॥ ५८ ॥
बिलग विलग सुख निकट दुख जनम मरन सोइ रीति।
रहियत राखे राम के तजे ते उचित अनीति॥ ५९ ॥
जाय कहव करतूति विनु जाय जोग बिनु छेम।
तुलसी जाय उपाय सब बिना राम-पद-प्रेम॥ ६० ॥
तुलसी रामहिं परिहरै निपट हानि सुनु मोद।
जिमि सुरसरि गत सलिल वर सुरा सरिस गंगोद॥ ६१ ॥
हरे चरहिं तापहिं बरे फरे पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ-मीत जग परमारथ रघुनाथ॥ ६२ ॥

तुलसी खोटे दास कर रघुपति राखत मान।
ज्यों मूरख उपरोहितहिं देत दान जजमान ॥ ६३ ॥
ज्यों जग बैरी मीन को आपु सहित परिवार।
त्यों तुलसी रघुनाथ बिन आपनि दसा विचार ॥ ६४ ॥
तुलसी राम भरोस सिर लिए पाप धरि मोट।
ज्यों व्यभिचारिनि नारि कहँ बड़ी खसम की ओट ॥ ६५ ॥
स्वामी सीतानाथ जी तुम लगि मेरी दौर।
तुलसी काग जहाज कहँ सूझत और न ठौर ॥ ६६ ॥
तुलसी सब छल छाड़ि कै कीजै राम सनेह।
अंतर पति सों है कहा जिन देखी सब देह ॥ ६७ ॥
सबही को परखे लखे बहुत कहे का होइ।
तुलसी तेरो राम तजि हित जग और न कोइ ॥ ६८ ॥
तुलसी हम सों राम सों भलो मिलो है सूत।
छोड़े बनइ न संग्रहे ज्यों घर माहँ कपूत ॥ ६९ ॥
कोटि बिघन संकट बिकट कोटि सत्रु जौं साथ।
तुलसी बल नहिं करि सकैं जौं सुदिष्ट रघुनाथ ॥ ७० ॥
लगन मुहूरत जोग बल तुलसी गनत न काहि।
राम भए जेहि दाहिने सबै दाहिने ताहि ॥ ७१ ॥
प्रभु प्रभुता जा कहँ दई बोल सहित गहि बांह।
तुलसी ते गाजत फिरहिं राम-छत्र' की छांह ॥ ७२ ॥
साधन सांसति सब सहत सुमन सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की रीझ बूझ बुध काहु ॥ ७३ ॥
चातक जीवन जलद कहँ जानत समय सुरीति।
लखत लखत लखि परत है तुलसी प्रेम-प्रतीति ॥ ७४ ॥
जीव चराचर जहँ लगे है सब को प्रिय मेह।
तुलसी चातक मन बसेउ घन सों सहज सनेह ॥ ७५ ॥

डोलत विपुल विहंग वन पियत पोखरिन बारि।
सु-जस धवल चातक नवल तोर भुवन दस-चारि ॥ ७६ ॥
मुख मीठे मानस मलिन कोकिल मोर चकोर।
सु-जस सलिल चातक बलित रहेउ भुवन भरि तोर ॥ ७७ ॥
मांगत डोलत है नहीं तजि घर अनत न जात।
तुलसी चातक भगत की उपमा देत लजात ॥ ७८ ॥
तुलसी तीनों लोक महँ चातकही को माथ।
सुनियत जासु न दीनता किए दूसरो नाथ ॥ ७९ ॥
प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत अधीन इन किए कनौड़ो दानि ॥ ८० ॥
ऊंची जाति पपीहरा पियत न नीचो नीर।
कै जांचै घनस्याम सों कै दुख सहै सरीर ॥ ८१ ॥
कै बरसै घन समय सिर कै भरि जनम निरास।
तुलसी जाचक चातकहि तऊ तिहारी आस ॥ ८२ ॥
चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोख।
याते' प्रेम पयोधि वर तुलसी जोग न रोख ॥ ८३ ॥
तुलसी चातक मांगनो एक एक घन दानि।
देत सो भू-भाजन भरत लेत घूंट भरि पानि ॥ ८४ ॥
ह्वै अधीन जांचै नहीं सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी मांगनहिं को बारिद बिनु देइ ॥ ८५ ॥
पवि पाहन दामिनि गरज अति झकोर खर खीझ।
दोस न प्रीतम रोस लखि तुलसी रागहिं रीझ ॥ ८६ ॥
को न जिआए जगत महँ जीवन-दायक पानि।
भयो कनौड़ो चातकहि पयद प्रेम पहिचानि ॥ ८७ ॥
मान राखिबो मांगिबो पिय सों सहज सनेहु।
तुलसी तीनों तब फबै जब चातक मत लेहु ॥ ८८ ॥

तुलसी चातक ही फबै मान राखिबो प्रेम।
बक्र बूंद लखि स्वाति की निदरि निबाहै नेम ॥ ८९ ॥
उपल बरखि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक जलद तजि कबहुँ आन की ओर ॥ ९० ॥
बरखि परुख पाहन जलद पच्छ करै टुक टूक।
तुलसी तदपि न चाहिए चतुर चातकहिँ चूक ॥ ९१ ॥
रटत रटत रसना लटी तृखा सूखि गे अंग।
तुलसी चातक के हिए नित नूतनहि तरंग ॥ ९२ ॥
गंगा जमुना सुरसती सात सिंधु भरि पूरि।
तुलसी चातक के मते बिना स्वाति सम धूरि ॥ ९३ ॥
तुलसी चातक के मते स्वातिहुँ पियत न पानि।
प्रेम-तृखा बाढ़ति भली घटे घटेगी कानि ॥ ९४ ॥
सर सरिता चातक तजेउ स्वातिहु सुधि नहिँ लेइ।
तुलसी सेवक बस कहा जो साहिब नहिँ देइ ॥ ९५ ॥
प्यास पपीहा पयद की सुनि हो तुलसीदास।
जो अँचवै जल स्वाति को परिहरि बारह मास ॥ ९६ ॥
चातक घन तजि दूसरो जिअत न नाई नारि।
मरत न मांगै अरध-जल सुरसरिहू को बारि ॥ ९७ ॥
ब्याधा बधेउ पपीहरा परेउ गंग-जल जाइ।
चोँच मूंदि पीवै नहीं धिग पीवन पन जाइ ॥ ९८ ॥
बधिक बधे परि पुन्य जल उपर उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम-पट मरत न लायी खोंच ॥ ९९ ॥
चातक सुतहि सिखाव नित आन नीर जनि लेहु।
यह हमरे कुल को धरम एक स्वाति सों नेहु ॥१००॥
दरस परस नहिँ आन जल बिनु स्वाती सुनु तात।
सुनत चेचुआ चित चुभेउ समुझि नीति बर बात ॥१०१॥

तुलसी चातक देत सिख सुतहिं बार ही बार।
तात न तरपन कीजियो बिना बारि-धर-धार ॥१०२॥
चरग चंगु-गत चातकहिं नेम प्रेम की पीर।
तुलसी पर-बस हाड़ पर परिहै पुहुमी-नीर ॥१०३॥
अंड फोरि किय चेटुआ तुख पर-नीर निहारि।
गहि चंगुल चातक चतुर डारेउ बाहर बारि ॥१०४॥
होत न चातक पातकी जीवन-दानि न मूढ़।
तुलसी गति प्रहलाद की समुझि प्रेम-पथ गूढ़ ॥१०५॥
तुलसी के मत चातकहिं केवल प्रेम - पियास।
पियत स्वाति जल जान जग जांचत बारह मास ॥१०६॥
एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ बर चातक तुलसीदास ॥१०७॥
आलबाल मुकुताहलनि हिय सनेह तरु - मूल।
होइ हेतु चित चातकहिं स्वाति-सलिल अनुकूल ॥१०८॥
राम-प्रेम बिनु दूबरो राम-प्रेम सह पीन।
बिसद सलिल सरवर बरन जन तुलसी मन-मीन ॥१०९॥
आप बधिक बर बेस धरि करेउ कुरंगम राग।
तुलसी जो मृग - मन मुरै परै प्रेम - पट दाग ॥११०॥

द्वितीय सर्ग

खेलत बालक ब्याल सँग मेलत पावक हाथ।
तुलसी सिसु पितु मातु इव राखत सिय-रघुनाथ ॥१११॥
तुलसी केवल राम - पद लागै सरल सनेह।
तौ घर घट बन बाट महँ कतहुँ रहे किन देह ॥११२॥

कै ममता करु राम-पद कै ममता परिहेलु।
तुलसी दुइ महँ एक अब खेल छाड़ि छल खेलु ॥११३॥
कै तोहि लागहिं राम प्रिय कै तू प्रभु-प्रिय होहि।
दुइ महँ रुचै जो सुगम सो तुलसी कीबे तोहि ॥११४॥
रावनारि के दास सँग कायर चलहिं कु-चाल।
खर दूखन मारीच सम मूढ़ भए बस काल ॥११५॥
तुलसी-पति दरबार मों कमी वस्तु कछु नाहिं।
करम-हीन कलपत फिरत चूक चाकरी माहिं ॥११६॥
राम गरीब-नेवाज हैं राज देत जन जानि।
तुलसी मन परिहरत नहिं घुरविनियां की बानि ॥११७॥
घर कीन्हे घर होत है घर छोड़े घर जाय।
तुलसी घर बन बीचही रहहु प्रेम-पुर छाय ॥११८॥
राम राम रटिबो भलो तुलसी खता न खाय।
लरिकाई को पैरिबो धोखेहु बूड़ि न जाय ॥११९॥
तुलसी बिलँब न कीजिए भजि लीजै रघुबीर।
तन तरकस से जात हैं स्वास सरीखे तीर ॥१२०॥
राम-नाम सुमिरत सुजन भाजन भएउ कुजाति।
कु-तरुक सुर-पुर-राज-मग लहत भुवन बिख्याति ॥१२१॥
नाम-महातम साखि सुनु नर की केतिक बात।
सरबर पर गिरिबर तरे ज्यों तरुबर के पात ॥१२२॥
ग्यान गरीबी गुरु-धरम नरम बचन निरमोख।
तुलसी कबहुँ न छाड़िए सील सत्य संतोख ॥१२३॥
असन बसन सुत नारि सुख पापिहु के घर होय।
संत-समागम राम-धन तुलसी दुरलभ दोय ॥१२४॥
तुलसी तीरहि के बसे अवसि पाइए थाह।
बेगहि जाय न पाइए सर सरिता अवगाह ॥१२५॥

पग अंतर मग अगम जल जल-निधि जल संचार।
तुलसी करिया करम बस बूड़त सरत न बार ॥१२६॥
तुलसी हरि-अपमान तें होत अकाज समाज।
राज करत रज मिलि गए सदल सकुल कुरु-राज ॥१२७॥
तुलसी मीठे वचन तें सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन यह मंत्र है परिहरु वचन कठोर ॥१२८॥
राम-कृपा तें होत सुख राम-कृपा बिनु जात।
जानत रघुबर भजन तें तुलसी सठ अलसात ॥१२९॥
सनमुख ह्वै रघुनाथ के देहु सकल जग पीठि।
तजे कैंचुरी उरग कहँ होत अधिक अति दीठि ॥१३०॥
मरजादा दूरहि रहे तुलसी किए विचार।
निकट निरादर होत है जिमि सुरसरि-बर-बार ॥१३१॥
राम कृपा-निधि स्वामि मम सब विधि पूरन काम।
परमारथ पर धाम पर संत-सुखद-बर धाम ॥१३२॥
रामहिं जानहि राम रटु भजु रामहिं तजु काम।
तुलसी राम-अजान नर किमि पावहि पर-धाम ॥१३३॥
तुलसी-पति-रति अंक सम सकल साधना सून।
अंक रहित कछु हाथ नहिं अंक सहित दस गून ॥१३४॥
तुलसी अपने राम कहँ भजन करहु निरसंक।
आदि अंत निरवाहिबो जैसे नव को अंक ॥१३५॥
दुगुने तिगुने चौगुने पंच षष्ट औ सात।
आठहु तें पुनि नव गुने नव के नव रहि जात ॥१३६॥
नव के नव रहि जात हैं तुलसी किए विचार।
एमेव राम इमि जगत में नहीं द्वैत बिसतार ॥१३७॥
तुलसी राम सनेह करु त्यागु सकल उपचार।
जैसे घटत न अंक नव नव के लिखत पहार ॥१३८॥

अंक अगुन आखर सगुन सामुझि उभय प्रकार।
खोए राखे आपु भल तुलसी चारु विचार ॥१३९॥
जेहि बिधि तें सब राम-मय समुझहु सुमति-निधान।
याते सकल बिरोध तजु भजु सब समुझ न आन ॥१४०॥
राम कामना-हीन पुनि सकल - काम - दातार।
याही ते परमातमा अव्यय अमल उदार ॥१४१॥
जो कछु चाहत सो करत हरत भरत गत भेद।
काहु सुखद काहू दुखद जानत हैं बुध वेद ॥१४२॥
संत-कमल मधु-मास कर तुलसी वरन विचार।
जग-सरवर तर भरन-कर जानहु जल-दातार ॥१४३॥
एक सृष्टि मों जाहि विधि प्रगट तीन कर भेद।
सात्विक राजस तामसहिँ जानत हैं बुध वेद ॥१४४॥
सो बिधि रघुवर नाम महँ वरतमान गुन तीन।
चंद्र भानु अपि अनल विधि हरि हर कहहिँ प्रवीन ॥१४५॥
अनल रकार अकार रवि जानु मकार मयंक।
हरी अकार रकार बिधि मः महेस निरसंक ॥१४६॥
बन अग्यान कहँ दहन कर अनल प्रचंड रकार।
हरि अकार हर मोह तम तुलसी कहहि विचार ॥१४७॥
त्रिविध-ताप-हर ससि सतर जानहु मरम मकार।
बिधि हरि हर गुन तीन को तुलसी नाम अधार ॥१४८॥
भानु कृसानु मयंक को कारन रघुवर नाम।
बिधि हरि संभु सिरोमनी प्रनत सदा सुख-धाम ॥१४९॥
अगुन अनूपम सगुन निधि तुलसी जानत राम।
करता सकल जगत्र को भरता सब मन-काम ॥१५०॥
छत्र मुकुट सब बिधि अचल तुलसी जुगल हलंत।
सकल बरन सिर पर रहत महिमा अमल अनंत ॥१५१॥

रामानुज सदगुन बिमल स्याम राम-अनुहार।
भरता भरत सो जगत को तुलसी लसत अकार ॥१५२॥
राजत राजस ता अनुज वरद धरनि-धर धीर।
विधि बिहरत अति आसु-कर तुलसी जन-गन-पीर ॥१५३॥
हरन करन संकट सतर समर-धीर वलधाम।
मः महेश अरि-दमन वर लखन-अनुज अरि काम ॥१५४॥
राम सदा सम सील-घर सुख-सागर पर-धाम।
अज कारन अद्वैत नित समतर पद अभिराम ॥१५५॥
होनहार सह जान सब बिभव बीच नहिं होत।
गगन गिरह करिवो कबै तुलसी पढ़त कपोत ॥१५६॥
तुलसी होत सिखै नहीं तन गुन-दूखन-धाम।
भखन सिखिन कौने कहेउ प्रगट विलोकहु काम ॥१५७॥
गिरत अंड संपुट अरुन जलज पच्छ अनयास।
अलल सुअन उपदेस केहि जात सो उलटि अकास ॥१५८॥
विविध चित्र जल-पात्र बिच अधिक नून सम सूर।
कब कौनै तुलसी रचेउ केहि बिधि पच्छ मयूर ॥१५९॥
काक-सुता गृह ना करै यह अचरज बड़ बाय।
तुलसी केहि उपदेस सुनि जननि-पिता घर जाय ॥१६०॥
सुपथ कुपथ लीन्हे जनित स्व-स्वभाव अनुसार।
तुलसी सिखवत नाहिँ सिसु मूषक हनत मजार ॥१६१॥
तुलसी जानत है सकल चेतन मिलत अचेत।
कीर जात उड़ि तिय निकट बिनहिँ पढ़े रति देत ॥१६२॥
होनहार सब आप तें वृथा सोच करि जौन।
कंज सृंग तुलसी मृगन कहो उमेठत कौन ॥१६३॥
सुख चाहत सुख में बसत है सुख-रूप बिसाल।
संतत जा बिधि मान-सर कबहुँ न तजत मराल ॥१६४॥

नीति प्रीति जस अजस गति सब कहँ सुभ पहिचानि।
बस्ती हस्ती हस्तिनी देति न पति रति दानि ॥१६५॥
तुलसी अपने दुखद तें को कहु रहत अजान।
कीस कुंत-अंकुर बनहि उपजत करत निदान ॥१६६॥
जथा धरनि सब बीज-मय नखत अकास निवास।
तथा राम सब-धरम-मय जानत तुलसीदास ॥१६७॥
पुहमी पानी पावकहु पौनहु माहं समाइ।
ता कहँ जानत राम अपि बिनु गुरु किमि लखि जाइ ॥१६८॥
अगुन ब्रह्म तुलसी सोई सगुन बिलोकत सोइ।
दुख सुख नाना भाँति को तेहि बिरोध तें होइ ॥१६९॥
सूर जथा रन जीति कै पलटि आव चलि गेह।
तिमि गति जानहु राम की तुलसी संत सनेह ॥१७०॥
परमातम-पद राम पुनि दीजे संत सुजान।
जे जग महँ बिचरहिँ धरे देह बिगत अभिमान ॥१७१॥
चौथी संख्या जीव की सदा रहत रत काम।
ब्रह्म न संत न राम रत निसि बासर बसि बाम ॥१७२॥
सुख पाए हरखत हँसत खीझत लहे बिखाद।
प्रगटत दुरत निरय परत केवल रत बिख स्वाद ॥१७३॥
नाना बिधि की कलपना नाना बिधि को सोग।
सूछम अरु असथूल तन कबहुँ तजत नहिँ रोग ॥१७४॥
जैसे कुष्ठी की दसा गलित रहत दोउ देह।
बिंदुहु की गति तैसई अंतरहू गति एह ॥१७५॥
त्रिधा देह गति एक बिधि कबहूँ ना गति आन।
बिबिध कष्ट पावहिँ सदा निरखहिँ संत सुजान ॥१७६॥
रामहिँ जानैं संत वर संतहिँ राम प्रमान।
संतहिँ केवल राम प्रभु रामहि संत न आन ॥१७७॥

तातें संत दयाल बर देत राम धन रीति।
तुलसी यह जिय जानि कै करिय बिहठि अति प्रीति ॥१७८॥
तुलसी संत सु-अंब-तरु फूलि फरहिँ पर-हेतु।
ये इत तें पाहन हनैं वे उत तें फल देतु ॥१७९॥
सुख दुख दोनों एक सम संतन के मन माहिँ।
मेरु उदधि गत मुकुर जिमि भार भीजबो नाहिँ ॥१८०॥
तुलसी राम सुजान को राम जनावै सोइ।
रामहि जानै राम-जन आन कबहुँ नहिँ होइ ॥१८१॥
सो गुरु राम सुजान सम नहीं बिखमता-लेस।
ताकी कृपा-कटाच्छ तें रहे न कठिन कलेस ।१८२॥
गुरु कह तब समुझै सुनै निज करतब कर भोग।
कह तव गुरु करतब करै मिटै सकल भव-सोग ॥१८३॥
सरनागत तेहि राम के जिन्ह दिय धी सिय-रूप।
जा पदनि-घर उदय भए नासे भ्रम-तम-कूप ॥१८४॥
जा पद पाए पाइए आनँद पद उपदेस।
संसय रोग नसाय सब पावै पुनि न कलेस ॥१८५॥
मेधा सीता सम समुझि गुरु बिबेक सम राम।
तुलसी सिय सम सो सदा भएउ बिगत मग बाम ॥१८६॥
आदि मध्य अवसान गत तुलसी एक समान।
तेई संत सरूप सुभ जे अनित्य गति आन ॥१८७॥
एई सुद्ध उपासना परा भगति की रीति।
तुलसी एहि मग पग धरे रहै रामपद प्रीति ॥१८८॥
जहँ तें जो आएउ सो है जाइ जहां है सोइ।
तुलसी बिन गुरु-देव के किमि जानै कहु कोइ ॥१८९॥
अपगत खे सोई अवनि सो पुनि प्रगट पताल।
कहां जनम कहँ मरन अपि समुझहि सुमति रसाल ॥१९०॥

संग दोख तें भेद अस मधु मदिरा मकरंद।
गुरु - गम ते' देखहि प्रगट पूरन परमानंद ॥१९१॥
डाबर सागर कूप गत भेद दिखाई देत।
है एकै दूजो नहीं द्वैत आन के हेत ॥१९२॥
गुन गत नाना भांति तेहि प्रगटत कालहि पाइ।
जानि जाइ गुरु-ग्यान ते' बिनु जाने भरमाइ ॥१९३॥
तुलसी तरु फूलत फरत जेहि बिधि कालहि पाय।
तैसेही गुन - दोख - गत प्रगटत समय सुभाय ॥१९४॥
दोखहुँ गुन की रीति यह जातु अनल गति देखि।
तुलसी जानत सो सदा जेहि बिबेक सु-बिसेखि ॥१९५॥
गुरु ते' आवत ग्यान उर नासत सकल बिकार।
जथा निलय-गत दीप तें मिटत सकल अँधियार ॥१९६॥
जद्यपि अवनि अनेक सुख तोय तामरस ताल।
संतत तुलसी मानसर तदपि न तजत मराल ॥१९७॥
तुलसी तोरत तीर-तरु मानस हंस बिहार।
बिगत नलिन अति मलिन जल सुरसरिहू बढ़ियार ॥१९८॥
जो जल जीवन जगत को परसत पावन जौन।
तुलसी सो नीचे ढरत ताहि निबारत कौन ॥१९९॥
जो करता है करम को सो भोगत नहिँ आन।
बोअनहार लुनिहै सोई देनी लहइ निदान ॥२००॥
रावन रावन को हनेउ दोख राम को नाहिँ।
निज हित अनहित देखु किन तुलसी आपुहि माहिँ ॥२०१॥
सुमिरु राम भजु राम-पद देखु राम सुनु राम।
तुलसी समुझहु राम कहँ अह-निसि यह तुव काम ॥२०२॥
रज अप अनल अनिल नभ जड़ जानत सब कोइ।
यह चैतन्य सदा समुझु कारज-रत दुख होइ ॥२०३॥

निज कृत बिलसत सो सदा बिनु पाए उपदेस।
गुरु-पद पाइ सुमग धरै तुलसी हरइ कलेस ॥२०४॥
सलिल सुकर सोनित समुझ मल अरु असथि समेत।
बाल कुमार जुवा जरा है सो समुझु करु चेत ॥२०५॥
ऐसहि गति अवसान की तुलसी जानत हेतु।
तातैं यह गति जानि जिय अबिरल हरि चित चेतु ॥२०६॥
जानै राम सरूप जब तब पावै पद संत।
जनम मरन पद तें रहित सुखमा अमल अनंत ॥२०७॥
दुख-दायक जाने भले सुख-दायक भजु राम।
अब हमको संसार को सब बिधि पूरन काम ॥२०८॥
आपुहि मद को पान करि आपुहि होत अचेत।
तुलसी बिबिध प्रकार को दुख उतपति एहि हेत ॥२०९॥
जासों करसि बिरोध हठि कहु तुलसी को आन।
सो तैं सब नहिँ आन तब नाहक होसि मलान ॥२१०॥
चाहसि सुख जेहि मारि कै सो तो मारि न जाय।
कौन लाभ बिख तें बदलि तैं तुलसी बिख खाय ॥२११॥
कोह द्रोह अघ मूल है जानत को कहु नाहिँ।
दया धरम-कारन समुझि को सुख पावत नाहिँ ॥२१२॥
बनो बनायो है सदा समुझ रहित हो सूल।
अरुन बरन केहि काम को बिना बास को फूल ॥२१३॥

तृतीय सर्ग

जनक-सुता दस-जान-सुत उरग-ईस अ-म जौर।
तुलसिदास दस पद परसि भव सागर गौ पौर ॥२१४॥

तुलसी तेरो राग-धर तात मातु गुरु देव ।
ता तजि तोहि न उचित अब रुचित आन पद-सेव ॥२१५॥
तरक - बिसेख - निखेध - पति - उर-मानस सुपुनीत ।
बसत मराल ल-रहित करि तेहि भजु पलटि बिनीत ॥२१६॥
सुकलाऽऽदिहिँ कल देहु एक अंत-सहित सुख-धाम ।
दै कमला कल मध्य को अंत सकल सुख-धाम ॥२१७॥
बीज धनंजय रवि सहित तुलसी तथा मयंक ।
प्रगट तहाँ नहिँ तम तमी सम चित रहत असंक ॥२१८॥
रंजन कानन कोकनद वंस बिमल अवतंस ।
गंजन पुरहित-अरि सदल जग-हित मानस-हंस ॥२१९॥
जग तें रहु छत्तीस है राम-चरन छव तीन ।
तुलसी देखु बिचारि हिय है यह मतो प्रवीन ॥२२०॥
कं दिग दून नछत्र हनि गुनी अनुज तेहि कीन ।
जेहि हरि कर मनि मान हनि तुलसी तेहि पद लीन ॥२२१॥
सिला-साप-मोचन चरन हरन-सकल जंजाल ।
भरन करन सुख सिद्धि-तर तुलसी परम कृपाल ॥२२२॥
मरन-बिपति-हर धुर-धरम धरा-धरन बल-धाम ।
सरन तासु तुलसी चहत बरन सकल अभिराम ॥२२३॥
बिहँग बीच रैयत तृतिय पति पति तुलसी तोर ।
तासु बिमुख सुख अति बिखम सपनेहु होसि न भोर ॥२२४॥
दुतिय कोल राजिब प्रथम बाहन निहचय माहिँ ।
आदि एक कल दै भजहु बेद-बिदित गुन जाहि ॥२२५॥
बसत जहाँ राघव-जलज तेहि मिति गो जेहि संग ।
भज तुलसी तेहि अरि-सु-पद करि उरु प्रेम अभंग ॥२२६॥
भजहु तरनि-अरि-आदि कहँ तुलसी आत्मज अंत ।
पंचानन लहि पदुम मथि गहे बिमल मन संत ॥२२७॥

बनिता सैल-सुतास की तासु जनम को ठाम।
तेहि भजु तुलसीदास हित प्रनत सकल-सुख-धाम ॥२२८॥
भजु पतंग-सुत-आदि कहँ मृत्युंजय-अरि अंत।
तुलसी पुष्कर-जग्य-कर चरन-पांसु इच्छंत ॥२२९॥
उलटे तासी तासु पति सौ हजार मन सत्थ।
एक-सून-रथ तनय कहँ भजसि न मन समरत्थ ॥२३०॥
द्वुतिय तृतिय हर कासनहि तेहि भजु तुलसीदास।
का कासन आसन किए सास न लहै उपास ॥२३१॥
आदि द्वुतिय अवतार कहँ भजु तुलसी नृप-अंत।
कमल प्रथम अरु मध्य सह बेद-विदित मत संत ॥२३२॥
जेहि न गनेउ कछु मानसहु सुर-पति-अरि-भव-त्रास।
जेहि पद सुचिता-अवधि-भव तेहि भजु तुलसीदास ॥२३३॥
नैन करन-गुन-धरन वर ता वर धरन बिचार।
चरन सतर तुलसी चहसि उबरन सरन-अधार ॥२३४॥
भजु हरि आदिहिं वाटिका भरि ता राजिव-अंत।
करता पद बिस्वास भव-सरिता तरसि तुरंत ॥२३५॥
जड़-मोहन-वरनादि कहँ सह चंचल चित चेत।
भजु तुलसी संसार-अहि नहिं गहि करत अचेत ॥२३६॥
अमर-अधिप-बारन-बरन दूसर अंत अगार।
तुलसी इखु-सह राग-धर तारन तरन अधार ॥२३७॥
जौ उरबिज चाहसि झटिति तौ करि घटित उपाय।
सुमनस-अरि-अरि-बर-चरन-सेवन सरल सुभाय ॥२३८॥
द्वुतिय पयोधर परम-धन बाग-अंत-जुत सोय।
भजु तुलसी संसार-हित या तें अधिक न कोय ॥२३९॥
पति पयोधि पावन पवन तुलसी करहु बिचार।
आदि-द्वुतिय अरु अंत-जुत ता मत तव निस्तार ॥२४०॥

हंस कपट रस सहित गुन अंत आदि प्रथमंत।
भजु तुलसी तजि वाम गति जेहि पद रत भगवंत ॥२४१॥
छना समुझि क बरन हरहु अंत-आदि-जुत सार।
स्त्री-कर तम-हर बरन बर तुलसी सरन उबार ॥२४२॥
अंक दसा रस-आदि जुत पांडु-सूनु सह अंत।
जानि सुअन सेवक सतर करिहैं कृपा तुरंत ॥२४३॥
झटिति सखाहि विचारि हिय आदि बरन हरि एक।
अंत प्रथम स्वर दे भजहु जा उर तत्त्व-विवेक ॥२४४॥
आदि चंद्र चंचल सहित भजु तुलसी तजु काम।
अघ-गंजन रंजन सुजन भव-भंजन सुख-धाम ॥२४५॥
बिगत देह-तनुजा-सु-पति पद रति सहित सनेम।
जौ अति मति चाहसि सु-गति तौ तुलसी करु प्रेम ॥२४६॥
करता सुचि-सुर-सर-सुता ससि सारँग महि जान।
आदि-अंत सह प्रथम-जुत तुलसी समुझु न आन ॥२४७॥
गिरिजा-पति कल आदि इक नक्खत हरि जुध जान।
आदि-अंत भजु अंत पुनि तुलसी सुचि मन मान ॥२४८॥
रितु-पति पद पुन पङ्कि युत प्रथम आदि पुनि लेहु।
अंत हरन पद दुतिय महँ मध्य बरन सह नेहु ॥२४९॥
बाहन सेख सु-मधुप रव भरत-नगर जुत जान।
हरि भरि सहित बिपरज करि आदि मध्य अवसान ॥२५०॥
तुलसी उडुगन को बरन बनज - सहित दोउ अंत।
तो कहँ भजु संसय - समन रहित एक कल अंत ॥२५१॥
बारिज बारिज बरन बर बरनत तुलसीदास।
आदि आदि भजु आदि पद पाए परम प्रकास ॥२५२॥
भजु तुलसी कुलिसांत कहँ सह अगार तजि काम।
सुख-सागर नागर ललित बली अली पर - धाम ॥२५३॥

चंचल सहित5रु चंचला अंत अंत-जुत जान।
संत-सास्त्र-संमत समुझि तुलसी करु परमान ॥२५४॥
आदि वसंत इकार दै आसय तासु विचार।
तुलसी तासु सरन परे कासु न भएउ उवार ॥२५५॥
धरा धरा-धर धरन-जुग सरन हरन भव-भार।
करन सतरवर परम पद तुलसी धरमाधार ॥२५६॥
बरन धनंजय-सूनु-पति चरन-सरन-रति नाहिँ।
तुलसी जग-बंचक बिदठि किए बिधाता ताहि ॥२५७॥
तुलसी रजनी पुरनिमा हार-सहित लखि लेहु।
आदि अंत-जुत जानि करु तासों सरल सनेहु ॥२५८॥
भानु गोत्र तमि तासु पति कारन अति हित जाहि।
ग्यान-सु-गति-जुत सुख सदन तुलसी मानत ताहि ॥२५९॥
भजु तुलसी ओघादि कहँ सहित तत्त्व-जुत-अंत।
भव आयुर-जय जासु बल मन चल अचल करंत ॥२६०॥
देत कहा नृप काज पर लेत कहा इत राज।
अंत-आदि-जत-सहित भजु जौ चाहसि सुभ काज ॥२६१॥
चंद्र-रमनि भजु गुन-सहित समुझि अंत अनुराग।
तुलसी जौ यह बनि परै तौ तव पूरन भाग ॥२६२॥
जिनके हरि वाहन नहीं दधि-सुत-सुत जेहि नाहिँ।
तुलसी ते नर तुच्छ हैं बिना समीर उड़ाहिँ ॥२६३॥
रवि चंचल अरु ब्रह्म-द्रव बीच सु-वास बिचारि।
तुलसिदास आसन करे अवनि-सुता उर धारि ॥२६४॥
वन वनिता दृगकोपमा जुत करु सहित बिबेक।
अंत आदि तुलसी भजहु परिहरि मन कर टेक ॥२६५॥
उरबी अंतहु आदि-जुत कुल-सोभा-कमलादि।
करि बिपरज ऐसेहि भजहु तुलसी समन बिखादि ॥२६६॥

तौ तोहि कहँ सब कोउ सुखद करहिँ कहा तव पांच ।
हरब तृतिय बारिज-बरन तज बलीन सुनु सांच ॥२६७॥
तजहु सदा सुभ-आसु-अरि भजु सुमनस-अरि-काल ।
सजु मत ईस अवंतिका तुलसी विमल विसाल ॥२६८॥
एत-बंस वर बरन जुग सेतु जगत सब जान ।
चेत सहित सुमिरन करत हरत सकल अघ-खान ॥२६९॥
मैत्री बरन यकार को सह स्वर आदि विचारि ।
पंच प-बरगहि जुत सहित तुलसी ताहि सँभारि ॥२७०॥
हल व्रम-मध्य समान जुत या तें अधिक न आन ।
तुलसी ताहि बिसारि सठ भरमत फिरत भुलान ॥२७१॥
कौन जाति सीता सती को दुखदा ऋतु वाम ।
को कहिए ससिकर दुखद सुखदायक को राम ॥२७२॥
को संकर गुरु-बाग वर सिव-हर को अभिमान ।
करता को अज जगत को भरता को हरि जान ॥२७३॥
स्वर स्रेयस राजीव-गुन करु तेहि दृढ़ पहिचान ।
पंच प-बरगहि जुत सहित तुलसी ता हित मान ॥२७४॥
होत हरख का पाय धन बिपति तजे का धाम ।
दुखदा कुमति कुनारितर अति सुखदायक राम ॥२७५॥
बीर कवन सह मदन-सर धीर कवन रत राम ।
कवन क्रूर हरि-पद-विमुख को कामी बस बाम ॥२७६॥
कारन को कं जीव को खं गुन कह सब कोय ।
जानत को तुलसी कहत सो पुनि आन न होय ॥२७७॥
जासु आस सर देव को अरु आसन हरि-बाम ।
सकल दुखद तुलसी तजहु मध्य तासु सुख-धाम ॥२७८॥
तुलसी बरन बिकल्प तें औ चप-तृतिय-समेत ।
अन-समुझे जड़ सरिस नर समुझे साधु सचेत ॥२७९॥

चंचल तिय भजु प्रथम हरि जो चाहसि परधाम।
तुलसी कहहिं सुजन सुनहु यही सयानप-काम ॥२८०॥
कुलिस-धरम-जुग-अंत-जुत भजु तुलसी तजु काम।
असुभ-हरन संसय-समन सकल-कला-गुन-धाम ॥२८१॥
स्री-कर को, रघुनाथ, हर, अनय कहत सब कोय।
सुखदा को जानति सुमति तुलसी समता दोय ॥२८२॥
बैर-मूल-हर हित-बचन, प्रेम मूल उपकार।
दो'हा' सरल सनेह-मय तुलसी किए बिचार ॥२८३॥
प्राग कवन, गुरु-लघु, जगत तुलसी अवर न आन।
स्रेष्ठ कवन हरि-भगति सम को लघु लोभ समान ॥२८४॥
बरन दुतिय नासक निरय तुलसी अंत रसाल।
भजहु सकल स्री-कर सदन जन-पालक खल-साल ॥२८५॥
चप स्रेयस-स्वर-सहित गुनि यम-जुत दुखद न आन।
तुलसी हल-जुत ते कुसल अंतिकार सह जान ॥२८६॥
तुलसी यम गुन बोध बिनु कहु किमि मिटइ कलेस।
ताते सतगुरु सरन गहि जाते पद-उपदेस ॥२८७॥
भगन जगन का सों करसि राम-अपर नहिं कोय।
तुलसी पति-पहिचान बिनु कोउ तुल कबहुँ न होय ॥२८८॥
तुलसी तगन बिहीन नर सदा नगन के बीच।
तिनहिं यगन कैसे लहइ परे सगन के फीच ॥२८९॥
इंद्र-रवँनि सुर देव-रिषि रुकुमिनि-पति सुभ जान।
भोजन दुहिता काल अलि आनँद असुभ समान ॥२९०॥
को हित संत अहित कुटिल नासक को हित लोभ।
पोखक तोखक दुखद अरि सोखक तुलसी छोभ ॥२९१॥
सदा नगन-पद-प्रीति जेहि जानु नगन-सम ताहि।
जगन ताहि जय जुत रहत तुलसी संसय नाहिं ॥२९२॥

भगन भगति करु भरम तजि तगन सगन विधि होय।
सगन-सुभाव तजो समुझि भजे न दूखन कोय ॥२९३॥
सृंगज-असन स जुक्त जू बिहरत तीर सुधीर।
जग्य-पाप-मय-त्रान-पद राजत स्त्री-रघुबीर ॥२९४॥
बान-जुक्त जू तट निकट बिहरत राम सुजान।
तुलसी कर-कमलन ललित लसत सरासन बान ॥२९५॥
मृदु मेचक सिर-रुह रुचिर सीस तिलक भ्रू वंक।
धनु सर गहि जनु तड़ित जुत तुलसी लसत मयंक ॥२९६॥
'स कमल बिच बरन जुग तुलसी अति प्रिय जाहि।
तीन लोक महँ जो भजै लहै तासु फल ताहि ॥२९७॥
आदि म है अंतहु म है मध्य र है तेहि जान।
अनजाने जड़ जीव सब समुझे संत सुजान ॥२९८॥
आदि द है मध्ये र है अंत द है सो बात।
राम बिमुख के होत है राम भजन तें जात ॥२९९॥
ललित चरन कटि कर ललित लसत ललित बनमाल।
ललित चिबुक द्विज अधर सह लोचन ललित बिसाल ॥३००॥
भरन हरन अव्यय अमल सहित बिकल्प विचार।
कह तुलसी मति अनुहरत दोहा अरथ अपार ॥३०१॥
विसिष्टाद्यलंकार महँ संकेतादि सु-रीति।
कहे बहुरि आगे कहब समुझब सु-मति बिनीति ॥३०२॥
कोस अलंकृत संधि गति मैत्री बरन बिचार।
हरन भरन सु-विभगति बल कविहि अरथ निरधार ॥३०३॥
देस काल करता करम बुधि विद्या गति हीन।
ते सुर-तरु-तर दारिदो सुर-सरि-तीर मलीन ॥३०४॥
देस काल गति हीन जे करता करम न ग्यान।
तेऽपि अरथ-मग पग धरहिं तुलसी स्वान समान ॥३०५॥

अधिकारी बस ओसरी भलो जानिबो मंद।
सुधा-सदन बसु बारहें चौथे चौथिउ चंद ॥३०६॥
नर बर नभ-सर बर सलिल बन-ज बिनय बिग्यान।
सु-मति सुक्तिका सारदा स्वाती कहहिं सुजान ॥३०७॥
सम दम समता दीनता दान दयादिक रीत।
दोख दुरत हर दरद हर उर बर बिमल बिनीत ॥३०८॥
धरम धुरीन सु-धीर-धर धारन बर पर-पीर।
धरा धरा-धर सम अचल बचन न बिचल सु-थीर ॥३०९॥
चौंतिस के प्रस्तार में अरथ भेद परमान।
करहु सुजन तुलसी कहत या बिधि तें पहचान ॥३१०॥
बेद बिखम क बरन सुतर सतर राम की रीति।
तुलसी भरत न भरि हरत भूलि हरहु जनि प्राति ॥३११॥
बन तें गुन कहि जानिए ताते दिग दिग तीन।
तुलसी यह जिय समुझि करि जग-जित संत प्रबीन ॥३१२॥
चंद्र अनल नहिं है कहूं झूंठो बिना बिबेक।
तुलसी ते नर समुझिहैं जिनहिं ग्यान रस एक ॥३१३॥
सतसैया तुलसी सतर तम हरि पर-पद देत।
तुरित अबिद्या जन दुरित बर तुल सम करि लेत ॥३१४॥

चतुर्थ सर्ग

चौदह चारि अठारहो पढ़े सुने का होइ।
तुलसी अपने राम कहँ जौं लगि लखै न कोइ ॥३१५॥
तन सुखाइ पंजर करै धरै रैन दिन ध्यान।
तुलसी मिटै न बासना बिना बिचारे ग्यान ॥३१६॥

हँसि उतारि हिय तैं दई तुम जु तिहिँ दिनी लाल।
राखति प्रान कपूर ज्यौं वहै चुहुटिनी-माल ॥ ९० ॥
कोऊ कोरिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा बिपति-बिदारनहार ॥ ९१ ॥
द्वैज सुधादीधिति-कला लखि लखि दीठि लगाइ।
मनौ अकास-अगस्तिया एकै कली लखाइ ॥ ९२ ॥
गदराने तन गोरटी ऐपन - आड़ लिलार।
हूठ्यौ दै इठलाइ दृग करै गँवारि सुवार ॥ ९३ ॥
तंत्री-नाद कवित्त-रस सरस-राग रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग ॥ ९४ ॥
सहज सचिक्कन स्याम-रुचि सुचि सुगंध सुकुमार।
गनतु न मनु पथु अपथु लखि बिथरे सुथरे बार ॥ ९५ ॥
सुदुति दुराई दुरति नहिँ प्रगट करति रति-रूप।
छुटैं पीक औरै उठी लाली ओठ अनूप ॥ ९६ ॥
वेई गड़ि गाड़ैं परीं उपट्यौ हारु हियैं न।
आन्यौ मोरि मतंगु मनु मारि गुरेरनु मैन ॥ ९७ ॥
नैंक न झुरसी बिरह-झर नेह-लता कुम्हिलाति।
नित नित होति हरी हरी खरी झालरति जाति ॥ ९८ ॥
हेरि हिँडोरैं गगन तैं परी परी सी टूटि।
धरी धाइ तिय बीच ही करी खरी रस लूटि ॥ ९९ ॥
नैंक हँसौहीं बानि तजि लख्यौ परतु मुहुँ नीठि।
चौका - चमकनि - चौंध मैं परति चौंधि सी डीठि ॥१००॥
प्रगट भए द्विजराज-कुल सुबस बसे ब्रज आइ।
मेरे हरौ कलेस सब केसव केसवराइ ॥१०१॥
केसरि कै सरि क्यौं सकै चंपकु कितकु अनूपु।
गात-रूपु लखि जातु दुरि जातरूप कौ रूपु ॥१०२॥

मकराकृति गोपाल कैं सोहत कुंडल कान।
धर्‌यौ मनौ हिय-धर समरु ड्योढ़ी लसत निसान ॥१०३॥
खौरि-पनिच भृकुटी-धनुषु बधिकु समरु तजि कानि।
हनतु तरुन-मृग तिलक-सर सुरक-भाल भरि तानि ॥१०४॥
नीकौ लसतु लिलार पर टीकौ जरितु जराइ।
छबिहिँ बढ़ावतु रबि मनौ ससि-मंडल मैं आइ ॥१०५॥
लसतु सेत सारी ढप्यौ तरल तर्‌यौना कान।
पर्‌यौ मनौ सुरसरि-सलिल रबि-प्रतिबिंबु बिहान ॥१०६॥
हम हारीं कै कै हहा पाइनु पार्‌यौ प्यौरु।
लेहु कहा अजहूं किए तेह-तरेर्‌यौ त्यौरु ॥१०७॥
सतर भौंह रूखे बचन करति कठिनु मनु नीठि।
कहा करौं ह्वै जाति हरि हेरि हँसौंहो डीठि ॥१०८॥
वाहि लखैं लोइन लगै कौन जुवति की जोति।
जाकैं तन की छांह-ढिग जोन्ह छांह सी होति ॥१०९॥
कहा कहौं वाकी दसा, हरि प्राननु के ईस।
बिरह-ज्वाल जरिबो लखैं मरिबौ भई असीस ॥११०॥
जेती संपति कृपन कैं तेती सूमति जोर।
बढ़त जात ज्यौं ज्यौं उरज त्यौं त्यौं होत कठोर ॥१११॥
ज्यौं ज्यौं जोबन-जेठ दिन कुच मिति अति अधिकाति।
त्यौं त्यौं छिन छिन कटि-छपा छीन परति नित जाति ॥११२॥
तेह-तरेरौ त्यौरु करि कत करियत दृग लोल।
लीक नहीं यह पीक की स्रुति-मनि-झलक कपोल ॥११३॥
नैंक न जानी परति यौं पर्‌यौ बिरह तनु छामु।
उठति दियैं लौं नांदि हरि लियै तिहारौ नामु ॥११४॥
नभ-लाली चाली निसा चटकाली धुनि कीन।
रति पाली आली अनत आए बनमाली न ॥११५॥

सोवत सपनैं स्याम-घनु हिलि मिलि हरत बियोगु।
तब हीं टरि कितहूं गई, नींदौ नींदनु जोगु ॥११६॥
संपति केस सुदेस नर नवत दुहुनि इक बानि।
विभव सतर कुच नीच नर नरम बिभव की हानि ॥११७॥
कहत सबै कवि कमल से मो मत नैन पखानु।
नतरुक कत इन बिय लगत उपजतु बिरह-कृसानु ॥११८॥
हरि हरि बरि बरि उठति है करि करि थकी उपाइ।
वाकौ जुरु बलि बैद जौ तो रस जाइ तु जाइ ॥११९॥
यह विनसतु नगु राखि कै जगत बड़ौ जसु लेहु।
जरी विषम जुर जाइयै आइ सुदरसनु देहु ॥१२०॥
या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिँ कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रँग त्यौं त्यौं उज्जलु होइ ॥१२१॥
बिय सौतिनु देखत दई अपने हिय तैं लाल।
फिरति सबनु मैं डहडही उहैं मरगजी माल ॥१२२॥
छला छबीले लाल कौ नवल नेह लहि नारि।
चूँवति चाहति लाइ उर पहिरति धरति उतारि ॥१२३॥
नित संसौ हंसौ बचतु मनौ सु इहिँ अनुमानु।
बिरह-अगिनि-लपटनु सकतु झपटि न मीचु-सचानु ॥१२४॥
थाकी जतन अनेक करि नैंक न छाड़ति गैल।
करी खरी दुबरी सु लगि तेरी चाह-चुरैल ॥१२५॥
लाज गहौ बेकाज कत घेरि रहे घर जांहि।
गोरसु चाहत फिरत हौ गोरसु चाहत नांहि ॥१२६॥
घाम घरीक निवारियै कलित ललित अलि-पुंज।
जमुना-तीर तमाल - तरु मिलित मालती - कुंज ॥१२७॥
उन हरकी हँसि कै इतै इन सौंपी मुसकाइ।
नैन मिलैं मन मिलि गए दोऊ मिलवत गाइ ॥१२८॥

परयौ जोरु बिपरीत रति रुपी सुरत-रन-धीर।
करति कुलाहलु किंकिनी गह्यौ मौनु मंजीर ॥१२९॥
बिनती रति बिपरीत की करी परसि पिय पाइ।
हँसि अनबोलैं हीं दियौ ऊतरु दियौ बताइ ॥१३०॥
कैसैं छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम।
मढ़यौ दमामौ जातु क्यौं कहि चूहे कैं चाम ॥१३१॥
सकत न तुव ताते वचन मो रस कौ रसु खोइ।
खिन खिन औटे खीर लौं खरौ सवादिलु होइ ॥१३२॥
कहि लहि कौनु सकै दुरी सौनजाइ मैं जाइ।
तन की सहज सुवास बन देती जौ न बताइ ॥१३३॥
चाले की बातैं चलीं सुनत सखिनु कैं टोल।
गोएं हूँ लोइन हँसत बिहँसत जात कपोल ॥१३४॥
सनु सूक्यौ बीत्यौ बनौ ऊखौ लई उखारि।
हरी हरी अरहरि अजौं धरि धरहरि जिय नारि ॥१३५॥
आए आपु भली करी मेटन मान-मरोर।
दूरि करौ यह देखिहै छला छिगुनिया-छोर ॥१३६॥
मेरे बूझत बात तू कत बहरावति बाल।
जग जानी बिपरीत रति लखि बिंदुली पिय-भाल ॥१३७॥
फिरि फिरि बिलखी ह्वै लखति फिरि फिरि लेति उसासु।
साईं सिर-कच-सेत लौं बीत्यौ चुनति कपासु ॥१३८॥
डगकु डगति सी चलि ठठुकि चितई चली निहारि।
लिए जाति चितु चोरटी वहै गोरटी नारि ॥१३९॥
करी बिरह ऐसी तऊ गैल न छाड़तु नीचु।
दीनैं हूँ चसमा चखनु चाहै लहै न मीचु ॥१४०॥
जपमाला छापा तिलक सरै न एकौ कामु।
मन-कांचै नाचै वृथा सांचै [illegible]चै रामु ॥१४१॥

जो वाके तन की दसा देख्यौ चाहत आपु।
तौ बलि नैंक बिलोकियै चलि अचकां चुपचापु ॥१४२॥
जटिल नीलमनि जगमगति सींक सुहाई नांक।
मनौ अली चंपक-कली बसि रसु लेतु निसांक ॥१४३॥
फेरु कछुक करि पौरि तैं फिरि चितई मुसकाइ।
आई जावनु लैन जिय नेहैं चली जमाइ ॥१४४॥
जदपि तेज रौहाल-बल पलकौ लगी न वार।
तौ ग्वैंड़ौ घर कौ भयौ पैंड़ौ कोस हजार ॥१४५॥
पूस-मास सुनि सखिनु पैं साईं चलत सवारु।
गहि कर बीन प्रवीन तिय राग्यौ रागु मलारु ॥१४६॥
वन तन कौं निकसत लसत हँसत हँसत इत आइ।
दृग-खंजन गहि लै चल्यौ चितवनि-चैंपु लगाइ ॥१४७॥
मरनु भलौ बरु बिरह तैं यह निहचय करि जोइ॥
मरन मिटै दुखु एक कौ बिरह दुहूं दुखु होइ ॥१४८॥
हरषि न बोली लखि ललनु निरखि अमिलु सँग साथु।
आंखिनु हीं मैं हँसि धर्यौ सीस हियैं धरि हाथु ॥१४९॥
को जानै ह्वैहै कहा ब्रज उपजी अति आगि।
मन लागै नैननु लगैं चलै न मग लगि लागि ॥१५०॥
घरु घरु डोलत दीन ह्वै जनु जनु जाचतु जाइ।
दियैं लोभ चसमा चखनु लघु पुनि बड़ौ लखाइ ॥१५१॥
लै चुभकी चलि जाति जित जित जल केलि अधीर।
कीजत केसरि-नीर से तित तित के सरि नीर ॥१५२॥
छिरके नाह नवोढ़ दृग कर-पिचकी-जल-जोर।
रोचन रँग लाली भई बिय तिय-लोचन-कोर ॥१५३॥
कहा लड़ैते दृग करे परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीत पटु कहूँ मुकुट बनमाल ॥१५४॥

राधा हरि हरि राधिका बनि आए संकेत।
दंपति रति-बिपरीत-सुखु सहज सुरतहूं लेत ॥१५५॥

चलत पाइ निगुनी गुनी धनु मनि-मुत्तिय-माल।
भेंट होत जयसाहि सौं भागु चाहियतु भाल ॥१५६॥

जसु अपजसु देखत नहीं देखत सांवल गात।
कहा करौं लालच - भरे चपल नैन चलि जात ॥१५७॥

नख सिख रूप भरे खरे तौ मांगत मुसकानि।
तजत न लोचन लालची ए ललचौंहीं बानि ॥१५८॥

छ्वै छिगुनी पहुँचौ गिलत अति दीनता दिखाइ।
बलि बावन कौ ब्यौंतु सुनि को बलि तुम्हें पत्याइ ॥१५९॥

नैना नैंक न मानहीं कितौ कह्यो समुझाइ।
तनु मनु हारैं हूं हँसैं तिन सौं कहा बसाइ ॥१६०॥

मोहन मूरति स्याम की अति अदभुत गति जोइ।
बसतु सु-चित अंतर तऊ प्रतिबिंबितु जग होइ ॥१६१॥

लटकि लटकि लटकतु चलतु डटतु मुकुट की छांह।
चटक भर्‌यो नटु मिलि गयौ अटक भटक वट मांह ॥१६१॥

मलिन देह वेई बसन मलिन बिरह कैं रूप।
पिय-आगम औरै चढ़ी आनन ओप अनूप ॥१६३॥

रँगराती रातैं हियैं प्रियतम लिखी बनाइ।
पाती काती बिरह की छाती रही लगाइ ॥१६४॥

लाल अलौकिक लरिकई लखि लखि सखी सिहांति।
आज काल्हि मैं देखियतु उर उकसौंही भांति ॥१६५॥

बिलखी डभकौंहैं चखनु तिय लखि गवनु बराइ।
पिय गहबरि आएँ गरैं राखी गरैं लगाइ ॥१६६॥

प्रतिबिंबित जयसाहि दुति दीपति दरपन-धाम।
सबु जगु जीतन कौं कर्‌यो काय व्यूहु मनु काम ॥१६७॥

१०

बाल कहा लाली भई लोइन-कोइनु मांह।
लाल तुम्हारे हगनु की परी हगनु मैं छांह ॥१६८॥
तरुन कोकनद बरन बर भए अरुन निसि जागि।
वाही कैं अनुराग हग रहे मनौ अनुरागि ॥१६९॥
तजतु अठान न हठ परयो सठमति आठौ जाम।
भयौ बामु वा बाम कौं रहै कामु बेकाम ॥१७०॥
आवत जात न जानियतु तेजहिं तजि सियरानु।
घरहँ जँवाई लौं घट्यौ खरौ पूस दिन-मानु ॥१७१॥
चलत चलत लौं लै चलैं सब सुख संग लगाइ।
ग्रीषम-बासर सिसिर-निसि प्यौ मो पास बसाइ ॥१७२॥
बेसरि - मोती - दुति - झलक परी ओठ पर आइ।
चूनौ होइ न चतुर तिय क्यों पट पोंछयौ जाइ ॥१७३॥
चितु वितु बचतु न हरत हठि लालन-हग बरजोर।
सावधान के बटपरा ए जागत के चोर ॥१७४॥
बिकसित नवमल्ली - कुसुम निकसित परिमल पाइ।
परसि पजारति बिरहि-हिय बरसि रहे की बाइ ॥१७५॥
गोप अथाइनु तैं उठे गोरज छाई गैल।
चलि बलि अलि अभिसार की भली सँझौखैं सैल ॥१७६॥
पहुँचति डटि रन-सुभट लौं रोकि सकैं सब नांहि।
लाखनु हूं की भीर मैं आंखि उहीं चलि जांहि ॥१७७॥
सरस सुमिल चित-तुरँग की करि करि अमित उठान।
गोइ निबाहैं जीतियै खेलि प्रेम-चौगान ॥१७८॥
हँसि हँसि हेरति नवल तिय मद के मद उमदाति।
बलकि बलकि बोलति बचन ललकि ललकि लपटाति ॥१७९॥
मिलि चंदन-बेंदी रही गोरैं मुँह न लखाइ।
ज्यौं ज्यौं मद-लाली चढ़ै त्यौं त्यौं उघरति जाइ ॥१८०॥

मैं समुझ्यौ निरधार यह जगु कांचो कांच सौ।
एकै रूपु अपार प्रतिबिंबित लखियतु जहां ॥१८१॥
जहां जहां ठाढ़ौ लख्यौ स्यामु सुभग-सिरमौरु।
बिन हूं उन छिनु गहि रहतु दृगनु अजौं वह ठौरु ॥१८२॥
रँगी सुरत-रँग पिय हियैं लगी जगी सब राति।
पैंड़ पैंड़ पर ठठुकि कै ऐंड़-भरी ऐंड़ाति ॥१८३॥
लालन लहि पाऐं दुरै चोरी सौंह करैं न।
सीस चढ़े पनिहा प्रगट कहैं पुकारैं नैन ॥१८४॥
तुरत सुरत कैसैं दुरत मुरत नैन जुरि नीठि।
डौंड़ी दै गुन रावरे कहति कनौड़ी डीठि ॥१८५॥
मरकत - भाजन - सलिल - गत इंदु-कला कैं बेख।
झींन झगा मैं झलमलै स्यामगात - नख-रेख ॥१८६॥
बालमु बारैं सौति कैं सुनि परनारि - बिहार।
भो रसु अनरसु रिस रली रीझ खीझ इक बार ॥१८७॥
दुरत न कुच बिच कंचुकी चुपरी सारी सेत।
कवि-आंकनु के अरथ लौं प्रगटि दिखाई देत ॥१८८॥
भई जु छवि तन बसन मिलि बरनि सकैं सु न बैन।
आंग-ओप आंगी दुरी आंगी आंग दुरै न ॥१८९॥
सोनजुही सी जगमगति अँग अँग जोबन - जोति।
सुरँग कसूंभी कंचुकी दुरँग देह-दुति होति ॥१९०॥
बड़े न हूजै गुननु बिनु बिरद-बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु गहनौ गढ़यौ न जाइ ॥१९१॥
कनकु कनक तैं सौगुनौ मादकता अधिकाइ।
उहिं खाएं बौराइ इहिं पाएं हीं बौराइ ॥१९२॥
डीठिबरत बांधी अटनु चढ़ि धावत न डरात।
इतहिं उतहिं चित दुहुनु के नट लौं आवत जात ॥१९३॥

झटकि चढ़ति उतरति अटा नैंक न थाकति देह।
भई रहति नट कौ बटा अटकी नागर-नेह ॥१९४॥
लोभ लगे हरि-रूप के करी सांटि जुरि जाइ।
हौं इन बेची बीच हीं लोइन बड़ी बलाइ ॥१९५॥
चिलक चिकनई चटक सौं लफति सटक लौं आइ।
नारि सलोनी सांवरी नागिनि लौं डसि जाइ ॥१९६॥
तो रस रांच्यौ आन बस कहौ कुटिल-मति कूर।
जीभ निबौरी क्यौं लगै बौरी चाखि अँगूर ॥१९७॥
जुरे दुहुनु के दृग झमकि रुके न झानैं चीर।
हलुकी फौज हरौल ज्यौं परै गोल पर भीर ॥१९८॥
केसर केसरि-कुसुम के रहे अंग लपटाइ।
लगे जानि नख अनखुली कत बोलति अनखाइ ॥१९९॥
दृग मिहचत मृग-लोचनी भर्‌यौ उलटि भुज बाथ।
जानि गई तिय नाथ के हाथ परस हीं हाथ ॥२००॥
तजि तीरथ हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुराग।
जिहिँ ब्रज-केलि-निकुंज-मग पग पग होतु प्रयागु ॥२०१॥
खिन खिन मैं खटकति सु हिय खरी भीर मैं जात।
कहि जु चली अनहीं चितै ओठनु हीं बिच बात ॥२०२॥
अजौं न आए सहज रँग बिरह-दूबरैं गात।
अब हीं कहा चलाइयति ललन चलन की बात ॥२०३॥
अपनैं कर गुहि आपु हठि हिय पहराई लाल।
नौल सिरी औरै चढ़ी बौलसिरी की माल ॥२०४॥
नई लगनि कुल की सकुच बिकल भई अकुलाइ।
दुहूं ओर ऐंची फिरति फिरकी लौं दिनु जाइ ॥२०५॥
इत तैं उत उत तैं इतै छिनु न कहूं ठहराति।
जक न परति चकरी भई फिरि आवति फिरि जाति ॥२०६॥

निसि अँधियारी नील पटु पहिरि चली पिय-गेह।
कहौ दुराई क्यों दुरै दीप-सिखा सी देह ॥२०७॥
रह्यौ ढीठु ढाढ़सु गहैं ससहरि गयौ न सूरु।
मुर्‌यौ न मनु मुरवानु चभि भौ चूरनु चपि चूरु ॥२०८॥
सोहत अँगुठा पाइ कै अनवटु जर्‌यौ जराइ।
जीत्यौ तरिवन-दुति सु ढरि पर्‌यौ तरनि मनु पाइ ॥२०९॥
जंघ जुगुल लोइन निरे करे मनौ बिधि मैन।
केलि-तरुनु दुख दैन ए केलि तरुन-सुख-दैन ॥२१०॥
रही पकरि पाटी सु रिस भरे भौंह चितु नैन।
लखि सपनैं तिय आनरत जगतहु लगत हियैं न ॥२११॥
किय हाइलु चित-चाइ लगि बजि पाइल तुव पाइ।
पुनि सुनि सुनि मुँह-मधुर-धुनि क्यौं न लालु ललचाइ ॥२१२॥
लीनैं हूं साहस सहसु कीनैं जतन हजारु।
लोइन लोइन-सिंधु तन पैरि न पावत पारु ॥२१३॥
पट की ढिग कत ढांपियति सोभित सुभग सुबेख।
हद-रद-छद छबि देति यह सद-रद-छद की रेख ॥२१४॥
नाह गरजि नाहर-गरज बोलु सुनायौ टेरि।
फँसी फौज मैं बंदि-बिच हँसी सबनु तनु हेरि ॥२१५॥
बाल-बेलि सूखी सुखद इहिँ रूखी रुख-घाम।
फेरि डहडही कीजियै सुरस सींचि घनस्याम ॥२१६॥
औंधाई सीसी सुलखि बिरह-बरनि बिललात।
बिच हीं सूखि गुलाबु गौ छीटौ छुई न गात ॥२१७॥
तजी संक सकुचति न चित बोलत बाकु कुबाकु।
दिन छिनदा छाकी रहति छुटतु न छिनु छबि-छाकु ॥२१८॥
फिरि फिरि बूझति कहि कहा कह्यौ सांवरे गात।
कहा करत देखे कहां अली चली क्यौं बात ॥२१९॥

नव नागरि-तन-मुलुकु लहि जोबन - आमिर - जौर ।
घटि बढ़ि तैं बढ़ि घटि रकम करीं और की और ॥२२०॥
कीजै चित सोई तरे जिहिँ पतितनु के साथ ।
मेरे गुन - औगुन - गननु गनौ न गोपीनाथ ॥२२१॥
मृगनैनी दृग की फरक उर - उछाह तन - फूल ।
बिन हीं पिय-आगम उमगि पलटन लगी दुकूल ॥२२२॥
रहे बरोठे मैं मिलत पिउ प्राननु के ईसु ।
आवत आवत की भई बिधि की घरी घरी सु ॥२२३॥
रबि बंदौं कर जोरि ए सुनत स्याम के बैन ।
भए हँसौहैं सबनु के अति अनखौहैं नैन ॥२२४॥
हौं हीं बौरी बिरह-बस कै बौरौ सबु गाउँ ।
कहा जानि ए कहत हैं ससिहिँ सीतकर नाउँ ॥२२५॥
अनी बड़ी उमड़ी लखैं असि बाहक भट भूप ।
मंगलु करि मान्यौ हियैं भो मुँहु मंगलु रूप ॥२२६॥
सोवत जागत सुपन-बस रस रिस चैन कुचैन ।
सुरति स्यामघन की सु रति बिसरैं हूं बिसरै न ॥२२७॥
संगति सुमति न पावहीं परे कुमति कैं धंध ।
राखौ मेलि कपूर मैं हींग न होइ सुगंध ॥२२८॥
बड़े कहावत आप सौं गरुवे गोपीनाथ ।
तौ बदिहौं जौ राखिहौ हाथनु लखि मनु हाथ ॥२२९॥
कौड़ा आंसू-बूंद कसि सांकर बरुनी सजल ।
कीने बदन निमूंद दृग - मलिंग डारे रहत ॥२३०॥
ज्यौं सरद-राका-ससी करति क्यौं न चित चेतु ।
मनौ मदन छितिपाल कौ छांहगीरु छबि देतु ॥२३१॥
ढरे ढार तेहीं ढरत दूजैं ढार ढरैं न ।
क्यौंहूं आनन आन सौं नैना लागत नै न ॥२३२॥

सोवत लखि मन मानु धरि ढिग सोयौ प्यौ आइ।
रही सुपन की मिलनि मिलि तिय हिय सौं लपटाइ ॥२३३॥
जोन्ह नहीं यह तमु वहै किए जु जगत निकेतु।
होत उदै ससि के भयौ मानहु ससहरि सेतु ॥२३४॥
जात जात बितु होतु है ज्यौं जिय मैं संतोषु।
होत होत जौं होइ तौ होइ घरी मैं मोषु ॥२३५॥
तन भूषन अंजन दृगनु पगनु महावर-रंग।
नहिं सोभा कौं साजियतु कहिबैं हीं कौं अंग ॥२३६॥
पाइ तरुनि-कुच उच्च पदु चिरम ठग्यौ सबु गाउँ।
छुटैं ठौरु रहिहै वहै जु हो मोलु छबि नाउँ ॥२३७॥
नित प्रति एकत हीं रहत बैस बरन मन एक।
चहियत जुगल किसोर लखि लोचन जुगल अनेक ॥२३८॥
मन न धरति मेरौ कह्यौ तूं आपनैं सयान।
अहे परनि परि प्रेम की परहथ पारि न प्रान ॥२३९॥
नख-रेखा सोहैं नई अलसौहैं सब गात।
सौंहैं होत न नैन ए तुम सौंहैं कत खात ॥२४०॥
हरि कीजति बिनती यहै तुम सौं बार हजार।
जिहिं तिहिं भांति डर्‌यौ रह्यौं पर्‌यौ रहौं दरबार ॥२४१॥
भौंह उँचै आँचरु उलटि मौरि मोरि मुँह मोरि।
नीठि नीठि भीतर गई दीठि दीठि सौं जोरि ॥२४२॥
रस की सी रुख ससिमुखी हँसि हँसि बोलत बैन।
गूढ़ मानु मन क्यौं रहै भए बूढ़-रँग नैन ॥२४३॥
जिहिं निदाघ-दुपहर रहै भई माघ की राति।
तिहिं उसीर की रावटी खरी आवटी जाति ॥२४४॥
रहो दहेंड़ो ढिग धरी भरी मथनिया बारि।
फेरति करि उलटी रई नई बिलोवनहारि ॥२४५॥

देवर-फूल-हने जु सु सु उठे हरषि अँग फूलि।
हँसी करति औषधि सखिनु देह-ददोरनु भूलि ॥२४६॥
फूले फदकत लै फरी पल कटाच्छ करवार।
करत बचावत बिय-नयन-पाइक घाइ हजार ॥२४७॥
पहुला-हारु हियैं लसै सन की बेंदी भाल।
राखति खेत खरे खरे खरे उरोजनु बाल ॥२४८॥
लई सौंह सी सुनन की तजि मुरली धुनि आन।
किए रहति नित राति दिनु कानन लागे कान ॥२४९॥
तूं मति मानै मुकतई कियैं कपट चित कोटि।
जौ गुनही तौ राखियै आँखिनु माँझ अगोटि ॥२५०॥
गिरि तैं ऊंचे रसिक-मन बूड़े जहां हजारु।
वहै सदा पसु नरनु कौं प्रेम-पयोधि पगारु ॥२५१॥
भावकु उभरौंहौं भयौ कछुकु पर्यो भरुआइ।
सीप-हार कैं मिसि हियौ निसि दिन हेरत जाइ ॥२५२॥
गली अँधेरी सांकरी भौ भटभेरा आनि।
परे पिछाने परसपर दोऊ परस पिछानि ॥२५३॥
कहि पठई जिय-भावती पिय आवन की बात।
फूली आंगन मैं फिरै अंग न अंग समात ॥२५४॥
जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब मैं अपत कँटीली डार ॥२५५॥
मैं बरजी कै बार तूं इत कित लेति करौट।
पँखुरी लगैं गुलाब की परिहै गात खरौट ॥२५६॥
नीचीयै नीची निपट दीठि कुही लौं दौरि।
उठि ऊंचैं नीचौ दयौ मनु कुलिंगु झपि झौरि ॥२५७॥
सूर उदित हूं मुदित मन मुखु सुखमा की ओर।
चितै रहत चहुँ ओर तैं निहचल चखनु चकोर ॥२५८॥

स्वेद-सलिलु रोमांच-कुसु गहि दुलही अरु नाथ।
दियौ हियौ सँग हाथ कैं हथलेयैं हीं हाथ ॥२५९॥

दच्छिन पिय ह्वै बाम-बस बिसराईं तिय आन।
एकै बासरि कैं बिरह लागी बरष बिहान ॥२६०॥

मोहूं दीजै मोषु ज्यौं अनेक अधमनु दियौ।
जौ बाँधैं ही तोषु तौ बाँधौ अपनैं गुननु ॥२६१॥

चितु तरसतु मिलत न बनतु बसि परोस कैं बास।
छाती फाटी जाति सुनि टाटी-ओट उसास ॥२६२॥

जालरंध्र-मग अँगनु कौ कछु उजास सौ पाइ।
पीठि दिऐ जगत्यौ रह्यौ डीठि झरोखैं लाइ ॥२६३॥

परतिय-दोषु पुरान सुनि लखि मुलकी सुख दानि।
कसु करि राखी मिश्र हूं मुँह-आई मुसकानि ॥२६४॥

सहित सनेह सकोच सुख स्वेद कंप मुसकानि।
प्रान पानि करि आपनैं पान धरे मो पानि ॥२६५॥

सीरैं जतननु सिसिर रितु सहि बिरहिनि-तन-तापु।
बसिबे कौं ग्रीषम दिननु परयौ परोसिनि पापु ॥२६६॥

सोहतु संगु समान सौं यहै कहै सबु लोगु।
पान-पीक ओठनु बनै काजर नैननु जोगु ॥२६७॥

तूं रहि हौं हीं सखि लखौं चढ़ि न अटा बलि बाल।
सबहिनु बिनु हीं ससि-उदै दीजतु अरघु अकाल ॥२६८॥

दियौ अरघु नीचैं चलौ संकटु भानैं जाइ।
सुचिती ह्वै औरौ सबै ससिहिँ बिलोकैं आइ ॥२६९॥

ललित स्याम लीला ललन चढ़ी चिबुक छबि दून।
मधु छाक्यौ मधुकरु परयौ मनौ गुलाब प्रसून ॥२७०॥

सबै सुहाएई लगैं बसैं सुहाएँ ठाम।
गोरैं मुँह बेंदी लसैं अरुन पीत सित स्याम ॥२७१॥

भए बटाऊ नेहु तजि बादि बकति बेकाज।
अब अलि देत उराहनौ अति उपजति उर लाज ॥२७२॥
मानु करत बरजति न हौं उलटि दिवावति सौंह।
करी रिसौंहीं जाहिंगी सहज हँसौंहीं भौंह ॥२७३॥
तिय तिथि तरुन किसोर बय पुन्यकाल-सम दोनु।
काहूं पुन्यनु पाइयतु बैस संधि संक्रोनु ॥२७४॥
गनती गनिबे तैं रहै छत हूं अछत समान।
अलि अब ए तिथि औम लौं परे रहौ तन प्रान ॥२७५॥
सबै हँसत करतार दै नागरता कैं नावँ।
गयौ गरबु गुन कौ सरबु गऐं गँवारैं गावँ ॥२७६॥
जाति मरी बिछुरी घरी जल सफरी की रीति।
खिन खिन होति खरी खरी अरी जरी यह प्रीति ॥२७७॥
पिय-प्राननु की पाहरू करति जतन अति आपु।
जाकी दुसह दसा परयौ सौतिनिहूं संतापु ॥२७८॥
अहे कहै न कहा कह्यौ तोसौं नंदकिसोर।
बड़बोली बलि होति कत बड़े दृगनु कैं जोर ॥२७९॥
दियौ जु पिय लखि चखनु मैं खेलत फाग-खियालु।
बाढ़त हूं अति पीर सु न काढ़त बनतु गुलालु ॥२८०॥
मैं तपाइ त्रयताप सौं राख्यौ हियौ हमामु।
मति कबहुँक आऐं यहां पुलकि पसीजै स्यामु ॥२८१॥
बहकि बड़ाई आपनी कत रांचत मति-भूल।
बिनु मधु मधुकर कैं हियैं गडै न गुड़हर-फूल ॥२८२॥
आड़े दै आले बसन जाड़े हूं की राति।
साहसु ककै सनेह-बस सखी सबै ढिग जाति ॥२८३॥
सब अँग करि राखी सुघर नाइक नेह सिखाइ।
रसजुत लेति अनंत गति पुतरी पातुर-राइ ॥२८४॥

सुनत पथिक-मुँह माह-निसि चलति लुवैं उहिँ गाम।
बिनु बूझैं बिनु हीं कहैं जियति बिचारी बाम ॥२८५॥
अनत बसे निसि की रिसनु उर बरि रही बिसेखि।
तऊ लाज आई झुकत खरे लजौंहैं देखि ॥२८६॥
सुरँगु महावरु सौति-पग निरखि रही अनखाइ।
पिय-अँगुरिनु लाली लखैं खरी उठी लगि लाइ ॥२८७॥
मानहु मुँह-दिखरावनी दुलहिहिँ करि अनुरागु।
सासु सदनु मनु ललन हूं सौतिनु दियौ सुहागु ॥२८८॥
कत सकुचत निधरक फिरौ रतियौ खोरि तुम्हैं न।
कहा करौ जौ जाइ ए लगैं लगौंहैं नैन ॥२८९॥
आपु दियौ मनु फेरि लै पलटैं दीनी पीठि।
कौन चाल यह रावरी लाल लुकावत डीठि ॥२९०॥
गोपिन सँग निसि सरद की रमत रसिक रस-रास।
लहाछेह अति गतिनु की सबनु लखे सब-पास ॥२९१॥
स्याम - सुरति करि राधिका तकति तरनिजा-तीरु।
अँसुवनु करति तरौंस कौ खिनकु खरौंहौ नीरु ॥२९२॥
गोपिनु कैं अँसुवनु भरी सदा असोस अपार।
डगर डगर नै ह्वै रही बगर बगर कैं वार ॥२९३॥
दुचितैं चित हलति न चलति हँसति न झुकति बिचारि।
लखत चित्र पिउ लखि चितै रही चित्र लौं नारि ॥२९४॥
कन दैवौ सौंप्यौ ससुर बहू थुरहथी जानि।
रूप - रहचटैं लगि लग्यौ मांगन सबु जगु आनि ॥२९५॥
निरखि नवोढ़ा नारि तन छुटत लरिकई लेस।
भौ प्यारौ प्रीतमु तियनु मनहु चलत परदेस ॥२९६॥
प्रान प्रिया हिय मैं बसै नखरेखा - ससि भाल।
भलौ दिखायौ आइ यह हरि - हर - रूप रसाल ॥२९७॥

तिय निय हिय जु लगी चलत पिय-नख-रेख-खरौंट।
सूखन देत न सरसई खोंटि खोंटि खत-खौंट ॥२९८॥
सघन कुंज घन घन-तिमिरु अधिक अँधेरी राति।
तऊ न दुरिहै स्याम वह दीप सिखा सी जाति ॥२९९॥
स्वारथु सुकृतु न श्रमु वृथा देखि विहंग विचारि।
बाज पराऐं पानि परि तूं पच्छीनु न मारि ॥३००॥
सीस-मुकट कटि-काछनी कर-मुरली उर-माल।
इहिं बानक मो मन सदा बसौ बिहारी लाल ॥३०१॥
भृकुटी-मटकनि पीतपट चटक लटकती चाल।
चलचख चितवनि चोरि चितु लियौ बिहारी लाल ॥३०२॥
संगति-दोषु लगै सबनु कहे ति सांचे बैन।
कुटिल बंक भ्रुव सँग भए कुटिल बंक गति नैन ॥३०३॥
जरी-कोर गोरैं बदन बढ़ी खरी छवि देखु।
लसति मनौ बिजुरी किए सारद ससि परिवेखु ॥३०४॥
चितवनि भोरे भाइ की गोरैं मुँह मुसकानि।
लागति लटकि अली-गरैं चित खटकति नित आनि ॥३०५॥
इहिं द्वैहीं मोती सुगथ तूं नथ गरबि निसांक।
जिहिं पहिरैं जग-दृग ग्रसति लसति हँसति सी नाक ॥३०६॥
हरि-छबि-जल जब तैं परे तब तैं छिनु बिछुरैं न।
भरत ढरत बूड़त तरत रहत घरी लौं नैन ॥३०७॥
मार-सुमार-करी खरी मरी मरीहिं न मारि।
सींचि गुलाब घरी घरी अरी बरीहिं न बारि ॥३०८॥
क्यौं हूं सहबात न लगै थाके भेद-उपाइ।
हठ-दृढ़ गढ़-गढ़वै सु चलि लीजै सुरँग लगाइ ॥३०९॥
तो ही को छुटि मानु गौ देखत हीं ब्रजराज।
रही घरिक लौं मान सी मान करे की लाज ॥३१०॥

न ए बिससियहि लखि नए दुरजन दुसह-सुभाइ।
आँटैं परि प्रानतु हरत काँटैं लौं लगि पाइ ॥३११॥
सखि सोहति गोपाल कैं उर गुंजनु की माल।
बाहिर लसति मनौ पिए दावानल की ज्वाल ॥३१२॥
गहिली गरबु न कीजियै समै-सुहागहिं पाइ।
जिय की जीवनि जेठ सो माह न छांह सुहाइ ॥३१३॥
हँसि हँसाइ उर लाइ उठि कहि न रुखौंहैं बैन।
जकित थकित ह्वै तकि रहे तकत तिलौंछे नैन ॥३१४॥
तीज-परब सौतिनु सजे भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजे-मुँह करीं इहीं मरगजैं चीर ॥३१५॥
गढ़-रचना बरुनी अलक चितवनि भौंह कमान।
आघु बँकाई हीं चढ़ै तरुनि तुरंगम तान ॥३१६॥
इत आवति चलि जाति उत चली छसातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरैं सैं रहै लगी उसासनु साथ ॥३१७॥
डर न टरै नींद न परै हरै न काल-बिपाकु।
छिनकु छाकि उछकै न फिरि खरौ बिषमु छबि-छाकु ॥३१८॥
रमन कह्यौ हठि रमन कौं रति बिपरीत बिलास।
चितई करि लोचन सतर सजल सरोस सहास ॥३१९॥
ऐंचति सी चितवनि चितै भई ओट अलसाइ।
फिरि उझकनि कौं मृगनयनि दृगनि लगनिया लाइ ॥३२०॥
नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै तेतौ ऊंचौ होइ ॥३२१॥
भूषन-भारु सँभारिहै क्यौं इहिं तन सुकुमार।
सूधे पाँय न धर परैं सोभा हीं कैं भार ॥३२२॥
मुँह मिठासु दृग चीकने भौंहैं सरल सुभाइ।
तऊ खरैं आदर खरौ खिन खिन हियौ सकाइ ॥३२३॥

जदपि नाहिँ नाहीं नहीं बदन लगी जक जाति।
तदपि भौंह-हांसी-भरिनु हांसीयै ठहराति ॥३२४॥
छुटन न पैयतु छिनकु बसि नेह-नगर यह चाल।
मार्‌यौ फिरि फिरि मारियै खूनी फिरै खुस्याल ॥३२५॥
चुनरी स्याम सतार नभ मुँह ससि की उनहारि।
नेह दबावतु नींद लौं निरखि निसा सी नारि ॥३२६॥
कहत सबै बेंदी दियैं आंकु दसगुनौ होतु।
तिय-लिलार बेंदी दियैं अगनितु बढ़तु उदोतु ॥३२७॥
तर झरसी ऊपर गरी कज्जल-जल छिरकाइ।
पिय पाती बिनहीं लिखी बांची बिरह-बलाइ ॥३२८॥
बिरह सुकाई देह नेहु कियौ अति डहडहौ।
जैसैं बरसैं मेह जरै जवासौ जौ जमै ॥३२९॥
देखी सो न जु ही फिरति सोनजुही सैं अंग।
दुति-लपटनु पट सेत हूं करति बनौटी रंग ॥३३०॥
बढ़त बढ़त संपति-सलिलु मन-सरोजु बढ़ि जाइ।
घटत घटत सु न फिरि घटै बरु समूल कुम्हिलाइ ॥३३१॥
ह्यां न चलै बलि रावरी चतुराई की चाल।
सनख हियैं खिन खिन नटत अनख बढ़ावत लाल ॥३३२॥
डीठि न परतु समान-दुति कनकु कनक सैं गात।
भूषन कर करकस लगत परसि पिछाने जात ॥३३३॥
करतु मलिन आछी छबिहिँ हरतु ज सहजु बिकासु।
अंगरागु अंगनु लगै ज्यौं आरसी उसासु ॥३३४॥
पहिरि न भूषन कनक के कहि आवत इहिँ हेत।
दरपन के से मोरचे देह दिखाई देत ॥३३५॥
जदपि चवाइनु चीकनी चलति चहूं दिसि सैन।
तऊ न छाड़त दुहनु के हँसी रसीले नैन ॥३३६॥

अनरस हूं रसु पाइयतु रसिक रसीली पास।
जैसैं सांठे की कठिन गांठ्यौ भरी मिठासु ॥३३७॥
गोरी छिगुनी नखु अरुनु छला स्यामु छबि देइ।
लहत मुकति रति पलकु यह नैन त्रिबेनी सेइ ॥३३८॥
उर मानिक की उरबसी डटत घटतु दृग-दागु।
छलकतु बाहिर भरि मनौ तिय–हिय कौ अनुरागु ॥३३९॥
सहज सेत पँचतोरिया पहिरत अति छबि होति।
जलचादर के दीप लौं जगमगाति तन-जोति ॥३४०॥
कोटि जतन कोऊ करै परै न प्रकृतिहिं बीचु।
नल-बल जलु ऊंचैं चढ़ै अंत नीच को नीचु ॥३४१॥
लगत सुभग सीतल किरन निसि-सुख दिन अवगाहि।
माह ससी-भ्रम सूर-त्यौं रहति चकोरी चाहि ॥३४२॥
तपन-तेज तपु-ताप तपि अतुल तुलाई मांह।
सिसिर-सीतु क्यौंहुं न कटै बिनु लपटैं तिय नांह ॥३४३॥
रहि न सकी सब जगत मैं सिसिर-सीत कैं त्रास।
गरम भाजि गढ़वै भई तिय-कुच अचल मवास ॥३४४॥
झूठे जानि न संग्रहे मन मुँह निकसे बैन।
याही तैं मानहु किए बातनु कौं बिधि नैन ॥३४५॥
सुघर-सौति-बस पिउ सुनत दुलहिनि दुगुन हुलास।
लखी सखी तन दीठि करि सगरब सलज सहास ॥३४६॥
लिखन बैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ॥३४७॥
दुनहाई सब टोल मैं रही जु सौति कहाइ।
सु तैं ऐंचि प्यौ आपु त्यौं करी अदोखिल आइ ॥३४८॥
दृगनु लगत बेधत हियहिं बिकल करत अँग आन।
ए तेरे सब तैं बिषम ईछन-तीछन बान ॥३४९॥

पीठि दियै हीं नैंक मुरि कर घूंघट-पटु टारि।
भरि गुलाल की मूठि सौं गई मूठि सी मारि ॥३५०॥

गुनी गुनी सबकैं कहैं निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूं तरु अरक तैं अरक समानु उदोतु ॥३५१॥

छुटत मुठिन सँग हीं छुटी लोक-लाज कुल-चाल।
लगे दुहुनु इक बेर ही चल चित नैन गुलाल ॥३५२॥

ज्यौं ज्यौं पटु झटकति हठति हँसति नचावति नैन।
त्यौं त्यौं निपट उदारहूं फगुवा देत बनै न ॥३५३॥

ज्यौं ज्यौं पावक लपट सी तिय हिय सौं लपटाति।
त्यौं त्यौं छुही गुलाब सैं छतिया अति सियराति ॥३५४॥

भाल-लालबेंदी - छए छुटे बार छवि देत।
गह्यौ राहु अति आहु करि मनु ससि सूर समेत ॥३५५॥

तिय कित कमनैती पढ़ी बिनु जिहि भौंह-कमान।
चलचित - बेझैं चुकति नहिं बंक बिलोकनि-बान ॥३५६॥

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढ़ै दुख-दंदु।
अधिक अँधेरो जग करत मिलि मावस रवि चंदु ॥३५७॥

ललन-चलनु सुनि पलनु मैं अँसुवा झलके आइ।
भई लखाइ न सखिनु सौं झूठैं हीं जमुहाइ ॥३५८॥

कंचन-तन-धन-बरन बर रह्यो रंगु मिलि रंग।
जानी जाति सुबास हीं केसरि लाई अंग ॥३५९॥

खरैं अदब इठलाहटी उर उपजावति त्रासु।
दुसह संक बिस कौ करै जैसे सोंठि-मिठासु ॥३६०॥

तौ लगु या मन-सदन मैं हरि आवैं किहिं बाट।
बिकट जटे जौ लगु निपट खुटैं न कपट-कपाट ॥३६१॥

है कपूर मनिमय रही मिलि तन-दुति मुकतालि।
छिन छिन खरी बिचच्छिनौ लखति छ्वाइ तिनु आलि ॥३६२॥

दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हियैं दई नई यह रीति ॥३६३॥

नहिं नचाइ चितवति दृगनु नहिं बोलति मुसकाइ।
ज्यौं ज्यौं रूखी रुख करति त्यौं त्यौं चितु चिकनाइ ॥३६४॥

वैसीयै जानी परति झगा ऊजरे माहँ।
मृगनैनी लपटत जु यह बेनी उपटी बाहँ ॥३६५॥

प्यासे दुपहर जेठ के फिरे सबै जलु सोधि।
मरुधर पाइ मतीरु हीं मारू कहत पयोधि ॥३६६॥

बिषम बृषादित की तृषा जिए मतीरनु सोधि।
अमित अपार अगाध जलु मारौ मूड़ पयोधि ॥३६७॥

निपट लजीली नवल तिय बहकि बारुनी सेइ।
त्यौं त्यौं अति मीठी लगति ज्यौं ज्यौं ढीठ्यौ देइ ॥३६८॥

सरस कुसुम मँडरातु अलि न झुकि झपटि लपटातु।
दरसत अति सुकुमारु तनु परसत मन न पत्यातु ॥३६९॥

निरदय नेहु नयौ निरखि भयौ जगतु भय भीतु।
यह न कहूं अब लौं सुनी मरि मारियै जु मीतु ॥३७०॥

भजन कह्यौ तातैं भज्यौ भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जातैं कह्यौ सो तैं भज्यौ गँवार ॥३७१॥

नैन लगै तिहिं लगनि जु न छुटैं छुटैं हूं प्रान।
काम न आवत एक हूं तेरे सैक सयान ॥३७२॥

उड़ति गुड़ी लखि ललन की अँगना अँगना माहँ।
बौरी लौं दौरी फिरति छुवति छबीली छाहँ ॥३७३॥

ऊंचै चितै सराहियतु गिरह कबूतरु लेतु।
झलकित दृग मुलकित बदनु तनु पुलकित किहिं हेतु ॥३७४॥

लागत कुटिल कटाच्छ-सर क्यौं न होहिं बेहाल।
कढ़त जि हियहिं दुसाल करि तऊ रहत नटसाल ॥३७५॥

जनमु जलधि पानिपु बिमल भौ जग आघु अपारु।
रहै गुनी ह्वै गर परयौ भलैं न मुकता हारु॥३७६॥
गहै न नेकौ गुन गरबु हँसौ सबै संसारु।
कुच उच पद लालच रहै गरैं परैं हूं हारि॥३७७॥
तज्यौ आंच अब बिरह की रह्यो प्रेम-रस भीजि।
नैननु कैं मग जलु बहै हियौ पसीजि पसीजि॥३७८॥
छला परोसिन हाथ तैं छलु करि लियौ पिछानि।
पियहिं दिखायौ लखि बिलखि रिस-सूचक मुसकानि॥३७९॥
हठि-हितु करि प्रीतम-लियौ कियौ जु सौति सिँगारु।
अपनैं कर मोतिनु गुह्यो भयो हरा हर-हारु॥३८०॥
बसै बुराई जासु तन ताही कौ सनमानु।
भलौ भलौ कहि छोड़ियै खोटैं ग्रह जपु दानु॥३८१॥
वै ठाढ़े उमदाहु उत जल न बुझै बड़वागि।
जाही सौं लाग्यौ हियौ ताही कैं हिय लागि॥३८२॥
ढीठि परोसिनि ईठि ह्वै कहे जु गहे सयानु।
सबै सँदेसे कहि कह्यौ मुसकाहट मैं मानु॥३८३॥
छिनकु चलति ठठुकति छिनकु भुज प्रीतम-गल डारि।
चढ़ी अटा देखति घटा बिज्जु-छटा सी नारि॥३८४॥
धनि यह द्वैज जहां लख्यौ तज्यौ दृगनु दुख-दंदु।
तुम भागनु पूरब उयौ अहो अपूरबु चंदु॥३८५॥
लरिका लेवे कैं मिसनु लंगरु मो ढिग आइ।
गयौ अनाचक आंगुरी छाती छैलु छुवाइ॥३८६॥
ढीठ्यौ दै बोलति हँसति पोढ़-बिलास अपोढ़।
त्यौं त्यौं चलत न पिय-नयन छकए छकी नवोढ़॥३८७॥
रनित भृंग-घंटावली झरित दान मधु-नीरु।
मंद मंद आवतु चल्यौ कुंजरु कुंज-समीरु॥३८८॥

रह्यो रुकी क्यौं हूं सु चलि आधिक राति पधारि।
हरति तापु सब द्यौस कौ उर लगि यारि बयारि ॥३८९॥
चुवति स्वेद मकरंद-कन तरु-तरु-तर बिरमाइ।
आवतु दच्छिन देस तैं थक्यौ बटोही बाइ ॥३९०॥
पतवारी माला पकरि और न कछू उपाउ।
तरि संसार-पयोधि कौं हरि-नावैं करि नाउ ॥३९१॥
लपटी पुहुप-पराग-पट सनी स्वेद मकरंद।
आवति नारि नवोढ़ लौं सुखद बायु गति मंद ॥३९२॥
ललन सलोने अरु रहे अति सनेह सौं पागि।
तनक कचाई देत दुख सूरन लौं मुँह लागि ॥३९३॥
न करु न डरु सबु जगु कहतु कत बिनु काज लजात।
सौंहैं कीजै नैन जौ सांची सौंहैं खात ॥३९४॥
रहिहैं चंचल प्रान ए कहि कौन की अगोट।
ललन चलन की चित धरी कल न पलनु की ओट ॥३९५॥
जौं चाहत चटक न घटै मैलौ होइ न मित्त।
रज राजसु न छुवाइ तौ नेह-चीकनौं चित्त ॥३९६॥
कोरि जतन कीजै तऊ नागर-नेहु दुरै न।
कहैं देत चितु चीकनौ नई रुखाई नैन ॥३९७॥
लाल तुम्हारे रूप की कहौ रीति यह कौन।
जासौं लागत पलकु दृग लागत पलक पलौ न ॥३९८॥
कालबूत दूती बिना जुरै न और उपाइ।
फिरि ताकैं टारैं बनै पाकैं प्रेम-लदाइ ॥३९९॥
रह्यौ ऐंचि अंतु न लहै अवधि-दुसासनु बीरु।
आली बाढ़तु बिरहु ज्यौं पंचाली कौ चीरु ॥४००॥
यह बरिया नहिं और की तूं करिया वह सोधि।
पाहन-नाव चढ़ाइ जिहिं कीने पार पयोधि ॥४०१॥

पावक-झर तैं मेह-झर दाहक दुसह बिसेखि।
दहै देह वाकैं परस याहि दृगनु हीं देखि ॥४०२॥

चलित ललित श्रम-स्वेदकन कलित अरुन मुख तैं न।
बन-बिहार थाकी तरुनि खरे थकाए नैन ॥४०३॥

कुढँगु कोपु तजि रँग-रली करतिँ जुवति जग जोइ।
पावस गूढ़ न बात यह बूढ़नु हूं रँगु होइ ॥४०४॥

न जक धरत हरि हिय धरैं नाजुक कमला बाल।
भजत भार-भय-भीत ह्वै घनु चंदनु बनमाल ॥४०५॥

नासा मोरि नचाइ जे करी कका की सौंह।
काँटे सी कसकैं ति हिय गड़ी कँटीली भौंह ॥४०६॥

क्यों बसियै क्यौं निबहियै नीति नेह-पुर नाहि।
लगालगी लोइन करैं नाहक मन बँधि जांहि ॥४०७॥

ललन-चलनु सुनि चुपु रही बोली आपु न ईठि।
राख्यौ गहि गाढ़ैं गरैं मनौ गलगली डोठि ॥४०८॥

अपनी गरजनु बोलियतु कहा निहोरौ तोहिं।
तू प्यारो मो जीय कौं मो ज्यौ प्यारौ मोहिं ॥४०९॥

रह्यौ चकितु चहुँघा चितै चितु मेरौ मति भूलि।
सूर उयैं आए रही दृगनु साँझ सी फूलि ॥४१०॥

अति अगाधु अति औथरौ नदी कूपु सरु बाइ।
सो ताकौ सागरु जहां जाकी प्यास बुझाइ ॥४११॥

कपट सतर भौहैं करीं मुख अनखौंहैं बैन।
सहज हसौंहैं जानि कै सौंहैं करति न नैन ॥४१२॥

मानहु बिधि तन-अच्छ छबि स्वच्छ राखिबैं काज।
दृग-पग-पोंछन कौं करे भूषन पायंदाज ॥४१३॥

बिरह-बिथा-जल-परस-बिन बसियतु मो-मन-ताल।
कछु जानत जल-थंभ-बिधि दुर्जोधन लौं लाल ॥४१४॥

रुख रूखी मिस-रोष मुख कहति रुखौंहैं बैन।
रूखे कैसैं होत ए नेह चीकने नैन ॥४१५॥
पति-रितु-औगुन-गुन बढ़तु मानु माह कौ सीतु।
जातु कठिन ह्वै अति मृदौ रवनी-मनु नवनीतु ॥४१६॥
त्यौं त्यौं प्यासेई रहत ज्यौं ज्यौं पियत अघाइ।
सगुन सलोने रूप की जु न चख-तृषा बुझाइ ॥४१७॥
अरुन-बरन तरुनी-चरन-अँगुरी अति सुकुमार।
चुवत सुरँगु रँगु सी मनौ चपि बिछियनु कैं भार ॥४१८॥
मोर-मुकुट की चंद्रिकनु यौं राजत नँदनंद।
मनु ससिसेखर की अकस किय सेखर सतचंद ॥४१९॥
अधर धरत हरि कैं परत ओठ डीठि पट जोति।
हरित बांस की बांसुरी इंद्रधनुष-रँग होति ॥४२०॥
तौ अनेक औगुन-भरिहिं चाहै याहि बलाइ।
जौ पति संपति हूं बिना जदुपति राखे जाइ ॥४२१॥
प्रीतम दृग मिहचत प्रिया पानि-परस-सुखु पाइ।
जानि पिछानि अजान लौं नैंकु न होति जनाइ ॥४२२॥
देखौं जागत वैसियै सांकर लगी कपाट।
कित ह्वै आवत जात भजि को जानै किहिं बाट ॥४२३॥
फिरु उठाइ घूंघटु करत उझरत पट-गुझरौट।
सुख-मोटैं लूटीं ललन लखि ललना की लौट ॥४२४॥
करौ कुवत जगु कुटिलता तजौं न दीनदयाल।
दुखी होंहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल ॥४२५॥
निज करनी सकुचेहिं कत सकुचावत इहिं चाल।
मोहूं से नित-विमुख-त्यौं सनमुख रहि गोपाल ॥४२६॥
मोहिं तुम्हैं बाढ़ी बहस को जीतै जदुराज।
अपनैं अपनैं बिरद की दुहूं निबाहन लाज ॥४२७॥

दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन बिस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुन निकट रहि चंग-रंग भूपाल ॥४२८॥
कहै यहै स्रुति सुम्रित्यौ यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसकहीं पातक राजा रोग ॥४२९॥
जो सिर धरि महिमा मही लहियति राजा राइ।
प्रगटत जड़ता अपनियै सु मुकटु पहिरत पाइ ॥४३०॥
को कहि सकै बड़ेनु सौं लखै बड़ीयै भूल।
दीने दई गुलाब की इन डारनु वे फूल ॥४३१॥
समै समै सुंदर सबै रूपु कुरूपु न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ ॥४३२॥
या भव-पारावार कौं उलँघि पार को जाइ।
तिय-छबि-छाया ग्राहिनी ग्रहै बीचहीं आइ।४३३॥
दिन दस आदरु पाइकै करि लै आपु बखानु।
जौ लगि काग सराधपखु तौ लगि तौ सनमानु ॥४३४॥
भरतु प्यास पिंजरा-परयौ सुआ समै कैं फेर।
आदरु दै दै बोलियतु बाइसु बलि की बेर ॥४३५॥
वेई कर ब्यौरनि वहै ब्यौरो कौन बिचार।
जिनहीं उरझ्यौ मो हियौ तिनहीं सुरझे बार।।४३६॥
इहीं आस अटक्यौ रहतु अलि गुलाब कैं मूल।
ह्वैहैं फेरि बसंत ऋतु इन डारनु वे फूल ॥४३७॥
वे न इहाँ नागर बढ़ी जिन आदर तो आब।
फूल्यो अनफूल्यो भयौ गवँई गावँ गुलाव ॥४३८॥
चल्यो जाइ ह्याँ को करै हाथिनु कौ ब्यापार।
नहिँ जानतु इहिँ पुर बसैं धोबी ओड़ कुँभार ॥४३९॥
खरी लसति गोरैं गरैं धँसति पान की पीक।
मनौ गुलीबँद-लाल की लाल लाल दुति-लीक ॥४४०॥

पाइल पाइ लगी रहै लगौ अमौलिक लाल।
भोडर हूं की भासिहै बेंदी भामिनि-भाल ॥४४१॥
कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतौ उदोतु।
बंक बकारी देत ज्यौं दामु रुपैया होतु ॥४४२॥
रहि न सक्यौ कसु करि रह्यौ बस करि लीनौ मार।
भेदि दुसार कियौ हियौ तन-दुति भेदै सार ॥४४३॥
खल-बढ़ई बलु करि थके कटै न कुबत-कुठार।
आलबाल उर झालरी खरी प्रेम-तरु-डार ॥४४४॥
त्यौं बिजुरी मनु मेह आनि इहां बिरहा धरे।
आठौ जाम अछेह हग जु बरत बरसत रहत ॥४४५॥
कत बेकाज चलाइयति चतुराई की चाल।
कहे देति यह रावरे सब गुन निरगुन माल ॥४४६॥
उनकौ हितु उनहीं बनै कोऊ करौ अनेकु।
फिरतु काक गोलकु भयौ दुहूं देह ज्यौं एकु ॥४४७॥
बड़े बड़े छबि-छाक छकि छिगुनी-छोर छुटैं न।
रहै सुरँग रँग रँगि वहीं नह-दी महदी नैन ॥४४८॥
बाढ़तु तो उर उरज-भरु भरि तरुनई-विकास।
बोझनु सौतिनु कैं हियैं आवति रूंधि उसास ॥४४९॥
अलि इन लोइन-सरनु कौ खरौ बिषम संचारु।
लगैं लगायें एक से दुहूंनु करत सुमारु ॥४५०॥
मूड़ चढ़ाऐंऊ रहै परयौ पोठि कच-भारु।
रहै गरैं परि राखिबौ तऊ हियैं पर हारु ॥४५१॥
करतु जातु जेती कटनि बढ़ि रस-सरिता-सोतु।
आलबाल उर प्रेम-तरु तितौ तितौ दृढु होतु ॥४५२॥
राति द्यौस हौंसै रहै मानु न ठिकु ठहराइ।
जेतौ औगुनु ढूंढ़ियै गुनै हाथ परि जाइ ॥४५३॥

मनु न मनावन कौं करै देतु रुठाइ रुठाइ।
कौतुक-लाग्यौ प्यौ प्रिया-खिझहूं रिझवति जाइ ॥४५४॥
बिरह-बिपति-दिनु परत हीं तजे सुखनु सब अंग।
रहि अब लौं अब दुखौ भए चलाचलै जिय-संग ॥४५५॥
नयैं बिरह बढ़ती बिथा खरी बिकल जिय बाल।
बिलखी देखि परोसिन्यौ हरखि हँसी तिहिं काल ॥४५६॥
छतौ नेहु कागर हियैं भई लखाइ न टांकु।
बिरह-तचैं उघरजौ सु अब सेंहुड़ कैसो आंकु ॥४५७॥
फूलीफाली फूल सो फिरति जु बिमल-बिकास।
भोर तरैंया होहु ते चलत तोहिं पिय-पास ॥४५८॥
अरी खरी सटपट परी बिधु आधैं मग हेरि।
संग-लगैं मधुपनु लई भागनु गली अँधेरि ॥४५९॥
चलतु घैरु घर घर तऊ घरी न घर ठहराइ।
समुझि उहीं घर कौं चलै भूलि वहीं घर जाइ ॥४६०॥
इक भीजैं चहलैं परैं बूड़ैं बहैं हजार।
किते न औगुन जग करै बै-नै चढ़ती बार ॥४६१॥
गाढ़ैं ठाढ़ैं कुचनु ठिलि पिय-हिय को ठहराइ।
उकसौंहैं हीं तौ हियैं दई सबै उकसाइ ॥४६२॥
दीप-उजेरैं हूं पतिहिं हरत बसनु रति-काज।
रही लपटि छबि की छटनु नैंकौ छुटी न लाज ॥४६३॥
लखि दारत पिय-कर-कटकु बास-छुड़ावन-काज।
बरुनी-बन गाढ़ै दृगनु रही गुढ़ौ करि लाज ॥४६४॥
सकुचि सुरत-आरंभ हीं बिछुरी लाज लजाइ।
ढरकि ढार ढुरि ढिग भई ढीठि ढिठाई आइ ॥४६५॥
सकुचि सरकि पिय-निकट तैं मुलकि कछुक तनु तोरि।
कर आंचर की ओट करि जमुहानी मुँहु मोरि ॥४६६॥

देह लग्यौ ढिग गेहपति तऊ नेहु निरबाहि।
नीची अँखियनु हीं इतै गई कनखियनु चाहि ॥४६७॥

मार्‌यौ मनुहारिनु भरी गार्‌यौ खरी मिठाहिँ।
वाकौ अति अनखाहटौ मुसकाहट बिनु नाहिँ ॥४६८॥

नाचि अचानक हीं उठे बिनु पावस बन मोर।
जानति हौं नंदित करी यह दिसि नंद-किसोर ॥४६९॥

मैं यह तोहीं मैं लखी भगति अपूरब बाल।
लहि प्रसाद-माला जु भौ तनु कदंब की माल ॥४७०॥

जाकैं एकाएक हूं जग ब्यौसाइ न कोइ।
सो निदाघ फूलै फरै आकु डहडहौ होइ ॥४७१॥

बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौंहनु हँसै दैन कहैं नटि जाइ ॥४७२॥

रही लटू ह्वै लाल हौं लखि वह बाल अनूप।
कितौ मिठास दयौ दई इतै सलोनैं रूप ॥४७३॥

नहिं पावसु ऋतुराजु यह तजि तरवर चित-भूल।
अपतु भऐं बिनु पाइहै क्यौं नव दल फल फूल ॥४७४॥

वन बाटनु पिक बटपरा लखि बिरहिनु मत मैं न।
कुहौ कुहौ कहि कहि उठैं करि करि राते नैन ॥४७५॥

दिसि दिसि कुसुमित देखियत उपबन बिपिन समाज।
मनहुँ बियोगिनु कौं कियौ सर-पंजर ऋतुराज ॥४७६॥

टटकी धोई धोवती चटकीली मुख-जोति।
लसति रसोई कै बगर जगरमगर दुति होति ॥४७७॥

सोहति धोती सेत मैं कनक-बरन-तन बाल।
सारद-बारद-बीजुरी-भा रद कीजति लाल ॥४७८॥

बहु धनु लै अहसानु कै पारौ देत सराहि।
वैद-बधू हँसि भेद सौं रही नाह-मुँह चाहि ॥४७९॥

रह्यौ गुही बेनी लखे गुहिबे के त्यौनार।
लागे नीर चुचान जे नीठि सुकाए बार ॥४८०॥
मीत न नीति गलीतु ह्वै जौ धरियै धनु जोरि।
खाऐं खरचैं जौ जुरै तौ जोरियै करोरि ॥४८१॥
दुरैं न निघटघट्यौ दियैं ए रावरी कुचाल।
बिषु सी लागति है बुरी हँसी खिसी की लाल ॥४८२॥
छाले परिबे कैं डरनु सकै न हाथ छुवाइ।
झझकत हियैं गुलाब कैं झँवा झँवैयत पाइ ॥४८३॥
तिय-तरसौंहैं मुनि किए करि सरसौंहैं नेह।
धर-परसौंहैं ह्वै रहे झर-बरसौंहैं मेह ॥४८४॥
घन-घेरा छुटि गौ हरषि चली चहूं दिसि राह।
कियौ सुचैनौ आइ जगु सरद-सूर-नरनाह ॥४८५॥
पावस-घन-अँधियार महि रह्यौ भेदु नहिं आनु।
रात द्यौस जान्यौ परतु लखि चकई चकवानु ॥४८६॥
अरुन सरोरुह कर चरन दृग खंजन मुख चंद।
समै आइ सुंदरि सरद काहि न करति अनंद ॥४८७॥
नाहिंन ए पावक प्रबल लुवैं चलैं चहुँ पास।
मानहु बिरह बसंत कैं ग्रीषम लेत उसास ॥४८८॥
कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगतु तपोबन सौ कियौ दीरघ दाघ निदाघ ॥४८९॥
पग पग मग अगमन परत चरन अरुन दुति झूलि।
ठौर ठौर लखियत उठे दुपहरिया से फूलि ॥४९०॥
नीच हियैं हुलसे रहैं गहे गेंद के पोत।
ज्यौं ज्यौं माथैं मारियत त्यौं त्यौं ऊंचे होत ॥४९१॥
ज्यौं ज्यौं बढ़ति बिभावरी त्यौं त्यौं बढ़त अनंत।
ओक ओक सब लोक-सुख कोक-सोक हेमंत ॥४९२॥

रह्यौ मोहु मिलनौ रह्यौ यौं कहि गहैं मरोर।
उत दै सखिहिं उराहनौ इत चितई मो ओर ॥४६३॥
नहिँ हरि लौं हियरा धरौं नहिँ हर लौं अरधंग।
एकत ही करि राखियै अंग अंग प्रति अंग ॥४६४॥
कियौ सबै जगु काम बस जीते जिते अजेइ।
कुसुम-सरहिं सर धनुष कर अगहनु गहन न देइ ॥४६५॥
छकि रसाल-सौरभ सने मधुर माधुरी-गंध।
ठौर ठौर झौंरत झँपत भौंर-झौंर मधु-अंध ॥ ४६६ ॥
मिलि बिहरत बिछुरत मरत दंपति अति रति-लीन।
नूतन बिधि हेमंत सबु जगतु जुराफा कीन ॥४६७॥
पल सोहैं पगि पीक-रँग छल सोहैं सब बैन।
बल-सौहैं कत कीजियत ए अलसौंहैं नैन ॥४६८॥
कंत लपटइयतु मो गरैं सो न जु ही निसि सैन।
जिहिं चंपक-बरनी किए गुल्लाला-रँग नैन ॥४६६॥
नैंक उते उठि बैठियै कहा रहे गहि गेहु।
छुटी जाति नह-दी छिनकु महदी सूकन देहु ॥५००॥
लटुवा लौं प्रभु कर गहैं निगुनी गुन लपटाइ।
वहै गुनी-कर तैं छुटैं निगुनीयै ह्वै जाइ ॥५०१॥
है हिय रहति हई छई नइ जुगती जग जोइ।
दीठिहिँ दीठि लगै दई देह दूबरी होइ ॥५०२॥
जज्यौं उझकि झांपति बदनु झुकति बिहँसि सतराइ।
तत्यौं गुलाल-मुठो झुठो झझकावत प्यौ जाइ ॥५०३॥
छिनकु छबीले लाल वह नहिं जौ लगि बतराति।
ऊख महूष पियूष की तौ लगि भूख न जाति ॥५०४॥
अँगुरिनु उचि भरु भीति दै उलमि चितै चख लोल।
रुचि सौं दुहूं दहूंनु के चूमे चारु कपोल ॥५०५॥

नागरि विविध विलास तजि बसी गवेंलिनु माँहि।
मूढ़नि मैं गनबी कि तू हूठ्यौ दै इठलाँहि ॥५०६॥
बिथुरयौ जावकु सौति-पग निरखि हँसी गहि गांसु।
सलज हँसौंहीं लखि लियौ आधी हँसी उसांसु ॥५०७॥
मो सौं मिलवति चातुरी तूं नहिं भानति भेउ।
कहे देत यह प्रगट हीं प्रगट्यो पूस पसेउ ॥५०८॥
सौंहैं हूं हेर्यौ न तैं केती धाई सौंह।
एहो क्यौं बैठी किए ऐंठी ग्वैंठी भौंह ॥५०९॥
ही औरै सी ह्वै गई टरी औधि कैं नाम।
दूजैं कै डारी खरी बौरी बौरैं आम ॥५१०॥
सही रँगीलैं रति-जगैं जगी पगी सुख चैन।
अलसौंहैं सौंहैं कियैं कहैं हँसौंहैं नैन ॥५११॥
कहा कुसुमु कह कौमुदी कितक आरसी जोति।
जाकी उजराई लखैं आँखि ऊजरी होति ॥५१२॥
पहिरत हीं गोरैं गरैं यौं दौरी दुति लाल।
मनौ परसि पुलकित भई बौलसिरी की माल ॥५१३॥
रस भिजए दोऊ दुहुनु तउ टिकि रहे टरैं न।
छबि सौं छिरकत प्रेम-रँगु भरि पिचकारी नैन ॥५१४॥
कारे बरन डरावने कत आवत इहिं गेह।
कै वा लखी सखी लखैं लगै थरथरी देह ॥५१५॥
कर के मीड़े कुसुम लौं गई बिरह कुम्हिलाइ।
सदा-समीपिनि सखिनु हूं नीठि पिछानी जाइ ॥५१६॥
चितवत जितवत हित हियैं कियैं तिरीछे नैन।
भीजैं तन दोऊ कँपैं क्यौं हूं जप निबरैं न ॥५१७॥
कियौ जु चिबुक उठाइ कै कंपित कर भरतार।
टेढ़ीयै टेढ़ो फिरति टेढ़ैं तिलक लिलार ॥५१८॥

भौ यह ऐसोई समौ जहां सुखद दुखु देत।
चैत-चांद की चांदनी डारति किए अचेत ॥५१९॥
कत कहियत दुखु देन कौं रचि रचि बचन अलीक।
सबै कहाउ रह्यौ लखैं लाल महावर-लीक ॥५२०॥
लोपे कोपे इंद्र लौं रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै गो गोपी गोपाल ॥५२१॥
ढोरी लाई सुनन की कहि गोरी मुसुकात।
थोरी थोरी सकुच सी भोरी भोरी बात ॥५२२॥
आज कछू औरै भए छए नए ठिक ठैन।
चित के हित के चुगल ए नित के होहिं न नैन। ५२३॥
छुटै न लाज न लालचौ प्यौ लखि नैहर-गेह।
सटपटात लोचन खरे भरे सकोच सनेह ॥५२४॥
ह्यां तैं ह्वां ह्वां तैं इहां नेको धरति न धीर।
निसि दिन डाढ़ी सी फिरति बाढ़ी गाढ़ी पीर ॥५२५॥
विरह-विकल बिनु हीं लिखी पाती दई पठाइ।
आंक-बिहूनीयौ सुचित सूनैं बांचत जाइ ॥५२६॥
समरस समर सकोच वस बिबस न ठिक ठहराइ।
फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति दुरि दुरि उझकति आइ ॥५२७॥
फिरत जु अटकत कटनि विनु रसिक सु रस न खियाल।
अनत अनत नित नित हितनु चित सकुचत कत लाल ॥५२८॥
अरैं परै न करै हियौ खरैं जरैं पर जार।
लावति घोरि गुलाव सौं मलै मिलै घनसार ॥५२९॥
दोऊ चोर-मिहीचनी खेलु न खेलि अघात।
दुरत हियैं लपटाइ कै छुवत हियैं लपटात ॥५३०॥
मिसि हीं मिसि आतप दुसह दई और बहराइ।
चले ललन मन भावतिहिं तन की छांह छिपाइ ॥५३१॥

लहलहाति तन तरुनई लचि लग लौं लफि जाइ।
लगैं लांक लोइन भरी लोइनु लेति लगाइ ॥५३२॥
रही अचल सी ह्वै मनौ लिखी चित्र की आहि।
तजैं लाज डरु लोक कौ कहौ बिलोकति काहि ॥५३३॥
पल न चलैं जकि सी रही थकि सी रही उसास।
अबहीं तनु रितयौ कहौ मनु पठयौ किहिं पास ॥५३४॥
मैं लै दयौ लयौ सु कर छुवत छिनकि गौ नीरु।
लाल तिहारौ अरगजा उर ह्वै लग्यौ अबीरु ॥५३५॥
चलौ चलैं छुटि जाइगौ हठु रावरैं सँकोच।
खरे चढ़ाए हे ति अब आए लोचन लोच ॥५३६॥
कहे जु बचन बियोगिनी बिरह-बिकल बिललाइ।
किए न को अँसुवा सहित सुवा ति बोल सुनाइ ॥५३७॥
छिप्यौ छबीलौ मुँहु लसै नीलै अंचर-चीर।
मनौ कलानिधि झलमलै कालिंदी कैं नीर ॥५३८॥
मानु तमासौ करि रही बिबस बारुनी सेइ।
झुकति हँसति हँसि हँसि झुकति झुकि झुकि हँसि हँसि देइ ॥५३९॥
सदन सदन के फिरन की सद न छुटै हरि-राइ।
रुचै तितै बिहरत फिरौ कत बिहरत उरु आइ ॥५४०॥
प्रलय-करन बरषन लगे जुरि जलधर इक साथ।
सुरपति-गरबु हर्‍यौ हरषि गिरिधर गिरि धरि हाथ ॥५४१॥
करे चाह सौं चुटकि कै खरैं उड़ौंहैं मैन।
लाज नवाऍं तरफरत करत खूँद सो नैन ॥५४२॥
ज्यौं ज्यौं आवति निकट निसि त्यौं त्यौं खरी उताल।
झमकि झमकि टहलैं करै लगी रहचटैं बाल ॥५४३॥
रही पैज कीनी जु मैं दीनी तुमहिं मिलाइ।
राखहु चंपकमाल लौं लाल हियैं लपटाइ ॥५४४॥

दोऊ चाह भरे कछू चाहत कह्यौ कहैं न।
नहिँ जाँचकु सुनि सूम लौं बाहिर निकसत बैन ॥५४५॥
सुभर भर्‌यौ तुव गुन कननु पक्‍यौ कपट कुचाल।
क्यौं धौं दार्‌यौ ज्यौं हियौ दरकतु नाहँन लाल ॥५४६॥
चितु दै देखि चकोर त्यौं तीजै भजै न भूख।
चिनगी चुगै अँगार की चुगै कि चंद-मयूख ॥५४७॥
तुहूं कहति हौं आपु हूं समुझति सबै सयानु।
लखि मोहनु जौ मनु रहै तौ मन राखौं मानु ॥५४८॥
धुरवा होहिँ न अलि उठै धुवां धरनि चहुँ कोद।
जारत आवत जगत कौं पावस प्रथम पयोद ॥५४९॥
नख-रुचि-चूरनु डारि कै ठगि लगाइ निज साथ।
रह्यौ राखि हठि लै गए हथाहथी मनु हाथ ॥५५०॥
चलत देत आभारु सुनि उहीं परोसिहिं नाह।
लसी तमासे की दृगनु हाँसी आँसुन माँह ॥५५१॥
सुरति न ताल न तान की उठ्यौ न सुरु ठहराइ।
एरी रागु बिगारि गौ बैरी बोलु सुनाइ ॥५५२॥
पजर्‌यौ आगि बियोग की वह्यौ बिलोचन नीर।
आठौं जाम हियौ रहै उड़्यौ उसास समीर ॥५५३॥
उरु उरुझ्यौ चितचोर सौं गुरु गुरुजन की लाज।
चढ़ैं हिंडोरैं सैं हियैं कियैं बनै गृह-काज ॥५५४॥
पट सौं पोंछि परी करौ खरी भयानक भेष।
नागिनि ह्वै लागति दृगनु नागबेलि-रँग-रेख ॥५५५॥
तो लखि मो मन जो लही सो गति कही न जाति।
ठोड़ी गाड़ गड़्यौ तऊ उड़्यौ रहै दिन राति ॥५५६॥
मैं लखि नारी-ज्ञानु करि राख्यौ निरधारु यह।
वहई रोग निदानु वहै बैदु औषद वहै ॥५५७॥

जो तिय तुम मन भावती राखी हियैं बसाइ।
मोहिं झुकावति दृगनु ह्वै वहई उझकति आइ ॥५५८॥
दोऊ अधिकाई भरे एकैं गौं गहराइ।
कौनु मनावै को मनै माने मन ठहराइ ॥५५९॥
उर लीनै अति चटपटी सुनि मुरली-धुनि धाइ।
हौं निकसी हुलसी सु तौ गौ हुलसी हिय लाइ ॥५६०॥
ब्रजबासिनु कौ उचित धनु जो धन रुचित न कोइ।
सु चित न आयौ सुचितई कहौ कहाँ तैं होइ ॥५६१॥
हठु न हठीली करि सकैं यह पावस ऋतु पाइ।
आन गाँठि घुटि जाइ त्यौं मान-गाँठि छुटि जाइ ॥५६२॥
तेऊ चिरजीवी अमर निधरक फिरौ कहाइ।
छिनु बिछुरैं जिनकी नहीं पावस आइ सिराइ ॥५६३॥
भेटत बनै न भावतौ चितु तरसतु अति प्यार।
धरति लगाइ लगाइ उर भूषन बसन हथ्यार ॥५६४॥
वाही दिन तैं ना मिट्यौ मानु कलह कौ मूलु।
भलैं पधारे पाहुने ह्वै गुड़हर कौ फूलु ॥५६५॥
मोहिं लजावत निलज ए हुलसि मिलत सब गात।
भानु-उदै की ओस लौं मानु न जानति जात ॥५६६॥
तो तन अवधि-अनूप रूपु लग्यौ सब जगत कौ।
मो दृग लागे रूप दृगनु लगी अति चटपटी ॥५६७॥
रहैं निगोड़े नैन डिगि गहैं न चेत अचेत।
हौं कसु कै रिस के करौं ये निसुके हँसि देत ॥५६८॥
मोहूं सौं बातनु लगैं लगी जीभ जिहिं नाइ।
सोई लै उर लाइयै लाल लागियतु पाइ ॥५६९॥
नावक-सर से लाइ कै तिलकु तरुनि इत ताँकि।
पावक-झर सी झमकि कै गई झरोखा झाँकि ॥५७०॥

सुख सौं बीती सब निसा मनु सोए मिलि साथ।
मूका मेलि गहे सु छिनु हाथ न छोड़े हाथ ॥५७१॥
बाम बांह फरकति मिलैं जौ हरि जीवनमूरि।
तौ तोहीं सौं भेटिहौं राखि दाहिनी दूरि ॥५७२॥
छुटे छुटावत जगत तैं सटकारे सुकुमार।
मनु बांधत बेनी बँधे नील छबीले बार ॥५७३॥
इहिं बसंत न खरी अरी गरम न सीतल बात।
कहि क्यौं झलके देखियत पुलक पसीजे गात ॥५७४॥
चित पितमारक-जोगु गनि भयौ भयैं सुत सोगु।
फिरि हुलस्यौ जिय जोइसी समुझैं जारज-जोगु ॥५७५॥
चमचमात चंचल नयन बिच घूंघट पट झीन।
मानहु सुरसरिता बिमल जल उछरत जुग मीन ॥५७६॥
रहि मुँहु फेरि कि हेरि इत हित समुहौ चितु नारि।
डीठि-परस उठि पीठि के पुलके कहैं पुकारि ॥५७७॥
बिछुरैं जिए सकोच इहिं बोलत बनत न बैन।
दोऊ दौरि लगे हियैं किए लजौंहैं नैन ॥५७८॥
मोहिं करत कत बावरी करैं दुराउ दुरैं न।
कहे देत रँग राति के रँग निचुरत से नैन ॥५७९॥
छिपैं छिपाकर छिति छुवैं तम ससिहरि न सँभारि।
हँसति हँसति चलि ससिमुखी मुख तैं आंचरु टारि ॥५८०॥
अपनैं अपनैं मत लगे बादि मचावत सोरु।
ज्यौं त्यौं सब कौं सेइबौ एकै नंद-किसोरु ॥५८१॥
लहि सूनैं घर करु गहत दिठादिठी की ईठि।
गड़ी सु चित नाहीं करति करि ललचौंहीं डीठि ॥५८२॥
पिय कैं ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि।
आपु आपु हीं आरसी लखि रीझति रिझवारि ॥५८३॥

बुरौ बुराई जौ तजै तौ चितु खरौ डरातु।
ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि गनैं लोग उतपातु ॥५८४॥
मरिबे को साहसु ककै बढ़ै बिरह की पीर।
दौरति ह्वै समुही ससी सरसिज सुरभि समीर ॥५८५॥
कब की ध्यान लगी लखौं यह घरु लगिहै काहि।
डरियतु भृंगी-कीट लौं मति वहई ह्वै जाइ ॥५८६॥
बिलखी लखै खरी खरी भरी अनख बैराग।
मृगनैनी सैनन भजै लखि बेनी के दाग ॥५८७॥
अनियारे दीरघ दृगनु किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरै कछू जिहिँ बस होत सुजान ॥५८८॥
झुकि झुकि झपकौंहैं पलनु फिरि फिरि जुरि जमुहाइ।
बींदि पिआगम नींद-मिसि दीं सब अली उठाइ ॥५८९॥
ओछे बड़े न ह्वै सकैं लगौ सतर ह्वै गैन।
दीरघ होहिँ न नैंक हूं फारि निहारैं नैन ॥५९०॥
गह्यौ अबोलौ बोलि प्यौ आपुहिँ पठै बसीठि।
दीठि चुराई दुहुनु की लखि सकुचौंहीं दीठि ॥५९१॥
दुख-हाइनु चरचा नहो आनन आनन आन।
लगी फिरैं ढूका दिए कानन कानन कान ॥५९२॥
हितु करि तुम पठयौ लगैं वा बिजना की बाइ।
टली तपति तन की तऊ चली पसीना न्हाइ ॥५९३॥
ध्यान आनि ढिग प्रानपति रहति मुदित दिन राति।
पलकु कँपति पुलकित पलकु पलकु पसीजति जाति ॥५९४॥
सकै सताइ न तमु बिरहु निसि दिन सरस सनेह।
रहै वहै लागी दृगनु दीप-सिखा सी देह ॥५९५॥
बिरह जरी लखि जीगननु कह्यौ न उहि कै बार।
अरी आउ भजि भीतरी बरसत आजु अँगार ॥५९६॥

फिरि घर कौं नूतन पथिक चले चकित चित भागि।
फूल्यौ देखि पलासु बन समुही समुझि दवागि ॥५९७॥

गड़ी कुटुम की भीर मैं रही बैठि दै पीठि।
तऊ पलकु परि जाति इत सलज हँसौंहीं डीठि ॥५९८॥

नाउँ सुनत हीं ह्वै गयौ तनु औरै मनु और।
दबै नहीं चित चढ़ि रह्यौ अबै चढ़ाऐं त्यौर ॥५९९॥

दुसह सौति-सालैं सु हिय गनति न नाह-बियाह।
धरे रूप गुन कौ गरबु फिरै अछेह उछाह ॥६००॥

डिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल।
कंपि किसोरी दरसि कै खरैं लजाने लाल ॥६०१॥

और सबै हरषी हँसतिं गावतिं भरी उछाह।
तुँहीं बहू बिलखी फिरै क्यौं देवर कैं ब्याह ॥६०२॥

बाल छबीली पियनु मैं बैठी आपु छिपाइ।
अरगट हीं पानूस सी परगट होति लखाइ ॥६०३॥

एरी यह तेरी दई क्यौं हूं प्रकृति न जाइ।
नेह भरै हिय राखियै तउ रूखियै लखाइ ॥६०४॥

इहिं काँटैं मो पाइ गड़ि लीनी मरति जिवाइ।
प्रीति जनावत भीति सौं मीति जु काढ़्यौ आइ ॥६०५॥

नांक चढ़ै सीबी करै जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूलि वहै गहै प्यौ कँकरीली गैल ॥६०६॥

नटि न सीस साबित भई लुटी सुखनु की मोट।
चुप करि ए चारी करति सारी परी सलोट ॥६०७॥

जिहिं भामिनि भूषनु रच्यौ चरन-महावर भाल।
उहीं मनौ अँखियाँ रँगीं ओठनु कैं रँग लाल ॥६०८॥

तूं मोहन-मन गड़ि रही गाढ़ी गड़नि गुवालि।
उठै सदा नटसाल ज्यौं सौतिनु कै उर सालि ॥६०९॥

लाज-लगाम न मानहीं नैना मो बस नाहिँ।
ए मुँहजोर तुरंग ज्यौं ऐंचत हूं चलि जाहिँ ॥६१०॥
कर-मुँदरी की आरसी प्रतिबिंबित प्यौ पाइ।
पीठि दियैं निधरक लखै इकटक डीठि लगाइ ॥६११॥
इती भीर हूं भेदि कै कित हूं ह्वै इत आइ।
फिरै डीठि जुरि डीठि सौं सब की डीठि बचाइ ॥६१२॥
लाई लाल बिलोकियै जिय की जीवन-मूलि।
रही भौन के कोन मैं सोनजुही सी फूलि ॥६१३॥
ओठु उँचै हांसी भरी दृग भौंहनु की चाल।
मो मनु कहा न पी लियौ पियत तमाकू लाल ॥६१४॥
जे तब होत दिखा दिखी भई अमी इक आंक।
दगैं तीरछी डीठि अब ह्वै बीछी कौ डांक ॥६१५॥
नैंकौ उहिँ न जुदी करी हरषि जु दी तुम माल।
उर तैं बासु छुट्यौ नहीं बास छुटैं हूं लाल ॥६१६॥
बिहँसि बुलाइ बिलोकि उत प्रौढ़ तिया रस घूमि।
पुलकि पसीजति पूत कौ पिय-चूम्यौ मुँहु चूमि ॥६१७॥
देख्यौ अनदेख्यौ कियैं अँगु अँगु सबै दिखाइ।
पैठति सी तन मैं सकुचि बैठी चितै लजाइ ॥६१८॥
पटु पांखै भखु कांकरै सपर परेई संग।
सुखी परेवा पुहुमि मैं एकै तुहीं बिहंग ॥६१९॥
अरे परेखौ को करै तुहीं बिलोकि बिचारि।
किहिँ नर किहिँ सर राखियै खरैं बढ़ैं परिपारि ॥६२०॥
तौ बलियै भलियै बनी नागर नंद-किसोर।
जौ तुम नीकै कै लख्यौ मो करनी की ओर ॥६२१॥
चाह भरीं अति रस भरीं बिरह भरीं सब बात।
कोरि सँदेसे दुहुनु के चले पौरि लौं जात ॥६२२॥

सुनि पग-धुनि चितई इतै न्हाति दियैं हीं पीठि।
चकी झुकी सकुची डरी हँसी लजी सी डीठि ॥६२३॥
कर लै सूंघि सराहि हूं रहे सबै गहि मौनु।
गंधी अंध गुलाब कौ गवईं गाहकु कौनु ॥६२४॥
मिलि चलि चलि मिलि मिलि चलत आंगन अथयौ भानु।
भयो मुहूरत भोर कौ पौरिहिँ प्रथमु मिलानु ॥६२५॥
पचरँग रँग बेंदी खरी उठै ऊगि मुख-जोति।
पहिरै चीर चिनौटिया चटक चौगुनी होति ॥६२६॥
हँसि ओठनु बिच करु उचै कियैं निचौहैं नैन।
खरैं अरैं प्रिय कैं प्रिया लगी बिरी मुख दैन ॥६२७॥
बारौं बलि तो दृगनु पर अलि खंजन मृग मीन।
आधी डीठि-चितौनि जिहिँ किए लाल आधीन ॥६२८॥
जात सयान अयान ह्वै वे ठग काहि ठगैं न।
को ललचाइ न लाल के लखि ललचौंहैं नैन ॥६२९॥
लखि लखि अँखियनु अधखुलिनु आंगु मोरि अँगिराइ।
आधिक उठि लेटति लटकि आलस-भरी जम्हाइ ॥६३०॥
प्रेमु अडोलु डुलै नहीं मुँह बोलैं अनखाइ।
चित उनकी मूरति बसी चितवनि माँहि लखाइ ॥६३१॥
नाक मोरि नाहीं ककै नारि निहोरैं लेइ।
छुवत ओठ पिय आंगुरिनु बिरी बदन प्यौ देइ ॥६३२॥
गिरै कंपि कछु कछु रहै कर पसीजि लपटाइ।
लैयौ मुठी गुलाल भरि छुटत झुठी ह्वै जाइ ॥६३३॥
देखत कछु कौतिगु इतै देखौ नैंक निहारि।
कब की इकटक डटि रही टटिया अँगुरिनु फारि ॥६३४॥
कर लै चूमि चढ़ाइ सिर उर लगाइ भुज भेटि।
लहि पाती पिय की लखति बांचति धरति समेटि ॥६३५॥

चकी जकी सी ह्वै रही बूझैं बोलति नीठि।
कहूं डीठि लागी लगी कै काहू की डीठि ॥६३६॥
भावरि अनभावरि भरे करौ कोरि बकवादु।
अपनी अपनी भांति कौ छुटै न सहजु सवादु ॥६३७॥
दूर्यौ खरे समीप कौ लेत मानि मन मोदु।
होत दुहुनु के दृगनु हीं बतरसु हँसी बिनोदु ॥६३८॥
मुखु उघारि पिउ लखि रहत रह्यौ न गौ मिस सैन।
फरके ओठ उठे पुलक गए उघरि जुरि नैन ॥६३९॥
पिय-मन रुचि ह्वैबौ कठिनु तन-रुचि होहु सिँगार।
लाखु करौ आंखि न बढ़ैं बढ़ैं बढ़ाऐं बार ॥६४०॥
मनमोहन सौं मोहु करि तूं घनस्यामु निहारि।
कुंजबिहारी सौं विहरि गिरधारी उर धारि ॥६४१॥
मैं मिसहा सोयौ समुझि मुँहु चूम्यौ ढिग जाइ।
हँस्यौ खिसानी गल गह्यौ रही गरैं लपटाइ ॥६४२॥
नीठि नीठि उठि बैठि हूं प्यौ प्यारी परभात।
दोऊ नींद भरैं खरैं गरैं लागि गिरि जात ॥६४३॥
तनक झूठ न सवादिली कौन बात परि जाइ।
तिय-मुख रति-आरंभ की नहिँ झूठियै मिठाइ ॥६४४॥
नहिँ अन्हाइ नहिँ जाइ घर चितु चिहुँट्यौ तकि तीर।
परसि फुरहरी लै फिरति बिहँसति धँसति न नीर ॥६४५॥
सटपटाति सैं ससिमुखी मुख घूंघट-पटु ढांकि।
पावक-झर सी झमकि कै गई झरोखा झांकि ॥६४६॥
ज्यौं कर त्यौं चिकुटी चलति ज्यौं चिकुटी त्यौं नारि।
छबि सौं गति सी लै चलति चातुर कातन-हारि ॥६४७॥
बुधि अनुमान प्रमान श्रुति किऐं नीठि ठहराइ।
सूछम कटि पर ब्रह्म की अलख लखी नहिँ जाइ ॥६४८॥

खिचैं मान अपराध हूं चलि गै बढ़ैं अचैन।
जुरत डीठि तजि रिस खिसी हँसे दुहुनु के नैन ॥६४६॥
रूप-सुधा-आसव छक्यौ आसव पियत बनै न।
प्यालैं ओठ प्रिया-बदन रह्यौ लगाऐं नैन ॥६५०॥
यौं दलमलियतु निरदई दई कुसुम सौ गातु।
करु धरि देखौ धरधरा उर कौ अजौं न जातु ॥६५१॥
किती न गोकुल कुलबधू किहिं न काहि सिख दीन।
कौनैं तजी न कुल-गली ह्वै मुरली-सुर-लीन ॥६५२॥
खलित बचन अधखुलित दृग ललित स्वेद-कन-जोति।
अरुन बदन छबि मदन की खरी छबीली होति ॥६५३॥
बहकि न इहिं बहिनापुली जब तब बीर बिनासु।
बचै न बड़ी सबील हूं चील-घोंसुवा मांसु ॥६५४॥
लहि रति-सुखु लगियै हियैं लखी लजौंहीं नीठि।
खुलति न मो मन बँधि रही वहै अधखुली डीठि ॥६५५॥
कियौ सयानी सखिनु सौं नहिँ सयानु यह भूल।
दुरै दुराई फूल लौं क्यौं पिय - आगम - फूल ॥६५६॥
आयौ मीतु बिदेस तैं काहू कह्यौ पुकारि।
सुनि हुलसीं बिहँसीं हँसीं दोऊ दुहुनु निहारि ॥६५७॥
जद्यपि सुंदर सुघर पुनि सगुनौ दीपक-देह।
तऊ प्रकासु करै तितौ भरियै जितैं सनेह ॥६५८॥
पलनु प्रगटि बरुनीनु बढ़ि नहिँ कपोल ठहरात।
अँसुवा परि छतिया छिनकु छनछनाइ छिपि जात ॥५६६॥
फिरि सुधि दै सुधि द्याइ प्यौ इहिँ निरदई निरास।
नई नई बहुरयौ दई दई उसासि उसास ॥६६०॥
समै पलट पलटै प्रकृति को न तजै निज चाल।
भौ अकरुन करुनाकरौ इहिँ कपूत कलिकाल ॥६६१॥

पार्यौ सोरु सुहाग कौ इनु बिनु हीं पिय-नेह।
उनदौंहीं अँखियां ककै कै अलसौंहीं देह ॥६६२॥
इन दुखिया अँखियानु कौं सुखु सिरज्यौई नांहि।
देखैं बनै न देखतै अनदेखैं अकुलांहि ॥६६३॥
लगी अनलगी सी जु बिधि करी खरी कटि खीन।
किए मनौ वैं हीं कसर कुच नितंब अति पीन ॥६६४॥
छिनकु उघारति छिनु छुवति राखति छिनकु छिपाइ।
सबु दिनु पिय-खंडित अधर दरपन देखत जाइ ॥६६५॥
मुँहु पखारि मुड़हरु भिजै सीस सजल कर छाइ।
मौरु उचै घूंटेनु तैं नारि सरोवर न्हाइ ॥६६६॥
कोरि जतन कोऊ करौ तन की तपनि न जाइ।
जौ लौं भीजे चीर लौं रहै न प्यौ लपटाइ ॥६६७॥
चटक न छांड़तु घटत हूं सज्जन-नेहु गँभीरु।
फीकौ परै न बरु फटै रँग्यौ चोल-रँग चीरु ॥६६८॥
दुसह बिरह दारुन दसा रहै न और उपाइ।
जात जात ज्यौं राखियतु प्यौ कौ नाउँ सुनाइ ॥६६९॥
फिरि फिरि दौरत देखियत निचले नैंक रहैं न।
ए कजरारे कौन पर करत कजाकी नैन ॥६७०॥
को छूट्यौ इहिं जाल परि कत कुरंग अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत त्यौं त्यौं उरझत जात ॥६७१॥
अब तजि नाउँ उपाव कौ आए पावस मास।
खेलु न रहिबौ खेम सौं केम-कुसुम की बास ॥६७२॥
लसै मुरासा तिय-स्रवन यौं मुकतनु दुति पाइ।
मानहु परस कपोल कैं रहे स्वेद-कन छाइ ॥६७३॥
मिलि परछांहीं जोन्ह सौं रहे दुहुनु के गात।
हरि राधा इक संग हीं चले गली महिं जात ॥६७४॥

बिधि बिधि कौन करै टरै नहीं परैं हूं पानु।
चितै कितै तै लै धरयौ इतौ इतैं तन मानु ॥६७५॥

मोर-चंद्रिका स्याम-सिर चढ़ि कत करति गुमानु।
लखिबी पाइनु पर लुठति सुनियतु राधा-मानु ॥६७६॥

चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ए वृषभानुजा वे हलधर के बीरु ॥६७७॥

औरै गति औरै बचन भयौ बदन-रँगु औरु।
द्यौसक तैं पिय-चित चढ़ी कहैं चढ़ैं हूं त्यौरु ॥६७८॥

बेंदी भाल तँबोल मुँह सीस सिलसिले बार।
दृग आंजे राजै खरी एई सहज सिँगार ॥६७९॥

अंग अंग प्रतिबिंब परि दरपन सैं सब गात।
दुहरे तिहरे चौहरे भूषन जाने जात ॥६८०॥

सघन कुंज छाया सुखद सीतल सुरभिसमीर।
मनु ह्वै जातु अजौं वहै उहि जमुना के तीर ॥६८१॥

मोहि भरोसौ रीझिहै उझकि झांकि इक बार।
रूप रिझावनहारु वह ए नैना रिझवार ॥६८२॥

भौंहनु त्रासति मुँह नटति आंखिनु सैं लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति करु इँची आगैं आवति जाति ॥६८३॥

रुक्यौ सांकरैं कुंज-मग करतु झांझि झकुरातु।
मंद मंद मारुत-तुरँगु खूंदतु आवतु जातु ॥६८४॥

जदपि लौंग ललितौ तऊ तूं न पहिरि इक आंक।
सदा सांक बढ़ियै रहै रहै चढ़ी सी नाक ॥६८५॥

बरजैं दूनी हठ चढ़ैं ना सकुचै न सकाइ।
टूटत कटि दुमची-मचक लचकि लचकि बचि जाइ ॥६८६॥

कर समेटि कच भुज उलटि खएं सीस-पटु टारि।
काकौ मनु बांधै न यह जूरौ-बांधनहारि ॥६८७॥

पूछै क्यौं रूखी परति सगिबगि गई सनेह।
मन मोहन-छवि पर कटी कहै कँट्यानी देह ॥६८८॥
सोहत ओढ़ैं पीतु पटु स्याम सलौनैं गात।
मनौ नीलमनि-सैल पर आतपु पर्यौ प्रभात ॥६८९॥
भाल लाल बेंदी ललन आखत रहे बिराजि।
इंदुकला कुज मैं बसी मनौ राहु-भय भाजि ॥६९०॥
अंग अंग छबि की लपट उपटति जाति अछेह।
खरी पातरीऊ तऊ लगै भरी सी देह ॥६९१॥
दृग थिरकौंहैं अधखुलैं देह थकौंहैं ढार।
सुरत सुखित सी देखियति दुखित गरभ कैं भार ॥६९२॥
बिहँसति सकुचति सी दिऐं कुच-आँचर बिच बांह।
भीजैं पट तट कौं चली न्हाइ सरोवर मांह ॥६९३॥
बरन बास सुकुमारता सब बिधि रही समाइ।
पँखुरी लगी गुलाब की गात न जानी जाइ ॥६९४॥
रंच न लखियति पहिरि यौं कंचन सैं तन बाल।
कुँभिलानैं जानी परै उर चंपक की माल ॥६९५॥
गोधन तूं हरष्यौ हियै घरियक लेहि पुजाइ।
समुझि परैगी सीस पर परत पसुनु के पाइ ॥६९६॥
मुहुँ धोवति एड़ी घसति हसति अनगवति तीर।
घसति न इंदीवर-नयनि कालिंदी कैं नीर ॥६९७॥
बढ़त निकसि कुच-कोर-रुचि कढ़त गौर भुजमूल।
मनु लुटि गौ लोटनु चढ़त चोटत ऊंचे फूल ॥६९८॥
अहे दहेंड़ी जिनि धरै जिनि तूं लेहि उतारि।
नीकैं ही छींकैं छुवै ऐसैंई रहि नारि ॥६९९॥
न्हाइ पहिरि पटु डटि कियौ बेंदी-मिसि परनामु।
दृग चलाइ घर कौं चली बिदा किए घनस्यामु ॥७००॥

ज्यौं ह्वै हौं त्यौं होउँगौ हौं हरि अपनी चाल।
हठु न करौ अति कठिनु है मो तारिबौ गोपाल ॥७०१॥

परसत पोंछत लखि रहतु लगि कपोल कैं ध्यान।
कर लै प्यौ पाटल बिमल प्यारी-पठए पान ॥७०२॥

बामा भामा कामिनी कहि बोलौ प्रानेस।
प्यारी कहत खिसात नहिँ पावस चलत बिदेस ॥७०३॥

उठि ठकु ठकु एतौ कहा पावस कैं अभिसार।
जानि परैगी देखियौ दामिनि घन-अँधियार ॥७०४॥

कैवा आवत इहिँ गली रहौं चलाइ चलैं न।
दरसन की साधै रहै सूधे रहैं न नैन ॥७०५॥

बेसरि-मोती धनि तुहीं को बूझै कुल-जाति।
पीवौ करि तिय-ओठ कौ रसु निधरक दिनराति ॥७०६॥

तिय-मुख लखि हीरा-जरी बेंदी बढ़ैं बिनोद।
सुत-सनेह मानौ लियौ बिधु पूरन बुधु गोद ॥७०७॥

गोरी गदकारी परैं हँसत कपोलनु गाड़।
कैसी लसति गवाँरि यह सुनकिरवा की आड़ ॥७०८॥

जौ लौं लखौं न कुल-कथा तौ लौं ठिक ठहराइ।
देखैं आवत देखि हीं क्यौं हूं रह्यौ न जाइ ॥७०९॥

सामां सेन सयान की सबै साहि कैं साथ।
बाहुबली जयसाहिजू फते तिहारैं हाथ ॥७१०॥

यौं दल काढ़े बलक तैं तैं जयसिंह भुवाल।
उदर अघासुर कैं परैं ज्यौं हरि गाइ गुवाल ॥७११॥

घर घर तुरकिनि हिंदुनी देतिँ असीस सराहि।
पतिनु राखि चादर चुरी तैं राखी जयसाहि ॥७१२॥

हुकुमु पाइ जयसाहि को हरि-राधिका-प्रसाद।
करी बिहारी सतसई भरी अनेक सवाद ॥७१३॥

(३) मतिराम-सतसई

मो मन-तम-तोमहिँ हरौ राधा कौ मुख-चंद।
बढ़ै जाहि लखि सिंधु लौं नँद-नंदन-आनंद॥ १॥
मंजु गुंज के हार उर मुकुट मोर-पर-पुंज।
कुंज बिहारी बिहरियै मेरैई मन-कुंज॥ २॥
रति-नायक सायक-सुमन सब जग जीतन-वार।
कुवलय - दल - सुकुमार तन मन - कुमार जय मार॥ ३॥
राधा मोहन - लाल कौ जाहि न भावत नेह।
परियौ मुठी हजार दस ताकी आँखिनि खेह॥ ४॥
नागरि-नैन कमान-सर करत न ऐसी पीर।
जैसी करत गँवारि के दृग धनुहीं के तीर॥ ५॥
तन रोचित रोचन लहै रंच न कंचन - गोतु।
पिया पिया बासौ दिया छिया छिया जग होतु॥ ६॥
सुत कौं सुनौ पुरान यौं लोगनि कह्यौ निहोरि।
चाहि चाह-जुत नाह-मुख मुसिक्यानी मुख मोरि॥ ७॥
कंत-चौक सीमंत की बैठी गांठि जुराइ।
पेखि परौसिन कौ पिया घूंघट मैं मुसिक्याइ॥ ८॥
गुरुजन दूजे ब्याह कौं प्रति दिन कहत रिसाइ।
पति की पति राखति बहू आपुनि बांझ कहाइ॥ ९॥
बरसा रितु बीतन लगी प्रति दिन सरद-उदोति।
लह लह जोति जुवार की अरु गँवारि की होति॥ १०॥
नए बिरह अँसुवानि कौ छिन छिन होत उदोत।
अँखियन लग्यौ अपार वह तन-पानिप कौ सोत॥ ११॥

नवल नेह मैं दुहुनि की लखी अपूरब बात।
ज्यौं सूखति सब देह है त्यौं पानिप अधिकात॥ १२॥
कत सजनी है अनमनी अँसुवा भरति ससंक।
बड़ें भाग नँदलाल सौं झूठ हुँ लगत कलंक॥ १३॥
औगुन बरनि उराहनौ ज्यौं ज्यौं ग्वालनि देहि।
त्यौं त्यौं हरि-तनु हेरि हँसि हरषति महरिहि येहि॥ १४॥
लगनि - लगे लोचन लखे जासौं मोहन लाल।
करि सनेह ता बाल सौं सिखैं सकल ब्रजबाल॥ १५॥
तेरी औरै भांति की दीप-सिखा सी देह।
ज्यौं ज्यौं दीपति जगमगै त्यौं त्यौं बाढ़त नेह॥ १६॥
पानिप मैं थरमीन कौ कहत सकल संसार।
दृग-मीननि कौं देखियत पानिप पारावार॥ १७॥
देखैं बानिक आजु की बारौं कोटि अनंग।
भलौ चल्यौ मिलि सांवरे अंग-रंग पट-रंग॥ १८॥
अबहीं सब तुम हेरतीं हँसि हँसि बातनि पागि।
मेर चितवत नैकुँहीं ब्रज मैं लागति आगि॥ १९॥
पगी प्रेम नँदलाल कैं भरन आपु जल जाइ।
घरी घरी घर के तरैं घरनि देति ढरकाइ॥ २०॥
लपटानी अति प्रेम सौं दै उर उरज उतंग।
घरी एक लगि छूटैं हूं रही लगी सी अंग॥ २१॥
नींद भूख अरु प्यास तजि करती हौ तन राख।
जलसाई बिन पूजिहैं क्या मन के अभिलाख॥ २२॥
जावक सी रागी पगनि हरित नगन अँगुरीन।
जावक सी रागी पगनि मनु कीनो परबीन॥ २३॥
प्रान पियारौ पग परयौ तू न लखति इहि ओर।
ऐसौ उरज कठोर तौ उचितै उर जु कठोर॥ २४॥

लचकौंहौ सौ लंक उर उचकौंहौ सौ ऐन।
बिहँसौहैं से बदन मैं लसत नचौहैं नैन ॥ २५ ॥
ज्यौं ज्यौं परसै लाल तन त्यौं त्यौं राखति गोइ।
नवल बधू लाजनि ललित इंद्रबधू सी होइ ॥ २६ ॥
नवल बधू के संग मैं अहितौ बात हिताति।
ताती सांसनि के लगैं छाती अति सियराति ॥ २७ ॥
सूखति है वह सुंदरी कनक-बेलि अभिराम।
वाकी तपनि मिटै जु रस बरसौ घन घनस्याम ॥ २८ ॥
नंदलाल कहियै कहा लह्यौ अपूरब हार।
गुन-बिहीन किंसुकनि कौ तिन मधि मुकुर सुधार ॥ २९ ॥
नैन बिसारे बान सौं चली बटाउहिं मारि।
बचन-सुधा रस सींचि कै वाहि जीव दै नारि ॥ ३० ॥
हन्यौ मोहिँ उहिँ नैन सौं नैनहिं कियौ सचेत।
काटि बहुरि बिष आपनौ ज्यौं बिषधर हरि लेत ॥ ३१ ॥
तेरी मुख-समता करी साहस करि निरसंक।
धूरि परी अरबिंद-मुख चंदहिँ लग्यौ कलंक ॥ ३२ ॥
खेलत मार सिकार है जो रे पास समेत।
नैन मृगनि सौं बांधि कै नैन-मृगनि गहि लेत ॥ ३३ ॥
मृगपति जित्यौ सुलंक सौं मृगलच्छन मृदु हास।
मृग-मद जित्यौ सुनैन सौं मृग-मद जित्यौ सुबास ॥ ३४ ॥
छपै छपाएँ अब नहीं मैं पायौ लखि अंक।
नाहिँन जु पै कलंक तौ कैसैं बदन ससंक ॥ ३५ ॥
चौंसठि-कला-बिलास-जुत बदन-कलानिधि पेखि।
दुतिया की द्वैखै कला को दुति या की देखि ॥ ३६ ॥
पावै ऐपन ओप नहिँ कहै कुरंटक कौन।
सोनौ सोनजुही लहै ललित देह-दुति सौ न ॥ ३७ ॥

तौ मैं अनमिष नैनता किए लाल बस ऐन।
अनमिष नैन सुनैन ए निरखत अनमिष नैन ॥ ३८ ॥
नारि नैन के नीर कौ नीरधि बढ़ै अपार।
जारै जौ न बियोग के बड़वानल की झार ॥ ३९ ॥
जात-रूप रूपहिँ लखत बांधत प्रभु-मन ऐन।
निपट निहारे निलज ए लोन-हरामी नैन ॥ ४० ॥
रोस न करि जौ तजि चल्यौ जानि अँगार गँवार।
छिति पालनि की माल मैं तैहीं लाल सिँगार ॥ ४१ ॥
कहा भयौ मतिराम हिय जौ पहिरी नँदलाल।
लाल मोल पावै नहीं लाल गुंज की माल ॥ ४२ ॥
गुन औगुन कौ तनकऊ प्रभु नहिँ करत बिचार।
केतकि कुसुम न आदरत हर सिर धरत कपार ॥ ४३ ॥
भाल लाल बेंदी दिए उठे प्रात अलसात।
लोनी लाजनि गड़ि गईं लखैं लोग मुसकात ॥ ४४ ॥
जौतैं पहिरै सुंदरी सो दुति अधिक उदोतु।
तेरे सुबरन रूप तैं रूपौ सुबरन होतु ॥ ४५ ॥
भजे अँध्यारी रैन मैं भयो मनोरथ काज।
पूरे पूरब पुन्य तें परयो परावन आज ॥ ४६ ॥
निज बल कौं परिमान तुम तारे पतित बिसाल।
कहा भयौ जु न हौं तरतु तुम खिस्याहु गोपाल ॥ ४७ ॥
कर धरि काँधैं कंत के चलै लटपटी चाल।
थकित करति पथिकनि सबनि थकित पंथ मैं बाल ॥ ४८ ॥
नैंकु न थाकत पंथ मैं चलैं जु कोस हजार।
चंचल लोयनि-हयनि पर भए जात असवार ॥ ४९ ॥
ललित नाक नथुनी बनी चुनी रह्यौ लचकाइ।
गज-मुकतनि के बिच परयो कहौ कहां मन जाइ ॥ ५० ॥

झूठैं हौं ब्रज मैं लग्यौ मोहिँ कलंक गोपाल।
सपनैं हूँ कबहूँ हिऐं लगे न तुम नँदलाल॥५१॥
चंद-किरनि लगि बाल-तन उठै आगि अति जागि।
परस करत दिनकर किरनि ज्यौं दरपन मैं आगि॥५२॥
दसा सुनैं निज बाग की लाल मानिहौ झूठ।
पावस रितुहूं मैं लखैं डाढ़े ठाढ़े ठूठ॥५३॥
तरनि-किरनि झलमलित मुख लाली ललित कपोल।
प्यास लगावति दृगनि मैं प्यासी बाल अमोल॥५४॥
लाल तिहारे संग मैं खेलै खेल बलाइ।
मूंदत मेरे नैन हौ करनि कपूर लगाइ॥५५॥
खेलत चोरमिहीचिनी परे प्रेम पहिचानि।
जानी प्रगटत परसतैं तिय-लोचन पिय-पानि॥५६॥
खेलत खेल सखीनि मैं उतै धूरि अवगाह।
पलक न लागति एक पल इतै नाह-मुख-चाह॥५७॥
निडर बटोही बाट मैं ऊखनि लेत उखारि।
अरे गरीब गँवार तैं काहै करत उजार॥५८॥
मेरैं सिर कैसी लगै यौं कहि बांधी पाग।
सुंदरि रति बिपरीत मैं प्रगट कियौ अनुराग॥५९॥
नहिँ सुहाइ परगोत है गोत आपनौ पाइ।
बिदा करी कुल-कानि की नैननि नयन बसाइ॥६०॥
ग्रीषम हू रितु मैं भरी दुहू कूल पैराइ।
खारे जल की बहति है नदी तिहारैं गांइ॥६१॥
दियो हिए सौं मिलि चल्यौ नैन चले मिलि नैन।
इतै उतै मारी फिरै लाज कहू ठहरै न॥६२॥
बसिबे कौं निज सरवरनि सुर जाकौं ललचाहिँ।
सो मराल बक-ताल मैं पैठन पावत नाहिँ॥६३॥

अद्भुत या धन कौ तिमिर मो पै कह्यौ न जाइ।
ज्यौं ज्यौं मनिगन जगमगत त्यौं त्यौं अति अधिकाइ॥ ६४॥
कहा दवागिनि कैं पियैं कहा धरैं गिरि धीर।
बिरहानल मैं बरत जो बूड़त लोचन-नीर॥ ६५॥
सतरौंहीं भौंहनि नहीं दुरै दुराऐं नेह।
होति नाम नँदलाल कौं नीपमाल सी देह॥ ६६॥
सूखी सुता पटेल की सूखी ऊखनि पेखि।
अब फूली फूली फिरै फूली अरहरि देखि॥ ६७॥
चपल चित्त वेध्यौ निरखि याही डरनि दुराति।
नैन बान वै देखि कै लाज नहीं ठहराति॥ ६८॥
भलौ एक मनहीं गह्यौ सज्जनता कौ नेम।
दृगनि मारि घाइल कियौ तासौं बांधत प्रेम॥ ६९॥
कोटि कोटि मतिराम कहि जतन करौ सब कोइ।
फाटे मन अरु दूध मैं नेह न कबहूं होइ॥ ७०॥
पानि पियूख-पयोधि मैं नैंक नहीं ठहराइ।
नैन-मीन इक पलक मैं मन-जहाज गिलि जाइ॥ ७१॥
पानिप-पूर-पयोधि मैं रूप-जाल बगराइ।
नैन-मीन ए नागरिन बरबट बांधत आइ॥ ७२॥
कंटक काढ़त लाल की चंचल चाहनि चाहि।
चरन खैंचि लीनौ तिया हँसि झूठैं करि आहि॥ ७३॥
सुबरन बरन सुबास जुत सरस दलनि सुकुमार।
ऐसे चंपक कौं तजै तैंहीं भौंर गँवार॥ ७४॥
देखैं हूँ बिन देखि हू लगी रहै अति आस।
कैसैं हूँ न बुझाति है ज्यौं सपने की प्यास॥ ७५॥
सखिनि दियौ उपदेस जो नहिँ कैसेहुँ ठहरात।
नवल-नेह-चित-चीकनैं ढरकि तोय लौं जात॥ ७६॥

सौंहनि करि पाइनि परयौ तेरैं रिसै उदोति।
नाह-नेह तो मैं लह्यौ तूं कत रूखी होति॥ ७७॥
भौंहनि संग चढ़ाइयौ कर गहि चाप मनोज।
नाह-नेह साथहिँ बढ़्यौ लोचन लाज उरोज॥ ७८॥
लई जु पीर जनाइ कै करि मिलाप की आस।
मन उड़ात अजहूं रहै ऊंची उहीं उसास॥ ७९॥
नैन मिली मन हूं मिली बातनि मिली बनाइ।
क्यौं न मिलावति देह सौं देह रहचटौ लाइ॥ ८०॥
लाज छुटी गेह्यौ छुट्यौ सुख सौं छुट्यौ सनेह।
सखि कहियौ वा निठुर सौं रही छूटिबैं देह॥ ८१॥
दुरजन वे निंदत रहैं गुरुजन गारी देत।
सहियत बोल कुबोल ए लाल तिहारैं हेत॥ ८२॥
लगे लूत के जाल ए लखौ लसत इहिँ भौन।
जानि कुहू-रजनी मनौ कियौ नखत-गन गौन॥ ८३॥
मेरे तन के रोम ए मेरे नहीं निदान।
उठि आदर अगमन करैं करौं कौन बिधि मान॥ ८४॥
अनमिख लोचन बाल के यातैं नंद-कुमार।
गई मीच परसत पजरि बिरहानल की झार॥ ८५॥
जलदि निकासी रैनि दिन रहै नैन-झर लागि।
बाढ़ति जाति बियोग की बिद्युत की सी आगि॥ ८६॥
मौर नूत नूतन रहैं देखि धरैं क्यों धीर।
मनौ मनोज महीप कै तीरनि भरे तुनीर॥ ८७॥
दियै देह-दीपति गयौ दीप बयारि बुझाइ।
अंचल-ओट किए तऊं चली नवेली जाइ॥ ८८॥
ऐसे बोलौ बोल बलि जैसे याहि सुहात।
बेलि नवेली कनक की झुकति तनकही बात॥ ८९॥

सारी लटकति पाट की बिलसति फुँदी लिलार।
मनौं रूप-मंदिर बँधे सुंदर बंदनवार ॥ ९० ॥
पति आयौ परदेस तैं हिय हुलसी अति बाम।
टूक टूक कंचुक कियौ करि कमनैती काम ॥ ९१ ॥
लाल तिहारे नैन-सर अचिरज करत अचूक।
बिन कंचुक छेदे करैं छाती छेदि छटूक ॥ ९२ ॥
पिय के दरपन मैं निरखि प्रतिबिंबित निज रूप।
बाल लाल-मुख लखि भई रिस भरि भौंह अनूप ॥ ९३ ॥
और बात कहियै कहा सुनियै नंद-कुमार।
बिरह आंच सांचे भए याके अंग अँगार ॥ ९४ ॥
ललित लाइ की लपट सी चली जाति जहँ नारि।
बिरह-अगिनि की झार तहँ जारि जात झौंकारि ॥ ९५ ॥
जहां तहां रितुराज मैं फूले किंसुक-जाल।
मानहु मान मतंग कैं अंकुस लोहू लाल ॥ ९६ ॥
बितैं सिसिर रितु-रजनि कैं मधुर प्रताप-सुबैन।
जाग्यौ मैन-महीप सुनि पिक बंदिनि कैं बैन ॥ ९७ ॥
होत दसगुनो अंकु है हियैं एक ज्यौं बिंदु।
दियैं डिठौना यौं बढ़ी आनन-आभा-इंदु ॥ ९८ ॥
तूं सोने की सटक है रही और गुन पागि।
बिनु लागैं पीरहिँ करै हरै पीर उर लागि ॥ ९९ ॥
मान जनावति सबनि कौं मन न मान कौ ठाट।
बाल मनावन कौं लखै लाल तिहारी बाट ॥१००॥
नखतावलि नख इंदु मुख तनु-दुति दीप अनूप।
होति निसा नँदलाल मन लखैं तिहारौ रूप ॥१०१॥
इतै उतै सचकित चितै चलै डुलावति बांह।
डीठि बचाइ सखीनि की छिन इक निरखति छांह ॥१०२॥

साँझ समै वा छैल की छलनि कही नहिँ जाइ।
बिनु डर बन डरपाइ कै लियौ मोहि उर लाइ ॥१०३॥

राति अँध्यारी झझकि झुकि झूँठैं हीं भय भागि।
ललित बाल मन भावती रही लाल-उर लागि ॥१०४॥

हम सौं तुम सौं लाल इत नैननि हीं कौ नेह।
उत प्यारी की दृगनि कैं सलिल सींचियति देह ॥१०५॥

जैतवार इहि मार सौं अकस करौ जिन चेत।
भामिनि-भौंह कमान कैं गोसा हीं गहि लेत ॥१०६॥

सुधा-मधुर तेरौ अधर सुंदरु सुमन-सुगंधु।
पीव-जीव कौ बंधु यह बंधु जीव कौ बंधु ॥१०७॥

पग जराइ की गूजरी नथुनी मुकुट सुढार।
घने घेर कौ घांघरौ घूंघरवारे बार ॥१०८॥

वंदन तिलक लिलार मैं ऐसी मुख-छबि होति।
रूप भौन मैं जगमगै मनौ दीप की ज्योति ॥१०९॥

मन तें नैननि कौं भली नैननि तें मन-काज।
द्वै दीपक की छांह लौं बीच बिलानी लाज ॥११०॥

पीन पयोधर-भार यह धरे छीन कटि-ऐन।
छोटे मुख मैं लसत हैं बड़े बड़े ए नैन ॥१११॥

तेरे मुख की मधुरई जो चाखी चख चाहि।
लगत जलज जंबीर सौ चंद चूक सौ ताहि ॥११२॥

तेरी मुख-छबि लखि लखैं होत चंदता तूल।
कंद खाइ कै चूसियै ज्यौं रूसे कौ फूल ॥११३॥

निज नीचे कौं निरखि नित ऊंचे होत उरोज।
यातें मुख के होत हैं नीचे नैन-सरोज ॥११४॥

ज्यौं ज्यौं ऊंचे होत हैं उरज बाल कैं ऐन।
सब सौतिनि कैं होत हैं त्यौं त्यौं नीचे नैन ॥११५॥

जब जब चढ़ति अटानि दिन चंद-मुखी यह बाम।
तब तब घर घर धरत हैं दीप बारि सब गाम ॥११६॥
छुवत परस्पर हेरि कैं राधा नंद-किसोर।
सत्र मैं वैई होत हैं चोर-मिहिचिनी चोर ॥११७॥
खंजन कमल चकोर अलि जिते मीन-मृग-ऐन।
क्यों न बड़ाई कौं लहैं तरुनि तिहारे नैन ॥११८॥
अँसुवा बरुनी ह्वै चलत जल चादर कैं रूप।
अमल कपोलनि की झलक झलकति दीप अनूप ॥११९॥
कुच तैं श्रम-जलधार चलि मिली रुमावलि-रंग।
मनौ मेरु की तरहटी भयौ सितासित-संग ॥१२०॥
सरदागम पिय-आगमन जगी जोति मुख-इंदु।
अंग अमल पानिप भयौ फूले दृग-अरविंद ॥१२१॥
मो मन सुक लौं उड़ि गयौ अब क्यौं हूं न पत्याइ।
बसि मोहन बनमाल मैं रह्यौ बनाउ बनाइ ॥१२२॥
बेंदी ललित मसूर की लसति सलौनैं भाल।
मनौ इंदु कैं अंक मैं इंदु-कामिनी-लाल ॥१२३॥
फिरि फिरि आवति द्वार तैं झूंठैं झुकि अलसाति।
लेति आगि तितनी बहू जो बीचहीं बुझाति ॥१२४॥
अमल कपोलनि मैं अरुन झलकति पीक अनूप।
उठी मनौ रबि-किरन सौं आगि लपट कैं रूप ॥१२५॥
बार बार वा गेह सौं बारि बारि लै जाति।
काहे तैं बिन बातहीं बाती आजु बुझाति ॥१२६॥
नीठि बीठि आगैं परै पैग परयौ जनु फंद।
को न होति गति मंद है लखि तेरी गति मंद ॥१२७॥
नैन जोरि मुख मोरि हँसि नैसुक नेह जनाइ।
आगि लैन आई हियैं मेरे गई लगाइ ॥१२८॥

सुबरन बेलि तमाल सौं घन सौं दामिनि-देह।
तूं राजति घनस्याम सौं राधे सरसि सनेह ॥१२९॥
है सांचौ कैधौं भई मेरीई मति भंग।
आजु बदलि काहैं गयौ बदलि बसन तन रंग ॥१३०॥
सुरत-अंत सुख-स्रमित ह्वै भोर भऐं निसि जागि।
उर सोई लागी अज्यौं जो उर सोई लागि ॥१३१॥
दूनी मुख मैं छवि भई वेसरि धरी उतारि।
हरि कैं उर सोई लगी करत रसोई नारि ॥१३२॥
जब तें मिलि बरुनीनि सौं अच्छिनि की छबि अच्छ।
जनु अवनीप अनंग कैं तरल तुरंग सपच्छ ॥१३३॥
लसत बूंद अँसुवानि कैं बरुनिनि छोर उदार।
दृग-तुरंग-फूलनि मनौ झलकत मुकुत सुढार ॥१३४॥
मान हुँ मैं बिनु भूषननि धरति अधिक छबि अंग।
नैन तरंगनि तैं भए तरल तुरंग सुरंग ॥१३५॥
ज्यों ज्यौं छवि अधिकाति है नवल बाल-मुख-इंदु।
त्यौं त्यौं मुरझत सौति कौ अमल वदन-अरविंदु ॥१३६॥
अंजन-जुत अँसुवानि की धार धसति जुग नैन।
मनौ डोर मखतूल कौं बांधे खंजन मैन ॥१३७॥
बिंदु लसत अँसुवानि कैं लाल भए दृग-कोर।
देखैं बिन पिय चंद-मुख चिनगी चुगत चकोर ॥१३८॥
सपने मैं लालन चलत लखि रोई अकुलाइ।
जागत हूं पिय हिय लगी हिलकी तऊ न जाइ ॥१३९॥
पिय-आगम सुनि बाल-तन बाढ़े हरख-बिलास।
प्रथम बूंद बारिद उठै ज्यौं बसुमती-सुबास ॥१४०॥
याके मन मैं जानियत कोऊ लग्यौ सभाग।
कहत गान बिन अरथ कौ प्रगट अरथ अनुराग ॥१४१॥

छाप तरौना नगनि की सोवत लगी कपोल।
मनौ मदन की मोहिनी मूंगा-माल अमोल ॥१४२॥
मोकौं तुम क्यौं कहति हौ लै गोपाल कौ नाउँ।
रिस-मिस नेह गोविंद कौ कहति फिरै सब गाउँ ॥१४३॥
नर नारी सब जपत हैं घर घर हरि कौ नाउँ।
मेरैं मन धोखैं कढ़त परति गाज व्रज-गाउँ ॥१४४॥
पगनि परे पिय-पीठि पर परे नैन-जल टूटि।
सींची मनौ सनेह-रस गयौ मान-मन छूटि ॥१४५॥
पगनि पर्‌यौ लखि प्रानपति दियौ मुगध तिय रोइ।
कज्जल-छल मन-मलिनता ल्याए अँसुवा धोइ ॥१४६॥
इंदु-उपल उर बाल कौ कठिन मान में होत।
देखैं बिनु कैसैं द्रवै तो मुख-इंदु-उदोत ॥१४७॥
भौंह बीच तिल तनक सै सोहत सुखमा संचि।
दियौ डिठौना रीझि सौं मानहु बिरचि बिरंचि ॥१४८॥
चलत लाल कैं मैं कियौ सजनी हियौ पखानु।
कहा करौं दरकत नहीं भरैं बियोग-कृसानु ॥१४९॥
चढ़ी रहै प्रति दिन अटा सखि सनेह सुख सोरि।
लोचन पियत पियूष हैं प्रेसि पान पिय पौरि ॥१५०॥
कहा छपावति मुगध तिय बोलि चातुरी बोल।
कहे देति अनुराग की कीरति कलित कपोल ॥१५१॥
बरसाइति बर कौं चहूं बहु विधि पूजि बिसेखि।
पूरत हौं मनकाम कौं काम-तरोवर लेखि ॥१५२॥
सहज बात बूझत कछुक बिहँसि नवाई ग्रीव।
तरुन हियैं तरुनी दई नई नेह की नीव ॥१५३॥
करति मनोरथ बहु बहू दृगनि अनंद उदोत।
उठंत सीतलायत सखी सीतल हीतल होत ॥१५४॥

दसा हीन राधा भई सुनियै नंदकिसोर।
दीपसिखा लौं देखियति बारि-बयारि-झकोर ॥१५५॥
निसि दिन निंदति नंद है छिन-छिन सासु रिसाति।
प्रथम भए सुत कों बहू अंकहिं लेत लजाति ॥१५६॥
कुसुग-खेत कौ खेद सब कहत तिहारौ रूप।
ऊंचौ लेति उसास तन श्रम-जल-कलित अनूप ॥१५७॥
बांचत कुसुम कुसुंभ के रहे लागि अभिराम।
कंटक छत छतियां छपै क्यों न छपावति बाम ॥१५८॥
जानति हौं वा खेत सों आई बीनि कुसुंभ।
कलित कंटकनि काय कुल कुसुम-कलित कुच-कुंभ ॥१५९॥
जानति खेत कुसुंभ कैं तेरी प्रीति अमोल।
चुभत करनि कंटकनि तौ कत कंटकित कपोल ॥१६०॥
अब तेरौ बसिबौ इहां नाहिंन उचित मराल।
सकल सूखि पानिप गयौ भयौ पंकमय ताल ॥१६१॥
तिय-पग पिय-अँगुरी परस भो उर आनँद-खानि।
कह्यौ सु परि पिय-पीठि पर सुधा-सीत अँसुवानि ॥१६२॥
बिछुरत रोवत दुहुँनि को सखि यह बात लखै न।
दुख-अँसुवा पिय-नैन मैं सुख-अँसुवा तिय-नैन ॥१६३॥
पग परिबौ मुरि बैठिबौ यहै तिहारे काज।
तुम्हैं मनावन कौ नई इहै मान की लाज ॥१६४॥
परसत हीं याकौं भई तन कदंब की माल।
रह्यौ कहा परि पगनि मैं क्यौं न अंक भरि लाल ॥१६५॥
नील-- नलिन - दल - सेज मैं परी सुतनु - तनु - देह।
लसै कसौटी मैं मनौ तनक कनक की रेह ॥१६६॥
सुख नीचैं ऊंचैं लसैं तरुनि-उरज उर मांह।
मनौ मुदित मन कोक जुग पाइ कोकनद-छांह ॥१६७॥

पिय अपराध अनेक निज आँखिनिहूं लखि पाइ।
तिय इकंत हूं कंत सौं मानौ करत लजाइ ॥१६८॥
तो रसु रात्यौ रैनि दिन सुख - समुद्र कैं सोत।
याही तैं सौतीनि के ये अनखहु छव होत ॥१६९॥
निसि नियराति निहारियत इन कौं मुख-अरविंदु।
सखी एक यह देखियत तेरोई मुख - इंदु ॥१७०॥
उजियारी मुख - इंदु की परी उरोजनि आनि।
कहा निहारति मुगध तिय पुनि पुनि चंदन जानि ॥१७१॥
दुबराई गिरि जातु है कंकन कामिनि बांह।
उपदेसन ठहरात ज्यौं दुरजन के उर माह ॥१७२॥
मन दै सुनियै लाल यह तनक तरुनि की बात।
अँसुवा - उड़गन गिरत हैं होन चहत उतपात ॥१७३॥
कहति आपु हीं बैन है ऊख पियूष रसाल।
कित बोलति कोकिल अली पुनि पुनि बूझति बाल ॥१७४॥
जिन मैं निसि दिन बसतु हौ तुम घन सुंदर नाह।
क्यौं न चलै तिय दृगनि तैं बहुल बाह परबाह ॥१७५॥
जलद स्याम निज नाम यह करत कहा इत आपु।
जा उर नैंकु बसौ करौ ताही कैं तन तापु ॥१७६॥
दिसि दिसि बिगसति मालती निसि नियराति निहारि।
ऐसैं अतनु-अराम मैं भ्रमि भ्रमि भौंर निबारि ॥१७७॥
नारि - नैन कौ नीर अरु तरुनी तीर उतंग।
बढ़त सरित परवार कैं गिरत एकही संग ॥१७८॥
बाल सखिनि की सीख तैं मान न जानति ठानि।
पिय बिनु आगमन भौन मैं बैठी भौंहनि तानि ॥१७९॥
परिकर पंकज के किए नैननि राज - बिलास।
मैन मित्र मंत्री मिरग खंजन किए खवास ॥१८०॥

लाल जनायौ मैं तुम्हैं लागन चहत कलंक।
चंद-मुखी वह चंद सों अव चितवति निरसंक ॥१८१॥
वड़े हमारे दृग कहौ तुम कहि सकौ सु मैं न।
पिय नैननि भीतर सदा वसत तिहारे नैन ॥१८२॥
आभा तरिवन लाल की परी कपोलनि आनि।
कहा छपावति चतुर तिय कंत-दंत-छद जानि ॥१८३॥
गहि कोमलता सरसता सोनौ होइ सुगंधु।
तअहूं कवहुँ न होइ सखि तेरे तन कौ वंधु ॥१८४॥
दुख दीनै हूं सुजन जन छोड़त निज न सुदेस।
अगरु डारियत आगि मैं करत सुवासित केस ॥१८५॥
तू राखो करि लाल है निज उर मैं वनमाल।
तैं राख्यौ करि लाल है कंठमाल कौ लाल ॥१८६॥
जगै जोन्ह की जोति यौं छपै जलद की छांह।
मनौ छीर-निधि की उठै लहरि छहरि छिति मांह ॥१८७॥
अभिनव जोवन-जोति सौं जगमग होत विलास।
तिन कैं तन पानिप वढ़ैं पिय कैं नैननि प्यास ॥१८८॥
वासन कौ पानिप घस्यौ तन पानिप की आस।
मिटी पथिक की वदन तैं लगी दृगनि मैं प्यास ॥१८९॥
दिनकर-तनया - स्याम - जल द्वै घट भरे वनाइ।
ताकैं भर गरुए भए हरएं धारति पाइ ॥१९०॥
चलत सुन्यौ परदेस कौं हियरौ रह्यौ न ठौर।
लै मालिनि मीतहिं दियौ नव रसाल कौ मौर ॥१९१॥
प्यौ राख्यौ परदेस तैं करामात अधिकाइ।
कनक-कलस पानिप भरे सगुन उरोज दिखाइ ॥१९२॥
सुन्यौ माइकै तैं वहू आयौ वाभन कंत।
कुसल पूछिवे के मिसनि लीनौ वोलि इकंत ॥१९३॥

श्रम-जल-कन झलकन लगे अलकनि कलित कपोल।
पलकनि रस छलकन लगे ललकन लोचन लोल ॥१९४॥
गौने की चरचा चलैं दिए तहां चित बाल।
अधमूंदी अँखियानि सौं गूंदी गूंदति माल ॥१९५॥
सखी तिहारे नेह के होत घरहिँ घर घेर।
पीतम - तन - पानिप परैं फैलि रह्यौ चहुँ फेर ॥१९६॥
तूं न करति मन - भावती रति बिपरीत विचार।
ह्वैहै सूधे सुरत में बिछियन कौ झनकार ॥१९७॥
कहति सांच तूं भावती मेरैं चित अति प्रीति।
किए बिना बिपरीत रति हियैं न होति प्रतीति ॥१९८॥
दान - बीर - रस के सखी तेरे नैन निकेत।
दान-समै मन दान है हँसि उछाह कहि देत ॥१९९॥
रोस किऐं कैसौ करैं सखी तिहारे नैन।
सहज मधुर मुसिक्यानि में हनत मानुसनि ऐन ॥२००॥
चंचलता तो चखनि की कही न जाइ बनाइ।
जिन्हैं चाहि चंचल महा चितौ अचल ह्वै जाइ ॥२०१॥
तेरैं अंगनि लाल छबि मुख-मयंक सुख माहिँ।
त्यौं चकोर लखि लाल कौ क्यौं न बाल ललचाहि ॥२०२॥
नंदलाल के रूप पर रीझि परी इक बारि।
अधमूंदी अँखियनि दई मूंदी प्रीति उघारि ॥२०३॥
कोंपनि तैं किसलय जबै होहिँ कलिनि तैं कौल।
तब चलाइयै चलन की चरचा नायक नौल ॥२०४॥
कामिनि दामिनि-दमक-सी बरनि कौन पै जाइ।
डीठिन हौं ठहराइयै डीठि नहीं ठहराइ ॥२०५॥
रात्यौ दिन जागति रहै अगनि लगनि की मोहिँ।
मो हिय मैं तूं बसतु है आंच न पहुँचति तोहिँ ॥२०६॥

चलन लगी अँखियां चपल चलन लगी लखि छाहँ।
तन जोबन आवन लग्यौ मन भावन मन माहँ ॥२०७॥
बिनु देखैं दुख के चलैं देखैं सुख के जाहिँ।
कहौ लाल इन दृगनि के अँसुवा क्यौं ठहराहिँ ॥२०८॥
बरसाइति मैं सखिनि हठि साजे अंग सिँगार।
पघिले कंचन-आभरन लगनि अगनि की झार ॥२०९॥
डारि तिहारे नेह मैं अगनि लगनि की मैन।
तलफत याके मीन से लाल सलोने नैन ॥२१०॥
कौन बसत हैं कौन मैं यौं कछु कही परै न।
पिय - नैननि तिय - नैन हैं तिय - नैननि पिय - नैन ॥२११॥
लाल बाल कौ उर कठिन उरजहिँ निपट कठोर।
ताहि छेदि तीछन गई तेरी ईछन - कोर ॥२१२॥
बाल निहाल भई लखैं ललित लाल मुख-इंदु।
मनु पियूष बरषा भई नैननि झलके बिंदु ॥२१३॥
तिय-हिय लौं पहुँचै कहाँ सीख सखिनि की बात।
बिरह-आंच जरि जाति है श्रौन-समीपहिँ जात ॥२१४॥
भुज फुलेल लावत सखी कर चलाइ मुसिक्याइ।
गाढ़ै गह्यौ उरोज पिय बिँहसी भौंह चढ़ाइ ॥२१५॥
इंद्र - जाल कंदर्प कौ कहै कहा मतिराम।
आगि - लपट बरषा करै ताप धरै घनस्याम ॥२१६॥
दुहूं अटारिनि मैं सखी लखी अपूरब बात।
उतै इंदु मुरझातु है इतै कंज कुम्हिलात ॥२१७॥
जोबन मैं अँखियां सखी परीं लाज के जेल।
लरिकाई के सौंरियत चोर मिहिचिनी-खेल ॥२१८॥
राधा के दृग खेल मैं मूंदे नंदकुमार।
करनि लगी दृग कोर सो भई छेदि उर-पार ॥२१९॥

मैं मूंदति हौं खेल मैं तेरे लोचन बाल।
मेरे कर अति प्यार सौं चूमत हैं नँदलाल ॥२२०॥
सुरभि-लोभ-जुत अलिनि मैं सहत अधर कौ रंग।
मनौ तरनि तनया मिली बानी गंग-तरंग ॥२२१॥
सेत बसन मैं यौं लगैं उघरत गोरे गात।
उहैं आगि ऊपर लगी ज्यौं बिभूति अवदात ॥२२२॥
रूप-जाल नँदलाल कैं परि करि बहुरि छुटैं न।
खंजरीट मृग मीन से ब्रज-बनितनि के नैन ॥२२३॥
जिन कैं सील समान है सांचे होत सु-मित्र।
नेही चंचल चखनि कौ चाह्यौ चंचल चित्त ॥२२४॥
खिन मैं प्रफुलित होत हैं खिन मैं मुकुलित होत।
इंदीबर अरबिंद से चख मुख इंदु-उदोत ॥२२५॥
ग्रीषम हूं रबि तपत हूं रहै जलद जनु भूमि।
तपी दृगनि सीतल करै गांउ निकट की भूमि ॥२२६॥
नैन निवासी सौं चल्यौ मन परदेस अनेह।
लखति आज अनभावती सपने नैननि गेह ॥२२७॥
आजुहिं चल्यौ बिदेस कौं तजि सनेह चित-चोर।
लखति भरैं घर भावती जमी घास चहुँ ओर ॥२२८॥
खरी दूबरी सेज मैं लखी निहारहि नीठि।
परसति नहीं डराति सी जरिबे कैं डर डीठि ॥२२९॥
लखति एकटक सांवरी मूरति कौ मुख-इंदु।
रीझ-भार अँखियां थकीं झलके स्रम-जल-बिंदु ॥२३०॥
चलौ लाल उहिं बाग मैं लखौ अपूरब केलि।
आलबाल घन-समय कौ ग्रीषम ऋतु की बेलि ॥२३१॥
कहा कहौं वाकी दसा निठुर कही नहिं जाइ।
अंग अँगारिन कौ मिटै रंग आंच अधिकाइ ॥२३२॥

बड़वानल से जे लगे अलिनि करत उपचार।
मिलत लगे घनस्याम-उर ते अँग ज्यौं घनसार ॥२३३॥
गई छबीली छूटि वह छल सौं नेह जनाइ।
कहौ कौन के लै छला आए लाल छलाइ ॥२३४॥
पियराई तन मैं परी पानिप रह्यौ न देह।
राख्यौ नंदकुँवार तैं करि कुँवार कौ मेह ॥२३५॥
बांधी दृग-डोरानि सौं घेरी बरुनि समाज।
गई तऊ नैनानि तैं निकसि नटी सी लाज ॥२३६॥
लोक-लाज कुल-कानि सौं गरब करौ जिन बीर।
ऐन मैन ब्रजराज के नैन मैन के तीर ॥२३७॥
क्यौं न फिरै सब जगत मैं करत दिगबिजै मार।
जाके दृग-सावंत-सर कुवलय जीतनवार ॥२३८॥
नेह छुटैं हूं रावरौ यातैं जीवति बाल।
चलत सहज हूं गलिनि मैं तमहिँ बिलोकति लाल ॥२३९॥
केलि भौन की देहरी करी बाल छबि नौल।
काम-कलित हिय कौल है लाज ललित दृग-कौल ॥२४०॥
नित उठि ऐसे रूप सौं आवत हौ ब्रजराज।
सो तुम सौं पिय रिस करै ताके हियैं न लाज ॥२४१॥
तुम सौं कीजै मान क्यौं ब्रजनायक मन-रंज।
बात कहत यौं बाल के भरि आए दृग-कंज ॥२४२॥
ढीली बाँहनि सौं मिली बोली कछू न बोल।
सुंदरि मान जनाइ यौं लियौ प्रानपति मोल ॥२४३॥
आवत उठि आदर कियौ बोले बोल रसाल।
बांह गहत नँदलाल कैं भए बाल दृग लाल ॥२४४॥
बेनी गूंदत एक की नंदलाल चित-लोल।
चूमत प्यारी बाल के बिहँसत गोल कपोल ॥२४५॥

मन भावन सौं व्याह की सुनी सलोनी बात।
अँगिया मैं न उरोज अरु आनँद उर न समात ॥२४६॥
लखि जैहैं ब्रज गांउ की सबै चतुर हैं बाल।
छतिया नख-छत देहु जिन छैल छबीले लाल ॥२४७॥
भलौ न केतकि रूख यह सजनी गेह-अराम।
बसन फटैं कंटक लगैं निसि दिन आठौ जाम ॥२४८॥
जु पै द्वार मैं बसत तौ पथिक जाइ जिन सोइ।
मेरौ घर सूनौ इहां चोरनि कौ डर होइ ॥२४९॥
ग्रीषम रितु मैं देखि कै बन मैं लगी दँवारि।
बड़ी अपूरब बात है मन मैं जरति गँवारि ॥२५०॥
जरद भई तिय हरद-रँग बाढ़ैं दरद अतूल।
लागे बीतन संगहीं कुसुम-फूल हिय-फूल ॥२५१॥
छरी सपल्लव लाल-कर लखि तमाल की बाल।
मुरझानी हिय साल धरि फूल-माल सी हाल ॥२५२॥
लसति गूजरी ऊजरी बिलसत लाल इजार।
हिए हजारनि के हरै बैठी बाल बजार ॥२५३॥
कहत तिहारौ रूप सखि यह पैंड़े कौ खेद।
ऊंचो लेति उसास है कलित सकल तन स्वेद ॥२५४॥
लै आवति हौं सेज इत तेरी प्रीति गोपाल।
बात कहौ अंकहिँ भरौ दुख न दीजियै लाल ॥२५५॥
कैसे ल्याऊं हौं इहां है जित नंदकिसोर।
दिन हूं मैं मुख चंद कौं लखि ललचात चकोर ॥२५६॥
औरनि कैं पाइनि दियौ नाइनि जावक लाल।
प्रानपियारी रावरी पेखति तुम्हैं गोपाल ॥२५७॥
पिय-बियोग तिय-दृग-जलधि जल-तरंग अधिकाइ।
बरुनि-मूल-बेला परसि बहुरौं बहुरि बिलाइ ॥२५८॥

धन कैं हेत बिलासिनी रहै सवारे वेस।
जो तिय के हिय मैं बसै सो पिय बसै बिदेस ॥२५९॥
कोऊ करौ अनेक यह तजौ न टेक गोपाल।
निसि औरनि कैं पग परौ दिन औरनि कैं लाल ॥२६०॥
कंत कहा सौंहनि करौ जानि परयौ अब नेह।
दैन कह्यौ सो बिनु दियैं जान न पैहौ गेह ॥२६१॥
आई गौने कालिह हीं सीख्यौ कहाँ सयान।
अबहीं तें रूसन लगी अबहीं तें पछितान ॥२६२॥
जोरत हूं सजनी बिपति तोरत बिपति-समाज।
नेह कियौ बिनु काज पुनि तेह कियौ बिनु काज ॥२६३॥
लख्यौ न कंत सहेट मैं लखत नखत कौ राइ।
अमल कमल सौ बाल कौ बदन गयौ कुम्हिलाइ ॥२६४॥
तिय कौं मिल्यौ न प्रान-पति सजल-जलद-तन मैन।
सजल जलद लखि कै भए सजल जलद से नैन ॥२६५॥
बिहँसि केलि-मंदिर गई लख्यौ न जिय कौ नाथ।
नैन करनि तैं जल वलय गिरे एकही साथ ॥२६६॥
साहस करि कुंजनि गई लख्यौ न नंदकिसोर।
दीप-सिखा सी थरहरी लगैं बयारि झकोर ॥२६७॥
कत न कंत आयौ सखी लाजनि बूझि सकै न।
नवल बाल पलिका परी पलक न लागत नैन ॥२६८॥
पीउ न आयौ नींद कौं मूंदे लोचन बाल।
पलक उघारे पलक मैं आयौ होइ न लाल ॥२६९॥
कंत-बाट लखि गेह कौं कुंज देहरी आइ।
ऐहैं पीव बिचारि यौं नारि फेरि फिरि जाइ ॥२७०॥
लखत बाट पिय की तिया अँगरानी अँग मोरि।
पौढ़ि रही पलिका मनौ डारी मदन मरोरि ॥२७१॥

डीठि बचाइ सखीनि की केलि - भौन में जाइ ।
पौढ़ि परै पलिका पलक पलक अनँग अधिकाइ ॥२७२॥

सब सिँगार सुंदरि सजैं बैठी सेज बिछाइ ।
भयौ द्रौपदी कौ बसन बासर नहिँन बिहाइ ॥२७३॥

मन भावन के मिलन कौ करै मनोरथ नारि ।
धरै पौन के सामुहैं दिया भौन को वारि ॥२७४॥

पिय-मिलाप कैं हेत तिय सजे उछाह सिँगार ।
दृग कमलनि के द्वार मैं बांधे वंदनवार ॥२७५॥

अली चली नवलाहिँ लै पिय पैं साजि सिँगार ।
ज्यौं मतंग अँड़दार कौं लिए जात गँड़दार ॥२७६॥

जोवन - मद गज - मंद - गति चली बाल पति - गेह ।
पगनि लाज - आंदू परी चढ्यौ महावत नेह ॥२७७॥

सजि सिँगार सेजहिँ चली बाल जहां पति - प्रान ।
चढ़त अटारी की सिढ़ी भई कोस परिमान ॥२७८॥

स्याम बसन मैं स्याम निसि दुरै न तिय की देह ।
पहुँचाई चहुँ ओर घिरि भौंर - भीर पिय-गेह ॥२७९॥

मलिन करी छबि जोन्ह की तन छबि सौं बलि जांउ ।
क्यौं जैहै पिय पैं सखी लखि जैहै सब गांउ ॥२८०॥

जेठ मास की दुपहरी चली बाल पिय-भौन ।
आगि - लपट तीखन लुवैं भए मलय के पौन ॥२८१॥

नागरि सकल सिँगार करि चली प्रान - पिय पास ।
बाढ़ि चली बिहँसनि मनौ बारिधि-बीचि-बिलास ॥२८२॥

क्यौं सहिहै सुकुमारि वह पहिलौ बिरह गोपाल ।
जब वाकैं चित हित भयौ चलन लगे तब लाल ॥२८३॥

अबहीं तौ मिलि मोहिँ सखि चलत आजु ब्रजराज ।
अँसुवनि राखति रोकि तिय जियहि निकासति लाज ॥२८४॥

फूली नागरि कमलिनी उड़ि गए मित्र मलिंद।
आयौ मित्र बिदेस तैं भयौ सुदिन आनंद ॥२८५॥
भरीं भाँवरैं सांवरैं रास - रसिक रस - जान।
तिनहीं मैं मनु भँवतु है ह्वै बौंडर कौ पान ॥२८६॥
चलत पीय परदेस कौं बरजि सकौं नहिं तोहिँ।
लै ऐहै आभरन जौ जीवत पैहै मोहिँ ॥२८७॥
सजनी मेरौ मन परयौ मन - मोहन कै अंग।
छटपटात छूटत न ज्यौं पंजर परयौ पतंग ॥२८८॥
जा दिन तैं गौनौ भयौ आई बाल रसाल।
ता दिन तैं बिरहिनि भई उर मोतिन की माल ॥२८९॥
सपनैं हूं मन - भावतौ करत नहीं अपराध।
मेरे मन ही मैं सखी रही मान की साध ॥२९०॥
दच्छिन नायक एक तुम नंदलाल ब्रजचंद।
फुलए ब्रज - बनितानि के दृग - इंदीवर - बृंद ॥२९१॥
निलज नैन कुलटानि के आइ बसे ब्रजराज।
हिए तिहारे तैं सकल मारि निकारी लाज ॥२९२॥
पियत रहौ अधरानि कौ रसु अति मधुर अमोल।
तातैं मीठे कढ़त हैं बाल बदन तैं बोल ॥२९३॥
लोचन पानिप ढिग सजी लट बंसी परबीन।
मो मन बार - बिलासिनी फासु लियौ मनु मीन ॥२९४॥
या मैं कौन सयान है मोहनलाल सुजान।
आपु करत अपराध हूं आपुहिँ पुनि अभिमान ॥२९५॥
पिय-मिलाप कौ सुख सखी कह्यौ न जाइ अनूप।
सौतुक तौ सपनौ भयौ सपनौ सौंतुक रूप ॥२९६॥
चित्रहुँ मैं सखि जाहि लखि होत अनंत अनंद।
नैन कुवलयनि सौं कहूं सो लखिबौ ब्रजचंद ॥२९७॥

वाकौ मन लीने लला बोलो बोल रसाल।
झुकति तनक वह बात में कनक बेलि वह बाल ॥२९८॥

सखी सलोनी देह मैं सजे सिँगार अनेक।
कजरारी अँखियानि में भूल्यो काजर एक ॥२९९॥

सरद चांदनी में प्रगट होत न तिय के अंग।
सुनत मंजु मंजीर धव सखी न छोड़ति संग ॥३००॥

सखी सरस रस-केलि में आपुनयौ सुधि जाति।
कंत संग हेमंत की छिन सी राति सिराति ॥३०१॥

लाल तिहारे बिरह तैं माघ मास की राति।
करि कपूर की कीच सो सखी समीपहिँ जाति ॥३०२॥

कहा जनावति चातुरी कहा चढ़ावति भौंह।
अधनिकरे अखरानि सौं सौहैं कीजै सौंह ॥३०३॥

लाल निहारैं नैकुहीं नैन तिहारे तीर।
वाके कंचुक - कलित कुच कांपत जोध अधीर ॥३०४॥

बाल रही इकटक निरखि लाल - बदन अरबिंदु।
सियराई अँखियनि परी पियराई मुख - इंदु ॥३०५॥

पिय समीप कौ सुख सखी कहै देत ये बैन।
अबल अंग निरबल बचन नवल सुनींदे नैन ॥३०६॥

खाटे फल आगैं धरे सखी आनि मुसिक्याइ।
पिय समीप प्यारी प्रिया रही सकुचि सिर नाइ ॥३०७॥

पिय आयौ परदेस तैं बहुतै द्यौस बिताइ।
सखी उठाई पास तैं झूठें हीं जमुहाइ ॥३०८॥

पासे गर्भवती तिया सिथिल हाथ ढरकाइ।
हँसत लाल - लोचन लखैं लोचन रही नवाइ ॥३०९॥

ध्यान करत नँदलाल कौ नए नेह मैं बाम।
तनु बूड़त रँग पीत मैं मन बूड़त रँग स्याम ॥३१०॥

पिय आयौ परदेस तैं हिय मैं आयो प्रान।
मिलत बिरहिनी कैं भयौ छिन जनु जुग परिमान ॥३११॥
कहा भयौ मेरी हितू हौ तुम सखी अनेक।
सपनैं मिलवत नाथ कौं नींद आपनी एक ॥३१२॥
कंप प्रसेद बढ़ै चढ़ै भौंह मनोभव चाप।
अपने पिय सौं जानियत सपनैं करति मिलाप ॥३१३॥
प्यारी की मुसुक्यानि सी सरद-जोन्ह तूं है न।
वह नैननि सीतल करै तू कत जारति नैन ॥३१४॥
अली चली कहु कौन पैं बड़े कौन के भाग।
उलट्यौ कंचुक कुचनि पर कहे देत अनुराग ॥३१५॥
सकुचि न रहियै साँवरे सुनि गरवीले बोल।
चढ़ति भौंह विकसत नयन बिहँसत गोल कपोल ॥३१६॥
मनभावन कौं भावती भेंटति रति-उतकंठ।
बांही छुटै न कंठ तैं नाहीं छुटै न कंठ ॥३१७॥
बिरी अधर अंजन नयन मिहँदी पग अरु पानि।
तन कंचन के आभरन नीठि परत पहिचानि ॥३१८॥
कहा लाज कुल-कानि सौं लोक-लाज किन जाइ।
कुंजबिहारी कुंज मैं कहूं मिलैं मुसिकाइ ॥३१९॥
लखी अपूरब लाल मैं वाकी दशा बनाइ।
हियरैं है सुधि रावरी हियरौ गयौ हिराइ ॥३२०॥
सरद-चंद की चांदनी जारि डारि किन मोहि।
वा मुख की मुसिक्यानि सी क्यौं हूं कहौं न तोहिं ॥३२१॥
मोहिं रसाल की मंजरी क्यों न करी करतार।
सुंदर श्रौन समीप जौ राखै नंद-कुमार ॥३२२॥
बिकल लाल कौं हाल तूं क्यों न विलोकति आनि।
बोलि कोकिलनि सौं कहैं बोल तिहारे जानि ॥३२३॥

सुजस - ओज सौं साहु - सुत सिवा सूर - सिरदार ।
सरद चंद आतप कियौ सुचि आतप इक बार ॥३२४॥
पिसुन - बचन सज्जन चितै सकै न फोरि न फारि ।
कहा करै लगि तोय मैं तुपक तीर तरवारि ॥३२५॥
निहचै नखत निहारियत नथुनी - मुकत - प्रकास ।
कैसैं करि पावै कहौ नीच न नाक - निवास ॥३२६॥
खेत तिहारौ धान कौ यौं बूझत मुसिक्याइ ।
यहौ हमारौ है कह्यौ सघन ज्वारि दरसाइ ॥३२७॥
राखै भरि दुपहरि सखी सघन छांह मैं गोइ ।
सहै घाम को कार की जार खेत जुन होइ ॥३२८॥
भौंह - कमान कटाछ सर समर भूमि बिचलै न ।
लाज तजैं हूं दुहुँनि के सलज सुभट से नैन ॥३२९॥
अरुन बसन निकरी पहरि पावस मैं छविखानि ।
इंद्र - गोप सी गोपिका गोप - इंद्र लखि आनि ॥३३०॥
अति सुढार अति हीं बड़े पानिप भरे अनूप ।
नाक - मुकत नैनानि सौं होड़ परी इहिं रूप ॥३३१॥
कियौ और कौ सब कछू मान आपनौ लेइ ।
क्यौं न लहै संताप जौ भार आप सिर देइ ॥३३२॥
लीनी तो अँखियानि उन औ मुसिक्यानि रसाल ।
तुहूं लाल - लोचननि की लेहि लालसा बाल ॥३३३॥
सखी तिहारे दृगनि की मधुर मंद मुसिक्यानि ।
बसति रहै निसि द्यौस हूं अब उनकी अँखियानि ॥३३४॥
रूप-सदन मिलि तन-बदन रदन रुचिर-रुचि होति ।
दामिनि मैं बिधु-बिंब जनु बिधु मैं दामिनि-जोति ॥३३५॥
मो जीवन तू कहतु है ब्रज-जीवन तूं पीउ ।
जु पै जीव बिन जियत तौ धिग जीवन यह जीउ ॥३३६॥

प्रान निवासी तोहिँ तजि कब कौ कियौ उजार।
तूं अजहूं लौं बसतु है प्रान कहा सु बिचार ॥३३७॥
तुरत दीठि लगि जाइगी ह्वाँ बिलखी अति आनि।
अनखन दै कै कीजियै अनख भरी अँखियानि ॥३३८॥
विषमय किधौं पियूषमय तेरी मृदु मुसिक्यानि।
यहै मूरछित करति है यहै जियावति आनि ॥३३९॥
निज पग-सेवक समुझि करि करि उर तैं रिस दूरि।
तेरी मृदु मुसिक्यानि है मेरी जीवन-मूरि ॥३४०॥
लाल अमोलक लालची करत कोटि मनुहारि।
मंदिर आवत इंदिरा दै न किवार गँवारि ॥३४१॥
तरु ह्वै रह्यौ करार कौ अब करि कहा करार।
उर धरि नंद-कुमार कौ चरन-कमल सुकुमार ॥३४२॥
असन बरन बरनि न परै अमल अधर-दल माँझ।
कैधौं फूली दुपहरी कैधौं फूली सांझ ॥३४३॥
बाल बदन-प्रतिबिंब-बिधु बिंब रह्यौ तिहिँ संग।
ज्यौं रहत अब रैनि दिन तपन तपावत अंग ॥३४४॥
प्रगट दरप कंदरप कौ तेरौ अंग अनूप।
सुवौ लियौ नँदनंद जित सुंदर स्याम सरूप ॥३४५॥
रोमावली कृपान सौं मार्‌यौ सिवहि मनोज।
ताके भए स्वरूप द्वै सोहत बाल-उरोज ॥३४६॥
कुंद न पावत रदन रुचि कुंदन अंग-प्रकास।
चंद न पावत बदन-छबि चंदन अंग-सुबास ॥३४७॥
रूप-रासि वह लच्छ की तुला चढ़ी वह बाल।
तऊ न पावति रावरौ मिलन अमोलिक लाल ॥३४८॥
ललित मंद कल हंस गति मधुर मंद मुसिक्याति।
चली सारदा बिसद-रुचि सरद-चांदनी राति ॥३४९॥

मैं जानी ही मिलन तैं मिटिहै तन - संताप।
अब सजनी दूनौ चढ़यौ हतक मनोजहिं दाप ॥३५०॥
सांच मदनजित आजु तुम रंजन रसिक रसाल।
अनल-ज्वाल दृग देखियत लाल लाल रुचि माल ॥३५१॥
पाइन प्रेम जनाइ जिन परियै नंद - कुमार।
अनल-ज्वाल पग लगति है जावक-लील लिलार ॥३५२॥
रोस - भरी अँखियानि लखि लोगनि मैं अनखाइ।
हँसि इकंत लपटाइ कै एक रूप ह्वै जाइ ॥३५३॥
प्रीति द्वैज द्विजराज की कला कलप करि चित्र।
जगत लोक बंदित उदित बढ़त मित्र जो मित्र ॥३५४॥
अँखियनि उमँग अनंग की छुवत अंग अनखाइ।
प्रीतम-तन तावति तरुनि लाइ लगनि की लाइ ॥३५५॥
दिन दिन दुगुन बढ़ै न क्यौं लगनि-अगिनि की झार।
उनै उनै दृग दुहुँनि कै बरसत नेह अपार ॥३५६॥
लिखति बाल नख भूमि-तन लखत लाल-मुसिक्यानि।
लाज छुटी निसि जानियति लाज-भरी अँखियानि ॥३५७॥
चंचल निसि उदबसि रही करन प्रात बसि राज।
अरबिंदनि पै इंदिरा सुंदरि - नैननि लाज ॥३५८॥
बढ़त बढ़त बढ़ि जाइ पुनि घटत घटत घटि जाइ।
नाह रावरे नेह विधु - मंडल जितौ बनाइ ॥३५९॥
तलफत घाइनि जीव कौं कौन जियावत आनि।
जो न होति उन दृगनि मैं सुधा मधुर मुसिक्यानि ॥३६०॥
सोइ संग सुख जागि दुख लहि समुझौ निरधार।
छीन-पुन्य सुरलोक तैं लेत अवनि अवतार ॥३६१॥
तनु आगैं कौं चलतु है मन वाही मग लीन।
सलिल स्रोत मैं ज्यौं चपल चलत चढ़ाऊ मीन ॥३६२॥

प्रतिबिंबित तो बिंब मैं भूतल भयौ कलंक।
निज निरमलता दोष यह मन मैं मानि मयंक ॥३६३॥

तिहिं पुरान नव-द्वै पढ़े जिहिं जानी यह बात।
जो पुरान सो नव सदा नव पुरान ह्वै जात ॥३६४॥

सपने मैं सपनौ समुझि होति दूरि ज्यौं संक।
संक छोड़ि संसार की रही जानि निरसंक ॥३६५॥

तिय हिय आनँद बढ़त हूं पर न प्रान-पिय पेखि।
छिन देखत कौ दुख परै दीन दृगनि मैं देखि ॥३६६॥

लिखति अवनि-तल चरन सौं बिहँसत बिमल कपोल।
अधनिकरे मुख-इंदु तैं अमृत-बिंदु से बोल ॥३६७॥

उमगी उर आनंद की लहरि छहरि दृग राह।
बूड़ी लाज जहाज लौं नेह-नीर-निधि माह ॥३६८॥

हौं मन मोहन कै लखति हों न आपुनी बाउ।
करत नैन नँद-लाल के हँसत हेरि उर गाउ ॥३६९॥

बसत रहत मतिराम निसि द्यौस काम-अभिराम।
इंदीवर छवि दृगनि मैं इंदीवर छवि स्याम ॥३७०॥

ज्वलित ज्वाल सी जोन्ह यह डारति अंग उलीचि।
भई पियूष-मरीचि की मो कौं मरिच मरीचि ॥३७१॥

लोक प्रसून-पराग तें लखत पिंजरित भृंग।
भए चँबेली कैं बिरह पीत रंग सब अंग ॥३७२॥

मानत लाज-लगाम नहिं नैंकु न गहत मरोर।
होत तोहिँ लखि बाल के दृग-तुरंग मुँह-जोर ॥३७३॥

सघन स्याम कादंबिनी राख्यौ रोकि अकास।
अति संकट पावत नहीं जिय हिय मैं अवकास ॥३७४॥

हिये बसत मुख हसत हौ हम कौं करत निहाल।
घट-घट-व्यापी ब्रह्म तुम प्रगट भए नँदलाल ॥३७५॥

बरनत सांच प्रसंग कै तुमकौं बेद गोपाल।
हियैं हमारे बसत हौ पीर न पावत लाल ॥३७६॥
चढ़े उरोज पहार पै उर उनके अठिलाहिँ।
तो तन नित लाली चढ़ै ललित लाल पियराहिँ ॥३७७॥
कुच कठोर पाषान तैं क्यौं न करैं उर पीर।
बड़े नरम जग नैन कत होत बिषम बिष-तीर ॥३७८॥
सखी तिहारी सांच यह दीप-सिखा सी देह।
दिन दीपति पियराति है अधिक राति रति-नेह ॥३७९॥
दरपन मैं निज रूप लखि नैननि मोद उमंग।
तिय-मुख पिय-बसकरन कौं बढ़्यौ गरब कौ रंग ॥३८०॥
निज पाइनि बलि आइ कै तो घर बाइनि देइ।
जाति बाल निज गेह कौं उर उछाह दृग सेइ ॥३८१॥
तो तन सुबरन बरन है कुटिल स्याम मन मांह।
सखि सनेह कैसैं रहै छुवन न पैयति छांह ॥३८२॥
तिय-हिय मैं पिय-इंदु-मुख निसि दिन करत प्रकास।
सीख सखिनि की छांह लौं नैंकु न पावति बास ॥३८३॥
नैंकु ओट करि गिरि धर्‌यौ लसत सकंप गोबिंदु।
ब्रज बोरत अब इंद्र लौं यह तेरौ मुख-इंदु ॥३८४॥
करबर पर गिरिबर धरे ललित लाल ललचाइ।
जाके चितवन चखनि कुच सो सकुचति मुसिक्याइ ॥३८५॥
हारे बरसत बारि अरु तन दीपति अभिराम।
निदरे सब घनस्याम तूं भांति भांति घनस्याम ॥३८६॥
छाती कुच-कुंकुमनि की छाप करी जिहिँ बाल।
ताकौं उर मन मैं नहीं मिलत मोहि नँदलाल ॥३८७॥
नैन मीन उहिँ बाल के लाज जाल परि आनि।
पियत रहत तो बदन की सुधा मधुर मुसिक्यानि ॥३८८॥

मेरे दृग - बारिद बृथा बरषत बारि-प्रवाह।
उठत न अंकुर नेह कौ तो उर ऊसर मांह ॥३८९॥
राधा चरन सरोज नख इंद्र किए ब्रजचंद।
मोर मुकुट चंद्रकनि तूं चख चकोर आनंद ॥३९०॥
सुखद साधुजन कौं सदा गजमुख दानि उदार।
सेवनीय सब जगत कौ जग-माया-सुकुमार ॥३९१॥
मद-रस - मत्त मिलिंद-गन गान मुदित गन - नाथ।
सुमिरत कवि मतिराम कैं सिद्धि रिद्धि निधि हाथ ॥३९२॥
अंग ललित सित - रंग पट अंग राग अवतंस।
हंस - बाहिनी कीजियै बाहन मेरौ हंस ॥३९३॥
नृपति-नैन-कमलनि बृथा चितवत बासर जाहिँ।
हृदय-कमल मैं हेरि लै कमलमुखी कमलाहिँ ॥३९४॥
ब्रज ठकुराइनि राधिका ठाकुर किए प्रकास।
ते मन-मोहन हरि भए अब दासी के दास ॥३९५॥
पियत अधर यौं देति है कर-कमलनि की मारु।
लगति स्वादु के सिंधु मैं मिरचि - किरच लौं चारु ॥३९६॥
पियत अधर तूं देति है कर-कमलनि की मारु।
होत पंच अँगुरी लगैं सबल पंचसर मारु ॥३९७॥
करति केलि अति प्रेम सौं पगे प्रेम - मद नैन।
अंबर मैं चंचल लसैं खंजरीट से नैन ॥३९८॥
प्राननाथ परदेस कौं चलिए समौ बिचारि।
स्याम नैन-घन बाल के बरसन लागे बारि ॥३९९॥
सरद - चांदनी मैं बिकल बिमल मालती - कुंज।
जगत जोतिमय मैन के मनौ सुजस के पुंज ॥४००॥
कोमल कमलनि से कहैं तिन्हैं न नैंकु सयान।
होत पार लागत हियैं नैन मैन के बान ॥४०१॥

ओठ खंडिबे कौं अरजौ मुख - सुबास - रस - रत्त।
स्याम-रूप नँदलाल अलि नहिँ अलि अलि उनमत्त ॥४०२॥
मूढ़ इंदु अरबिंद मैं कहत सुधा मधु बास।
तो मुख मंजुल अधर मैं तिनकौ प्रगट प्रकास ॥४०३॥
औरै कछु चितवनि चलनि औरै मृदु मुसकानि।
औरै कछु सुख देति हैं सकै न बैन बखानि ॥४०४॥
जो निसि दिन सेवन करै अरु जो करै बिरोध।
तिन्हैं परम पद देत प्रभु कहौ कौन यह बोध ॥४०५॥
लखो लाल तुमकौं लखैं ए बिलास सरसात।
बिहँसत ललित कपोल हैं मधुर नैन मुसिक्यात ॥४०६॥
पगीं प्रेम नँदलाल कैं हमैं न भावत जोग।
मधुप राजपद पाइ कै भीख न माँगत लोग ॥४०७॥
मधुप त्रिभंगी हम तजीं प्रगट परम करि प्रीति।
प्रगट करी सब जगत मैं कटु कुटिलनि की रीति ॥४०८॥
हरि-मुख लखि लोचन सखी सुख मैं करत बिनोद।
प्रगट करत कुवलयनि कौ चंद्रोदय तैं मोद ॥४०९॥
बिषयनि तैं निरबेद उर ज्ञान जोग ब्रत नेम।
बिफल जानियौ ए बिना प्रभु - पद - पंकज-प्रेम ॥४१०॥
देखत दीपति दीप की देत प्रान अरु देह।
राजत एक पतंग मैं बिना कपट कौ नेह ॥४११॥
ललित राग रंजित हियौ नायक जोति बिसाल।
बाल तिहारैं कुचनि बिच लसत अमोलिक लाल ॥४१२॥
कहा भयौ जग मैं बिहित भएँ उदित छबि लाल।
तो ओठनि की रुचिर रुचि पावत नहीं प्रबाल ॥४१३॥
प्रगट कुटिलता जौ करी हम पर स्याम सरोस।
मधुप जोग बिष उगिलियै कछु न तिहारौ दोस ॥४१४॥

हँसत बाल के बदन मैं यौं छबि कछू अतूल।
फूली चंपक बेलि तैं झरत चमेली फूल ॥४१५॥
भयौ सिंधु तैं बिधु सुकबि बरनत सुमति-बिचार।
उपज्यौ तो मुख-इंदु तैं प्रेम-पयोधि अपार ॥४१६॥
पियत रहत पिय-नैन यह तेरी मृदु मुसिक्यानि।
तऊ न होति मयंक-मुखि तनक प्यास की हानि ॥४१७॥
पिय-नैननि के राग कौं भूषन सजे बनाइ।
निरखि तिहारी छबि सुतौ सौति-दृगनि सरसाइ ॥४१८॥
उदै भयौ है जलद तू जग कौ जीवन-दानि।
मेरौ जीवन हरतु है कौन बैर मन मानि ॥४१९॥
बिरह-आँच मन उड़ि सखी घन-सुंदर-तन जाइ।
दुगुनि दाह बाढ़ैं तहाँ आपुहिँ जात बिलाइ ॥४२०॥
जिनकौं अतुल त्रिलोकियै पानिप-पारावार।
उमड़ि चलत तिन दृगनि भरि तो मुख रूप अपार ॥४२१॥
मन जद्यपि अनुरूप है तऊ न छूटति संक।
टूटि परै जिन भार तैं निपट पातरी लंक ॥४२२॥
जुपै सखी ब्रजगाँउ मैं घर घर सहज चवाउ।
तौ हरि मुख लख देति किन नैनि-चकोरनि चाउ ॥४२३॥
कनक-बेलि मैं कोकनद ता मैं स्याम सरोज।
तिन मैं मृदु मुसिक्यानि है ता मैं मुदित मनोज ॥४२४॥
मो मन मेरी बुद्धि लै करि हर कौं अनुकूल।
लै त्रिलोक की साहिबी दै धतूर कौ फूल ॥४२५॥
फिरि फिरि आवति जाति चलि अँगरानी मुसिक्याति।
बाल लाल कौ ललित मुख लखि लजाति ललचाति ॥४२६॥
तो मुख-छबि सौं हारि जग भयौ कलंक समेत।
सरद इंदु अरबिंद मुखि अरबिंदनि दुख देत ॥४२७॥

मधुप-मोह मोहन तज्यौ यह स्यामनि की रीति।
करौ आपने काज कौं तुम्हैं जाति सी प्रीति ॥४२८॥
गंग-नीर बिधु-रुचि-झलक मृदु मुसिक्यानि उदोति।
कनक-भौन के दीप लौं जगमगाति तन-जोति ॥४२९॥
खल बचननि की मधुरई चाखि सांप निज श्रौन।
रोम रोम पुलकित भए कहत मोद गहि मौन ॥४३०॥
मेरी सिख सीखै न सखि मोसौं उठै रिसाइ।
सोयौ चाहति नींद भरि अंग अँगार बिछाइ ॥४३१॥
हरि की सुधि कौं राधिका चली अकेली भौन।
हँसत बीच हीं मिलि गए बरनि सकै सुख कौन ॥४३२॥
मंत्रिनि के बस जो नृपति सो न लहत सुख-साज।
मनहिँ बांधि हग देत हग मन-कुमार कौं राज ॥४३३॥
दधि छिनार मोहन लियौ सखी सघन बन ठौर।
बड़ौ लाभ मन मैं गनौं जौ न कियौ कछु श्रौर ॥४३४॥
कहा भयौ तजि जात है मलिन मधुप दुख मानि।
सुबरन बरन सुबास-जुत चंपक लहै न हानि ॥४३५॥
देह-दीप - दीपति दिपै बदन-चंद की ज्योति।
दामिनि- दुति मुसक्यानि मृदु, सुख की खानि उदोति ॥४३६॥
मुकत-हार हरि कै हियैं मरकत मनिमय होत।
पुनि पावत रुचि राधिका-मुख-मुसक्यानि-उदोत ॥४३७॥
बदन-चंद की चाँदिनी देह-दीप की जोति।
राति बितैहूं लाल उहिँ भौन राति सी होति ॥४३८॥
लाल बाल अनुराग सौं रँगति नित्त सब अंग।
तऊ न छाड़त रावरौ रूप सांवरौ रंग ॥४३९॥
आई फूलनि लैन कौं चलौ बाग मैं लाल।
मृदु बोलनि सौं जानिहौ मृदु बोलनि मैं बाल ॥४४०॥

ग्वालिनि देउँ बताइ हौं मोहिँ कछू तुम देहु।
बंसीबट की छांह मैं लाल जाइ लखि लेहु ॥४४१॥
सरद चंद की चांदिनी को कहियै प्रतिकूल।
सरद चंद की चांदनी कोक हियै प्रतिकूल ॥४४२॥
को हरि-वाहन जलधि-सुत को को ज्ञान-जहाज।
तहां चतुर उत्तर दियौ एक वचन द्विजराज ॥४४३॥
भोर भऍं आए भवन स्याम-वसन-जुत स्याम।
हँसि अंबर केसरि-रँग्यौ आगैं राख्यौ वाम ॥४४४॥
यौं न प्यार विसराइयै लियो मोहिँ तू मोलि।
मुख विलोकि नँदलाल कौ कहै सखी सौं बोलि ॥४४५॥
लखत लाल मुख पाइहौ बरनि सकै नहिँ बैन।
लसत बदन सतपत्र सौ सहसपत्र से नैन ॥४४६॥
चढ़ि गुलाल पिय-करनि तैं लगत प्रिया-मुख-चंद।
मनौ कोकनद रजनि करि करत रजनिकर मंद ॥४४७॥
सेत बसन की चांदिनी परत गुलाल सुरंग।
मानौ सुर-सरिता मिलति सरसुति-तरल-तरंग ॥४४८॥
सित अंबर-जुत तियनि मैं उड़ि उड़ि परत गुलाल।
पुंडरीक पटलनि मनौ बिलसत आतप-बाल ॥४४९॥
स्याम-रूप अभिराम अति सकल विमल गुन-धाम।
तुम निसि दिन मतिराम की मति बिसरौ मति राम ॥४५०॥
प्रेम लग्यौ अंगार ह्वै सीता मन बिन ज्ञान।
देत अँगूठो राम को मानिक भो हनुमान ॥४५१॥
रहे और ही रूप ह्वै विषम विरह दुख सानि।
डीठि परैं हूं परस्पर नीठि परैं पहिचानि ॥४५२॥
मोहीं कौं किन मारि तूं विरह-विपति मैं गाड़ि।
ज़लज-मुखी कौं जलद जिन तड़ित-चाबुकनि ताड़ि ॥४५३॥

अजहूं प्रगटित होत है पुलक पटल ता मांह।
जौन अंग डिढ़ ह्वै कढ़त छुऐ छैल की छांह ॥४५४॥
सिरिस कुसुम सम बाल के कुम्हिलाने सब गात।
करत प्रात अलसात अति सौति-हियनि उतपात ॥४५५॥
प्रतिपालक सेवक सकल खलनि दलमलत डांटि।
शंकर तुम सम सांकरैं सबल सांकरैं काटि ॥४५६॥
सेवक सेवा के सुनें सेवा देव अनेक।
दीनबंधु हरि जगत है दीनबंधु हर एक ॥४५७॥
सघन तिमिर मैं तरुनि की जगमगाति तन-जोति।
प्रेम हेम पावस - कुहू - निसा कसौटी होति ॥४५८॥
रूप बसै मदिरा मदन मदन मदरि से नैन।
प्रेम छके पिय-छवि छके हटके नैंकु रहैं न ॥४५९॥
पिय मुख रुचि चारो चुगैं करत परस्पर चैन।
मदन मदर से बाल के वदन मदरि से नैन ॥४६०॥
बदन इंदु अरबिंदु सौं सुधा-मधुर मधु बैन।
मेरे होत चकोर से चंचरीक से नैन ॥४६१॥
बरनत भौंह कमान जुत बरनत बैन बनै न।
सरल सरल सब मदन के तरल तरलतर बैन ॥४६२॥
तेरी मूरति - जुत लिखी निज सूरति लखि बाल।
धनि मानति मनभांवती निज तनु है नँदलाल ॥४६३॥
तची न तौ औगुननि सौं रची न तो अनुराग।
ब्रज मैं देहु बताइ कै ऐसी तिया सभाग ॥४६४॥
बिहँसि बढ़ायौ लाल तुम तिय-हिय मैं अनुराग।
बिफल क्यौं न दुख देत जौं आप लगायौ बाग ॥४६५॥
निसा समैं अरबिंद रुचि द्यौस इंदु की ज्योति।
बाल-बदन-छवि तो बिरह लाल कहा धौं होति ॥४६६॥

चली सहेट निकुंज कौं धरि सित भूषन चोर।
जोन्ह बीच अंबुज-मुखी भई कंबु कौ छोर ॥४६७॥
मेरे मन तो बसति है नैन कियो अपराध।
तुम्हैं दोस को देतु है है यह काम असाध ॥४६८॥
जमुना-तट वा कुंज मैं तुम जु दई ही माल।
निकसत जीवहिँ बाँधि कै तासौं राखति बाल ॥४६९॥
जिन चलाइयै चलन की चरचा स्याम सुजान।
हौं देखति हौं वाहि इहिँ बात सुनत बिन प्रान ॥४७०॥
नैननि कौं आनंद है जिय कौं जीवन जानि।
प्रगट दरप कंदरप कौं तेरी मृदु मुसक्यानि ॥४७१॥
कहा करौं परबस भई लखि मुख रूप रसाल।
वेची मैं न दलाल ह्वै लीनी मैं नंदलाल ॥४७२॥
निठुर गई नहिँ निठुर पैं कहति साँच किन बात।
लगे कंट कित कुचनि मैं भए कंटकित गात ॥४७३॥
कहा भयौ जौ तूं भट्ट गुन-गन-मय सब देह।
जोवनवारी तौ सफल जौ बनवारी-नेह ॥४७४॥
मुकत-माल मंडित लसैं बाल उरोज उतंग।
नखत-पाँति सोभित मनौ बिबि सुमेरु के शृंग ॥४७५॥
दीप-ज्योति के जाल से जगमगात अति अंग।
मानस-मानस के चपल उड़ि उड़ि परैं पतंग ॥४७६॥
निंदत अति अभिराम तौ इंदीबरनि अनूप।
झलकत तो अँखियानि मैं अति घनस्याम-सरूप ॥४७७॥
लसत सुरत-श्रम-सलिल-कन ललित बाल नँदलाल।
फलौ मनौ मुकता-फलनि कंचन बेलि तमाल ॥४७८॥
बिहँसतु नील दुकूल मैं लसतु बदन अरबिंदु।
झलकत जमुना-रूप मैं मानौ पुरनु इंदु ॥४७९॥

जरतारी सारी ढके नैन लसत मतिराम।
मनौ कनक पंजर परे खंजरीट अभिराम ॥४८०॥
कान्ह करज छत देत यौं सोहत बाल-उरोज।
सर-सरोज सौं संभु कौं मारत मनौ मनोज ॥४८१॥
स्याम-नैन-प्रतिबिंब-जुत तिय के उरज उतंग।
मनौ मनोज-सरोज-सर लगे ईस कैं अंग ॥४८२॥
रचे बिरंचि बनाइ कै तेरे ईस उरोज।
तिनके पूजन कौं किए हरि के हाथ सरोज ॥४८३॥
बदन इंदु तेरौ अली दृग अरबिंद अनूप।
तिनमें निसि बासर सदा बसत इंदिरा-रूप ॥४८४॥
वो मुख-मंजुल-हास-मृदु मदन-मोद कौ मूर।
पिय नैननि सीतल करत है कपूर कौ चूर ॥४८५॥
तेरे आनन-चंद कौ मधुर मंद मृदु हास।
मेरैं जान मनोज कौ कीरति-पुंज-प्रकास ॥४८६॥
रच्यो बिरंचि बनाइ तूं सुबरनमय बर बाल।
बढ़ै जोति तौ जौ मिलै इंद्र-नील-रुचि लाल ॥४८७॥
बिमल बाम के बदन मैं राजत ओठ रसाल।
मनौ सरद-बिधु-बिंब मैं लसत बिंबफल लाल ॥४८८॥
लसति मुकुट-रुचि लाल की मेरैं ओठनि सेइ।
अति अद्भुत यह बात पुनि लाल मुकुत रुचि लेइ ॥४८९॥
अली तिहारे अधर मैं सुधा-भोग कौ साज।
द्विजराजिनि-जुत न्यौतियै लाल-बदन-दुजराज ॥४९०॥
दुहुँ दिसि सघन नितंब कुच खैंचत हैं निधि-सार।
छीजै क्यौं न मयंक-मुखि ललित लंक सुकुमार ॥४९१॥
क्यौं न लहै सुख-भोग कौं ललित बाल कैं साथ।
नीबो नीबो मदन की परी नाह कैं हाथ ॥४९२॥

कर-सरोज सौं गहि रही पिय - कर गहत उरोज।
लाज प्रबल मन मैं भई मन मैं सबल मनोज़ ॥४९३॥
बैठि रहै रोवै हँसै आतुर उतरि उताल।
प्रथम सुरति विपरीति की रीति न जानति बाल ॥४९४॥
थकी सुरत विपरीत मैं लियै बिजन कर बाल।
लोचन रही छपाइ कै लख्यौ हँसत मुख लाल ॥४९५॥
भोर होत पिय कौं लख्यौ छोड़्यौ चहत समीप।
बिधु-मुख लोचन कमल से तनु-दोपति तनु-दीप ॥४९६॥
परै न धुनि सुनि सखिनि कौं लाजनि होति अधीर।
कर-कमलनि सौं गहि रहै सुरत-मुखर मंजीर ॥४९७॥
बाल सुरत-रस-रीति मैं गही लाज अरु मैन।
करनि बिरल अँगुरीनि करि मूंदति नायक नैन ॥४९८॥
लाज मैन दुहुँ बिच परी सुरत-समै मुसक्याइ।
कमल चलावै करनि गहि दीप-समीप बचाइ ॥४९९॥
रति विपरीत प्रस्वेद-कन पिय कौं सींचति बाम।
मनौ प्रौढ़ पुन्नाग कैं मुकुलनि पूजति काम ॥५००॥
राजत अरुन सरोज हैं मानहु रँगे कुसुंभ।
जोवन - मद गज - कुंभ कै सात कुंभ के कुंभ ॥५०१॥
ऊंची स्वासनि सौं प्रिया सुरत - अंत मुसिक्याइ।
पुनि प्रीतम कैं मैन की दीनी आगि जगाइ ॥५०२॥
मनौ मैन के निधि - कलस तेरे तरुनि उरोज।
चाहत जे तिय पै इन्हैं बाननि हनत मनोज ॥५०३॥
पल्लव पग कर अधर है फल उरोज नख फूल।
भौंर - भीर बर बार हैं बाल बेलि कैं तूल ॥५०४॥
नख गांसी सर आंगुरी कर पग चारु तुनीर।
दसौं दिसनि जिनि बर जिते प्रबर पंचसर बीर ॥५०५॥

ज्वाल - जाल बिज्जुलि - छटा घटा धूम अनुहारि।
बिरहिनि - जारन कौं मनौ लाई मदन दँवारि ॥५०६॥

बलम पीठि तरिवन भुजनि उर कुच-कुंकुम - छाप।
तितै जाहु मनभांवते जितै बिकाने आप ॥५०७॥

इन झूठी सौंहनि कियैं नहिं ह्वैहै अकलंक।
कियौ अधर - अंजन - प्रभा बदन - चंद सकलंक ॥५०८॥

बैठ्यौ आनन कमल के अरुन अधर - दल आइ।
काटन चाहत भांवते दीजै भौंर उड़ाइ ॥५०९॥

चित्रन इत उत चटपटे कहत लटपटे बात।
× × × × × × ॥५१०॥

जावक दीयौ पगनि मैं जुवती जावि सिँगार।
पुरुष प्रानप्रिय जानियत मंडन करयौ लिलार ॥५११॥

भली लगै मनभांवते करी आभरन आप।
काम निसेनी सी बनी यह वेनी की छाप ॥५१२॥

अजौ उड़ावत हौ नहीं पीर न होति सभाग।
ठौर ठौर या भौंर के डसैं अधर - दल दाग ॥५१३॥

झीनैं झगा बिलोकियत नख - छत छबि - धर नाह।
भलैं बिराजत ए नए चंद्रहार हिय मांह ॥५१४॥

ललित तिहारे गुननि सौं अति सनेह सरसाइ।
काम - ओज वाकौं हियैं दीनौ दीप जगाइ ॥५१५॥

अतनु - तेज तलफै सुतनु तनु जीवन ज्यौं मीन।
नंदलाल वह ह्वै रही चंद - कला - सम छीन ॥५१६॥

कहा कहौं वाकी दसा सुनौ सांवरे बात।
देखैं बिनु कैसैं जियै देखत दृग न अघात ॥५१७॥

धरै कौन बिधि धीर वह सुनौ धीर बलबीर।
काम - तीर की भीर भरि हियरौ भयौ तुनीर ॥५१८॥

वाके हिय के हनन कौं भयौ पंचसर बोर।
लाल तुम्हैं बस करन कौं रहे न तरकस तीर ॥५१९॥
बचन कहत आवत न बनि चलौ लखौ बलि आपु।
प्रबल अनंग-प्रताप सौं अंग अंग संतापु ॥५२०॥
सखिनि करत उपचार अति परति बिपति इत रोज।
भुरसत ओज मनोज कैं परसि उरोज-सरोज ॥५२१॥
जागत ओज मनोज के परसि प्रिया के गात।
पापर होत पुरैनि के चंदन पंकिल पात ॥५२२॥
घन-सुंदर तो छवि-घटा उनै रही मन छाइ।
लाज चंचला लौं चमकि चंचल जाति बिलाइ ॥५२३॥
सुंदरि नगर अनंग कौ तेरौ अंग अनूप।
सोभित सुबरन बरन मैं उरज गुरज कैं रूप ॥५२४॥
तुम लाइक हम हैं कहां तुम हम तैं कमनीय।
मो मन तो तन मैं बस्यौ बसति पाइ रमनीय ॥५२५॥
रंध्र-जाल मग ह्वै कढ़त तिय-तन-दीपति पुंज।
झझिया कौ सौ घट भयौ दिनहीं मैं बन कुंज ॥५२६॥
सुनि सुनि गुनि सब गोपिकनि समुझौ सरस सवाद।
कढ़ो अधर की माधुरी मुरली ह्वै करि नाद ॥५२७॥
अब फिरि आवत है नहीं मो तन जीवन-हीन।
तो तन पानिप-रूप मैं भौ मन-मीन बिलीन ॥५२८॥
भई देवता भाव सब हौं तुम कौं बलि जाउँ।
वाही कौ मुख रूप मन वाही कौ मुख नाउँ ॥५२९॥
कहै चीर के चोर सौं बातैं भौंह चढ़ाइ।
लखैं परस्पर गोपिका आपस मैं मुसक्याइ ॥५३०॥
बिसरि जात सब दुख सखी मन मैं आनत जाहि।
अवलोकन पैयत नहीं अवलोकनि सौं ताहि ॥५३१॥

करियै संग सखीनि कैं कहौ कौन विधि सैल।
अलि रोकत मग वा सबै छैल गांउ मैं गैल ॥५३२॥
सिला सघन घनस्याम उर तिय कुच सैल कठोर।
मुकत-हार दरि जात हैं परिरंभन कैं जोर ॥५३३॥
लगी रहै हरि-हिय यहै करि ईरखा विसाल।
परिरंभन मैं वल्लवी भली दली वनमाल ॥५३४॥
अधम अजामिल आदि जे हैं। तिनकौ हैं। राउ।
मोहूं पर कीजै मया कान्ह दया-दरियाउ ॥५३५॥
लसति दांत की ज्योति यों वाल-वदन मुसक्यात।
अमल किंजलक-झलक ज्यौं कमल प्रफुल्लित प्रात ॥५३६॥
मिलि विसरैहौ आपुकौं सुमिरत सुधि न सँभार।
किंकिन कौ उर हार करि करिहौ कहा विहार ॥५३७॥
अधर-रंग वेसरि-मुकत मानिक-बानिक लेत।
हँसत बदन-दीपति बहुरि होत हरी-छबि सेत ॥५३८॥
अनमिष नैन कहै न कछु समुझै सुनै न कान।
निरखैं मोर-पखानि कैं भई पखान समान ॥५३९॥
उठे जगत दुख दैन कौं ते कठोर कुच-कुंभ।
निसिचर कुंभ-निकुंभ ज्यौं दानव सुंभ निसुंभ ॥५४०॥
प्रतिबिंबित निज रूप लखि पिय के नैननि मांह।
मुख चुंबन कौं प्रेम सौं गह्यौ कंठ दुहुँ बांह ॥५४१॥
सकल कला-कमनीय पिय मिलन-मोद अधिकात।
बिलसति मालति मुकुल निसि निसि-मुख मृदु मुसिक्यात ॥५४२॥
दरकत नहीं बियोग मैं लगैं घनक घन घोर।
तेरे उरजनि मिलि भयौ मेरौ हियौ कठोर ॥५४३॥
हरि रानिनि मैं राधिका जुवतिनि बानी एक।
बर सुहाग अनुराग कौ कीनौ बिमल बिबेक ॥५४४॥

राधा की बेनी लखी जो हरि गूंदी आपु।
चित-सुख-सागर कौ भयौ बड़वानल संतापु ॥५४५॥
लसति लाल-रुचि तरुनि कैं अमल कपोलनि पीक।
रुचि रुचि परसत मुकुर मैं मनौ अनल की लीक ॥५४६॥
बाल लाल-मुख सौति कौ सुन्यौ नाम परकास।
बरषे बादर सैन पर उड़यौ हंस सम हास ॥५४७॥
कहा रहे निहचिंत ह्वै लखो लाल चलि आपु।
प्रलय-अनिल-सम स्वास हैं प्रलय-अनल-सम तापु ॥५४८॥
चाहति फल तेरौ मिलन निसि बासर वह बाल।
कुच-सिव पूजति नैन-जल-बुंद मुकतमय माल ॥५४९॥
तरुनि अरुन एड़ीनि के किरन-समूह-उदोत।
बेनी मंडि न मुकत के पुंज गुंज-दुति होत ॥५५०॥
लाल-बदन लखि बाल कैं कुचनि कंप-रुचि होति।
चपल होत चकवा मनौ चाहि चंद की जोति ॥५५१॥
गयौ महाउर छूटि यह रह्यौ सहज इक अंग।
फिरि फिरि झांवति है कहा रुचिर चरन के रंग ॥५५२॥
लसत कोकनद करनि मैं यौं मिहँदी के दाग।
ओस-बिंदु परि कै मिट्यौ मनौ पल्लवनि राग ॥५५३॥
सुनि इत दै मन मानिनी बिनु अपराध रिसानि।
नेह जरावन कौं महा दीप जोति उर आनि ॥५५४॥
सुनि मानिनि अपराध बिनु कहा तजति द्दग-बारि।
निसि बासर यह भानियै डारै राग पखारि ॥५५५॥
वैठ्यौ ओज जगाइ कै मन सिंहासन मारु।
मनौ छपाकर छत्र छबि किरनै चांवरु चारु ॥५५६॥
हँसनि जोन्ह तेरी लखैं सुनियै नंदकिसोर।
वाके नैंना होत हैं कुबलय किधौं चकोर ॥५५७॥

मंडित मृदु मुसिक्यानि-दुति देखत हरत कलेस।
ललित लाल तेरौ बदन तिय - लोचन - तारेस ॥५५८॥
रह्यौ हारि बिपरीति मैं पिय-नैननि मैं आइ।
चंदमुखी सींचति मनौ सुधा - कलस - कुच नाइ ॥५५९॥
सखी सबै सिंगार सुभ सजि सुंदरि कैं अंग।
केलि - भौन पहुँचाइ कै फिरीं लाज कैं रंग ॥५६०॥
नीबी खोलनि कौं गही पिय अनुराग निखोट।
हरष नयन जलमय वसन दियौ लाज निज ओट ॥५६१॥
आंसु छपाए हरष के सजनी भौंह चढ़ाइ।
कुच कंचुक रोमांच कौ क्यौं न दुरायौ जाइ ॥५६२॥
है छपाइ भूषननि सौं आए गात छपाइ।
भए चीन्ह उत छपारत ए नहिं जात छपाइ ॥५६३॥
रहत नहीं मो जीव यह चलत तिहारैं संग।
याकौं नीकैं राखियौ पिय बसाइ निज अंग ॥५६४॥
डीठि रूप श्रुति बचन तनु परस सुखद दिन राति।
जीभ अधर - रस नासिका मुख - सुबास न अघाति ॥५६५॥
परसत तिय के करनि तैं चल्यो पिघिलि नवनीत।
चलनहार परदेस कौं कियौ न पुनि मन मीत ॥५६६॥
कहा भयौ जौ सुऋतु मैं फूले रूख बिसाल।
कलकंठी सुख लहति है प्रफुलित पाइ रसाल ॥५६७॥
कलकंठी तो नाम है रही मौन सब काल।
पाइ प्रसाद रसाल कौ बोलन लगी रसाल ॥५६८॥
भौंर भांवरैं भरत हैं कोकिल-कुल मँडरात।
या रसाल की मंजरी सौरभ सुख सरसात ॥५६९॥
कासौं जात बखानि है आंब-कली-रस मित्त।
बिसरायौ जिहिँ जाति तैं चंचरीक कौ चित्त ॥५७०॥

लीनौ रस कोकिल-कुलनि आंब - कली कौ झारि।
तासौं मन मान्यौ मधुप सुमना सुमन बिसारि ॥५७१॥
बहु नाइक सौं बावरी मधुर वचन मुख बोलि।
उतरि जाइगौ रूप-मद कटुक-वचन मुख बोलि ॥५७२॥
कियौ कंत चित चलन कौ तिय-हिय भयौ बिषाद।
बोल्यौ चरनायुध सु तौ भयौ नखायुध-नाद ॥५७३॥
फूल कपोल मधूक के अधर बिंब-फल रत्त।
रस चाखत पिय बुद्धि बन क्यौं न होइ उनमत्त ॥५७४॥
निरखि तरनि-कर-निकर कौ अरु बरनत आलोक।
होत प्रफुल्लित सोक तजि सकल कोकनद कोक ॥५७५॥
प्रिय आलोकनि मैं निरखि पीक-अरुन-बर जोति।
तन-दीपति दिन-दीप सम सब सौतिनि हौं होति ॥५७६॥
बसन हरयो पिय सुरत मैं तिय-तन-जोति समीप।
केलि-भौन मैं राति हूं भए द्यौस के दीप ॥५७७॥
अटा ओर नँदलाल उत निरखौ नैकुँ निसंक।
चपला चपलाई तजी चंदा तज्यौ कलंक ॥५७८॥
पिय-मुख - पंकज मैं परे तिय-दृग-मधुप उड़ाइ।
अरुन भए रस - पान - बस राग - पराग लगाइ ॥५७९॥
आनँद - आंसुनि सौं रहे लोचन पूरि रसाल।
दीनी मानहु लाज कौं जल-अंजुलि बर बाल ॥५८०॥
बिरह अनल कुमुदिनि हियैं डारयौ जोन्ह बुझाइ।
तिन तैं मानो धूम-रुचि अलि कुल चले उड़ाइ ॥५८१॥
पति-बिलास सुक सारिकनि कहे गुरुनि मैं प्रात।
लाज ललित गुन-गौरि के दुरे गात मैं गात ॥५८२॥
परी बाल - मुख - चंद मैं बिरह राहु की छांह।
कै दृग - दान छुड़ाइयै सुकृत - हेतु करि नाह ॥५८३॥

अति अवदात मद्दा मिही कसी उरोज उतंग।
केसरि रंग रँगो लगी अँगिया अंगनि संग ॥५८४॥
फूले नहीं पलास ए बन मैं लगी दँवारि।
सांघ कहति सजनी न तौ सकै न नैननि जारि ॥५८५॥
उड़त भौंर ऊपर लसैं पल्लव लाल रसाल।
मनौ सधूम मनोज की ओज-अनल की ज्वाल ।।५८६॥
विकच अरुन मेचक वरन गुंजा-बीज-समान।
किंसुक मनौ मनोज के कालकूट-जुत बान ॥५८७॥
प्रथम कामि-जन-मननि कौं रँगत सुरभि-रितु राग।
करत अलंकृत पल्लवनि पुनि पीछैं बन-बाग ॥५८८॥
देखि परै नहिं दूबरी सुनियै स्याम सुजान।
जानि परै परजंक मैं अंग-आंच-अनुमान ॥५८९॥
सपनैं हूं चितवत नहीं और-ओर वर बाल।
तूं अपने अनुराग के रँग्यो रंग मैं लाल ।५९०॥
कहा होति अति हीं निठुर तूं न बिलोकति बाम।
तो सिंगार-रस-रंग मैं अंग रँगे निज स्याम ॥५९१॥
दिसि दिसि तुम्हैं बिलोकि वह बाल तजति अति सोक।
तो प्रतिबिंबनि सहित सब भयौ मुकुर नर लोक ॥५९२॥
कीनौ अति अनुराग सौं पीतम आधे रूप।
मनौं लिए गुन गौरि तैं गुन गौरि तैं अनूप ॥५९३॥
जे अंगनि पिय संग मैं वरखत हुते पियूष।
ते बाछू के डंक से भए मयंक-मयूष ॥५९४॥
जाहि चाहि उद्दिम कियौ गने न निसि मग-लाभ।
कंत विकान्यौ अनत सो रह्यो अजस कौ लाभ ॥५९५॥
मनमोहन तौ सकत क्यौं यौं अपराधनि ठानि।
जौ न मनावन हेतु यह होति मधुर मुसक्यानि ॥५९६॥

पियहि उठावति पगनि तैं क्यौं न कौन यह ज्ञान।
दुख-सागर मैं बूड़िहै बांधि गरैं गुरु मान ॥५९७॥
जो सजनी गुन गननि-बस अति सनेह-रस मानि।
भयौ दास तब सो लखै अब उदास अँखियानि ॥५९८॥
सुनि सजनी वह सांवरौ धरि गुंजनि के हार।
राखतु है हिय आपुनैं तो सनेह - घनसार ॥५९९॥
अलि यह अनल अनंग कौ अंग-अंग अधिकात।
क्यौं धौं चंचल प्रान ए पारद लौं न उड़ात ॥६००॥
कहा लियौ गुरु मान कौ अति ताती है नेम।
पारद सौ उड़ि जाइगौ अलि चंचल यह प्रेम ॥६०१॥
जानति सौति अनीति है जानति सखी सुनीति।
गुरुजन जानत लाज है प्रीतम जानत प्रीति ॥६०२॥
लसत चारु तीरनि सहित तिय लोचन कमनीय।
चढ़े खंजरीटनि मनौ चंचरीक रमनीय ॥६०३॥
नींद - भार दावे दृगनि लसत पीक नड़ भाग।
कुवलय मुकलित होत ज्यौं परसि प्रात रवि - राग ॥६०४॥
दरपन अमल कपोल मैं परत पानि - प्रतिबिंब।
पुनि पुनि पोंछति पीक भ्रम देखि आदरस बिंब ॥६०५॥
कल कल कलिका कुल ललक कोकिल-कुल की केलि।
लोलै कला कलोल कै लाल लाल कंकेलि ॥६०६॥
जल - पूरित - घनस्याम - रुचि उनई अँखियनि आइ।
रही कदंब कलीनि की अंग बाल छवि छाइ ॥६०७॥
तन दुरबल मनमथ प्रबल ढिग बसंत पिय दूरि।
अचल विरह चल जीव सखि तनक न सुख दुख भूरि ॥६०८॥
हरयौ बसन मन - भावते फिरि किंकिनि गुन तोट।
करै मनौ मन-भावती पुलक - पटल - पट ओट ॥६०९॥

औरनि हूं के लसत हैं अति अनियारे नैन।
मन मानत हैहैं न वे सो मन लागत पैन ॥६१०॥
है इहि गांव गुलाब वर पुर - ठाकुर कैं गेह।
चलौ न आवति बास है जो देवर की देह ॥६११॥
पूरत मन की लालसा जगनि जगति गुन-गाथ।
सुर - नर - पल्लव अरुन रुचि भोग नाथ के हाथ ॥६१२॥
कलपद्रुम - पल्लव भयौ तूं अति दानि निदान।
भोग नाथ नर - नाथ के हाथ - साथ पढ़ि दान ॥६१३॥
लाल भाल जावक लगे उठे रसिक सिरताज।
सौति लखी सुंदरि दृगनि रोस हास अरु लाज।६१४॥
लगे निसा - अभिसार मैं कंटक तिय कैं पाइ।
अजौं न सरुहे निठुर तुम भए और हीं भाइ ॥६१५॥
मो नैननि नीकी लगै रही लपटि यह भाल।
तनक रँगी यह पाग अब लाल करै सब लाल ॥६१६॥
लाल तिहारे चलन की सुनी बाल यह बात।
सरद नदी के सोत लौं प्रतिदिन सूखत गात ॥६१७॥
कियौ प्यार मोपर प्रकट मैं लीनौ धरि सीस।
पिय प्यारी कैं नाम यह दियौ मोहिँ बकसीस ॥६१८॥
तुरतहिँ गयौ बिलाइ कै हुत्यौ परम अभिराम।
नाह रावरौ नेह यह भयौ गंधरब - गाम ॥६१९॥
हिय - अनुराग रँगे लला वे कछु और अमोल।
ओठनि हीं के रँग भए रँगि रँगि बोलत बोल ॥६२०॥
पगीं प्रेम नँदलाल कैं हमैं न भावत जोग।
मधुप राजपद पाइ कै भीख न मांगत लोग ॥६२१॥
छोड़ि नेह नँदलाल कौ हम नहिँ चाहतिँ जोग।
रंग बाति क्यों लेत हैं रतन - पारखी लोग ॥६२२॥

भोगनाथ नर-नाथ के गुन-गन बिमल विसाल।
भिच्छुक सेवत पानि हैं पग सेवत महिपाल ॥६२३॥
अद्भुत गावत जगत सब भोगनाथ-गुन-गाथ।
भूमिपाल सेवत चरन भिच्छुक सेवत हाथ ॥६२४॥
एक द्यौस की औधि पिय अति साहस आरंभ।
मन सों कहु वरि जात क्यों भुजनि जलधि कौ अंभ ॥६२५॥
हरद बरन तैं अधिक बढ़ि जरद होत वह मित्त।
सरद जोन्ह मैं मानिनी दरद न आवत चित्त ॥६२६॥
जा बियोग-वड़वागि की ज्वालनि नैंकु जरयौ न।
सो सागर अनुराग कौ सूखत जानि परयौ न ॥६२७॥
ज्यौं ज्यौं विषम वियोग की अनल-ज्वाल अधिकाइ।
त्यौं त्यौं तिय की देह मैं नेह उठत उफिनाइ ॥६२८॥
वड़वानल पर बढ़त है विरह - ताप तिय - अंग।
अति अद्भुत अधिकाति है प्रेम - पयोधि - तरंग ॥६२९॥
बहै सवै अनुनय - सहित मधुर वचन चित-चाउ।
क्यौं राखै अब रोकि सखि फूट्यौ प्रेम - तलाउ ॥६३०॥
अति उतंग उरजनि लसत चपल मुकत - वर हार।
मनौ मेरु - विवि-शृंग तैं गिरति गंग - जुग-धार ॥६३१॥
सरस बाल कौ मन लला पारावार अनूप।
नीरस मानसरोवरौ मारवार कैं रूप ॥६३२॥
चढ़त सुन्यौ नहिँ स्याम मैं और रंग गरु बाल।
अधर राग सौं हैं रँगे अद्भुत तैं नँदलाल ॥६३३॥
एक भए मन दुहुनि के छुटैं न कियैं उपाइ।
कहौं सिंधु संभेद कौ कोउ न सकत छुड़ाइ ॥६३४॥
हरिन - रूप बिरहीनि कौं जलद - जाल बगराइ।
बांधि बूंद बाननि बधत मार बधिक सम आइ ॥६३५॥

प्रफुली सुमन रसाल के कंध विटप भुज मेलि।
वात निवारी विरह की फूल निवारी बेलि ॥६३६॥
निज स्वरूप प्रभु देत हैं सांच कहत मुनि-गोत।
भोगनाथ की रीझ मैं भोगनाथ कवि होत ॥६३७॥
सरल बान जानै कहा प्रान-हरन की घात।
बंक भयंकर धनुष कौ गुन सिखवत उतपात ॥६३८॥
कियै भोग सपनैं रमन परम मुगध-मन बाल।
कौतुक देति उराहनौ लई अंक भरि लाल ॥६३९॥
दियै कान्ह निज कान तैं तुम गुलाब कौ गुच्छ।
गुरुजन मैं अवतंस करि फिरति लाज करि तुच्छ ॥६४०॥
सखी सिखापन रावरैं कहौ कहा अब होइ।
मोहन-तन-पानिप गई लाज दृगनि की धोइ ॥६४१॥
लाज गहै नींदहिँ लहै निसि दिन दहै न देह।
सुनौ सांवरे रावरे तहां न दीजै नेह ॥६४२॥
चढ़ी अटारी घाम वह कियै प्रनाम निखोट।
तरनि किरनि तैं दृगनि कौं कर-सरोज करि ओट ॥६४३॥
कढ़त पियूषहुँ तैं मधुर मुख सरसुति के सोत।
भोगनाथ नर-नाथ कैं साथ बसैं कवि होत ॥६४४॥
दिनहूं मैं अति जगमगै बाल-वदन-विधु-कांँति।
लखौ लाल या संधि मैं उदै सैल की भाँति ॥६४५॥
भोगनाथ-मुख चंद की ओर लखत वर जोर।
करौं कौन विधि मान ए लोचन होत चकोर ॥६४६॥
अंग करत परि रंग मैं सुधा-समुद्र-विनोद।
सुरत अंतहूं पाइयै सुरत आदि कौ मोद ॥६४७॥
अँसुवनि के परवाह मैं अति बूड़िवैं डराति।
कहा करै नैनानि कौं नींद नहीं नियराति ॥६४८॥

अनल - ज्वाल सी लगति है बालपने मैं बाल।
जग जारन कौं जानियत जोबन मैं जंजाल ॥६४९॥
पलक पलक लागैं बिना क्यौं करि दृगनि बिनोद।
सोवन देत न सरद मैं बिकच कुमुद आमोद ॥६५०॥
तेरौ सखी सुहाग बर जानत हैं सब लोक।
होत चरन कैं परस पिय प्रफुलित सुमन असोक ॥६५१॥
प्रीतम प्रिया पियाइ कै मुख - सुख-सुधा अनूप।
पुलक - मुकुल केसर - पटल करि केसरि अनुरूप ॥६५२॥
पिय कैं मन मन-भावती और बात नहिँ फूल।
कुच - परिरंभन सौं तरुनि करि कुरबक तरु - तूल ॥६५३॥
करि चख - चारु - चितौनि सौं सुमन कलित-अनुकूल।
तरुन तिलोकी-तिलक कौं तरुनि तिलक - तरु - तूल ॥६५४॥
चितवनि कुच परिरंभ मुख सिद्ध चरन हति-केलि।
कियो तिलक कर बक निलित लाल बकुल कंकेलि ॥६५५॥
होत जगत मैं सुजन कौं दुरजन रोकनहार।
केतकि कमल गुलाब के कंटक मय परिहार ॥६५६॥
कछु न गनति दुरजननि लखि तोहिँ दृगनि सुख देति।
निदरि कंटकनि मधुकरी रस गुलाब कौ लेति ॥६५७॥
फूलति कली गुलाब की सखि यहिँ रूप लखै न।
मनौ बुलावति मधुप कौं दै चुटकी की सैन ॥६५८॥
भ्रमत रहत निस द्यौस हूं करी मधुकरी तूल।
कित वह डारी सो हितू क्ति बकिनव को फूल ॥६५९॥
मिले मोहिँ अति प्रेम सौं सटपटात उठि प्रात।
छोड़ि आपुनौ भौन तुम भौन कौन कैं जात ॥६६०॥
हियौ जरायौ बाल कौं अनल ओज निज मैन।
ता पर तेरे देत दुख लाल सलोने नैन ॥६६१॥

हरि - हिय तैं रति रंग मैं गिरे गुंज गुन टूटि ।
मनौ स्याम घन तैं परे इंद्र गोप गन छूटि ॥६६२॥
करति रसोई बाल वह मगन तिहारैं ध्यान ।
जरति आगि निजु आंगुरी होत नहीं मन ज्ञान ॥६६३॥
प्रथम अरध छोटी लगी पुनि अति लगी बिसाल ।
बामनि कैसी देह निसि भई बाल कौं लाल ॥६६४॥
करौ कोटि अपराध तुम वाके हियैं न रोष ।
नाह - सनेह - समुद्र मैं बूड़ि जात सब दोष ॥६६५॥
बिरह - तचे तिय-कुचनि लौं अँसुवा सकत न आइ ।
गिरि उड़गन ज्यौं गगन तैं बीचहिँ जात बिलाइ ॥६६६॥
स्याम तिहारैं बिरह दृग करत सकज्जल रोज ।
मनौ बढ़ावत प्रेम सौं सूर सुताहिँ सरोज ॥६६७॥
छांह बिना ज्यौं जेठ-रबि ज्यौं बिनु औषधि रोग ।
ज्यौं बिनु पानी प्यास यौं तेरौ दुसह वियोग ॥६६८॥
मे दृग-कंजनि कौं दियौ दरसनु मोद निदानु ।
भोगनाथ मन - भावते भए भोर के भानु ॥६६९॥
भोगनाथ् नरनाथ कौ बदन इंदु अरबिंदु ।
करत कबित्तनि करत वर मधुर सुधा-मधु-बिंदु ॥६७०॥
कमल मुखनि कुवलय दृगनि कुमुद मधुर मुसक्यानि ।
लखौ लाल ऊपर महल कमलाकर सुख दानि ॥६७१॥
तब लौं नहिँ जानति दृगनि जब लौं नहीं उदोति ।
बिहँसन छीर मिठास मय मठा चंद की जोति ॥६७२॥
जब जब तेरी बाल कैं चित्त चढ़ै मुसकानि ।
अधर-कपोल-बिलोचननि तब तब झलकति आनि ॥६७३॥
वासर मैं रबि हा तहीं जामैं निरखत भौंह ।
सुनौ लाल ता प्रेम के परी आइ बिच सौंह ॥६७४॥

कपट बचन अपराध तैं निपट अधिक दुखदानि।
जरे अंग मैं संकु ज्यौं होत बिथा की खानि ॥६७५॥

लाल तिहारैं बिरह नित छीन बाल के अंग।
जानति हौं चाहत दियौ निज सायुज्य अनंग ॥६७६॥

बाल अलप-जीवन भई ग्रीषम - सरित - सरूप।
अब रस परिपूरन करौ तुम घनस्याम अनूप ॥६७७॥

मुख-बिधु छिनु छिनु यौं रहै एक द्यौस हीं माँझ।
पून्यौ हुती प्रभात अब होति अमावस साँझ ॥६७८॥

कहा कहै रूखे बचन सातिक भाव अपार।
तरुनि छपायौ चहति तूं तिन की ओट पहार ॥६७९॥

तेरी मृदु मुसक्यानि लखि सरद - जोन्ह - सम रंग।
बाढ़ति मोद - पयोधि कैं दृगनि तरंग उतंग ॥६८०॥

अँसुवनि सौं छाए रहैं लाल बाल के नैन।
जब तैं तो दरसन छुट्यौ तब तैं कछू लखै न ॥६८१॥

बाल गहत दसननि लसत लाल-अधर-बर-बिंब।
मनौ दसत अरबिंद है सरद इंदु कौ बिंब ॥६८२॥

सखि छपाउ यह भाउ अब चाहत भयौ जनाउ।
अँगिया मैं उर की उमगि रह्यौ तनीनि तनाउ ॥६८३॥

अंजन - जुत अँसुवा ढरत लोचन मीन समान।
लसत नीलमनि दंड जुत मनौ मनोज - निसान ॥६८४॥

सेद - बिंदु चंदन सहित गिरत भाल तैं टूटि।
बिधु - उर तैं जनु बिधु - बधू परति मान करि छूटि ॥६८५॥

जाकैं बर बरजोर यह करत सकल तन ऐनि।
बरछी मनो मनोज की तिरछी चारु चितौनि ॥६८६॥

डीठि परस्पर दुहुनि की दई बदलि जनु मैन।
तिय - मुख मैं पिय - नैन हैं पिय - मुख मैं तिय-नैन ॥६८७॥

दुहूं ओर मुख दुहुनि के बिधु लौं करत प्रकास।
लाज-अँध्यारी दुहुनि की कहूं न पावति बास ॥६८८॥
कौन भांति कै बरनियै सुंदरता नँदनंद।
वाके मुख की भीख लै भयौ ज्योतिमय चंद ॥६८९॥
दिन मैं सुभग सरोज हैं निसि मैं सुंदर इंदु।
द्यौस राति हूं चारु अति वाकौ बदन गोबिंदु ॥६९०॥
दियौ दरस कीनी भली मोहन नंद-कुमार।
भलौ बन्यौ मुकतानि कौ अंग अंग सिंगार ॥६९१॥
लसत रतन-दरपन बिमल तो कपोल बसि नारि।
सनमुख रहि जो भाल मैं लीजै तिलक सँवारि ॥६९२॥
सुनत सदा गुरु-बचन हित रहत बिबुध-गन साथ।
भोगनाथ यह जानियत सदा भूमि-सुरनाथ ॥६९३॥
सरनागत-पालक महा दान जुद्ध अति धीर।
भोगनाथ नरनाथ यह पग्यौ रहत रस-बीर ॥६९४॥
भोगनाथ नरनाथ के लोचन लखत बिसाल।
रहत गरीबी गहि दुवन नीबी गहि वर बाल ॥६९५॥
जगति जगति दोऊ भुजा जग्य रूप कैं रूप।
भोगनाथ नरनाथ की भौंह निहारत भूप ॥६९६॥
तब लौं सजनी बोलियै ये गरबीले बैन।
जब लगि तुम निरखे नहीं भोगनाथ के नैन ॥६९७॥
तुरग अरब एराक के मनि-आभरन अनूप।
भोगनाथ सौं भीख लै भए भिखारी भूप ॥६९८॥
भोगनाथ नरनाथ की रीझ्यौ खीझ अनूप।
होत भिखारी भूप हैं भूप भिखारी-रूप ॥६९९॥
मुरलीधर गिरिधरन प्रभु पीतांबर घनस्याम।
बकी-बिदारन कंस-अरि चीर-हरन अभिराम ॥७००॥

पीत अँगुलिया पहिरि कै लाल लकुटिया हाथ।
धूरि भरे खेलत रहैं व्रजवासनि व्रजनाथ ॥७०१॥
तिरछी चितवनि स्याम की लसति राधिका ओर।
भोगनाथ कौं दीजियै यह मन-सुख बरजोर ॥७०२॥
मेरी मति मैं राम हैं कवि मेरे 'मतिराम'।
चित मेरौ आराम मैं चित मेरैं आराम ॥७०३॥

(४) रसनिधि-सतसई

लसत सरस सिंधुर-बदन भालथली नखतेस।
बिघन - हरन मंगल - करन गौरी - तनय गनेस ॥ १ ॥
नमो प्रेम - परमारथी इह जाचत हौं तोहि।
नंदलाल के चरन कौं दे मिलाइ किन मोहि ॥ २ ॥
नमो प्रेम जिहि नै कियौ हिय लग आइ प्रकास।
रँगरत बासी नाक कौं कान्ह गोपकन पास ॥ ३ ॥
निसि दिन गुंजत रहत जे बिरद गरीब-नेवाज।
है निज मधुकर-सुतन की कमल-नैन तुहि लाज ॥ ४ ॥
अब तौ प्रभु तारैं बनै नातर होत कुतार।
तुमहीं तारन-तरंन हौ सो मोरै आधार ॥ ५ ॥
सुबस बसत ते चित नगर जहाँ बसत हरि आइ।
ऐसै तौ ऊजर परी तन की किती सराइ ॥ ६ ॥
बिरह घाम इन पै जबै तनिकौ सही न जाइ।
चरन-कमल नँदलाल के तब दृग लागत जाइ ॥ ७ ॥
अदभुत गति यह रसिकनिधि सरस प्रीत की बात।
आवत ही मन साँवरो उर कौ तिमिर नसात ॥ ८ ॥
बिवछि गयौ मन लागि ज्यौं ललित त्रिभंगी संग।
सूधौ होत न और तनि नउत रहै वह अंग ॥ ९ ॥
कैइक स्वांग बनाइ कै नाचौ बहु बिधि नाच।
रीझत नहिं रिझवार वह बिना हिए के सांच ॥ १० ॥
जाकौ गति चाहत दियौ लेत अगति तैं राखि।
रसनिधि हैं या बात के भक्त भागवत साखि ॥ ११ ॥

चित है दियौ बिसार जनु बिरद गरीब-निवाज।
ब्रजबासिन के दरद कौं पहुँचत नहिं ब्रजराज॥ १२॥
अंबुज चरन पराग हर रही धरन ब्रज पूरि।
अजौं परस तन करत वह बिरह-बिथा को दूरि॥ १३॥
धनि गोपी धन ग्वाल वे धनि जसुदा धनि नंद।
जिनके मन आगे चलै धायौ परमानंद॥ १४॥
आदि अंत अरु मध्य मैं जो है स्वयं-प्रकास।
ताके चरनन की धरै रसनिधि मन मैं आस॥ १५॥
काल-पखेरू तैं सही यों तन खेत उबेर।
यह बिरियां ऐसे समय हरिया हरिया टेर॥ १६॥
यह प्रसिद्ध है रसिकनिधि मनमोहन की बात।
पनिवारे घट मैं बसै पनिघटि ओर न जात॥ १७॥
भूले तैं करतार के रागु न आवै रास।
यही समुझ कै राख तू मन करतारैं पास॥ १८॥
हरि कौ सुमिरौ हर घरी हरि हरि ठौर जुबान।
हर बिधि हरि के ह्वै रहौ रसनिधि संत सुजान॥ १९॥
मजनू लख लै ह्वै गए लैं लैं लैलै नाम।
अचरज कह जौ कृष्ण कहि मिलैं चरन अभिराम॥ २०॥
मनि समान जाके मनी नैकुँ न आवत पास।
रसनिधि भावुक करत है ताही मन मैं बास॥ २१॥
जिन काढ़ौ ब्रजनाथ जू मो करनी कौ छोर।
मो कर नीके कर गहौ रसनिधि नंदकिसोर॥ २२॥
रसनिधि वाकौ कहत हैं याही तैं करतार।
रहत निरंतर जगत कौ वाही के कर तार॥ २३॥
तेरी गति नँदलाड़ले कछू न जानी जाइ।
रजहू तैं छोटौ जु मन तामैं बसियत आइ॥ २४॥

सब सुख छाड़े नेहिया तुव सुख लेत उठाइ।
सब सुख चाहत सबि रहै तुव सुख नहीं मिठाइ॥ २५॥
मोहे नैकु न नैन जे मनमोहन कै रूप।
नीरस निपट निकाम ज्यौं बिन पानी कै कूप॥ २६॥
बेदब्यास सब खोजहीं नैकु न पावहिं ताहि।
मोहन मन दृग करनि-कर ब्रज-बालनि लिय जाहि॥ २७॥
मन तूं मोहन सौं हमै काहे पारत बीच।
पगौ रहत है रैन दिन रे बिषयारस नीच॥ २८॥
दंपति चरन सरोज पै जो अलि मन मड़राइ।
तिहि के दासन दास कौ रसनिधि संग सुहाइ॥ २९॥
जो चाहै तिहि चाहियै ज्यौं उर लेवै हार।
स्याम सनेहन के कछू रसनिधि मते अपार॥ ३०॥
घरी बजी घरयार सुन वजिकै कहत बजाइ।
बहुरि न पैहै यह घरी हरि-चरनन चित लाइ॥ ३१॥
हरि बिनु मन तुव कामना नैकु न आवै काम।
सपने के धन सौं भरे किहि लै अपनौ धाम॥ ३२॥
जिन वारे नँदलाल पै अपने मन धन ल्याइ।
उनके वारे की कछू मोपै कही न जाइ॥ ३३॥
हरि-पूजा हरि-भजन मैं सो ही ततपर होत।
हरि उर जाही आइ कै हरवर करै उदोत॥ ३४॥
रसनिधि मन मधुकर रमहिँ जो चरनांबुज माहिँ।
सरस अनखुलौ खुलत है खुलौ खुलौई नाहिँ॥ ३५॥
रूप दृगन श्रवनन सुजस रसना मैं हरिनाम।
रसनिधि मन मैं नित बसैं चरन कमल अभिराम॥ ३६॥
कपटौ जब लौं कपट नहिं सांच बिगुरदा धार।
तब लौं कैसे मिलैगौ प्रभु सांचौ रिझवार॥ ३७।

नेत नेत कहि निगम पुनि जाहि सकै नहिँ जान।
भयौ मनोहर आइ ब्रज वही सो हरि हर ध्यान॥ ३८॥
परम दया करि दास पै गुरू करी जब गौर।
रसनिधि मोहन भावतौ दरसायौ सब ठौर॥ ३६॥
पाप पुन्य अरु जोति तैं रवि ससि न्यारे जान।
जद्यपि सो सब घटन मैं प्रतिबिंबित है आन॥ ४०॥
आपु भँवर आपुहि कमल आपुहि रंग सुवास।
लेत आपुही बासना आपु लसत सब पास॥ ४१॥
पवन तुहीं पानी तुहीं तुहीं धरनि आकास।
तेज तुहीं पुनि जीव है तुहीं लियौ तन बास॥ ४२॥
वे खाए ते बेवफा वफा रहै ठहराइ।
मीनै कीनै दूर ज्यौं तेही तैं रह जाइ॥ ४३॥
कहूं हाकमी करत है कहूं बंदगी आइ।
हाकिम बंदा आपही दूजा नहीं दिखाइ॥ ४४॥
सांची सी यह बात है सुनियौ सज्जन संत।
स्वांगी तौ वह एक है वहि के स्वांग अनंत॥ ४५॥
कोटि घटन मैं विदित ज्यौं रवि प्रतिबिंब दिखाइ।
घट घट मैं त्यौहीं छिप्यौ स्वयं-प्रकासी आइ॥ ४६॥
आसिक अरु महबूब बिच आप तमासा कीन।
ह्यां है अलगरजी करै ह्यां है होइ अधीन॥ ४७॥
लेत देत आपन रहै सिर अपने नहिँ लेत।
ह्यां है चित को लेत है ह्यां है चित कौ देत॥ ४८॥
आपु फूल आपुहि भँवर आपु सुबास बसाइ।
आपुहि रस आपुहि रसिक लेत आपु रस आइ॥ ४६॥
ब्रह्म फटिक मन सम लसै घट घट मांझ सुजान।
निकट आय बरतै जो रँग सो रँग लगै दिखान॥ ५०॥

वही रंग वह आपुही भयौ तिली मैं तेल।
आपुन बास्यौ सुमन ह्वै आपुहि भयौ फुलेल॥ ५१॥
यौं सब जीवन की लखौ ब्रह्म सनातन आद।
ज्यौं माटी के घटन की माटी पै बुनियाद॥ ५२॥
जलहूं मैं पुनि आपही थलहूं मैं पुनि आपु।
सब जीवन मैं आपु है लसत निरालौ आपु॥ ५३॥
अनल दिवैया आपु ही अनल लिवैया आपु।
अनल मांझ जो अनिल वह रसनिधि सोई आपु॥ ५४॥
मोहनवारौ आपु ही मन मानिक पुनि आपु।
पोहनवारौ आपु ही जोहनिहारौ आपु॥ ५५॥
बंसी हूं मैं आपु ही सप्त सुरन मैं आपु।
बजवैया पुनि आपु ही रिझवैया पुनि आपु॥ ५६॥
बीज आपु जर आपु ही डार पात पुनि आपु।
फूलहि मैं पुनि आपु फल रस मैं पुनि निधि आपु॥५७॥
पंचन पंच मिलाइ कै जीव ब्रह्म मैं लीन।
जीवन-मुक्त कहावही रसनिधि वह परबीन॥ ५८॥
आसिक हू पुनि आपु त्यौं महबूबा पुनि आपु।
चाहनहारौ आपु त्यौं बेपरवाही आपु॥ ५९॥
कुदरत वाकी भर रही रसनिधि सब ही जाग।
ईंधन बिन बनियौ रहै ज्यौं पाहन मैं आग॥ ६०॥
अलख सबैई लखत वह लख्यौ न काहू जाय।
दृग तारिन के तिलक की झांकि न झांकी जाइ॥ ६१॥
तिलन मांझ पुनि आपु त्यौं सुमन मांझ पुनि आपु।
बासनवारौ आपु त्यौं पेरनवारौ आपु॥ ६२॥
गरजन मैं पुनि आपु ही बरसन मैं पुनि आपु।
सुरझन मैं पुनि आपु त्यौं उरझन मैं पुनि आपु॥ ६३॥

कहुँ गावै नाचै कहूं कहूं देत है तार।
कहूं तमासा देखही आपु बैठ रिझवार ॥ ६४ ॥
नर पसु कीट पतंग मैं थावर जंगम मेल।
ओट लियै खेलत रहै नयौ खिलारी खेल ॥ ६५ ॥
आपुहि वा महबूब मैं बेदरदी सरसाइ।
आपुहि आसिक मैं इहां दरद अँगेजत आइ ॥ ६६ ॥
हिंदू मैं क्या और है मुसलमान मैं और।
साहिब सबका एक है व्याप रहा सब ठौर ॥ ६७ ॥
कहुँ नाचत गावत कहूं कहूं बजावत बीन।
सब मैं राजत आपु ही सब ही कला प्रबीन ॥ ६८ ॥
जल समान माया लहर रबि समान प्रभु एक।
लहि वाके प्रतिबिंब कौं नाचत भांति अनेक ॥ ६९ ॥
राई कौ बीसौ हिसा ताहू मैं पुनि आइ।
प्रभु बिन खाली ठौर कहुँ इतनौहूं न दिखाइ ॥ ७० ॥
अलख जात इन दृगनि सौं बिदित न देखी जाइ।
प्रेम कांति वाकी प्रगट सब ही ठौर दिखाइ ॥ ७१ ॥
जदपि रहौ है भावतौ सकल जगत भरपूर।
बल जैयै वा ठौर की जहँ ह्वै करै जहूर ॥ ७२ ॥
कौन रीझवायै सकै को बस करै रिझाइ।
आपु रिझावन ह्वै रह्यौ आपुहि रीझत आइ ॥ ७३ ॥
पंच तत्त्व की देह मैं त्यौं सुर व्यापक होइ।
बिस्वरूप मैं ब्रह्म त्यौं व्यापक जानौ सोइ ॥ ७४ ॥
रस ही मैं औ रसिक मैं आपुहि कियौ उदोत।
स्वाति-बूंद मैं आप ही आपहि चात्रिक होत ॥ ७५ ॥
घट भीतर जो बसत है दृगनस वाकी जोत।
देखत सब पै सबन मैं बिरल न जाहिर होत ॥ ७६ ॥

अलख सबै जापै कहै लखौ कौन बिधि जाइ।
पाक जात की रसिकनिधि जगत सिफात दिखाइ॥ ७७॥
करत फिरत मन बावरे आप नहीं पहिचान।
तो ही मैं परमातमा लेत नहीं पहिचान॥ ७८॥
तूं सज्जन या बात कौं समुझ देख मन माहिँ।
अरे दया मैं जो मजा सो जुलमन मैं नाहिँ॥ ७९॥
सज्जन हो या बात को करि देखो जिय गौर।
बोलन चितवन चलन वह दरदवंत कौ और॥ ८०॥
मीता तूं या बात कौं हिए गौर करि हेर।
दरदवंत बेदरद कौं निसि बासर कौं फेर॥ ८१॥
कठिन दुहूं बिधि दीप कौ सुन हो मीत सुजान।
सब निसि बिन देखै जरै मरै लखै मुख भान॥ ८२॥
सीख सुधाई तीर तैं तज गति कुटिल कमान।
भावै चिल्ला बैठ तूं भावै बिच मैदान॥ ८३॥
बिन आदर जौं रूप नृप छबि मुकताहल देत।
दृग जाचक ये दीठ कर बिन सनमान न लेत॥ ८४॥
सज्जन पास न कहु अरे ये अनसमझी बात।
मोम-रदन कहुँ लोह के चना चबाए जात॥ ८५॥
जब देखौ तब भलन तैं सजन भलाई होहि।
जारै जारै अगर ज्यौं तजत नहीं खसबोहि॥ ८६॥
बेदाना सै होत है दाना एक किनार।
बेदाना नहिँ आदरै दाना एक अनार॥ ८७॥
प्रीतम इतनी बात कौ हिय कर देखु बिचार।
बिनु गुन होत सु नैकहूं सुमन हिए कौ हार॥ ८८॥
हित करियत यह भांति सौं मिलियत है वह भांत।
छीर नीर तैं पूछ लै हित करिबे की बात॥ ८९॥

बढ़त आपनौ गोत को और सबै अनखाइ।
सुहृद नैन नैना बढ़े देखत हियौ सिहाइ ॥ ९० ॥
पसु पच्छी हू जानहीं अपनी अपनी पीर।
तब सुजान जानौं तुमैं जब जानौ पर-पीर ॥ ९१ ॥
इतनौई कहनो हतौ प्रीतम तोसौं मोहि।
मान राखबी बात तौ मान राखनौ तोहि ॥ ९२ ॥
मदन गवन जब करत है जाही तन मैं आइ।
छबि वाकी सब तैं सरस नैनन वही दिखाइ ॥ ९३ ॥
नेह मौन छबि मधुरता मैदा रूप मिलाय।
बेचत हलुवाई मदन हलुआ सरस बनाय ॥ ९४ ॥
मदन भूप राजै जहां सहसा सकौ न जाइ।
रूप चांदनी मैं धरौ पौछ पलन दृग पाइ ॥ ९५ ॥
अरे जरे की पीर कौ तू तौ जानत है न।
नेहनि जारत फिरत तूं जान बूझ कै मैन ॥ ९६ ॥
बिन हूं बाग लगाम वह चाबुक लेत न हाथ।
फेरत बाहक मैन लख नैन हरिन एक साथ ॥ ९७ ॥
अबलख नैन तुरंग ये पलकैं पाखर डार।
आयौ मदन सवार है अब को सकै सम्हार ॥ ९८ ॥
सारी डाली हरित अति लोचन मुंडा डार।
अलिकावलि बागुर रची खेलत मदन सिकार ॥ ९९ ॥
कहन सुनन चितवन चलन बिहँसन सहज सुभाइ।
सब अंगन कौ देत है आइ अनंग सिखाइ ॥ १०० ॥
कीन्हें विदित सु मार नै नेही जिते सुमार।
आवत नहीं सुमार मैं ते वे किए सुमार ॥ १०१ ॥
बाल - बदन को मदन - नृप रूप - इजाफा दीन।
नैन-गजन पर भौंह जनु मीनकेत धर लीन ॥ १०२ ॥

बिधए मैन खिलार नै रूप - जाल दृग - मीन।
रहत सदाई जे भए चपल गतिन रसलीन॥१०३॥
लखौ मैन तै मैन मैं यह अदभुत गत आइ।
वह पिघलत लगि भापि कै यह लगि मन पिघलाइ॥१०४॥
वदन - सरोबर तैं भरे सरस रूप - रस मैन।
डोठ-डोर सौं बांधि कै डोलत सुंदर नैन॥१०५॥
करत न जब तक मदन - नृप रूप - सनद पर छाप।
तब तक दृग-दीवान ढिग होत न वाकी थाप॥१०६॥
छवि तावन यह तिल सिला रूप सजल लख नैन।
कलपै दै हित कलप पै मन पट धोवी मैन॥१०७॥
जब तैं दीन्हीं है इन्हैं मैन महीपति मान।
चित चुगली लागे करन नैना लगि लगि कान॥१०८॥
सिद्ध कला जब तैं इन्हैं लला पढ़ाई मैन।
सुरजन मन बस करत हैं तब तैं तेरे नैन॥१०९॥
नेही - दृग - दीवान नै जब तैं कीनी थाप।
रूप - सनद पै कर दई मदन भूप तिल - छाप॥११०॥
नेह नगर मैं कहि फिरै मैन लाग मनु कान।
रुजू होव नँदलाल सैं चित वित ल्याइ सुजान॥१११॥
कोमल किसलय दलनि सैं जे तिय हैं अभिराम।
दहत सतन कौ आइ कै देख अतन के काम॥११२॥
रूप - नगर वस मदन नृप दृग - जासूस लगाइ।
नेहिनि - मन कौ भेद उन लीनौ तुरत मँगाइ॥११३॥
रूप - तख्त पै आइ कै बैठौ मदन सु भूप।
नेही - दृग मन - नजर लै राजत द्वार अनूप॥११४॥
बदन - बहल कुंडल - चका भौंह - जुवा हय - नैन।
फेरत चित - मैदान मैं बहलवान वर मैन॥११५॥

नागर सागर रूप कौ जोबन तरल तरंग।
सकत न तर छबि भँवर पर मन बूड़त सब अंग ॥११६॥
अजब सांवलौ रूप लखि दृगन उरौंई जाइ।
जिहि उर तन मो उर तिमिर तुरत दुरौंई जाइ ॥११७॥
रूप-समुद छबि-रस भरौ अति ही सरस सुजान।
ता मैं तैं भर लेत दृग अपनै घट उनमान ॥११८॥
अरे मीत या बात कौ देख हिए कर गौर।
रूप दुपहरी छांह कब ठहरानी इक ठौर ॥११९॥
रूप - बाग मैं रहत हैं बागवान तुव नैन।
मन-धन लै छबि-अमृत-फल दैन कहत पै दैं न ॥१२०॥
आंखिन के जब पल अधर हेरत चिबुकै जात।
मधुर रूप सोहै भरौ हिय तक जाकौ गात ॥१२१॥
लाल भाल पै लसत है सुंदर बिंदी लाल।
कियौ तिलक अनुराग ज्यौं लख कै रूप रसाल ॥१२२॥
उर दियला राख्यौ जु मैं सरस सनेह भराइ।
बेग भावते कीजियै रूप रोसनी आइ ॥१२३॥
रूप - सिंधु मैं जाइ कै जब तैं परस्यौ नेह।
तब तैं कैयौ रंग सौं रूप दिखाई देह ॥१२४॥
प्रीतम - रूप - कजाक के समसर कोई नाहिँ।
छबि-फांसी दै दृग गरै मन-धन कौं लै जाहिँ ॥१२५॥
बिधि ने जग मैं तैं रच्यौ ऐसी भांति अनूप।
आभूषन कौ है लला आभूषन तुव रूप ॥१२६॥
मन - कन पलटै मिलत है जिन्हैं रूप-धन-माल।
तिनहीं के बिधि ने रचे जग मैं भाल बिसाल ॥१२७॥
रूप - चांदनी की गढ़ो स्वच्छ राखिबे हेत।
दृग - फरास हाजिर खड़े बरुनि बहारू देत ॥१२८॥

तौ कैसै तन पालते नेही - नैन - मराल।
जौ न पावते रूप-सर छवि - मुक्ताहल लाल ॥१२९॥
रूप - दीप जेतौ धरौ मन - फानूस दुराइ।
तऊ जोत वाकी दृगन होत प्रकासित आइ ॥१३०॥
सुंदर जोबन रूप जो बसुधा मैं न समाइ।
दृग - तारन - तिल विच तिन्हैं नेही धरत लुकाइ ॥१३१॥
छके रूप - मद - पान कै ठहरत नहिँ पल पाइ।
लटपटाइ दृग - दीठ कर गहति प्रीति - पट धाइ ॥१३२॥
बेपरवाही बांध बँध राख्यौ मन अटकाइ।
नतर कुरूप - प्रवाह उहि देतौ कितै बहाइ ॥१३३॥
बहुत निकाइन तै लख्यौ तेरौ रूप निकाइ।
नव अनुरागी दृग रहे तेरे हात विकाइ ॥१३४॥
मलयागिरि-चंदन सरस घिसि घिसि ल्यावत कूर।
जात तपन कहुँ दृगन की बिन वा रूप-कपूर ॥१३५॥
ज्यौं उत रूप अपार है त्यौं इत चाह अपार।
नैन विचौंही दुहुन कौ पाइ सकैं नहिँ पार ॥१३६॥
रूप - निकाई मीत की ह्यां तक लौं अधिकात।
जात न हेरी निमिख कै रीझहि रीझी जात ॥१३७॥
और सवादन पै लखौ भूलहु चित्त न देइ।
अँखियां मोहन रूप कौ विन रसना रस लेइ ॥१३८॥
छवि कन दै दृग जाचकन जे नहिँ पालत प्रान।
रूप - रासि उनकौ दई दई कहा धौं जान ॥१३९॥
पलक पुरौ नहिँ होइ दृग निसि नारी के साथ।
रूप-कूप तैं कौन विधि रस लागत है हाथ ॥१४०॥
निज करनी लखि आपनी रहियत है अरगाइ।
काचे घट चहियत भरौ नव सरूप-रस ल्याइ ॥१४१॥

दृग रचना जानत सही मधुर रूप रस हौन।
सक्कर मय पावत सुनी कहूं छ्वाट की गौन ॥१४२॥
रूप - कहर - दरियाव मैं तरिबौ है न सलाह।
नैनन समुझावत रहै निसि दिन ज्ञान मलाह ॥१४३॥
जो भावै सो कर लला इन्हैं बांध वा छोर।
हैं तुव सुबरन रूप के ये मेरे दृग चोर ॥१४४॥
तुव बन मैं खोयौ गयौ मन - मानिक ब्रजराज।
लगे संग ही फिरत हैं नैना पावन काज ॥१४५॥
मदन जुवा के खेल मैं रूप सई कौ देत।
दुवा और कौ मैट कै लाल तियाही लेत ॥१४६॥
रूप - नगर मैं बसत है नगर - सेठ तुव नैन।
मन - जामिन लै नेहियन लगे पुँजी छवि दैन ॥१४७॥
ओर - वार दृग जे परै तेरे रूप अहोर।
मन - मलाह अब सकत नहिँ यातैं इन्हैं वहोर ॥१४८॥
वरुनी जोती पल पला डांडी भौंह अनूप।
मन पसंग तौलै सुदृग हरुवौ गरुवौ रूप ॥१४९॥
मुकत स्वेदकन चिबुक लख लखी न अलि कै जाल।
वदन रूप-रस मैं फँस्यौ रसनिधि सुमन सराल ॥१५०॥
जौ नहिँ करतौ भावतौ रूप - भूप - प्रतिपाल।
तौ इन लोभी दृगन कौ होतौ कौन हवाल ॥१५१॥
भले छकाए नैन ये रूप सबो के कैफ।
देत न मृदु मुसक्यान की गजकि आइ वेहैफ ॥१५२॥
सरस रूप कौ भार पल सहि न सकैं सुकुमार।
याही तैं ये पलक जनु झुकि आवैं हर वार ॥१५३॥
पल - पिँजरन मैं दृग-सुवा जदपि मरत है प्यास।
तदपि तलफ जिय राखही रूप-दरस-रस-आस ॥१५४॥

रूप भूप कौ हुकुम यह इतनी किन कहि देव।
बिना सनेहा दृग हियौ आवन इहाँ न देव ॥१५५॥
यारि फेर कै आप पै जरति न मोरे अंग।
रूप-रोसनी पै झपै नेही-नैन-पतंग ॥१५६॥
खोर खोर सब देत हैं मेरे नैनन खोर।
लाल मनोहर रूप कौ देत न कोऊ खोर ॥१५७॥
बिरह-पीर कौ नैंन ये सकैं नहीं पल कांध।
मीत आइ कै तूं इन्हैं रूप पोठ दै बांध ॥१५८॥
रूप-ठगौरी डार मन-मोहन लैगौ साथ।
तब तैं सांसैं भरत है नारी नारी हाथ ॥१५९॥
रूप किरकिरी पर गई जब तैं दृगन मँझार।
लाल भए तब तैं रहत बरषत अँसुवन धार ॥१६०॥
लाल-रूप के अमृत-फल दृग-द्रुम लागत आइ।
याही तैं विधि नै दई बरुनी-बारि बनाइ ॥१६१॥
जा दुकान कौ रूप मद अमली दृगन रेहाइ।
जिय गहनै धर पियत है बार बार हां जाइ ॥१६२॥
उर-तम मैं आवत डरौ जौ तुम नंदकुमार।
चित-सुरोसनी रूप तुव लियै खड़े दृग द्वार ॥१६३॥
कबहुं न ये आवत इहां कुहू-निसा लखि लेत।
झप झांकति चहुँ ओर तैं कहु चकोर केहि हेत ॥१६४॥
रूप-स्वाद कौ दृगनि सम जौ पल लेते जान।
मीत लखत होते नहीं ये विच आगे आन ॥१६५॥
ज़ुलुफ-निसैनी पै चढ़े दृग धर पलकैं पाइ।
रूप-महल छबि-रोसनी तब देखै है आइ ॥१६६॥
माफी की तौ कर दई सनद दृगन कर हेत।
रूप जिनस पल गौन मैं काहे भरन न देत ॥१६७॥

अरे बैद चहिए दवा सो नहिं तेरे पास।
नैन जखम तिनि रूप रस आवत हैगौ रास ॥१६८॥
नित हित सौं पालत रहै रूप-भूप नँदलाल।
छवि-पनिवारन मैं मनौ द्दग पर वारन ह्वाल ॥१६९॥
मीत सुमुख की जोत तैा नेहै राखत पोषि।
दीप-जोत तैा लेत है सिर सौं नेहै सोपि ॥१७०॥
सकै सताइ न पल इन्है विरहा-अनिल सुछंद।
न जरै जे नजरै रहै प्रीतम तुव मुखचंद ॥१७१॥
जब जब वह ससि देत है अपनी कला गँवाइ।
तब तब तुव मुख-चंद पै कला माँगि लै जाइ ॥१७२॥
कुहू-निसा तिथि-पत्र मैं बाचन कौ रह जाइ।
तुव मुख-ससि की चांदनी उदै करत है आइ ॥१७३॥
वह ससि निसि मैं देखिए तारन मांह सुछंद।
निसि दिन द्दग-तारनि लसै तुव मुख तारन चंद ॥१७४॥
द्दग-मृग नेहनि के कहूं फांद न पावहि जान।
जुलफ-फँदा मुख-भूमि पै रोपे वधिक-सुजान ॥१७५॥
सुमन सहित आंसू-उदक पल-अँजुरिन भरि लेत।
नैन-व्रती तुव चंद-मुख देखि अरघ कौं देत ॥१७६॥
छबि-धन पैयत अमित जहँ लख मुख-चंद उदोत।
मन-नग मोहन-मीत पै वारै वारौ होत ॥१७७॥
भावंता मुख स्वच्छ पै जो यह तिल दरसाइ।
मो द्दग-तारन मैं जु तिल ताकी आभा आइ ॥१७८॥
मदन कहन जब सौं लगे तब तैं चतुर बिचार।
हरौ गयौ याकौ सुमद मोहन-वदन निहार ॥१७९॥
हीरा भुज ताबीज मैं सोहत है यह बान।
चंद लखन मुख मीत जनु लग्यौ भुजा सन आन ॥१८०॥

जब लग हिय - दरपन रहै कपट - मोरचा छाइ।
तब लग सुंदर मीत - मुख कैसे द्दगन दिखाइ ॥१८१॥
जातैं ससि तुव मुख लखै मेरो चित्त सिहाइ।
भावंता उनिहार कछु तो मैं पैयत आइ ॥१८२॥
नंदमहर के बगर - तन अब मेरै को जाइ।
नाहक कहुँ गड़ि जाइगौ हित - कांटौ मन पाइ ॥१८३॥
नेही तिल रसनिधि लखौ सुमन संग पिरि जाइ।
निरमोही मुख के जु तिल सुमन पेरि बच जाइ ॥१८४॥
तिल न होइ मुख - मीत पर जानौ वाकौ हेत।
रूप खजाने की मनौ हबसी चौकी देत ॥१८५॥
मोहन बँसुरी लेत है बजि कै बसुरी जीत।
बसुरी यासौं चलत नहिँ बस कर करत अनीत ॥१८६॥
कानन लग कै तैं हमैं कानन दियौ बसाइ।
सुचिती ह्वै तैं बाँसुरी बस अब बृज मैं आइ ॥१८७॥
ऐसे जौ नित बाँसुरी वह बजाइहै आन।
तौ कैसे रहि सकैगी या बृज मैं कुलकान ॥१८८॥
मत बजाय इत आइ कै मोहन मुरली - तान।
हरि लैहै काहू मनै नाहक लगिहै कान ॥१८९॥
मोहन बसुरी सौं कछू मेरौ बस न बसाइ।
सुर - रसरी सौं स्रवन - मगु बांधि मनै लै जाइ ॥१९०॥
सुनियत मीननि - मुख लगै बंसी अबै सुजान।
तेरी ये बंसी लगै मीनकेत कौ बान ॥१९१॥
अब लग बेधत मन हते द्दग अनियारे बान।
अब बंसी बेधन लगी सप्त सुरन सौं प्रान ॥१९२॥
बिछुरत सुंदर अधर तैं रहत न जिहि घट सांस।
मुरली सम पाई न हम प्रेम प्रीत को आंस ॥१९३॥

तोहि बजै बिष जाइ चढ़ि आइ जात मन मैर।
बंसी तेरे बैर कौ घर घर सुनियत घैर ॥१९४॥
करत त्रिभंगी मोहनहिँ मुरली लग अधरान।
क्यौं न तजैँ ताके सुनै और सबै कुलकान ॥१९५॥
मैन चँपु हित सांट की डीठ लगाइ डगै न।
धरत अहेरी मन हियै तेरे खंजन नैन ॥१९६॥
रूप - नगर दृग - जोगिया फिरत सु फेरी देत।
छबि - मन पावत है जहां पल - झोरी भरि लेत ॥१९७॥
तुव अनियारे दृगन कौ सुनियत जग मैं सोर।
अजमावत का फिरत हौ कमजोरन सौं जोर ॥१९८॥
नजरैईं सब रहत हैं एक नजरिया वोर।
उतने ही मैं चोरही चित वित तुव दृग - चोर ॥१९९॥
रसनिधि सुंदर मीत के रंग चुचौहैं नैन।
मन - पट कौं कर देत हैं तुरत सुरँग ये नैन ॥२००॥
कजरारे दृग की घटा जब उनवै जिहि ओर।
बरसि सिरावै पुहुम - उर रूप - झलान - झकोर ॥२०१॥
कैसे मन धन लूटते भावंता के नैन।
मनमथ जौ देते नहीं इनकर बरछी सैन ॥२०२॥
मतवारे दृग - गज कहूं ऐसे दीजत छोड़।
नेही - दृग - तन क्यौं सकैं इनकी झोकैं ओड़ ॥२०३॥
मैन - महावत दृग - गजन हुलसत वाही ओर।
लाखन मैं लखि लेत है हिय ही कौ चित-चोर ॥२०४॥
मन धन तौ राख्यौ हतौ मैं दीबे कौ तोहि।
नैन - कजाकन पै अरे क्यौं लुटवायो मोहि ॥२०५॥
प्रेम - नगर दृग - जोगिया निस दिन फेरी देत।
दरस - भीख नँदलाल पै पल - झोरिन भरि लेत ॥२०६॥

दरस - दान तो पै चहै द्दग पल - अँजुरी बोड़ ।
पूरन कर मन कामना इनै बिमुख मत छोड़ ॥२०७॥
तब जानैं ससि ओर पै तोए लेव चलाय ।
द्दग - चकोर तौ रावरी खासी रैयत आय ॥२०८॥
जौ नहिं देतौ अतन कहुँ द्दगन हरबली आय ।
मन-मवास जे सुतिन के को सर करतौ जाय ॥२०९॥
देतौ जौ नहिं भेद कहुँ नैनन सों मिलि नैन ।
मीत उजागर आवतौ कैसे मन धन लैन ॥२१०॥
छूटे द्दग गज - मीत के बिच यह प्रेम - बजार ।
दीजौ नैन - दुकान के महुकम पलक - किवार ॥२११॥
जिहि लालच मन-धन दियौ द्दगन मीत तुहि ल्याइ ।
काहे ते वह रूप - रस देत न इनकों प्याइ ॥२१२॥
मोहन - छबि - दरियाव मैं जाइ सकै नहिं पार ।
झझकि रहत है देखि कै पैरवार द्दग - वार ॥२१३॥
प्रथम सुमिर तुव द्दगन कौं जे प्रनाम करि लेत ।
मीता उनकौं जगत मैं जादा आदर देत ॥२१४॥
नातवान तन पै सुनो एती ताकत है न ।
मत झुकाव मों सामुहै गज - मतवारे नैन ॥२१५॥
मीत नीत की चाल ये चल जानत हू है न ।
छबि - सैना सजि धावहीं अबलन पै तुव नैन ॥२१६॥
ऐसो तौ कीन्हो हतो कछु गुनाह भी मैं न ।
मो तन पै झुकावही गज - मतवारे नैन ॥२१७॥
जंब तैं नागर मन बसौ आइ सु मैना-मैन ।
पहिराए करकै नसा चित - चोरी को नैन ॥२१८॥
सिसुताई के अमल मैं दबे रहत हैं नैन ।
मैन अमल के होत कछु लगै पयानौ दैन ॥२१९॥

मीत विदित ये बात ही नैन तुम्हारे आइ।
बरुनी कर जित देत हैं नेहन सीस चलाइ ॥२२०॥
डीठ-बरत पर नैन चढ़ि कैयक पलटा लेत।
देख तमासौ रीझि कै नेही मन-धन देत ॥२२१॥
जिहि मग दौरत निरदई तेरे नैन कजाक।
तेहि मग फिरत सनेहिया किये गरेबां चाक ॥२२२॥
आप बसाते वहुत सौं मन कौ कियौ बचाय।
हौ न लची दृग लालचिन दीन्हो मनहि लचाय ॥२२३॥
रसनिधि नैनन परि गई कछुक अनोखी बान।
पीवत ही छबि पल मधुर लगै लखेटी आन ॥२२४॥
रूप-ठगौरी डारि कै मोहन गौ चित चोरि।
अंजन मिस जनु नैन ये पियत हलाहल घोरि ॥२२५॥
गुरुजन-नैन-विजातियन परी कौन यह बान।
प्रीतम-मुख अवलोकतन होत जु आड़े आन ॥२२६॥
दृग-द्विज ये उठि प्रातही करि अँसुवनि असनान।
रूप-भूप पै जाचहीं छबि-मुकताहल-दान ॥२२७॥
अरुन तगा कै नैन जनु गरै जनेऊ डार।
रूप-दान मांगत रहैं ये पल करन पसार ॥२२८॥
त्रपत न मानत नैन ये लेत रूप-रस-दान।
रहत पसारै लोभिया निस बासर पल-पान ॥२२९॥
जब तैं वह सिर पढ़ि दियौ हेरन मैं हित बील।
पल घर मैं बैठत नहीं तब तैं दृग हुइ सील ॥२३०॥
दृग मृग-नैननि के कहूं फांद न पावै जान।
जुलफ-फँदा मुख-भूमि पर रोपै बधिक सुजान ॥२३१॥
मत चलाव मो सामुहै इनकौ तैं अरु मार।
नजर-कटारी बांकुरी पल-म्यानै धर यार ॥२३२॥

रीझत आपु नजार कै लखि छबि नंदकुमार।
मन कौ डारत वार जे नोखे दृग रिझवार ॥२३३॥
नेह - नगर मैं कहु तुहीं कौन बसे सुख चैन।
मन - धन लूटत सहज मैं लाल - बटपरा - नैन ॥२३४।
देखत नैन न देखती यह डर मोहन ओर।
आप लागि करिहैं करन मेरे मन पर जोर ॥२३५॥
सुरत - सहेली बाल - छबि नित सँवार कै ल्याइ।
दृग प्रीतम कौं देत है आछी भांति मिलाइ ॥२३६॥
साधत इक छूटत सहस लगत अमित दृग गात।
अरजुन सम बानावली तेरे दृग करि जात ॥२३७॥
तेरे नैन मसालची रूप - मसाल दिखाइ।
नेही - तन तैं बिरह - तम दीनौ दूर भजाइ ॥२३८॥
मेरे जान सुजान तुव नैन - किलकिला आइ।
हृदय - सिंधु तैं मीन - मन तुरत सुधरि लै जाइ ॥२३९॥
सज्जन सांची बात यह यामैं नहीं बिबाद।
बिना जीभ के लेत दृग मोहन - रूप - सवाद ॥२४०॥
जे अँखियां बैरा रहीं लगै बिरह की बाइ।
प्रीतम - पग - रज कौ तिन्हैं अंजन देहु लगाइ ॥२४१॥
हेरत मोहन - रूप कौं बृज - बाला न अघाइ।
चहूं ओर तैं दौर कै दृग - कोरन मिल जाइ ॥२४२॥
अंजन होइ न लसत तौ ढिग इन नैन बिसाल।
पहिराई जनु मदन गुर स्याम बंदनी माल ॥२४३॥
विदित न सनमुख ह्वै सकैं अँखियां बड़ी लजोर।
बरुनी सिरकिन - ओट ह्वै हेरत मोहन ओर ॥२४४॥
अवगाहे इन रूप - निधि जब तैं नैन - मलाह।
तब तैं मन - नृप चलत है इनही बूझि सलाह ॥२४५॥

जामै ये छवि पावतीं छवि पावंता भात।
रसनिधि अँखियां ता हियै नित अवलोकि सिहात ॥२४६॥
दृग - दुस्सासन लाल के ज्यौं ज्यौं खैंचत जात।
त्यौं त्यौं द्रौपदि - चीर लौं मन - पट बाढ़त जात ॥२४७॥
बाहक दृग नँदलाल के ऐंड़न ऐंठी घाल।
आड़ि छुटावति मन - हयन तुरत चलावत चाल ॥२४८॥
दृग दरजी बरुनी सुई रेसम डोरे लाल।
मगजी ज्यौं मो मन सियौ तुव दामन सौं लाल ॥२४९॥
भावंता लखि लगत पल जानत को केहि हेत।
पल - ओटन सौं नैन ये रूप - स्वाद कौं लेत ॥२५०॥
जब जब निकसत भावतौ रसनिधि इहि मग आइ।
नेह अतर लै डीठ कर लोचन देत लगाइ ॥२५१॥
बँहकाए तैं और के ये ही तैं जनि बैकु।
देखन दै मुखचंद कौ नैन - चकोरन नैकु ॥२५२॥
थिरकत सहज सुभाव सौं चलत चपल गत सैन।
मनरंजन रिझवार के खंजन तेरे नैन ॥२५३॥
नींद निरादर देत है नेही - दृग इहि आस।
कबहुँक देखौं उदित ह्वै भावंता दृग पास ॥२५४॥
खिसक्यौ जल किन लेत दृग भर पलकन मैं आल।
बिचलत खैंचत लाज कौं मचलत लखि नँदलाल ॥२५५॥
दृगनि दृगन सौं मिल कियौ भेद प्रथम ही जाइ।
मैं न दियौ मन उन लियौ मुहिसल मैन लगाइ ॥२५६॥
बिधिवत छबि के फंद सौं नेही मन अभिराम।
खंजन - दृग लखि मीत कौ करत बधिक के काम ॥२५७॥
तुव दृग सतरँज - बाज सौं मेरौ बस न बसात।
पादशाह मन कौं करै छबि सह दैकर मात ॥२५८॥

दैन लगत है पास जब बिरह - अहेरी आइ।
प्रीतम - रूप - मवास बिच बचत नैन - मृग जाइ ॥२५९॥
अंजन आंदू सौं भरे जद्यपि तुव गज नैन।
तदपि चलावत रहत हैं झुकि झुकि चोटैं सैन ॥२६०॥
खैंचे अंकुस-लाज के रूप - पलक कर है न।
धीरज - द्रुम तोरत फिरैं गज कोमल तुव नैन ॥२६१॥
रस रेसम मैं जो दई गांठ अनख झकझोर।
ते तुव दृग नख माहिँ सौं सहजहिँ डारत छोर ॥२६२॥
डोठ लगत डर ईठ तन इकटक सकत न हेर।
तऊ लेत दृग लालची चोरी चोरा हेर ॥२६३॥
बास्यौ सुमन - सुबास तैं जब तैं पीतम आइ।
तब तैं इन अलि दृगन पर पास न छोड़ौ जाइ ॥२६४॥
ठगिया तेरे नैन ये छल बल भरे कितेब।
कतरत पल मकराज सौं नेही मन की जेब ॥२६५॥
जुरत दृगन सौं दृगन की पल बागैं मुर जाइँ।
पैने नेजा नजर के सौंहै उर उर जाइ ॥२६६॥
इनमैं ह्वै दरसात है हर मूरत की लोइ।
यातैं लोइन कहत हैं इन सौं मिल सब कोइ ॥२६७॥
नैन - बान जिहि उरछि है ससकत लेत उसास।
मीत सु उनकी है दवा मिलै न बैदन पास ॥२६८॥
उत अलगरजी चाहि इत लगी हियै सर सान।
दृग अनुरागिन कौ परी कठिन दुहूँ बिधि आन ॥२६९॥
बिरह बांह कह सकत नहिँ होय गए अति छीन।
नैन झिलमिली जानि कै पल बल बारे दीन ॥२७०॥
बदन - कूप तैं रूप - रस दृग बिन गुन भर लेत।
और कूप बिन गुन पथिक प्यासे फेरी देत ॥२७१॥

लघु मिलनो बिछुरन घनो ता बिच बैरिन लाज।
दृग अनुरागी भावते कछु कह करैं इलाज ॥२७२॥
भूले लोभी नैन सौं छबि-रस आए चाख।
दृग-तारे दै कै इन्हैं नजरबंद कर राख ॥२७३॥
ताजी ताजी गतनि ये तब तैं सीखैं सैन।
गाहक मन राजी करैं बाजी तेरे नैन ॥२७४॥
दृग-नकीब ठाढ़े रहत पल-पैरन यह हेत।
मन-मजलिस मैं मीत जहँ और भ्रूकन ना देत ॥२७५॥
रूप-इमारत मैं इन्हैं जौं तू दए लगाइ।
दरस-मजूरी दै लला नैन-मजूरन आइ ॥२७६॥
प्रथमहि नैन-मलाह जे लेत सुनेह लगाइ।
तब मझयावत जाय कै गहिर रूप दरियाइ ॥२७७॥
मन मैं आन न आनही अलबेले तुव नैन।
ता मैं भयौ हिमायती आइ सो इनकौ मैन ॥२७८॥
मीत बिरह की पीर कौ सकै न पल दृग कांध।
रूप-कपूर लगाइ कै प्रीत-पटी सौं बांध ॥२७९॥
गैना नैना लाल के हित मैं जानत नाह।
नहे नेह की बहल मैं धुरला जानत नाह ॥२८०॥
बनै जहां के तहँ रहै लगै होइ उर पार।
बिधि तो हीं कौं रचि दियौ ऐसे दृग हथयार ॥२८१॥
प्रथमहि दारू खाइ कै पीछै गोली खाहि।
तेरे नैन बँदूक ये चोटहिँ चूकत नाहिँ ॥२८२॥
गुरुजन-डर सौं चतुरई बरुनी झिलमैं डार।
निधरक प्रीतम-बदन तन अँखियां रहीं निहार ॥२८३॥
रसनिधि मोहन रूप तौ जिहि मैं तिहिँ सरसाइ।
तिनकौ राखौ नेहियन नैन मांझ ठहराइ ॥२८४॥

टौना अँखि बस-करन कौ करे हते इन जाइ।
अब उलटे रौना परयौ गरे दृगन के आइ ॥२८५॥

मन सुबरन घरिया हियौ लाल सुहाग मिलाइ।
दृग सुनार हित आंच दै कुंदन कियौ तपाइ ॥२८६॥

रूप लोभ बस मिल गए नैन पहरुवा जाइ।
तब लौं तौ चित चोर नै मन धन लियो चुराइ ॥२८७॥

नैन सनेहन के मनौं हलवी सीसा आइ।
गुपत प्रगट तिन मैं सदा मीत-सुमुख दरसाइ ॥२८८॥

जालिम नैनन के जुलम कहियै काके पास।
पल पल खैंचत रहत हैं पल सँड़सिन सौं मास ॥२८९॥

मोहन-मुख लखि आपुही ये सरसावत हेत।
चाह बावरी मांझ दृग मन कौं गोता देत ॥२९०॥

एक नजरिया कै लखै जो कोइ होइ निहाल।
तौ यामैं तुव गांठ कौ कहा जात है लाल ॥२९१॥

तनिक किरकिरी कैं परै पल पल मैं अहटाइ।
क्यौं सोवै सुख नींद दृग मीत बसै जब आइ ॥२९२॥

नैना मोहन रूप सौं मन कौं देत मिलाइ।
प्रीत लगै मन की बिथा सकैं न ये फिर पाइ ॥२९३॥

धरे हुते मुहरा घनै मैले हियौ बिसात।
मो मन साहिय कौ करौ तैं दै दृग सह मात ॥२९४॥

बरुनी-बंधनवार रचि पल-मंडप द्विज मैन।
छबि-धन सौं चित चाय सौं भरत भावरे नैन ॥२९५॥

मेरेई दृग मीत कर जौ मन भावै वैंच।
तौ याके इनसाफ कौ काहि बुलाऊं खैंच ॥२९६॥

दृग माली ये डीठ कर निरखि रूप की बेल।
लेत सु चुन छबि की कली पल झोरिन सौं झेल ॥२९७॥

तीन पैंड़ जाके लखै त्रिभुवन मैं न समाइ।
धन राधे राखत तिन्हैं तूं दृग आधिन माइ ॥२९८॥
मेरे नैननि ह्वै लखौ लाल आपनौ रूप।
भावत ह्वैगौ भावतौ कैसी भांति अनूप ॥२९९॥
मन गरुवौ कुच गिरिन पै सहजै पहुँच सकै न।
याही तै लै डीठ के पैरे बांधत नैन। ३००॥
मन - धन तो पै भावते जे वारैई देत।
दृग चोरन बन कै हियौ क्यौं वारैई देत ॥३०१॥
नेहिन उर आवत लखै जबहीं धीरज सैन।
सैफी - हेरन मैं पटे कैफी तेरे नैन ॥३०२॥
पीवत नहीं अघात छिन नाहीं कहत बनै न।
पलवो के बांधे रहैं छवि - रस - प्यासे नैन ॥३०३॥
सुहृद - जगत मैं दृगन से रसनिधि दूजे नाहिँ।
बड़े दृगन लखि आप तौ तन मन हियौ सिहाहिँ ॥३०४॥
नैन - अनी जब जब जुरै रूप बनी मैं आइ।
तब तब आड़ी बीच मैं लाज परत है आइ ॥३०५॥
पल जौरन कै दृग पला जब तैं सिखए मैन।
तब तैं नेही चित छला लगे लला कौ दैन ॥३०६॥
भरत सांस लै हर घरी रूप दरस की आस।
तृषित दृगन की मिटत कहुँ आंसू-घूटन प्यास ॥३०७॥
तृषित दृगन की तृपति जौ ध्यान धरैं तैं होइ।
ओसन बुझती प्यास जौ नीर न पीतौ कोइ ॥३०८॥
नैन कमल ह्यां लगत हैं कमल लगत हैं वाइ।
कमल - नाल सज्जन हियौ दोनौं येक सुभाइ ॥३०९॥
जादूगर तुव दृगन यह यौं कर लियौ सुतंत्र।
तब तैं वाहि न फुरत है तंत्र न जंत्र न मंत्र ॥३१०॥

बिना तमाखू सूरती छवि बीरा न मिठाइ।
परौ अनोखौ अमल यह गरै दृगन के आइ॥३११॥
अपनै से दृग लागनै जो तूं लखतौ और।
तौ तेरोऊ चित लला नैक न रहतो ठौर॥३१२॥
मैं दीनौ उननै लियौ मन-धन देखत ऐन।
बूझे मुकरे जात हैं अब काहे तुव नैन॥३१३॥
बैपारी दृग मीत के तिनही बाले देत।
बधी बांध कै बाट की बिन जोखे मन लेत॥३१४॥
कछू सुलोच न नखन मैं लाल सुलोचन आइ।
चित-चेरौ जातै सुचित बहुर न सकियतु पाइ॥३१५॥
तिल चुन लालच लाग कै दृग खंजन चल जाइ।
जुलफ फँदा तें जौं बचै दृग फंदन परिजाइ॥३१६॥
रिस रस दधि सक्कर जहां मधु मधुरी मुसक्यान।
घृत सनेह छवि पय करै दृग पंचामृत पान॥३१७॥
गढ़ि गढ़ि जो छवि के छला पल मैं करै तयार।
ये नौने पहिराइहै तुव दृग मीत सुनार॥३१८॥
नैन लगर घूंघट खुलहि पवन खोल जब लेत।
नेही मन किरवान कन झपट सतूना देत॥३१९॥
दीन्हौ नेहन कौ अमी मद असनेहन प्याइ।
हियौ समुद मनमथ मथौ तामैं तैं दृग ल्याइ॥३२०॥
फोरत बानै ढाल कै तनिक लगायै मैन।
अचरज कहि भेदै जु मन मैन भरे सर नैन॥३२१॥
छुरी करेजै नैन तुव सरसि करेजे वार।
अजहूं सुरझत नाहिं ते सुर-हित करत पुकार॥३२२॥
सोहत हैं यह भांति जे भावंता के नैन।
तारे मधुकर कमल दल बैठे जनु रस लैन॥३२३॥

प्रगटत अंजन लीक छबि अहि - सावक्र मति जान।
अलक भुअंगम देख जनु सकुच रहे जस मान ॥३२४॥
क्यौं न रसीले होहिँ दृग जे पेपे हित लाल।
खाटे आम मिठात हैं भुस मैं दीनै पाल ॥३२५॥
पल अंजुल जोरै कहै दो 'हा' सौं बिच सैन।
मन-मोहन सौं रुचिर छबि रुचि सौं मांगत नैन ॥३२६॥
दरसति जब बाढ़ो हती सो तुम दृगन न दीन।
अरुनिन फिरयादी जहै वसन भगौहैं कीन ॥३२७॥
तेरी यह अदभुत कथा कही जाइ नहिँ बैन।
चित - चीतन कौ तैं किये अरी सेर मृग - नैन ॥३२८॥
तुव दृग नागर सुघर जे वाहि न लेते मोल।
को लै सकतो लाल मन रसनिधि अधिक अमोल ॥३२९॥
जान जान कीनै जु तैं नेहन ऊपर वार।
भरे जु नैन कटाछ के खंजर पंजर फार ॥३३०॥
यातैं पल - पलना लगत हेरत आनँदकंद।
पियत मधुर छबि दृगन के जात ओठ हैं बंद ॥३३१॥
यह छोटे बित नैन ये करत बड़े से काम।
तिल तारन बिच लै धरे मोहन मूरति स्याम ॥३३२॥
बरजि राख बटपार ये अरी आपनै नैन।
मन मथिबे को मनमथहिं देत चवाई सैन ॥३३३॥
पीवत पीवत रूप - रस बढ़त रहै हित प्यास।
दई दई नेही दृगन कछू अनौखी प्यास ॥३३४॥
बात चलत जाकी करै असुराई नेहीन।
है कछु अदभुत मद भरो तेरे दृगन प्रवीन ॥३३५॥
पुरजा पुरजा करत है प्रथम करेजा थान।
फिर बरनी सूजन सियै दरजी नैन सुजान ॥३३६॥

हेरत जित ये सहज ही तुव दृग सुभट अमोर।
मुर मुर जाती नैन की सैना जुरी करोर ॥३३७॥
हरे सुछवि तृन चरत ये मन मृग रूप कछार।
सिंह रूप तुव दृग लखै गिरत सु खाइ पछार ॥३३८॥
छवि वन मैं दौरन लगे जब तैं तुव दृग मेव।
तब तैं काढ़ै सनेहिया मन छन लैकै छेव ॥३३९॥
मनहूं की गति करत हैं ये पल पल मैं पंग।
करत खुरी पल मैं अमित तेरे नैन तुरंग ॥३४०॥
रुकत न खंजन नैन ये जतन कीजियत कोर।
प्रीतम मन तन चलत है पल पिंजरन कौं तोर ॥३४१॥
भौंह कुटिल वरुनी कुटिल नैना कुटिल दिखात।
बेधन कौं नेही हियौ क्यौं सूधे ह्वै जात ॥३४२॥
नैन-बान जिहि उर छिदै कसकत लेत न सांस।
मीतहि उनकी है दवा मिलै न वैदन पास ॥३४३॥
जौ कछु उपजत आइ उर सो वे आंखैं देत।
रसनिधि आंखैं नाम इन पायौ अरथ समेत। ३४४॥
नैन किलकिला मीत के ऐसे कछू प्रवीन।
हिय समुद्र तैं लेत हैं बीन तुरत मन-मीन ॥३४५॥
उपजत जीवन-मूर जहँ मीत-दृगन मैं आइ।
तिनके हेरै तुरत ही अतन सतन ह्वै जाइ ॥३४६॥
प्रेम-नगर मैं दृग-वया नोखे प्रगटे आइ।
दो मन कौं कर एक मन भाव दियौ ठहराइ ॥३४७॥
अदभुत रचना विधि रची यामैं नहीं विवाद।
विना जीभ के लेत दृग रूप सलौनौ स्वाद ॥३४८॥
रूप-सरोवर माहिँ तुव फूले नैन-सरोज।
ता हित अलि नेही तहां आवत दौरे रोज ॥३४९॥

या ब्रज मैं हौ बसतही हेली आइ सुतंत्र।
हेरन मैं कछु पढ़ि दियौ मोहन मोहन-मंत्र ॥३५०॥
चतुर चितेरे तुव सबी लिखत न हिय ठहराइ।
कलम छुवत कर आंगुरी कटी कटाछन जाइ ॥३५१॥
नैक नजरिया के लखे जौ कोउ होइ निहाल।
तौ यामैं तुव गाँठ कौं कहा जात है लाल ॥३५२॥
यह उर दृग नहिं लख सकै सूधे मोहन ओर।
बदन कमल मैं गड़हिगी बरुनी अनी कठोर ॥३५३॥
करि उपाय बहुतौ थके काढ़े कढ़ते नाहिँ।
रूप-बदन के जे पला हेरत ही चुभि जाहिँ ॥३५४॥
उपमा भौंहन जो दई लहै न एते साज।
टेढ़ी पैनी स्याम अति जैसे नाखन बाज ॥३५५॥
मेरे मन के बध दये जब तैं इन्हैं लगाइ।
फिरै न भौंह कमान तूं अर बरही ठहराइ ॥३५६॥
श्रवत रहत मन कौं सदा मोहन-गुन अभिराम।
तातैं पायौ रसिकनिधि श्रवन सुहायौ नाम ॥३५७॥
नेही मन कटि जात लखि प्रीतम कटि अभिराम।
करि करि ऐसो काट यह पायौ है कटि नाम ॥३५८॥
मन गयंद छबि मद छके तोर जँजीरन जात।
हित के झीनै तार सौं सहजैहीं बँधि जात ॥३५९॥
जोरति है मन जतनि कै बहुतक धीरज घेर।
बिथुर जात है तुरत ही मीत सैन कौं हेर ॥३६०॥
जो कहियै तौ सांच कर को मानै यह बात।
मन के पग छाले परे पिय पै आवत जात ॥३६१॥
मन मैला मन निरमला मन दाता मन सूम।
मन ज्ञानी अज्ञान मन मनहि मचाई धूम ॥३६२॥

मन-गज मद-मौकल भयौ रहत न अपनै हाथ।
लग्यौ रहत पर मोह कौ पीलवान चित साथ ॥३६३॥
उड़ौ फिरत जो तूल सम जहां तहां बेकाम।
ऐसे हरुये कौ धर्यौ कहा जान मन नाम ॥३६४॥
को अवराधे जोग तुव रहु रे मधुकर मौन।
पीतांबर के छोर तैं छोर सकै मन कौन ॥३६५॥
तुव छबि सौंहनि सौं अरे जो मन लागत आइ।
हित अनहित दुहु बीच ही पल पल छीजत जाइ ॥३६६॥
छबि-धन दै नँदलाल ये किये अयाची आइ।
पल-कर तब तैं और पै दृग न पसारत जाइ ॥३६७॥
निरख छबीले लाल कौ मन न रहै मो हाथ।
बँधौ गयौ ता बसि भयौ छवी-दान के साथ ॥३६८॥
मट की मटकी सीस धर चल कछु वकि मुसक्याइ।
लखि वह घट की सुध गई छबि अटकी दृग आइ ॥३६९॥
बनवारी वारी गई बनवारी पै आज।
मन-वारी हर लै गयौ वा मोहन ब्रजराज ॥३७०॥
घैर मथन सुनियत रहै जहां तहां ब्रज-भौन।
मोहन-छवि-छकि ना गरी सोच नागरी कौन ॥३७१॥
वाढ़ो सुंदरता अधिक हरिहर अंग अनेक।
कितै कितै हेरैं अरी दीठ बिचारी एक ॥३७२॥
करत जतन वल बहुत सौं नैकहु निकस सकै न।
छवि-चहले मैं जा फँसे बिरह-दूबरे नैन ॥३७३॥
रूप-नगर मैं बसत हैं नगर-सेठ तुव नैन।
मन-जामिन लै नेहियन लगे पुँजी-छवि दैन ॥३७४॥
रसनिधि प्रेम तबीब यह दियौ इलाज बताइ।
छवि अजवाइन लख दृगन बिरह गिरानी जाइ ॥३७५॥

प्रीतम मरजी के भए जबि जु मरजिया आइ।
छबि-मुकता उनही लहे रूप-समुद में जाइ ॥३७६॥
दृग रिझवारन हिय रहै यहै परेखौ एक।
वारन कौ मन एक इत उत है अदा अनेक ॥३७७॥
कोटि भानु दुति दिपत है मोहन छिगुरी छोर।
यातै बरनी ओट ह्वै दृग हेरत वह ओर ॥३७८॥
नैनन की अरु करन की तारी तारी दोइ।
मीत पूछ यह बात तूं जिहि निरधारी होइ ॥३७९॥
यह बिचार छवि रस इन्हैं बार बार तूं प्याइ।
प्यास और तैं सौगुनी लगत घाइलन आइ ॥३८०॥
इही मतौ ठहराइये अली हमारे जान।
जान न दीजै कान्ह कौं जान दीजिये जान ॥३८१॥
रसनिधि जब कबहूं बहै वह पुरवइया बाइ।
लगी पुरातन चोट जो तब उभरति है आइ ॥३८२॥
नैन चकोरन है लखौ जब ससि मुख कौं आइ।
तब याकी चित-चाह कछु तुमकौं जानी जाइ ॥३८३॥
भेजौ सुमन सनेह मैं कछुक पथिक कै साथ।
बाह लगायौ कै नहीं गात आपनै हाथ ॥३८४॥
दिवस बितावत ब्रज बधू सुरत ध्यान मैं पूर।
बदन-चंद लखि बिरह-तम निस कौ करती दूर ॥३८५॥
सब दरदन कौ ज्यौं दवा जग मैं बिधि कर दीन।
बेदरदी महबूब की काहे खोइ न दीन ॥३८६॥
उड़ी गुड़ी लौं मन फिरै डोर लाल के हाथ।
नैन तमासे कौ रहै लगे निरंतर साथ ॥३८७॥
निस बासर घनस्याम पै चहै स्वाँति छबि बूँद।
दृग-चातिक लखि आन रस रहै चौंच पल मूंद ॥३८८॥

नगर बसै न गरै लगै सुनियै नागर नार।
पगरै रगरै सुमन लै डारै बगर बहार ॥३८९॥
भोर होत पीरी लगी यातै ससि मुख जोत।
सरसन दरद चकोर की आइ हियै सुधि होत ॥३९०॥
लगन लाग दुउ एक सम इन मैं अंतर एह।
वह आसा लीनै रहै यह आसा तज देह ॥३९१॥
जसुमति या ब्रज मैं कहौ अब निबाह क्यौं होइ।
तब दधि चोरी होत ही अब चित चोरी होइ ॥३९२॥
किसलै - दल के बान जे घाले अंबुज ईठ।
अजौं फिरत है अलि लखौ हरद लगायै पीठ ॥३९३॥
ससि चकोर दृग आरसी लखि अपनौ मुख आइ।
अनदेखै देखै यहै लगियौ दृगनि सुहाइ ॥३९४॥
प्रीतम कहि यह बात कौं जानो जात न हेत।
मो दृग तारन कौन बिधि बदन चंद भर देत ॥३९५॥
दृग सेवक नृप रूप मैं ऐसौ सुनियत हेत।
ये मन हीरा देत हैं वे छबि हीरा देत ॥३९६॥
लागै सकत सनेह जहँ जानत वहै सरीर।
सुन्यौ न लोहे लहत कहुँ घायल दिल की पीर ॥३९७॥
सुध न रही देखतु रहै कल न लखै बिन तोहि।
देखै अनदेखै तुहै कठिन दुहूं बिधि मोहि ॥३९८॥
नींद दुहुन के दृगन मैं सकै न पल ठहराइ।
जो चोरी कौ फिरत है जिहि चित चोरौ जाइ ॥३९९॥
हित मन कौ पहिचानि जौं ससि लखतौ वह ओर।
चुनते चोंच अँगार लै काहै काज चकोर ॥४००॥
उदौ करत जब प्रेम-रवि पूरब दिसि तैं आइ।
कहू नैम तम जात है देखौ जात बिलाइ ॥४०१॥

बाँधे जे मन चित्त तैं सरस प्रेम की डोर।
अनख नखन सौं भावते उन्हैं सकै को छोर ॥४०२॥
चसमन चसमा प्रेम कौ पहिले लेहु लगाइ।
सुंदर मुख वह मीत कौं तब अवलोकौ आइ ॥४०३॥
रिझवारे नँदलाल पै मन मेरो न अघाइ।
घर लौं आवत वार कै फिर चल वारन जाइ ॥४०४॥
राखे हैं हिय-सेज मैं चुन कै सुमन बिछाइ।
अरे गुमानी पलक तौ इहाँ पावँ धर आइ ॥४०५॥
अद्भुत गत यह प्रेम की बैनन कही न जाइ।
दरस भूख लागै दृगन भूखहि देत भगाइ ॥४०६॥
अकथ कथा यह प्रेम की कही जाइ नहिं बैन।
रूप-सिंधु भर लेत है पल-प्यालिन मैं मैन ॥४०७॥
प्रेम-पियाला पी छके तेई हैं हुसियार।
जे माया मद सौं भरे ते बूड़े मँझधार ॥४०८॥
हरि बिछुरत बीती जु हिय सो कछु कहत बनै न।
अकथ कथा यह प्रेम की जिय जानै कै नैन ॥४०६॥
उरझत दृग बँधि जात मन कहो कौन यह रीति।
प्रेम-नगर मैं आइ कै देखी बड़ो अनीति ॥४१०॥
भरि आए हौं सुमन ए फूल हियै सरसान।
हरिआए हैं बन सघन हरि आए बन जान ॥४११॥
प्रेम नगर की रीत कछु बैनन कहत बनै न।
रुजू रहत चितचोर सौं नेहिन के मन नैन ॥४१२॥
प्रेम नगर के कान दै सुनौ चरित ये चार।
जोई चित वित कौ हरै करै वहै हिय हार ॥४१३॥
न्यारौ पैड़ौ प्रेम कौ सहसा धरौ न पाव।
सिर के पैड़ै भावते चलौ जाय तौ जाव ॥४१४॥

नैम न ढूंढ़े पाइयै जेहि थल बाढ़ै प्रेम।
रहत आइ हरि दरस के प्रेम आसरै नेम ॥४१५॥
या रस कौ रसना श्रवन कहन सुनन के नाहिँ।
सैना सैनी बैन कौ नैना समझ सिहाहिँ ॥४१६॥
मन मैं बस कर भावते कहौ कवन यह हेत।
प्रगट दृगन कौं आइ कै क्यौं न दिखाई देत ॥४१७॥
केसी कंस सको नहीं जासौं जोर चलाइ।
तापर अबला सहज ही मुरली लेत छिनाइ ॥४१८॥
हिय दरपन कौं देख जब पारो प्रीत लगाइ।
तब वा महँ नँदलाल कौ सुंदर मुख दरसाइ ॥४१९॥
उर अकास जहँ आइकै हित ससि कियौ उदोत।
प्रीत जुन्हैया कौं तहाँ कहु दुराव कहँ होत ॥४२०॥
डीठ डोर नैना दही छिरक रूप रस तोइ।
मथ मो घट प्रीतम लियौ मन नवनीत बिलोइ ॥४२१॥
रसनिधि यह नैनन लखौ नवल प्रीत के रंग।
रूप रोसनी दीप मुख नेह लग्यो मो अंग ॥४२२॥
तौ तुम मेरे पलन तैं पलक न होते ओट।
व्यापी होती जो तुमैं ओट भए की चोट ॥४२३॥
जा काहू कौ देत प्रभु तैं लगाइ कै हेत।
फिर तिहि पलकन ओट पल कहु काहे कर देत ॥४२४॥
वह पीतांबर की पवन जब तक लगै न आइ।
सुमन कली अनुराग की तब तक क्यों बिगसाइ ॥४२५॥
सांची है यह भावते भय बिन प्रीत न होइ।
बिदित प्रीत भय तै लखौ तन दुति पीरी होइ ॥४२६॥
अदभुत गत यह प्रेम की लखौ सनेही आइ।
जुरै कहूं टूटै कहूं कहूं गांठ परि जाय ॥४२७॥

प्रीत तार अरु तार मैं राग जोत ठहराइ ।
लै छूटै करतार तौ फिर कुतार है जाइ ॥४२८॥
हिय-सीसा मध हित-अतर जितौ राखिए बंद ।
खसबोई वाकी तिती रसनिधि रहै सुछंद ॥४२९॥
और चोट बच जात है कछुक पाइकै ओट ।
पलक ओट प्रीतम भए लागत दूनी चोट ॥४३०॥
मेरेई अनुराग मैं कछु इक खोट दिखाइ ।
जातैं मन पट लाल कौ हो न रँगीलौ जाइ ॥४३१॥
नेहिन के मन कांच से अधिक कनकनै आइ ।
दृग-ठोकर के लगत ही टूक टूक होइ जाइ ॥४३२॥
सपनै हू आए न जे हित गलियन मझियाइ ।
तिन सौं दिल को दरद कहि मत दे भरम गमाइ ॥४३३॥
नेह लगे सै ये बदन चिकनै सरस दिखाइ ।
नेह लगायै भावतौ क्यों रूखो होइ जाइ ॥४३४॥
सरस सुमन सौं बास कै तिल समान सौं पेर ।
कीन्हौ नेह तयार जहँ मीत रुखाई हेर ॥४३५॥
असनेही जानै कहा नेही मन अनुराग ।
कहुँ हंसन की चाल कौं चल जानत है काग ॥४३६॥
तिल तावे है भावते नेह त्याग पिर जात ।
पेरे हू छोड़े नहीं नेही नेही गात ॥४३७॥
तेरे नट पट नैन ये कछू न जानै जात ।
जाही तन मैं तूं बसत तेही पेरे जात ॥४३८॥
जारत दीप पतंग कौं या आसा सौं आइ ।
लेत सनेही जान कै यातैं जोत मिलाइ ॥४३९॥
जैसे दुवि अच्छर मिलै नाम कहावत नेह ।
जुगल किसोरी परसपर यह बिधि सुनौ सनेह ॥४४०॥

हेरत नैक न सामुहै मुख मोरै री जात।
चित चोरैई जात हित जोरैई चित जात ॥४४१॥
और लतन सों हित-लता अद्भुत गति सरसाइ।
सुमन लगै पहिलै इहै पाछे कै हरियाइ ॥४४२॥
हित बतियन की रसिकनिधि लखि अदभुत गति एह।
प्रीतम मुख पर जोत है मेरे हिय मैं नेह ॥४४३॥
स्वच्छ सुतिय तन भूमि लहि जहँ पानिय सरसाइ।
मन माली दीन्हो तहां हित की लता लगाइ ॥४४४॥
या झीनै हित तार मैं बल एतो अधिकाइ।
अखिल लोक को ईश जो जासौं बाँधौ जाइ ॥४४५॥
नेही लोहा नूर लखि कटत कटाछन माह।
असनेही हित खेत तजि भागत लोहे जाइ ॥४४६॥
नेहिन के मन भावते बिरह आँच सौं ताइ।
कुंदन सौं कर लेत है रूप-कसौटी लाइ ॥४४७॥
नेह अतर की चिकनई जेहि दृग परसी जाइ।
झलकत जलकन की रहै बिच नहिं पलकन आइ ॥४४८॥
या घट के सौ टूक कर दीजै नदी बहाइ।
नेह भरे हूँ पै जिन्हैं दौर रुखाई जाइ ॥४४९॥
रूखे रूखे जे रहत नेह बास नहिँ लेइँ।
उन तैं वै मखियां भली नेह परसि जिय देइँ ॥४५०॥
हित राजी मैं राखबी चित राजी की बात।
इतराजी कर कहुँ सुनै प्रीतम नेह निभात ॥४५१॥
यामैं कछु धोखौ नहीं नेही सूर समान।
दोऊ सनमुख सहत हैं दृग अनियारे बान ॥४५२॥
प्रीतम ही तैं नेह कौ हौन न दीजै छीन।
नेह घटै ही लगत है दीपक-जोति मलीन ॥४५३॥

मृदु बिहँसन मुसक्यान मैं कर नेही दृग बंद।
काहे कौ खोलत अरे तैं ये जुलफन फंद ॥४५४॥
विधि हूं ते जे अधिक हैं नेह सु मेरे जान।
मीत दरस कौं देत कर नैनमई तन प्रान ॥४५५॥
मन माली हिय भूमि मैं बोवै हित कौ बाग।
मोहन आन निहारियै लागौ फल अनुराग ॥४५६॥
बिन दामन सौं दाम लै सुनी न अब तक बात।
बिन दामन हित हाट मैं नेही सहज बिकात ॥४५७॥
उतै रुखाई है घनी थोरो मुझ पै नेह।
जाही अंग लगाइयै सोई सोखै लेह ॥४५८॥
बार बार ब्रज बाल कौं यह बिध हियौ डराइ।
नेह लगै मोहन दसा मत हम सी होइ जाइ ॥४५९॥
रूप चिराक चिराक की गत एकौई जान।
दुऔ नेह सौं करत हैं प्रगट रोसनी आन ॥४६०॥
सुंदर पलकन पै लसैं ए निस तारे आइ।
रसनिधि नेही दिलन के ए दृग तारे आइ ॥४६१॥
व्यंग बचन तैं कढ़त है जौ कोई धुन आइ।
ताहि समझ नेही हियौ बार बार अकुलाइ ॥४६२॥
माँगत बिधि सौं ब्रज-बधू प्रनपत कर बड़ एह।
हम सौं मोहन नेह कै हम सौं करै न नेह ॥४६३॥
धनि दृग तारन के जु तिल जिन मैं स्याम सनेह।
बिना नेह के तिल किते परे रहत हैं देह ॥४६४॥
चित इक हित बहु सजन यह कर देखो हिय गौर।
धरी जात कछु कौन बिध एक बस्तु द्वै ठौर ॥४६५॥
हित लालहिं लै हिय डबा जे तौ धरौ दुराइ।
होत जोत वाकी प्रगट तऊ दृगन मैं जाइ ॥४६६॥

स्रवन सुनौ है यह नयौ नेह नगर मैं भाव।
देत न तहँ मन भावतौ मन के साटै पाव ॥४६७॥
नेह-नगर मैं रीत यह लखौ अनोखी वाहु।
रसनिधि चित के चोर हू बिदित कहावत साहु ॥४६८॥
मन बिकिगौ हित हाट मैं नंदनँदन के पान।
ऐसौ समयौ जुरत है परम भाग तैं आन ॥४६९॥
चित वित नेहिन के जहां निबहन पावत नाहिँ।
असनेही निरभै फिरै मन नग लादे जाहिँ ॥४७०॥
हरुवै हरुवै धरन पै धरियै प्रीतम पाइ।
सुमन सनेहिन के बिछे मत कहुँ बिछलै जाइ ॥४७१॥
दरद दवा दोनौं रहै प्रीतम पास तयार।
नेहिन कौ निरबाहवौ वाही के अखत्यार ॥४७२॥
दरदहि दै जानत लला सुध लै जानत नाहिँ।
कहो बिचारे नेहिया तुव घाले कित जाहिँ ॥४७३॥
अद्‌भुत बात सनेह की सुनौ सनेही आइ।
जाकी सुध आवै हियै सबई सुध बुध जाइ ॥४७४॥
कहनावत यह मैं सुनी पोषत तन कौं नेह।
नेह लगायै अब लगी सूखन सिगरी देह ॥४७५॥
और जवाहिर की प्रभा जहां धरौं तहँ होत।
हित मानिक की जगत मैं सरस प्रकासित जोत ॥४७६॥
रूखी राखहि कहत सब मोह अचंभौ एह।
पटहू के बर लाग वहु खैंच नेह कौं लेह ॥४७७॥
बोलन चितवन चलन मैं सहज जनाई देत।
छिपत चतुरई कर कहूं अरे हिए कौं हेत ॥४७८॥
बांध अरे हित यार कौं पहिलै मुहकम आइ।
तब गहिरौ ह्वैकै इहां नेह नीर ठहराइ ॥४७९॥

मीता तूं चाहत कियौ रूखी बतियन जोत।
नेह बिना ही रोसनी देखी सुनी न होत ॥४८०॥
नेहिन पै मन भावते मति तैं रूखो होइ।
राख रुखाई देयगी नेह चिकनई खोइ ॥४८१॥
तूं इन सौं नित व्याज की कथा चलावत आइ।
नेहिन तैं मन-धन दियौ तुहि निरव्याजौ ल्याइ ॥४८२॥
नेह ललक घन सौ भयौ हित सौ झीनौ तार।
मन गयंद तासौ बँधौ झूमत प्रीतम द्वार ॥४८३॥
आप बसाते सज्जना नेह न दीजे जान।
नेही तिल नेहै तजै खरि हो जात निदान ॥४८४॥
रूप सिंधु मथि स्याम दृग मोहन वनक बनाइ।
दीनौं नेहिन बिरह विष छबि मद असुरन प्याइ ॥४८५॥
तुम गिरि लै नख पै धरयौ इन तुमकौं दृग कोर।
दो मैं तै तुमही कहौ अधिक कियौ केहि जोर ॥४८६॥
तनि सुख तैं चहियत हतौ हर विध विधहि मनाइ।
भली भई जो सखि भयौ मोहन मथुरै जाइ ॥४८७॥
बारक तुम गिर कर धरौ गिरधर पायो नाम।
सदा रहैं तुम्ह उर धरे उनकौं अबला नाम ॥४८८॥
पोर-पोर-तन आपनौ अनत बिधायौ जाइ।
तब मुरली नँदलाल पै भई सुहागिन आइ ॥४८९॥
तेरे घर बिधि कौं दयौ दयौ न कोऊ खात।
गोरस हित घर घर लला काहे फिरत ललात ॥४९०॥
घट बढ़ इनमैं कौन हैं तुहीं सामरे ऐन।
तुम गिरि लै नख पै धरयौ इन गिरिधर लै नैन ॥४९१॥
जान अजान न होत है जगत बिदित यह बात।
बेर हमारी जान कै क्यों अजान होइ जात ॥४९२॥

नंदलाल सँग लग गए बुध बिचार बर ज्ञान।
अब उपदेसनि जोग ब्रज आयौ कौन सयान ॥४९३॥
यह अब कौन कला निधी कहौ कलानिधि आप।
होइ सुधाकर करत हौ बिरहिनि तन संताप ॥४९४॥
इनसौं घट भर लीजिए या मैं नहीं बिबाद।
जान सकै रस कूप कौ रसना कहा सवाद ॥४९५॥
कै राखौ कर मैं छला कै मन कौ ब्रजनाथ।
एक हाथ मैं ए दोऊ कैसे रहिहैं साथ ॥४९६॥
जो चकोर सम आवतौ लखि तुहि सरसिजं माल।
होतौ विदित चकोर तिय ससि तेरौई हाल ॥४९७॥
बचो रहौ चित-चोट तैं मेरे मोहनलाल।
चोट लगै हुइ जाइगौ मेरौई सौ हाल ॥४९८॥
अँधियारी निस कौ जनम कारे कान्ह गुवाल।
चित-चोरी जो करत हौ कहा अचंभौ लाल ॥४९९॥
सुध लै जानत हौ कछू कै भौहेंई तान।
यही बूझ पै आप तुम बड़े कहावत जान ॥५००॥
जिन मोहन ने सहज मैं नख पर धरौ पहार।
भारी कैसे कै लगै तिनहि विरह कौ भार ॥५०१॥
गिरधर लियौ छिपाइ कै तन तिनका की ओट।
और कहा कछु कलन की अली बांधियत मोट ॥५०२॥
होत सनेही कौ तहां कहु कैसे निरबाह।
चित बित हर दृग रावरे जहां कहावत साह ॥५०३॥
तीन पैर जाके लखौ त्रिभुवन मैं न समाहिँ।
धन राखे राखत तिन्हैं लोइन कोइन माहिँ ॥५०४॥
इंद्र गरब हर सहज मैं गिर नख पर धर लीन।
इह इतना बितना भरा कहु कितना बल कीन ॥५०५॥

गोपी जो तुहिँ प्रेम करि करती नहीं सनाथ।
को कहतौ तुहिँ नंद-सुत जग मैं गोपीनाथ ॥५०६॥
जदपि भयौ है ससि अरे मन ही तै उतपन्न।
तऊ चकोरन मन विथर नीकौ जानत धन्न ॥५०७॥
यह विधनै तोही दई अजव करामत हाथ।
रवि तरवन राखै रहै तैं निज मुख ससि साथ ॥५०८॥
रसनिधि कारे कान्ह ए रहे मधुपुरी छाय।
विप उगलत ऊधौ फिरै अचरज लखि यह आय ॥५०९॥
रसनिधि मोहन नाम कौ अरथ न लिय निरधार।
प्रथम समझ तब कीज तौ वासौं प्रीत विचार ॥५१०॥
हिये नगर वा लगत है लगत न गरुवै आइ।
येते पर सबही कहैं तोह नगरुवा आइ ॥५११॥
जब ही जड़ हुइ जात है मिलत बात लग सीत।
तब हिव पावन लगत है विरह आंच सो मीत ॥५१२॥
बड़ी विरह की रैन यह क्यौं हूं कै न विहाइ।
मीत सुमुख दरसाइ कै इहां सुदिन कर आइ ॥५१३॥
कहो नैक समुझाइ मुहिँ सुरजन प्रीतम आप।
बस मन मैं मन को हरौ क्यौं न विरह संताप ॥५१४॥
गोवरधन नख धर लियौ गोपी ग्वाल वलाइ।
अब गिरधर यह विरह सिर क्यौं न उठावत आइ ॥५१५॥
मोहिँ जिवायौ चहत जौ तौ यह फेर कहाइ।
सखी कहानी कान्ह की कानन सुनी सिहाइ ॥५१६॥
जौ न मिलेंगे स्याम-घन वाहि तुरतही आइ।
विरह-अगिन सौं राधिका दैहै व्रजहि जराइ ॥५१७॥
छिन भर बिन प्रीतम लखै नैना भर भहरात।
धीरज-पारद कहुँ सुनौ बिरह-आंच ठहरात ॥५१८॥

बिरह - अग्नि सुन सुन लगै जब जब उर मैं आन।
तब तब नैन बुझावहीं बरस सरस अँसुवान ॥५१९॥
आपुन तौ ह्वै भावते सोहत हौ सुख - सेज।
मो तन त्रासत रहत हौ बिरह - पियादै भेज ॥५२०॥
प्रीतम अपनी बाह ज्यों निपट निकट दरसाइ।
पै टिहुनी पर्वत भई मुहि तक सकै न आइ ॥५२१॥
यह बूझन को नैन ये लग लग कानन जात।
काहू के मुख तुम सुनी पिय आवन की बात ॥५२२॥
आसिक बिछुरन दरद कौ सकतौ नहीं अँगेज।
जोऽब दिलासा की दवा मीत न देतौ भेज ॥५२३॥
सुध आवै जब मीत की घन जिमि बरसत नैन।
थकित रहै वांही पथिक खोइ सबै सुख चैन ॥५२४॥
ग्रीषम बासर बिरह के लगे जनावन जोर।
आइ इतै बरसाइये रस घन स्याम किसोर ॥५२५॥
राखत अँसुवन जल भरे पलकन आठौ जाम।
तलफत जदपि सुमीन दृग बिना लखै घनस्याम ॥५२६॥
मन धन हतौ बिसात जो सो तोहिँ दियौ बताइ।
बाकी वाके बिरह की प्रीतम भरी न जाइ ॥५२७॥
गुन खोवत ह्यां आपनौ रे तबीब बेकाज।
नैन जहमतिन कौं लगै मोहन रूप इलाज ॥५२८॥
बिन दरसन सरसन लगौ बिरह तरनि तन जोर।
आइ स्याम घन बरसिए मेह - नेह यह ओर ॥५२९॥
विरह - सिंधु अवगाहि मन लग्यौ करार करार।
प्रीतम अजौ उबार लै कर गहि बांह पसार ॥५३०॥
ग्रासत चित्त - गयंद कौं बिरह - ग्राह जब आइ।
हरि प्यारे मन कमल लै नेही देत छुड़ाइ ॥५३१॥

जब लग कांचे घट पके बिरह अग्नि मैं नाहिँ।
नेह नीर उनमैं अरे भरे कौन विधि जाहिँ ॥५३२॥
घट जाती संजोग मैं तब न कियौ मैं घैर।
भावंता बिन निस अरी क्यौं बढ़ि करती घैर ॥५३३॥
दरस-मूर देतौ नहीं जौ लौं मोत चुकाइ।
बिरह-व्याज वाकौ अरे नितहू बाढ़त जाइ ॥५३४॥
यहि डर सों हौं डरपि कै सकौं न नेह लगाइ।
मत वह परसै तन बढ़ै बिरह-अनल झहराइ ॥५३५॥
रही न तन की सुध वहै कहत बुलाए आइ।
यह औसर है वाहि अब मोत आइबौ आइ ॥५३६॥
बेग आइकै मीत अब कर हिसाब यह साफ।
मेहर नजर कै बिरह की बाकी कर दै माफ ॥५३७॥
जौ कहुँ प्रीति बिसाहनी करतौ मन नहिँ जाइ।
काहे कौ कर मांगतौ बिरह जगाती आइ ॥५३८॥
कंचन से तन मैं इहां भरौ सुहाग बनाइ।
बिरह आंच वापै कहौ सही कौन बिधि जाइ ॥५३९॥
कियौ समुद मुनि पान जो सो भरतौ क्यौं ऐन।
करते जो न सहाइ जा पानी कर तुव नैन ॥५४०॥
अरे कलानिधि निरदई कहा नवो यह आइ।
पोखत अमृत कलन जग बिरहिन देत जराइ ॥५४१॥
पोर पोर पेरत तनहिँ बिरहा दै दै ताइ।
दृग प्यासन कौं रूप रस प्यारे प्या रे आइ ॥५४२॥
का गद कागद मैं अरे सहै बिरह की बात।
मस मिस लिखत निअंक ते हियै पार होइ जात ॥५४३॥
तीछन बान जो बिरह कौ तान दियौ तन माहँ।
सज्जन-चुंबक उर बसै तातैं निकसत नाहँ ॥५४४॥

रहे जु कान्ह सुहाग सँग जे सुबरन से गात।
बिरह-घाम की आंच सौं ते कैसे ठहरात॥५४५॥
मिलिकर तव सुख देत है मोहन प्यारे ईस।
बिछुर चलावन अब लगे बिरह-आरकस सीस॥५४६॥
हित आचारज दृग सुवन नेह सुघट भर लेत।
बिरह-अगिन मैं मैन-द्विज मन की आहुति देत॥५४७॥
रसनिधि पल भर होत ही भावंता पल-ओट।
नहीं सम्हारी जात है यह अनचाही चोट॥५४८॥
बात बात मो दरद की पहुँचावैं तुव कान।
यहि आसा घट मैं रहै ये अनुरागी प्रान॥५४९॥
जे अँखियां बैराइहीं लगै बिरह की बाइ।
प्रीतम-पग-रज कौ तिन्हैं आंजन देहु लगाइ॥५५०॥
निकसत नाहीं जतन कर रही करेजे साल।
चुंवक मीत मिले विना बिरह साल की भाल॥५५१॥
रे निरमोही मनहरन आरे आरे आइ।
भारे आरे बिरह के मत मो सीस चलाइ॥५५२॥
कहियौ पथिक सँदेस यह मन मोहन सौं टेर।
बिरह-बिथा जो तुम हरी हरी भई ब्रज फेर॥५५३॥
पल अँजुरिन सौं पियत दृग जल अँसुवा भर सास।
गनत रहत है अवधि के दिन पखवारे मास॥५५४॥
पलक पानि कुस बसनिका जल अँसुवा दुज मैन।
पियहि चलत सुख नींद कौं करत संकलप नैन॥५५५॥
जिहि ब्राह्मन पिय गमन कौ सगुन दियौ ठहराइ।
सजनी ताहि बुलाइ दै प्रान-दान लै जाइ।५५६॥
अरी नींद आवै चहै जिहि दृग बसत सुजान।
देखी सुनी धरी कहूं दो असि एक मयान॥५५७॥

मन के संग जु नैन चलि देख आवते तोहिँ ।
तौ काहे कौ बिरह यह नित दुख देतौ मोहिँ ॥५५८॥
अबैं इसक के दरद कौ मरम न सकिहै पाइ ।
जा तबीब घर आपनै मत तू भरम गमाइ ॥५५९॥
एक दिना मैं एक पल सकै न पल भर देख ।
बिरह पीर कौ भावतौ कैसे होइ बिसेख ॥५६०॥
बिरह झार तन भसम भौ अवधि पात भए जोग ।
इहै जान पठयौ इहां हमै जोग लिख जोग ॥५६१॥
अब लौं यह तन राखियौ अवध आस कौ जोर ।
अब जीवौ दुरलभ भयौ गरजत घन चहुँ ओर ॥५६२॥
सुन पयान घनस्याम कौ जोग अराध्यौ बाल ।
नैन मेखला मैं मनौ गूंथत डोरे लाल ॥५६३॥
सासन चाहत सांस अब अवधि आस गइ बीत ।
कै आइस कै आइबौ जौ राखत पत प्रीत ॥५६४॥
जा दिन तै पिय गमन किय बिरह पौर प्रतिहार ।
नींद भूख रोक्यौ हरष कियौ आप अधिकार ॥५६५॥
जीवै लैवा जोत कौ दोऊ देहु मिलाइ ।
ऊधौ जोग बियोग मैं अंतर कह ठहराइ ॥५६६॥
आपहि यह इनसाफ कौ कीजे प्रान अधार ।
बिरह भार सहि सकत कहुँ हित के झीने तार ॥५६७॥
अग्नि होत री नैन ये मीत दरस कै हेत ।
बिरह अग्नि हिय कुंड मैं निस दिन आहुति देत ॥५६८॥
बिरह तपन तन अति बढ़ी बरसु स्यामघन आइ ।
सीतलता सरसै हियै दरद गरद दबि जाइ ॥५६९॥
दैन लगे मन मृगहिँ जब बिरहि अहेरी पास ।
जाइ लेत है दौर जब प्रीतम सुवन मवास ॥५७०॥

विरह समुद बाढ़ौ अरे यह गरुआ तक आइ।
इह बिरियां ऐसे समै तूं गरुआ लग जाइ ॥५७१॥
रसनिधि विन प्रीतम लखै क्यों ए लहते चैन।
ध्यान जखीरा जो जमा कर नहिँ धरते नैन ॥५७२॥
विरह वैर आसा गढ़ी छिके प्रान रन सूर।
भर राखै दृग ध्यान जल रूप जखीरा पूर ॥५७३॥
हरि बिछुरत रहते नहीं बिरहिन के तन प्रान।
अमृत रूप लहते नहीं जौं मनमोहन ध्यान ॥५७४॥
कर गहि ध्यान मलाह तूं करतौ जौं न सहाइ।
नेहिन बिरह समुद्र तैं कौन काढ़तौ आइ ॥५७५॥
जदपि सुगहिरी लाज तैं ठहर सकै नहिँ पाइ।
ध्यान निवारै वैठ कै भावंता इत आइ ॥५७६॥
मन हरिबे की ज्यौं पढ़े पाटी स्याम सुजान।
तौ यहऊ पढ़ते कहूं दीवौ दरसन-दान ॥५७७॥
दरसन कौ चलतौ कहूं जो सुमरन सौं काज।
दृग चकोर होते नहीं ससि मुख के मुहताज ॥५७८॥
कसर न मुझमें कुछ रही असर न अब तक तोहि।
आइ भावते दीजिए बेग सुदरसन मोहि ॥५७९॥
कियौ मीत ने है उदौ सवही जागै आइ।
विरह अँधेरी रैन जहँ उदौ उदौ होइ जाइ ॥५८०॥
नेही यामैं पलत है अरे मीत अभिराम।
दरस देत तुव गिरह के खर्चे होत कछु दाम ॥५८१॥
मीता मोतैं लेत क्यौं निज मुखचंद छिपाइ।
ऊंच नीच घर चंद तौ उवत एक सौ आइ ॥५८२॥
जिते नखत विधि दृग तिते जो रच देतौ मोहि।
तृपित न होते वे तऊ निरख भावते तोहि ॥५८३॥

रसनिधि पल भर होत ही भावंता पल ओट ।
नहीं सम्हारी जात है यह अनचाही चोट ॥५८४॥
हिय घरिया तामैं सुमन बिरह आंच सौं ताइ ।
सुबरन कीनौ मीत नै बूटी दरस मिलाइ ॥५८५॥
होती वैदन के करै विरह बिथा जौ दूर ।
काहे कौ दृग ढूंढ़ते दरस सजीवन-मूरि ॥५८६॥
बिन देखे तुम भावते कछु वै भावत नाहिँ ।
जन्म अलेखै आइकै लेखै आवत नाहिँ ॥५८७॥
नेही दृग जोगी भए बरुनी जटा बनाइ ।
अरे मीत तैं दै इन्हैं दरसन भिच्छा आइ ॥५८८॥
दरसन भिच्छा के लियै फेरी दै दै जाइ ।
जोगी तैं का घट भयौ नैन बियोगी आइ ॥५८९॥
दै अनुरागी दृगन कौं दरस सजीवन-मूर ।
उलफत कीजै बिरह की कुलफत कीजै दूर ॥५९०॥
भीजे तन अँसुवन लखौ रबि-दुति मुख अभिराम ।
रसनिधि भीजे बसन कौ दियौ चाहियत घाम ॥५९१॥
पायै बिहित अहार कौं सबकौ मन भरि जाइ ।
मन भर देखौ मीत कौ पल भर मन न अघाइ ॥५९२॥
यामैं अपनी गांठ कौ कह कछु छोरै देत ।
दरसन लव मांगत दृगन क्यों मुख मोरै लेत ॥५९३॥
जो पल तकिया छोड़ दृग सकै न तुव तक आइ ।
दरस भीख उनकौं कहा दीजत नहिँ पहुँचाइ ॥५९४॥
बिरहा ग्रीषम दुपहरी प्यास दुहुन अधिकाति ।
मन बन मैं लखि लखि जियै नैन लवा इह भांति ॥५९५॥
मोहन लखि जो बढ़त सुख सो कछु कहत बनै न ।
नैनन कै रसना नहीं रसना कै नहिँ नैन ॥५९६॥

गजगत मैं घर प्रथम ही फिर तन कतरौ जाइ।
तब यह पहुँचत मीत लौं सोजन बदन छिदाइ ॥५९७॥
कमला लै कै कमल कर लखि गुरुजन की भीर।
धर-हरि-धर-जिय ए भ्रमर मिलहि तरुनजा-तीर ॥५९८॥
जुदे रहन मन मिलन की सीख दृगन के अंग।
सोवत जागत संग ही जित चाहौ तित संग ॥५९९॥
प्रगट मिले बिन भांवते कैसे नैन अघात।
भूखे अफरत कहुँ सुनै सुरत मिठाई खात ॥६००॥
रही कहां चक आइ चित चल पिय सादर देख।
लोहा कंचन होत तहँ पारस परस बिसेख ॥६०१॥
मान मनायै माननी मति तैं धरै गुमान।
जाते पाइन परन कौं उनै परै सुख जान ॥६०२॥
व्यापी होती जो तुमैं मिल बिछुरे की पीर।
मिलि कै पलक न बिछुरते जैसे पय अरु नीर ॥६०३॥
सिखे आपनै दृगन सैं इकताई की बात।
जुरी डीठ इक सग रहै जदपि जुदे दिखात ॥६०४॥
मैं जानी रसनिधि सही मिली दुहुनि की बात।
जित दृग तित चित जात है जित चित तित दृग जात ॥६०५॥
बड़ौ मीत तुव मिलन कौ चित राजी कौ चाव।
इतराजी मत कर अरे इत राजी ह्वै आव ॥६०६॥
जल-कन तिल-कन पलक मैं कहु आली केहि हेत।
भावंता लखि बिरह कौ नैन तिलांजुलि देत ॥६०७॥
नहिं राती है प्रीति सौं है अरात पै रात।
प्रीतम के संयोग मैं क्यौंऽब नहीं बढ़ जात ॥६०८॥
लगत कमल-दल नैन-जल झपट लपट हिय आइ।
बिरह-लपट अकुलाइ जब भाज हिए तैं जाइ ॥६०९॥

अमरैया कूकत फिरै कोइल सबै जताइ।
अमल भयौ ऋतुराज कौ रुजू होहु सब आइ ॥६१०॥
मैं घन ये उनए लखै नए नए चित चाइ।
तऊ न ये मानत नए लाल न ए पगि आइ ॥६११॥
अरी मधुर अधरान तैं कटुक वचन मत बोल।
तनक खुटाई तैं घटै लखि सुवरन को मोल ॥६१२॥
अरी जात है ब्रजहि जौ मोहन मुख मत जोइ।
फिर न छिपाये छिपहिगी इसक मुसक की बोइ ॥६१३॥
मान कही मेरी अरी भूल उतै मत जाइ।
ऐहै लखि ब्रजचंद कौ मन नग नैन गँवाइ ॥६१४॥
हित मित बिन मन धन दिए क्योंकर सकियै पाइ।
बिन गथ सौदा हाट तैं ल्यायौ कौन बिसाइ ॥६१५॥
भूलै हूं मत दरद कहु बेदरदिन के पास।
पीनसवारौ कब लहै सरस अतर की बास ॥६१६॥
याही तैं यह आदरै जगत माह सब कोइ।
बोलै जबै बुलाइयै अनबोले चुप होइ ॥६१७॥
मोहन तूं या बात कौ अपनै हियै विचार।
बजत तमूरा कहुँ सुनै गांठ गठोले तार ॥६१८॥
छवि मुकता लूटन लगे आइ जरा बटपार।
बैठ बिसूरै सहर के बासी कर कट तार ॥६१९॥
जंग तरबर तैं फल लगै जौ लग कांचौ गात।
पाके तै फल आप ही डारनि तैं छुटि जात ॥६२०॥
बिन औसर न सुहाइ तन चंदन ल्यावै गार।
औसर की नीकी लगै मीता सौ सौ गार ॥६२१॥
हुक्का सौं कहु कौन पै जात निबाहौ साथ।
जाकी स्वासा रहत है लगी स्वास के साथ ॥६२२॥

चल आयौ जैहै चलौ जगत बिदित ब्यौहार।
गाहि लियै जोबन-कनहि रहित ठहर इक प्यार ॥६२३॥
वार वार नहिँ होत है औसर मौसर बार।
सो सिर दीबे कौ अरे जौ फिर हूजे त्यार ॥६२४॥
बित चोरन चितचोर मैं ब्योरौ इतनौ आइ।
इन्हैं पाइकै मारियै उनके लगियै पाय ॥६२५॥
समै पाइकै लगत है नीचहु करन गुमान।
पाय अमर-पख दुजनि लौं काग चहै सनमान ॥६२६॥
झूठे ही जर जात है याके साखी पांच।
देखी कै काहू सुनी लगत साँच कौ आँच ॥६२७॥
जिन नैनन मैं बसत है रसनिधि मोहनलाल।
तिन मैं क्यौं घालत अरी तैं भर मूठ गुलाल ॥६२८॥
नेह अतर छबि अरगजा भर गुलाल अनुराग।
खेलत भरी उछाह सौं पिय सँग होरी फाग ॥६२९॥
मुख मीड़त आंजत दृगन प्रेम मुदित ब्रजबाल।
कहत सबै नँदलाल सौं हो हो होरी लाल ॥६३०॥
रे कुचोल तन तेलिया अपनौ मुख तौ हेर।
सुमननि बासे तिलन कौं काहे डारत पेर ॥६३१॥
अरे बजावत कौन ढिग हित रबाब के तार।
जुरौ जात है आइकै बिरहिन कौ दरबार ॥६३२॥
जिहिँ कनैल के फूल की लेत न बास सुहाइ।
माली सुमन गुलाब के उन पै मत लै जाइ ॥६३३॥
करबी मैं जौ ऊख सम रस सरसातौ आइ।
साजन देते याह क्यौं सहसा पसुन खवाइ ॥६३४॥
जदपि सु कोल्हू मैं उनै विदित सु पेरौ आइ।
बासे तिलवा सुमनि सँग वास न ताकी जाइ ॥६३५॥

तन मन तोपै वारिबौ यह पतंग कौ नाम।
एते हूं पै जारिबौ दीप तिहारोहि काम ॥६३६॥
चेतन होइ न एक सुर कैसे बनै बनाइ।
जड़ मृदंग बेसुर भए मुँहै थपेरे खाइ ॥६३७॥
कूकत अवध लवा लियै अरे बधिक बेकाज।
फिर आवत काहू सुनै चाक चढ़े चित बाज ॥६३८॥
अलगरजी घन सौं नहीं सुनियै संत सुजान।
अरजी चात्रिक दीन की गरजी सुनै न कान ॥६३९॥
और कहा देखत नहीं तुव ससि मुख की ओर।
चोर लियौ तैं सवन मैं काहे चित्त चकोर ॥६४०॥
कहा भयौ जौ सिर धरयौ कान्ह तुम्हैं करि भाव।
मोरपँखा बिन और तुम उहां न पैहौ नाव ॥६४१॥
रवि ससि अवनि सघन पवन और अगिन की ज्वाल।
ऊंच नीच घर सम लखै दुबिधा तज कै लाल ॥६४२॥
होत दूबरौ कूबरौ ससि तैं हर पखवार।
तोही सौं हित राखहीं दृग चकोर रिझवार ॥६४३॥
हरी करत है पुहुमि सब घन तूं रस बरसाइ।
आक जवासे कौं अरै काहे देत जराइ ॥६४४॥
तोय मोल मैं देत है छीरहि सरस बढ़ाइ।
आंच न लागन देत वह आप पहिल जर जाइ ॥६४५॥
लखि बड़वार सुजातिया अनख धरै मन नाहिँ।
बड़े नैन लखि अपुन पै नैना सही सिहाहिँ ॥६४६॥
अरे निरदई मालिया फूले सुमननि तोर।
नैक कसक कर हेरतौ प्रीत डार की ओर ॥६४७॥
दुइ मन तौल मिलाइ कै पुन इकठे कर हेर।
यै गौहूं अरु बाजरै बड़े भाव मैं फेर ॥६४८॥

प्यास सहत पी सकत नहिँ औघट घाटनि पान।
गज की गरुवाई परी गज ही के गर आन ॥६४९॥
औघट घाट पखेरुवा पीवत निरमल नीर।
गज गरुवाई तैं फिरै प्यासे सागर तीर ॥६५०॥
अँधियारी निस बिच नदी तामैं भँवर अपार।
पार जवैया दरद कव लहै रहै या वार ॥६५१॥
हरौ हरौ रँग देखि कै भूलत है मन हैफ।
नीम-पतौवन मैं मिलै कहूं भाग कौ कैफ ॥६५२॥
धरि सौनै कै पींजरा राखौ अमृत पिवाइ।
विष कौ कीरा रहत है विष ही मैं सुख पाइ ॥६५३॥
कोलत काठ कठोर क्यौं होत कमल मैं बंद।
आई मो मन-भँवर की इतनी बात पसंद ॥६५४॥
धरे जदपि वहु मोल के घरन जवाहिर हूब।
आनँद के औसर तऊ सीस बांधियत दूब ॥६५५॥
चित चाहन जिहि मुख लहौ स्वाद नागरी पान।
ढाक पात भावत सुनौ तिनकौं कहा सजान ॥६५६॥
सवही कौ पोषत रहै अमृत-कला सरसाइ।
ससि चकोर के दरद कौं अजौ सकत नहिँ पाइ ॥६५७॥
चार जाम दिन के जिन्हैं कलप समान बिहात।
चंद चकोरन दरस अब दैन लगौ अधरात ॥६५८॥
समय पाइ कै रूप धन मिलत सवैई आइ।
बिलस न जानै याह जो समय गए पछताइ ॥६५९॥
वैठत इक पग ध्यान धरि मीनन कौं दुख देत।
बक मुख कारे हो गए रसनिधि याही हेत ॥६६०॥
जब देखौ चहियै तुहैं तब तू नहीं दिखात।
लीलकंठ वोतैं दसैं फिर है कीरा खात ॥६६१॥

याके बल वह लेत है पावक चिनगी खाइ।
चंदहि जौ जारन लगौ तौ चकोर कित जाइ ॥६६२॥
अमित अथाहै हौ भरे जदपि समुद अभिराम।
कौन काम के जौ न तुम आए प्यासन काम ॥६६३॥
सरस मधुप गुंजत रहै लेत सुमन की बास।
कुम्हल्यानै फिरता नहीं अली रली ता पास ॥६६४॥
रती रती के बढ़त हीं मन बढ़ि जात अतोल।
घटै भाव के मन यहै लहै न कौड़ी मोल ॥६६५॥
ससि चकोर के दरद कौ जब तुहिँ असर न होइ।
कुहू निसा षोड़स कला तब तैं बैठत खोइ ॥६६६॥
अरे निरदई मालिया कहुँ जताय यह बात।
केहि हित सुमनन तोरि तैं छेदत सौजन गात ॥६६७॥
गुल गुलाब अरु कमल कौ रस लीन्हौं इक ताक।
अब जीवन चाहत मधुप देख अकेलौ आक ॥६६८॥
काग आपनी चतुरई तब तक लेहु चलाइ।
जब लग सिर पर दैइ नहिँ लगर सतूना आइ ॥६६९॥
जा गुलाब के फूल कौं सदा न रँग ठहराइ।
मधुकर मत पच तूं अरे वासौं नेह लगाइ ॥६७०॥
सब रंगन मैं नीर तुम मिलकै रँग सरसात।
मीत प्रेम रँग से कहौ क्यौं न्यारे ह्वै जात ॥६७१॥
उयै सोख जल लेत है बिना उयै दुख देत।
कठिन दुहूं बिधि कमल कौ करै मीत सौं हेत ॥६७२॥
जानत सही चकोर कर ससि सौ प्रेम सलूक।
अमृत सराबी के रसहि समुझहि कहा उलूक ॥६७३॥
मोलै मोला कहत हैं फलै अंबिया नाव।
और तरुन मैं नूत यह तेरौ धन्य सुभाव ॥६७४॥

ससि निरमोही हौ भले भोर भयै घर जाव।
दिनकर विरह चकोर कौं मेट न सकिहौ दाव ॥६७५॥

तिन सौं चाहत दाद तैं मन पस कौन हिसाब।
छुरी चलावत हैं गरै जे वेकसक क़साब ॥६७६॥

मीत वधिक जे निरदई भूंजि करेजा खाइ।
जबह करत जे जियन की कब मन मैं कसकाइ ॥६७७॥

मीता कसक कसाब कौ कहि हिसाब कह कौन।
कसकै हियै कसाव जौ छुरी चलावै कौन ॥६७८॥

होते जो पै चलत कहुँ सदा चाम के दाम।
रहन न देते वेदरद काहू तन मैं चाम ॥६७९॥

बूझत आजजि हाल नहिँ यही हियै है सूल।
भई आज जिय आवते प्रभु दरगाह कबूल ॥६८०॥

चल न सकै निज ठौर तैं जे तन द्रुम अभिराम।
तहां आइ रस बरसिवौ लाजिम तुहि घनस्याम ॥६८१॥

तेरी है या साहिबी वार पार सब ठौर।
रसनिधि कौ निसतार लै तुही प्रभू कर गौर ॥६८२॥

रोम रोम जो अघ भर्‌यौ पतितन मैं सिरनाम।
रसनिधि वाहि निवाहिवौ प्रभु तेरोई काम ॥६८३॥

गंग प्रगट जिहि चरन तैं पावन जग कौ कीन।
तिहि चरनन कौ आसरौ आइ रसिकनिधि लीन ॥६८४॥

मधुसूदन यह विरह अरु अरि नित मांड़त रार।
करुनानिधि अब यह समै अपनौ बिरद विचार ॥६८५॥

लखि औगुन तन आपनै भूल सवै सुधि जाइ।
अधम-उधारन-बिरद तुव रसनिधि सुमिर सुहाइ ॥६८६॥

भगतन तौ तुम तारिहौ अधम कौन पै जाइ।
अधम-उधारन तुम विना उन्हैं ठौर कहुँ नांइ ॥६८७॥

गिनति न मेरे अघन की गिनती नहीं बढ़ाइ।
असरन-सरन कहाइ प्रभु मत मोहिँ सरन छुड़ाइ ॥६८८॥

हौं अति अघ-भारन भरौ अधमन कौ सिरदार।
अधम-उधारन नाम तुव सो मेरै आधार ॥६८९॥

मैं गीधौ लखि गीध गति गीधे गीधहि जान।
गीधे पतितहिँ तारिहौ तब बदिहौं प्रभु बान ॥६९०॥

जौ करुनामय हेरिहौ मो करनी की ओर।
मोसौं पतित न पाइहौ ढूंढ़ेहूं छिति छोर ॥६९१॥

गह्यौ ग्राह गज जिहि समै पहुँचत लगी न बार।
और कौन ऐसे समै संकट काटनहार ॥६९२॥

तुम जगदीस दयाल प्रभु हौ सबही सुनु चेत।
दीनन भूलत हौ हिए दीनबंधु केहि हेत ॥६९३॥

अधम-उधारन बिरद कौ तुम बांधौ सिर नेत।
रसनिधि अब या अधम की सुधि काहे नहिँ लेत ॥६९४॥

अधम-उधारन बिरद तुव अधम-उधारन काज।
जो पै रसनिधि औगुनी तुमैं सौगुनी लाज ॥६९५॥

हौं दुरबल - तन प्रभु सुनौ उत भवसिंधु अपार।
तुमही राखत बार जो कौन लगावै पार ॥६९६॥

स्याही बारन तैं गई मन तैं भई न दूर।
समझ चतुर चित बात यह रहत बिसूर बिसूर ॥६९७॥

अधम - उधारन प्रभु कहौ करिहौ जौ न सम्हार।
ह्वैहै मोसौं पतित क्यौं या भवसागर पार ॥६९८॥

हेरत कहुँ जौ दीन तन वाहि आवती लाज।
प्रीतम तौ न कहावतौ दीन-बंधु ब्रजराज ॥६९९॥
जदपि अकरनी है करी मैं हर भांति मुरारि।
प्रभु करनी कर आपनी सब विध लेहु सुधारि ॥७००॥
कहै अलप मति कौन विध तेरे गुन विस्तार।
दीन-बंधु प्रभु दीन कौं लै हर बिधि निस्तार ॥७०१॥

(५) राम-सतसई

श्रीस्यामा कों करत हैं रामसहाय प्रनाम।
जिन अहिपतिधर कों कियौ सरस निरंतर धाम ॥ १ ॥
अरुन अयन संगीत तन बृंदाबन हित जासु।
नगधर कमला सकत बर बिपुंगवासन आसु ॥ २ ॥
अवलि अली लै बृजगली रली करीजे आय।
ते राधा माधव हरैं बाधा रामसहाय ॥ ३ ॥
झूमहिँ झुमके स्याम के अली भली छबि जोइ।
मनहु झकोरे खात हैं काम - हिँडोरे दोइ ॥ ४ ॥
मृदु धुनि करि मुरली पगी खगी रहै हरिगात।
या मुरली की है अली बनी भली बिधि बात ॥ ५ ॥
धन जोबन चय चातुरी सुंदरता मृदु बोल।
मनमोहन-नेहै बिना सब खेहै कै मोल ॥ ६ ॥
कत मुकुरो लाज न धरो यह छबीहि पी पाय।
उर लखि अलिक अधर लखो प्रतिबिंबीहि मँगाय ॥ ७ ॥
मन - मलिनाई परिहरैं सुनि मेरी सिख बानि।
पिय की जीवन - मूरि है तिय तेरी मुसक्यानि ॥ ८ ॥
धीर धरो सोच न करो मोद भरो जदुराय।
सुदति सँदेसे सुनि रही अधरनि मैं मुसुक्याय ॥ ९ ॥
छाय रही सखि बिरह सों बे-आबी तन छाम।
पी आए लखि बरि उठी महताबी सी बाम ॥ १० ॥
त्रिबलि-निसेनी चढ़ि चल्यौ लेन सुधा मुसुक्यानि।
उचके कुच उचके अरी उचके चितहि बिचानि ॥ ११ ॥

लावति बीर पटीर घसि ज्यौं ज्यौं सीरे नीर।
त्यौं त्यौं ज्वाल जगै दई या मृदु बाल सरीर ॥ १२ ॥
तब अली न तोसों कही प्रीति की रीति भली न।
अब मलीन चित कित किए चितवति चकित गलीन ॥ १३ ॥
विषधर-स्वास सरिस लगे तन सीतल बन-वात।
अनलहु सों सरसे दगे हिमकर-कर घन-गात ॥ १४ ॥
फूल बिसूलैं देहि री ही हूलैं अलि अंध।
तन मन रंध करैं पवन सीतल मंद सुगंध ॥ १५ ॥
विहसिन आई नीर कों वीर तरनिजा-तीर।
वीर गिरी तिहि हेरि री पहिराई बलबीर ॥ १६ ॥
प्रथमहि पारद मैं रही फिरि सौदामिनि माह।
तरलाई भामिनि-दृगनि अब आई ब्रजनाह ॥ १७ ॥
बकुल निकुंज मिले हरि न हरिन भयौ सुख ऐन।
चकित चितौति खरी किए डरे हरिन से नैन ॥ १८ ॥
पहिरा री बे-छूनरी सुरँग चूनरी ल्याय।
पहिरे सारी सौसनी कारी देह दिखाय ॥ १९ ॥
अजब बनक औरै बनी मनमोहन की नारि।
बलि तिहि छनक निहारि ले घूंघट तनक उघारि ॥ २० ॥
जमुनातट नटनागरै निरखि रही ललचाइ।
बार बार भरि गागरै बारि ढारि मुसुक्याइ ॥ २१ ॥
घन घहराय घरी घरी जब करिहैं झर नीर।
चहुँ दिसि चमकै चंचला कस बचिहै बलबीर ॥ २२ ॥
को कब लों सिख देय जू सैन नारँगी बाल।
नवल कुचहि दलि जात हो यह अनारपन लाल ॥ २३ ॥
रुचिराई चितवनि निकनि चलनि चातुरी चारु।
हित चित की रुचि चुनि दई सुनि तोही करतारु ॥ २४ ॥

ललन कुसन की अरुनई जुरि अधरन मैं आइ।
कामिनि के तन की दमक दामिनि मैं दरसाइ॥ २५॥
बढ़ि बढ़ि मुख समता लिए चढ़ि आयौ निरसंक।
तातें रंक मयंक री पायौ अंक कलंक॥ २६॥
इंदुमुखी तो गुन लिखत अधर लग्यौ मसि बिंदु।
जौं गुनहीं छमिही लगै जौं गुनहीन न निंदु॥ २७॥
भादों गरू मरू गयौ आयौ सरद हरी न।
अब डर मार सुमार री जनम भयौ कानीन॥ २८॥
कोरि जतन करि करि थकी सुधिहि सकी न सँभारि।
छाक छयल छवि की छकी जकी रही यह नारि॥ २९॥
कत सौहें करि हेठ तकि तकि न जेठ की धूप।
यह सौहें चारी करै देह कँटारी रूप॥ ३०॥
बस की इन अँखियानि कों नवनारी मग जात।
सिकै दस गारी दई सुनि रस की इक बात॥ ३१॥
ललन चलन सुनि महि गिरी मुख कफ री लखि बीर।
तरफराति है राति तें मनु सफरी बिन नीर॥ ३२॥
ऐसे बड़े बिहार सों भागनि बचि बचि जाय।
सोभा ही के भार सों बलि कटि लचि लचि जाय॥ ३३॥
तुमहिँ सुधासानी कहो बानी रस सरसात।
करि यारी हरि सों न करि करियारी सी बात॥ ३४॥
लखि रमनी कों अनमनी सोखधनी कों दीन।
गौनो रह्यौ बिदेस जौ तौ गौनो क्यौं कीन॥ ३५॥
कमलावर करकमल लखि कमल गयौ कुँभिलाय।
कमलनि कमल भरे रही कमली लों चकवाय॥ ३६॥
हो हरि गोरी खेलते होरी रह्यौ न धीर।
संगहिँ अँखियनि मैं घसे अलि बलबीर अबीर॥ ३७॥

त्रिन तनयाहि छुवन न दै निति अति दारुन सास।
पठवति मोहि अकेलिए दुपहर चुनन कपास ॥ ३८ ॥
लोललोचनी कंठ लखि संख समुद के सोत।
अरु उड़ि कानन कों गए केकी गोल कपोत ॥ ३९ ॥
निपट कसनि कटि-काछनी अंसनि लसनि सुवास।
मृदु बिहँसनि हेरनि हरी अरी करी दृग वास ॥ ४० ॥
सजनी विसद जलद गरल नभ निरमल दुखफंद।
पावक सी रजनी लगै नावक सर कर चंद ॥ ४१ ॥
सिर धारी सारी हरी हरि गिरधारी होइ।
खरे धरे गिरिए कहों परे धरे गिरि दोइ ॥ ४२ ॥
चली कामिनी जामिनी भेटन नंदकिसोर।
झुके चकोर सुचाँदनी जानि दामिनी मोर ॥ ४३ ॥
सदन निकट के ताल मैं बंसी बाजी लाल।
सुनत नवेली ही परी तलबेली नटसाल ॥ ४४ ॥
मन उलहै दुलहै लखन चषन सकुच रहि जाय।
झांकि झरोखे कामिनी दामिनीव दुरि जाय ॥ ४५ ॥
सुघर बदन के अधर सद रदन सुछद छविछाज।
मदन कदन कर सदन ते मनु आयौ द्विजराज ॥ ४६ ॥
इक दरसावै आरसी इक सुरझावै वार।
बाँचे चष नीचे किए चितवत नंदकुमार ॥ ४७ ॥
उँजियारी मैं जौ कढ़ै उँजियारी मिलि जाय।
अरु अँधियारी राति मैं जाय उँज्यारी छाय ॥ ४८ ॥
सटपटाति हारी भई कारी राति निहारि।
बन तन कों चलि बलि गई सिति पट घूंघट टारि ॥ ४९ ॥
तन मन बेधक हैं गनी रहहिँ तनी अति पैन।
नहिँ तरुनी बरुनी घनी बनी अनी सर मैन ॥ ५० ॥

मेरे दृग को दोस री लाइ लगावैं धाइ।
बिन जितए चितचोर के भरि आवैं अकुलाइ॥ ५१॥
हिय तकि कन विहँसन लगी अब धन तन दिन माहँ।
भई लरिकई तरुनई पूरब पर दल छाहँ॥ ५२॥
जान कहौ तौ जाइए कुसल रहौ हे कंत।
हौं वाचिहौं हिमंत सों सुख साचिहौ बसंत॥ ५३॥
पी उठिगे सुठि हठ-पगी किए अयान छमा न।
अब पछतान कहा लगी की यह मान अमान॥ ५४॥
नासी दामिनि की प्रभा सहजहि हांसी माह।
वा नवला सी हेम की लवलासीहु न नाह॥ ५५॥
घट ल्याई उटि पीत पट कसऽब दियौ ढरकाइ।
बिहँसि चली चहि सास-रुष चंचल चषनि चलाइ॥ ५६॥
विधु बंधुर मुख भा बड़ो वारिज नैन प्रभाति।
भौंह तिरीछो छवि गड़ो रहति हिए दिन राति॥ ५७॥
हौं दृग कर जोरे रहौं याते जानत बाल।
उहि नागरि जो भाल कों लाल कियौ हे लाल॥ ५८॥
जऊ सौंह नख-खत भरे खरी ढिठाई खात।
तऊ सलोनी की रही भरी मिठाई बात॥ ५९॥
भूलि रहे बलबीर घर बीर धरों किमि धीर।
जमुना तीर करीर तर हनत कुसुम सर तीर॥ ६०॥
चित चंचल जग कहत है मो मति सो ठहरै न।
या ठोढ़ी की गाड़ गड़ि थिर ह्वै फिरि निकरै न॥ ६१॥
ए जीगन न उड़ाहिं री बिरह जरीहिं जरायँ।
इत आरी मदनागि की चिनगारी रहिं छायँ॥ ६२॥
लखि लखतहिं मन हरि गयौ जग्यौ सुमन सर जोर।
मूरति सी निरखति खरी सूरति नंदकिसोर॥ ६३॥

सजनी निपट अचेत है दगादगी समुझै न।
चित बित परकर देत है लगालगी करि नैन ॥ ६४ ॥
तू सतुराई में दुरे दूरो जाय न त्यागि।
पूस तुहिन की त्रास सों सूरो सेवत आगि ॥ ६५ ॥
निधरक छबि छाकैं छकैं चलहिं न अरु बिचलैं न।
ए लोचन अति लालची बरजेहु मानैं न ॥ ६६ ॥
छन बिछुरन चित चैन नहिं चलन चहत नँदलाल।
अब लखबी री होति है याको कौन हवाल ॥ ६७ ॥
धवल अटारी लखि खरी नवल बधू हरि दंग।
सादी सारी सबनमी लसत गुलाबी रंग ॥ ६८ ॥
या ठोढ़ी सरि कों जबै सफल भए बौराय।
तबहिं रसालनि कों गई कोइल दाग लगाय ॥ ६९ ॥
प्रीतम पौरि खरे रहे भरे सनेह निहारि।
हरषी दौरि परोसिनी बिलखी नागरि नारि ॥ ७० ॥
लाल अचंचल चख खरे चितवत हैं चित लाइ।
बाल दृगंचल जल भरे अंचल दै मुसुक्याइ ॥ ७१ ॥
बीर बधू ही पापिनी बीर बधू हरि लेहिं।
और पीर कहां जापिनी पीर पपीहा देहिं ॥ ७२ ॥
अँखियनि की गति लखि अरी बिषम जो लाइ लगाइ।
ज्यौं ज्यौं ताहि बुझावती त्यौं त्यौं अति सरसाइ ॥ ७३ ॥
काके पा गहि भा भली पागहि दीनी लाल।
को निगुनी गुन लै दई यह निगुनी नव माल ॥ ७४ ॥
दई बाम-तन छाम मैं काम कियौ यह काम।
भई माघ की चांदनी यह निदाघ को घाम ॥ ७५ ॥
जे हरि मोहन रूप सों कीन्ह्यौ मार सुमार।
ते हरि तूं मोहे अरी जेहरि की झनकार ॥ ७६ ॥

झीनी सादी कंचुकी कुच रुचि दीसी आज।
जनु बिबि सीसी सेव मैं केसरि पीसी राज॥ ७७॥
मोसों क्यों न कहै हहा मैन हनै सर पैन।
राजिवनैन बसे कहा नहिं आए रँग ऐन॥ ७८॥
जमुनातट घट भरि चली अधरनि मैं मुसुकाय।
चितवनि सों यक सुधि लई दई कई ही घाय॥ ७९॥
सखि कपोल उर लाल कै लखि हँसि बाल-लिलार।
दीनी बेंदी लाल लै बाल ससी आकार॥ ८०॥
अधर मधुरता लेन कों जात रह्यौ ललचाइ।
हा लोटन मैं मन गिर्‌यो उरजन चोट न खाइ॥ ८१॥
नैननि मढ़ि चित चढ़ि रही वह स्यामा वह साँझ।
झलकी दै ओझल भई झाँकि झरोखे माँझ॥ ८२॥
अरी होन दै अब हँसी लहरि भरी हौं जोइ।
हौं वा कारे की दसी तीतो मीठो होइ॥ ८३॥
पी आवन की को कहै सावन मास अँदेस।
पाती हू आती न ती अरु पाती न सँदेस॥ ८४॥
चित चिहुँटै मग पाय गो डहडहाय तन बार।
मन खुसिहाली लहलहे लखि साली घनहार॥ ८५॥
भोरहि उठि आए ललन कल न परी निसि सैन।
मेरे अनुरागनि रँगे तरुन अरुन ये नैन॥ ८६॥
सेज चमेली की रचै बासै बास सुवास।
धन तन गन भूषन भरै मन मैं भरी हुलास॥ ८७॥
लखि नवला की वर प्रभा नहिं चपला ठहराय।
फाटत ही करहाट को हाटक हाट विकाय॥ ८८॥
मोती झालर, झलझलैं झीने घूंघट माह।
मनु तारागन झलमलैं सरवर अमल अथाह॥ ८९॥

कित चित गोरी जौ भयौ ऊख रहरि को नास।
अजहूं अरी हरी हरी जहँ तहँ खरी कपास ॥ ९० ॥
निज घट उठवाती अरी मो देती न उठाय।
आन कका के माथ की साथ न जाउँ लवाय ॥ ९१ ॥
तेरी चेरी चंचला केसरि हेसरि नाहिँ।
कंचन रुचि रंचन लहैं चंपक चपि छपि जाहिँ ॥ ९२ ॥
हँसि आवै हँसि जाय है कसि अँगियै अँगिराय।
भौंहनि कों सतराय कै अँखियनि सों बतराय ॥ ९३ ॥
स्यामरूप स्यामा किए बिहरि रही सखि संग।
हरि आए पट कपट गो उघरि लपटि रहि अंग ॥ ९४ ॥
यौं तमोल की सुरँग दुति राजति दसननि माह।
जनु जागति मुकुतानि मैं अरुन मनिन की छांह ॥ ९५ ॥
मन नितंब पर गामरू लरफरात परि लंक।
बर बेनी नागिनि हन्यौ खर बीछी को डंक ॥ ९६ ॥
आए हैं मनुहारि हित धारि अपूर बहार।
लखि जीके नीके सुखद ये पीके त्यौनार ॥ ९७ ॥
गहति हाथ लखि लहति नहिँ लंक सलोनी नीठि।
सुछबि उदधि अवगाह मैं लसति लहरि सी ईठि ॥ ९८ ॥
बसन हरत बस नहिँ चल्यौ पिय बतरस बस आय।
अँगन चिलक तिय नगन की लीनी लाज बचाय ॥ ९९ ॥
सब घन नीचे दामिनी नचत लखैं खन बाम।
हों घन ऊपर दामिनी नचत लखी इक -जाम ॥१००॥
अहे दीनता सों रहे बिनय बैन कों भाखि।
मानि कहो मो मान तजि कान मान कों राखि ॥१०१॥
आधे नख कर आंगुरी मेंहदी ललित बिराजि।
मनु गुलाब की पांखुरी बीरबधू रहि छाजि ॥१०२॥

ठठकि चलनि कटि की लचनि चखनि नचनि सकुचानि।
मो चित वा रुचि की रचनि रुचिर रची नित जानि ॥१०३॥
चलि गो कुंकुम गात तें दलिगो नयौ निचोल।
दुरै दुराए क्यौं सुरत मुरत जुरत चख चोल ॥१०४॥
क्यों न एक मन होत तन दोय प्रान इक बार।
ये नीकी रिझवारि हैं वे नीके रिझवार ॥१०५॥
हारी जतन हजार कै नैना मानहिं नाहिं।
माधव-रूप बिलोकि री माधव लों मँड़राहिं ॥१०६॥
दिन बिहाय गृहकाज मैं सजनी सदन न सास।
नाह स्वाय छन लहति हौं रजनी मांह सुपास ॥१०७॥
निरखि कलाधर की कला कनक कलस पर बीर।
नाथ नाथ के माथ पै भूलि कहैं कबि धीर ॥१०८॥
नँदनंदन मन लै गए निज संगै यह पेखि।
चंदन चंद न ही हरैं घन तन ताप बिसेखि ॥१०९॥
सरद-जामिनी कुंज कों लिए चले यदुराय।
मिली कामिनि चांदनी केसनि दई बताय ॥११०॥
बजनी पँजनी पायलो मनभजनी पुर बाम।
रजनी नींद न परति है सजनी बिन घनस्याम ॥१११॥
हिए सुधादीधिति-कला सुमधु पिए हित नैन।
भाल भौम बालहि लला धरि कीन्हौं कित सैन ॥११२॥
ता दिन ते जकि सी रही थकि सी आठौ जाम।
जा दिन ते चित मैं चुभी चोखी चितवनि स्याम ॥११३॥
समुझैवे ही कहत हौ सहज समुझि जिय माह।
रीति रँगे किति प्रीति की लाल रँगे तिय आन ॥११४॥
होनहारु काया धरी यह गति आनि निहारु।
बाल-बदन बारिज अरी मारयौ बिरह निहारु ॥११५॥

चंद-मरीची सी अरी कौन खरी लखि आय।
कसे कंचुकी वास की हास भरी अँगिराय ॥११६॥
जो तव छनहुँ न सहि सक्यौ बिछुरन नंदकिसोर।
सो हिय दरकत कत न अब भरे विरह भरु जोर ॥११७॥
छार अँगारनि परत हैं मनु तजि वैर समूल।
माह सीत की भीत सों दहनो ओढ़े तूल ॥११८॥
आज अचानक मिलि गली चली गई वह हाय।
अधरनि मैं मुसुक्याय कै अँखियनि आंख लगाय ॥११९॥
कालि ससुरपुर को गई सजनी नंद पियारि।
जमुना जाउँ अकेलियै रजती आनन वारि ॥१२०॥
एड़िन चढ़ि गुलुफन चढ़ो मुरवन वचो दवाइ।
सो चित चिकने जघन चढ़ि तितहिँ परो विछिलाइ ॥१२१॥
लगन नई सों सखि गई सुधि करि लखन तमाल।
मग लखि ललन मगन भई प्रमुद समुद मैं वाल ॥१२२॥
दुरी दुराएहु हिए झीने पट वंसी न।
सखि तिय दिसि लखि हँसि कही है यह वीन नवीन ॥१२३॥
कितिक मदन को रूप री को न सिँगार कहाइ।
यह आछी छवि छैल की छलकि रही तकि आइ ॥१२४॥
सूखे पतवारी वली कुंजर लीन वनाव।
करनधारु विनती अली नव संकेत बताव ॥१२५॥
परदे बाला वर लसै धेरु दाव नहिँ पाय।
गिरवानहु असि ती न तकि रीझहुगे सुकवाय ॥१२६॥
इहां दुरावत कत लला कपट-कला के जोर।
यह नहिँ जानत हो भला चोन्हत चोरहि चोर ॥१२७॥
तकि तकि जिनहि लता रही थकि थकि सीस नवाय।
ते भुज भाई रावरी पी-मन देहि भँवाय ॥१२८॥

तन मन रीझे मार से सुंदर नंदकुमार।
यातें है उचितै चितै हँसि बोलै इक बार ॥१२९॥
पुहुपित पेखि पलास-बन तव पलास तन होइ।
अब मधु मास पलास भो सुचि जवास सम सोइ ॥१३०॥
मुह माहीं नाहीं रही ही मैं हाहीं धारि।
गरबाहीं कीन्हें तिया रही पियाहि निहारि ॥१३१॥
मदनातुर चातुर पियै पेखि भयौ चित लोल।
पुनि पट सरकौहैं भए फरकौहें सुकपोल ॥१३२॥
सजल जलद से नैन ए बैन रुके किहि भेव।
अंग थरहरे क्यौं भरे खरे तनोज पसेव ॥१३३॥
प्रीति प्रतीति लिए सुधा मान ठानि बोलै न।
सौहें सौहें खात कित होत हँसौहें नैन ॥१३४॥
लखि सुछबोले रीझिहौ सुछबोली छन माहिँ।
छिगुनी छोरहु के छले कटि ढीले ह्वै जाहिँ ॥१३५॥
पी पेखे ती-बदन निसि दिवस ससी अनुहारि।
तनु मनु हारि चरन लगे करन लगे मनुहारि ॥१३६॥
नहिँ आए निसि आधिहू कहुँ छाए बस नेह।
उर उरझी गुरु लाज के तिय यह जिय संदेह ॥१३७॥
हरि छबि सुधि बुधि हरि लई बीर भयो यह हाल।
परिरंभन लागी करन जमुना-तीर तमाल ॥१३८॥
घन इत तकि कित चित गयौ कैसी चंदन लाइ।
अहे कहे तो तन रहे सघन अरुन कन छाइ ॥१३९॥
रिसु करि कछु बोली न ती इत उत डोली ऐन।
सनखौहैं पी तकि भए तनु अनखौहें नैन ॥१४०॥
कोऊ कोरिक खोरि दो नासा भौंह सिकोरि।
दूजी हरितन हरि तकैं इत तें हित दृग जोरि ॥१४१॥

सब विधि अति रति-कोविदा कोक-कला की नाइ।
कनक-वेलि सी केलि में तिय पिय हिय लपटाइ ॥१४२॥
रमन गमन सुनि सखिन तन तकि न कहति कछु बार।
नैननि इंदीवरनि तें वहति कलिंदी धार ॥१४३॥
सुखदायक दूती चतुर करि परपंच बनाय।
छरि जु निसातम सुबसु करि नवलहि दई मिलाय ॥१४४॥
कामुक अँधियारी गली हरप्यौ कामिनि हेरि।
आलिंगन करतहिँ अली आए वारिद घेरि ॥१४५॥
तिय तव ये नैना दिए हिए उछाह अछेह।
पिय बिछुरे दुखप्रद भए नेह किए अब मेह ॥१४६॥
धीर अभय भट भेदि कै भूरि भरी हू भीर।
झमकि जुरहिँ दृग दुहुँनि के नेकु मुरहिँ नहिँ वीर ॥१४७॥
सुनि गौने की बात कल भए पनसफल गात।
मसकि गई आँगी नई उकसे उरु उरजात ॥१४८॥
अहनिसि नहिँ ढिग तें टरै भरै अनंद अनेक।
बिन देखैं मनभावनै कल न परै पल एक ॥१४९॥
अँगिरानी आँगी चितै दृगनि दृगनि तें जोरि।
रँगराती रँग राति कै बिहँसि गई मुख मोरि ॥१५०॥
चारु भए भरि भार कुच सकुच भई रसलीन।
लगे नयन लौं करन क्यौं ललन न होय अधीन ॥१५१॥
बाल गुलाब प्रसून कौं अब न चलावै फेरि।
परौं लाल के गात मैं खरो खरोटैं हेरि ॥१५२॥
झाँकि झरोखे जनि जुरैं रिझवारिन की सेन।
बलि कहि मोहै रावरै ये न नैन लखि के न ॥१५३॥
धनि धनि है धन के चरन सिंजित मनि मंजीर।
कल हंसन के चेटुवन मन ललचावन बीर ॥१५४॥

जब तन दीप्यौ दीप लों अतन जग्यौ मन माहँ।
ललचि चले चख तब चले को निज तन की छाहँ ॥१५५॥
नख-रेखैं देखैं नए श्रमकन छलकैं छाय।
पलकैं झलकैं पीक की अलकैं रहै दुराय ॥१५६॥
हौं न सखी ऐसी लखी जैसी है यह चाल।
लाल नयन सद मद छके झूमि रही यह बाल ॥१५७॥
सहित भला कहि चित अली लिए कजाकी माहिँ।
कला लला की ना लगी चली चलाकी नाहिँ ॥१५८॥
गहि बरुनी बरछी बनी अरु कटाछ तरवारि।
नैन बीर लैं भीर धसि धीर अमी रहि मारि ॥१५९॥
बानि तजैं नहिँ बावरे कानि कि हानि लजै न।
सौहें दरसत सांवरे होत हसौंहें नैन ॥१६०॥
आज अचानक गैल मैं लखत गयौ हरि धीर।
काढ़े कढ़त न गड़ि रहे अँखियनि मैं बलबीर ॥१६१॥
बैरी मोहि बिचारि कै कत कहियत छल बैन।
इतनोई कहि चुप रही भरि आए जल नैन ॥१६२॥
ससि लखि जगत बिदित कहो जाय कमल कुँभिलाय।
यह ससि कुँभिलानो अहो कमलहि लखि किहि भाय ॥१६३॥
सारी सारी लै भजे चढ़े कदम की डाल।
अबला जन गड़ि जाति हैं अब लाजन गोपाल ॥१६४॥
घरहाइन की घेरुहू लाज सकी न बचाय।
अरी हरी चित लै गयौ लोचन चारु नचाय ॥१६५॥
आयौ दुसह बसंत री कंत न आए बीर।
तन मन बेधत तंत री मदन सुमन के तीर ॥१६६॥
जातरूप परिजंक की पाटी रहि लपटाइ।
मीच बीच ही चहि चकी तनु न पिछानी जाइ ॥१६७॥

दामिनि निज दुति दरपकै दमकि न अब इहि कोति।
कामिनिहूं तो सी लसै विमल भरी तन जोति ॥१६८॥
जौ वाके सिर पै परै छाहँ सुमन की आय।
तौ बलि ताके भार सों लंक वंक ह्वै जाय ॥१६९॥
सब गनना चितचोर सों बनी सुनत यह बोल।
भरके तनसिज तरुनि के फरके गोल कपोल ॥१७०॥
सोच बिमोचन हैं अली भरे सकोचन माहिँ।
लोचन मैं लाली भली रोचन सी दरसाहिँ ॥१७१॥
लागे नैना नैन मैं कियो कहा धौं मैन।
नहिँ लागे नैना रहैं लागे नैना नै न ॥१७२॥
चपति चंचला की चमक हीरा दमक हिराय।
हांसी हिमकर जोति की होति हास तिय पाय ॥१७३॥
लाजनि बोलि सकी न ती लागे तीर अनंग।
नीर नयन तें अयन तें पो निकसे इक संग ॥१७४॥
यह न लगी है कामिनी गरे सांवरे आइ।
मनु दमकति है दामिनी घनस्यामै लपटाइ ॥१७५॥
अरुन मांग पटियां चितै सौति परैं चकि घूमि।
सोहै सींव सोहाग की रससिँगार की भूमि ॥१७६॥
सुमन-छरी सी बन गई इत तें जमुनातीर।
तकि उत तें आवति दई छरा छरी सी बीर ॥१७७॥
जदपि जतन करि मन धरों तदपि न कन ठहराय।
मिलत निसानन मान को घन समान उड़ि जाय ॥१७८॥
नारी बूड़ि गई सुनत कुंजविहारी नाम।
करि उपाय हारी अजौं सुधि न सँभारी बाम ॥१७९॥
यह श्रमकन नख-खतन की सैन जुदी अँग मैन।
नील निचोल चितै भए तरुनि चोल रँग नैन ॥१८०॥

विधि वह दिन ऐहै कबों हाय मिलैगी धाय।
चंदकला सी वाल वह सियरै ह्वै यह काय ॥१८१॥
हाइ गई हौं आज जब भाइ कही बहु वार।
धसत कुसुम के दार मैं छद छाए केदार ॥१८२॥
सुमन सुमन अरपन लिए उपबन ते धन ल्याइ।
धरनी धरि हरि तकि कही हाइ भयौ श्रम जाइ ॥१८३॥
यौं विभाति दसनावली ललना बदन मझार।
पति को नातो मानि कै मनु आई उड़ भार ॥१८४॥
हौं न दुनी मैं यह सुनी रीझत हो गुन पाय।
मो निगुनी हूं पर कृपा करत रहो यदुराय ॥१८५॥
पीछे तें गहि लांक री भरी आंकरी हेरि।
चढ़ै नांक री नां करी हरे हां करी फेरि ॥१८६॥
ठकुराइन-पाइन चितै नाइन चित चकवाइ।
फिरि फिरि जावक देति है फिरि फिरि जाइ समाइ ॥१८७॥
स्वेद भरे बर गात री थरथरात बेहाल।
को गोरी पर डारिगो रोरी मारि गुलाल ॥१८८॥
रुकति चलति चलि चलि रुकति झुकति ललित गति पाय।
आवति सौरभ सों सनीं सियरावति लगि काय ॥१८९॥
सीत असह विष चित चढ़ै सुख न मढ़ै परिजंक।
विन मोहन अगहन हनै बीछू कैसो डंक ॥१९०॥
मो चित लियौ सुचित दियौ उचित कियौ लगि काय।
सो मित सोभित होइ कित पियौ सुधाधर हाय ॥१९१॥
जो तब सुखसीवां हई दई भई कह चेति।
पिय विन कोकिल-काकली भली अली दुख देति ॥१९२॥
चलि सुकेलि घर घन अझर कारी निसि सुखदानि।
कामिनि सोभावानि तूं दामिनि दीपतिवानि ॥१९३॥

छीनी तार मुरार सी तिहिँ दीनी समुझाय।
चोखी चितवनि यार की कटि न कहूं कटि जाइ ॥१९४॥
अंगकंप स्वरभंग भो विवरन अति मनरंज।
नंदनंद मुखचंद सों मूंदि गए दृगकंज ॥१९५॥
हरत न हिम हिमभानु ते करत मधुर वर वैन।
वा ललना आनन नलिन दिवस मलिन निसि मैन ॥१९६॥
नहिँ है बेनु बजावनो लेनु दही को दान।
यह है लाल मिटावनो राधाजी को मान ॥१९७॥
करि उपचार थकी चहो चलि उताल नँदनंद।
चंद्रक चंदन चंद तें ज्वाल जगी चौचंद ॥१९८॥
एरी सुख खनहुँ न लखों दुखदो दुखद दिखाइ।
भीखन भीखन लगत है तीखन तैख बनाइ ॥१९९॥
जेवर बने लतान के ताप गने सविता न।
ते बितान छबितान तनु निसि छिन रहत बितान ॥२००॥
नेहु भूलि सपनेहु मैं तकत न दूजी ओर।
निसि दिन बदन सुचंद के लोचन चारु चकोर ॥२०१॥
मनरंजन तव नाम को कहत निरंजन लोग।
जदपि अधर अंजन लगे तदपि न नींदन जोग ॥२०२॥
रंगभवन सखि संग मैं आए स्याम सुजान।
दृग बिहँसै छवि लखि गयौ बिनहि मनाए मान ॥२०३॥
धीर लियौ हरि बीर री स्याम सरीर दिखाय।
चित चलाय ही पीर री गयौ अहीर जगाय ॥२०४॥
सुकनक बन कदली भली कमर खरीही खीन।
निरखि अमोल सिरी लली परिहो कदम यकीन ॥२०५॥
ललित बिसदता नखन यौं चरन अरुनता रंग।
ज्यौं बिमला सखि की कला लसति सुसंध्या संग ॥२०६॥

हार हेरानो हेरि दे टेरि कही बहु बार।
ससीकार नहिँ सुनत है चकित लुनत है हार ॥२०७॥
मोही मोहि दिखाय कै मन मोही छबि अंग।
सखि दुख दै सुख लै गयौ निरमोही निज संग ॥२०८॥
सेस छबीहि न कहि सकै अगम कबीहि सुधीर।
स्याम सबीहि बिलोकि कै बाम भई तसबीर ॥२०९॥
तनक निहारी जबहिँ तें बनक तिहारी आय।
छनक सँभारी सुधि नहीं कुंजबिहारी हाय ॥२१०॥
आज रही गृहकाज तजि अजब तमासे माहिँ।
डारि तुला तोली तियै तुलो छमासे नाहिँ ॥२११॥
स्यामरंग के परस तें उपज्यौ पुलक सरीर।
आली बनमाली मिले नहिँ जमुना को नीर ॥२१२॥
काम कमान तनीकि दृग दीपक काजर रेख।
कै एतो भौंहैं बनी सौंहैं पाय सुबेख ॥२१३॥
हे हरि छोभित करि दई मयन पयन सर मारि।
हरिहि हरिन-नैनी लगी हेरनहार निहारि ॥२१४॥
सरसि जात तव बदन को दरसि जात निति लाल।
बरसि जात सुखसात तब परसि जात जब बाल ॥२१५॥
कजरारी छबि पेखतहिँ मुरछि परे बृजराज।
कहि कौने लौने नयन टोने कीने आज ॥२१६॥
गहत अरुन कत होत है पहिरत कनक अकार।
लखत असित सित हँसत यह अहो कहो हरिहार ॥२१७॥
एतेहू ठिकठान पैं देखति हीं उत सान।
यह न सयानी देति हीं पानी माँगत पान ॥२१८॥
कहुँ निसि मैं बसि मयन बस आए अयन उताल।
लाल नयन भे बाल के लाल नयन लखि लाल ॥२१९॥

परि पा करि बिनती घनी नोंमरजा हौं कौन।
अब न नारि अर करि सकै जदुबर परम प्रवीन ॥२२०॥
आप भलो तौ जग भलो यह मसलो जुअ गोई।
जौ हरि-हित करि चित गहो कहो कहा दुख होइ ॥२२१॥
प्यारो घेरु निहारि कै चूम्यौ पाटल पान।
प्यारी कर मुकुलित कियो द्वौमिथ जानन आन ॥२२२॥
सो तिनके दृगदीपनहि जा समीप ठहराहिँ।
नागललीही है अली रोमवली यह नाहिँ ॥२२३॥
कनक बरनि मोहन लसैं तरनि-तनूजा-तीर।
लखे लखायै छबि कछू छति न छोभ मन धीर ॥२२४॥
इक तौ मार मरोर तें मरति भरति है सांस।
दूजे जारत मांस री यह सुचि लौं सुचि मांस ॥२२५॥
दमकि दमकि दामिनि कहा दिपति दिखावति मोहि।
वा कामिनि की कांति लौं भूलि कहीं नहिँ तोहि ॥२२६॥
ऐसे ही वेधक बने ये अनियारे नैन।
फिरि अरुनारे करि कहा ही बेधै हरि चैन ॥२२७॥
बलि तेरी छबि भावरी चलि बिभावरी जाइ।
जानति स्याम सुभावरी अब न भावरी ल्याइ ॥२२८॥
बेलि कमान प्रसून सर गहि कसनैत बसंत।
मारि मारि बिरहीन के प्रान करै री अंत ॥२२९॥
राति अनत बसि भोर पो झूमत आए ऐन।
निरखि न सौहैं नैन ती करति न सौहैं नैन ॥२३०॥
चंपक केसरि आदि दै तुलहिँ न कौनो रंग।
सोनो लोनो होत है लगि दुलहिन के अंग ॥२३१॥
बेत सबन मनिगन सजे बिलसित सुंदर बेलि।
चहुँ दिसि मैं राकेस सी रही उँज्यारी फैलि ॥२३२॥

भसम करत तन असम सर बिषम सिसिर के तीर।
यह निदाघ है भूलि कै माघ कहैं सब धीर ॥२३३॥
ईठिन में बैठी हुती नारि सु नार नवाय।
दीठिन दीठि बचाय कै इत चितई ललचाय ॥२३४॥
धन तन पानिप कों जऊ छकत रहैं दिन राति।
तऊ ललन लोयननि की नेसुक प्यास न जाति ॥२३५॥
पसोपेस तजि आइए पहिने कुन ससपंज।
कर मुकुताइ न जाइए मुकुता बरसत कंज ॥२३६॥
लंक गहै अंकन लगै परि परिजंक सकाय।
जगत अतन तन ललन के ज्यौं ज्यौं चित ललचाय ॥२३७॥
कारी सारी सिर धरे गिरिधारी न लजात।
सौहैं सौहैं खात सखि लखिं सनखौहें गात ॥२३८॥
राजिव नैन बिना लहे लहे छनो नहिँ चैन।
प्रेमपरनि मन खग अहे उरझि रहो सुरझै न ॥२३९॥
अली कहैं न इन्हैं भली लखि इनके कुसुभाय।
सिख हित लगत न नैकु चित चहहिँ सुधा विष खाय ॥२४०॥
अहे अहो कच सुमुखि के बिधि बिरचे रुचि जोरि।
छूटे बांधत हैं बँधे लेत ललन मन छोरि ॥२४१॥
बिधि इन अनियारे नयन कत बिरचे सुनि बाल।
जिनतें हेरि किए अरी हरि ही बेधि बिहाल ॥२४२॥
आय सकारे हिय सकुचि पाय पधारे ऐन।
तिय नागरि तिय नैन तकि लगी बफारे दैन ॥२४३॥
घिरि आए चहुँ ओर घन तिहि तकि मोर ससोर।
मोर सोर सुनि होत री तन मन मदन मरोर ॥२४४॥
वे नीके नीकी इहौ क्यौं फीकी परै चाह।
दुहुँ दिसि नेह निबाह पैं वाह वाह है वाह ॥२४५॥

कहा परेखै करि रही इत देखै चित हाल।
गई ललाई दृगनि तें छुवत कलाई लाल ॥२४६॥
छैल छबीली की छटा लहि महावरी संग।
जानि परै नाइन लगै जबहिँ निचोरन रंग ॥२४७॥
जा सँग जागे हो निसा जासों लागे नैन।
जा पग गहि मति मैन भे मैंन बिबस सो मैं न ॥२४८॥
लगिगो नैन लगे सुमन जगिगो मैन सरीर।
छली गयौ छलि गैल मैं छैल छली बलबीर ॥२४९॥
दृगनि खुभी खूठी खुभी निसराए निसरै न।
चल चख चितवनि चित चुभी बिसराए बिसरै न ॥२५०॥
तिगुनी तें द्विगुनी भई एक गुनी घटि लाज।
तब मधुबन किहि ज्ञान सों जान कहो बृजराज ॥२५१॥
सरकी सारी सीस तें सुनतहिँ आगम नाह।
तरकी बलया कंचुकी दरकी फरकी बाह ॥२५२॥
रूखे रुख मुख प्रिय बयन नयन चुराई दीठि।
दीठि तियहि पिय पीठि दी ईठि भई सुबसीठि ॥२५३॥
जहाँ दुपहरी मैं रही खरी अँधेरी छाइ।
अहे नवेली ता गली चली अकेली न्हाइ ॥२५४॥
ना करु ना करु कहि थकी ना करु नो करु मान।
कान लगैगो कान जब कान करैगी कान ॥२५५॥
धनि धनि है हे हार तो धनिधनि भाग अपार।
या नवला के ही लगो निधरक करत विहार ॥२५६॥
कत सकुचे नीचे चहो कहा कहो बस मैन।
पोंछे लाली ना मिटै लाल तिलोछे नैन ॥२५७॥
रनित किंकिनी हैं न री नजर सु आवै हाल।
मनसिज घरियारी अरी गजर बजावै बाल ॥२५८॥

तरकति सरकति ही रहैं रहैं न एको बार।
चुरियां ये कर तार की जग न रची करतार ॥२५९॥
चंपक मैं नहिँ चंद मैं नहिँ चपला मैं लाल।
नहिँ कंचन मैं चारुता रही यही तन बाल ॥२६०॥
चहुँ दिसि सों सहबासिनी बीजन करहिँ प्रभात।
चले पसीने जात हैं गात नहीं सियरात ॥२६१॥
यह स्यामा है कौन की छबिधामा मुसुक्याय।
सौंध चढ़ी चहि कौंध सी चौंध गई चख छाय ॥२६२॥
भटक न भटपट चटक कै भ्रटक सुनट के संग।
लटक पीतपट की निपट हटकति कटक अनंग ॥२६३॥
सगुन सरूप तुमैं कहैं बुध कत नंदकुमार।
ह्यां लों गुन न गहो रहो बिन गुन पहिरे हार ॥२६४॥
ललित मेंहदी बूंद यौं लसत हथेरिन साथ।
पी अनुरागी मन मनो बसत तिहारे हाथ ॥२६५॥
यक तौ सरपंजर कियौ अतन तनै सर सूल।
दूजे यह सिसिरौ भयौ खंजर संजर तूल ॥२६६॥
दैया पनिअरिया कहैं तरनि - तनैया - तीर।
अधर बिदारैं कीर री कपि डारैं चिरि चीर ॥२६७॥
जानि परैगी जात हो रात कहूं करि सैन।
लाल ललोहैं नैन लखि सुनि अनखोहैं बैन ॥२६८॥
खींचि किनारा कल नदी दई बदी हे लाल।
वाह रावरी चाह मैं भई बावरी बाल ॥२६९॥
बलिहारी अब क्यों कियौ सैन सांवरे संग।
नहि कहुँ गोरे अंग ये भए भांवरे रंग ॥२७०॥
गड़े नोकीले लाल के नैन रहैं दिन रैनि।
तव नाजुक ठोढ़ीन क्यों गाड़ परै मृदु बैन ॥२७१॥

बनक मढ़े कोठे चढ़े छैल छबीले स्याम ।
खरी चौहटे मैं अरी चढ़ी रहचटे बाम ॥२७२॥
तिय पिय की बेनी गुही लखि उसास कसि लीन ।
लहरि न आई मह्नि गिरी मनु नागिनि डसि लीन ॥२७३॥
त्रिबिधि प्रभंजन चलि सुरभि करत प्रभंजन धीर ।
तन मन गंजन अलि प्रभृत बिन मनरंजन बीर ॥२७४॥
सकुचौहीं मुसुक्यानि सों ललचौहीं अँखियानि ।
मो तन तनक चितै गई दुखद भई सुखदानि ॥२७५॥
कीजे कह रस बस बसे प्रविसे आय प्रभाव ।
आप कहीजे बलि कहा कहत पसीजे गात ॥२७६॥
चितवै चित आनंद भरि चारु चंद की ओर ।
प्रीति करन की रीति कों सिखवैं चतुर चकोर ॥२७७॥
सतरौंहैं मुख रुख किए कहे रुषौंहैं बैन ।
सैन जगे के नैन ये सने सनेह दुरैं न ॥२७८॥
सी सी कै उझकै झुकै चलत रुकै जदुराय ।
नव मखमल के पावड़े हाय गड़े ये पाय ॥२७९॥
हा हा कर जोरे खरे बलि चितवो पिय ओर ।
कहँ यह मृदु तन रावरो कहँ हौं परम कठोर ॥२८०॥
बनमाली दिसि सैन कै ग्वाली चाली बात ।
आली जमुना जाउँगी काली पूजन प्रात ॥२८१॥
मलयज घसि घनसार मैं खौरि किए गयगैनि ।
सेत बसन सजि तजि गलो चली चांदनी रैनि ॥२८२॥
चतुर चितेरे पानि कों चूमन जोग बिचारि ।
रही निहारि सुमित्र को चित्र चित्र सी नारि ॥२८३॥
गई ललाई अधर तें कजराई अँखियान ।
चंदन पंकन कुचन मैं आवति बात तियान ॥२८४॥

कनित बेनु मारुत परम ध्वनित बिहँग अलिगुंज ।
बलि चलि जहँ तम दरस सम पुंज तमाल निकुंज ।।२८५।।
बिरह बरहि भर सीतकर लखि लखि मरति कराहि ।
ये बैरी किहि धन मलै मलयज लावति काहि ।।२८६।।
क्यौं जितिए कहिए भला तुम छल बल सुप्रबीन ।
करिए कौन कला लला हम अबला बलहीन ।।२८७।।
तब सीरी तकि तकि सिरी भई रही छल नीर ।
अब गरमी मन मैन की आय गई बलबीर ।।२८८।।
ऊधव माधव जू बिना सुखदाहू दुख देत ।
होत चेत हरि लेति चित चेत चांदनी चेत ।।२८९।।
जब तें पीछे छिपि लखी दरपन बिधुमुख छांह ।
तब तें तेरे दरस की भरी हरी चित चाह ।।२९०।।
जब तें न्हान गई तई ताप भई बेहाल ।
भली करी या नारि की नारी देखी लाल ।।२९१।।
खंजन कंज न सरि लहैं बलि अलि को न बखानि ।
एनी की अँखियानि तें ए नीकी अँखियानि ।।२९२।।
छैल छबीली छांह सी चैत चांदनी होति ।
दीपसिखा सी को कहै लखि खासी तन जोति ।।२९३।।
मन-खेलार तन-चंग नव उड़त रंगरस डोर ।
दूरिहि दोर बटोर जब जब पारै तब ठोर ।।२९४।।
बड़े बड़े कच छुटि पड़े उमड़े नैन बिसाल ।
कड़े भमकड़ेही गड़े अड़े खड़े नँदलाल ।।२९५।।
इक दग पिचकारी दई इकहि लई ही लाय ।
सखी बिहारी दिसि लखी रसनहिँ दसन दबाय ।।२९६।।
हाहा करि हारी अहे जामिनि सरद न जान ।
लखत कलाधर देखबी कामिनि मान सयान ।।२९७।।

तन सुरंग सारी नयन अंजन ,बेंदी भाल।
सजे रही जगि जालिमा भामिनि देखहु लाल ॥२९८॥
सब जुरिकै दरसन करो परसन है सुख मोइ।
या कामिनि के उर लसैं गुर ससिसेखर दोइ ॥२९९॥
गुर उतंग सुर सहित हैं बरनत मो मन थाक।
बेसरि मुकुतनि पाय कै सरसति सोभा नाक ॥३००॥
चलनि भली बोलनि भली सुछबि कपोलनि आज।
तकि सौंहैं चितवनि भली भले बने बृजराज ॥३०१॥
कहति ललन आए न क्यौं ज्यौं ज्यौं राति सिराति।
त्यौं त्यौं बदन सरोज पैं परी पियरई जाति ॥३०२॥
जुवतिन सँग बर पूजि कै लगी भांवरी देन।
परतिय मुख पिय रुख निरखि हरष भरी अनखेन ॥३०३॥
तबहुँ मजाकी आज लखि सकल सजाकी नारि।
चखनि चलाकी सों अरी करी कजाकी मारि ॥३०४॥
अब निधरक सौंहैं चलो तरक भलो नहिँ कोइ।
रहे रिसौंहैं नैन जो भए हसौंहैं सोइ ॥३०५॥
का केकी की काकली का काली निसि चेन।
बन माली आए अली बनमाली आए न ॥३०६॥
जगमगात है होन कों या आनन लों चंद।
ताही तें पूरन भए मंद परै तम फंद ॥३०७॥
सुनि सुनि केकी कूक री हूक परी ही वीर।
ता पर जी घातक अरी चातक करत अधीर ॥३०८॥
गगन लता तें बलित हैं जहँ तमाल तरु जाल।
धेनु धावरी रावरी लखि आई गोपाल ॥३०९॥
दुरति, दुराए तें न रति बलि कुंकुम उर मैन।
प्रगट कहैं पति रति जगे जगी जगीले नैन ॥३१०॥

सपन न दरप न सदनहूं लखौं ललन अपराध।
कहि अब कैसे पूजिहै मान करन की साध ॥३११॥
दुपहर भए कहर किए जहर लगाए नैन।
मनरंजन न जगे अजों अब तकि अंजन दैन ॥३१२॥
यह अहनिसि बिकसित रहै वह निसि मैं कुँभिलाय।
याते तो मुख कमल लों कहो कहो किमि जाय ॥३१३॥
संग अनंग-अनी लिए किए सिँगार सुअंग।
रही पिया-छतिया लगी तिया पगी रतिरंग ॥३१४॥
काहि छला पहिराव री हों बरजी बहु बार।
जाय सही नहिँ बावरी मिहदी रंग को भार ॥३१५॥
नियरे बैरिनि ननद लखि मो जियरे की घाय।
पियरे पट की लटक सखि हियरे खटकति आय ॥३१६॥
चटक भई दुति दूनरी देखि तूनरी चाल।
पहिरि करैंगी खून री गहिरि चूनरी लाल ॥३१७॥
हेरि बिहारी की दसा बरनत नेकु बनै न।
चिलक तिहारी चाहि कै सूधी तिलक लगै न ॥३१८॥
नैन उनींदे कच छुटे मुखहि लुटे अँगिराय।
भोर खरी सारसमुखी आरस भरी जँभाय ॥३१९॥
कौतुक जोहौ रास को अरु मोहौ बृजराज।
चलो भलो मसलो हलो एक पंथ द्वै काज ॥३२०॥
कनक बिंदु सुरकी रुकुम चंदन मिलत जमाल।
बंदन तिलक दिए भई चिलक चौगुनी भाल ॥३२१॥
बानी बोलि कठेठिए रहति रुषानी जीय।
इत आरो बर मानिनी बसु लालन के हीय ॥३२२॥
सखि सँग जाति हुती सु ती भटभेरो भो जानि।
सतरौहीं भौंहनि करी बतरौहीं अँखियानि ॥३२३॥

तेरी सरल चितौनि तें मोहे नंदकिसोर।
कैसी गति ह्वैहै तक्रै कुटिल तरल चख छोर॥३२४॥
पी-पाती पाते उठो ती छाती सियराइ।
सुनि सँदेस रसभेद सों गई स्वेद सों न्हाइ॥३२५॥
अरी बिलंब बरी भई कालिंदी के न्हान।
इंदीवरनैनी निलै चलि चित थित करि ध्यान॥३२६॥
थहरि उठै हरि-तन चितै नैनन बन भरि लेय।
करन भारि बोलै हँसै गहन उरोज न देय॥३२७॥
रची सची सी तोहि री निज कर करि करतार।
तातें निसि बासर रहै तार भयौ भरतार॥३२८॥
उसरि बैठि कुकि काग रे जौ बलबीर मिलाय।
तौ कंचन के कागरे पालूं छीर पिलाय॥३२९॥
तव पद पदवी नहिँ मिली पदुम हारि वर मानि।
लजित होइ निसि मधुकरै भषत हराहर जानि॥३३०॥
लाल उतारि दई अली मैं मेली उर बाल।
गई पसीने न्हाइ सो भली चमेली माल॥३३१॥
भूषन बसन सजे तिया सैन करै नहिँ सैन।
छन निकसै दरसन पिया छन प्रविसै रँग ऐन॥३३२॥
आए स्याम बिदेस तें बाम मिली जब जोइ।
रहे अलोने गात जो भए सलोने सोइ॥३३३॥
झलकनि अधरनि अरुन मैं दसननि की यौं होति।
हरि सुरंग घन बीच ज्यौं दमकति दामिनि जोति॥३३४॥
समुझि एकु मो नेह कों नेकु लगे नहिँ नैन।
याते अरुन भए किए सैनन ही पर सैन॥३३५॥
यौं सुखमा सरसाय री ये तेरे नख पाय।
मनहुँ कमलदल बिधुकला अमल बिरोध बिहाय॥३३६॥

हेरति हैं सो तैं चकित हेरति पावति नाहिं।
चोरि लिए चितचोर चित एकहि चितवनि माहिं ॥३३७॥
निसि दिन पूरन जगमगै आवै धोय कलंक।
जौ तौ वा मुख की प्रभा पावै सरद मयंक ॥३३८॥
धीर मढ़त मन छन नहीं कढ़त बदन तें बैन।
तुरत सुरत की सुरत कै जुरत मुरत हँसि नैन ॥३३९॥
घनस्यामहि लहि काम बस दीनी वेंदी लाल।
ताहि डारि दै पदिक की कचनि चोराई बाल ॥३४०॥
इकहि आंक सों मोहि कै मोहि रहे हैं मोहि।
हरिहर लों पी कों कहै यहै निहोरी तोहि ॥३४१॥
स्याम विंदु नहिं चिबुक मैं मो मन यौं ठहराइ।
अधमुख ठोढ़ी गाड़ की अँधियारी दरसाइ ॥३४२॥
ललन चलन सुनि चित चहै लखन चखन समुहात।
कहन लगै फिरि जाय है आय दहन लों बात ॥३४३॥
हरि बिधि बनई औरई काहू को न उबीठि।
जाकों जा अँग मैं लगी दीठि परी नहिं नीठि ॥३४४॥
आली तो कुच सैल ते नाभि कुंड कों जाय।
रोमाली न सिँगार की परनाली दरसाय ॥३४५॥
गुलुफनि लों ज्यौं त्यौं गयौ करि करि साहस जोर।
फिरि न फिरयौ सुरवान चपि चित अति खात मरोर ॥३४६॥
मोहन बान चलाय कै मोही मोहि अनंग।
रही न कुल की कानि री अब परि परनि भुजंग ॥३४७॥
घर हरि धरि घर जाइए अब भर हरि किहि हेत।
कालि प्रभात मिलायहों यहि अरहरि के खेत ॥३४८॥
गमन सुनत घन तन दई मदन जो लाइ लगाइ।
ललन बदन लखि रहि गई सखि दिसि चखन चलाइ ॥३४९॥

दीठि निसेनी चढ़ि चल्यौ ललचि सुचित मुख गोर।
चिवुक गड़ारे खेत मैं निबुक गिरयौ चितचोर ॥३५०॥
आए लाल प्रभात लखि माल वदन की हाल।
अति उताल सखि बाल उर मेलो मुकुतामाल ॥३५१॥
जुग जुग ये जोरी जियैं यों दिल काहु दिया न।
ऐसी और तिया न हैं ऐसे और पिया न ॥३५२॥
जहँ जहँ डोल हरे हरे धरे छबीली पाय।
तहँ तहँ चोल तें चांदनी चटकीलो ह्वै जाय ॥३५३॥
मुख तें नजर अनत गई ती त्यौंरहि रहि तानि।
पीक हवह सरसिज निसा ससि यह सुनि मुसुक्यान ॥३५४॥
पावस मास अटे पटे अटल पटल घनघोर।
भोर सांझ आहट मिलै चटकाहट वकसोर ॥३५५॥
इक तो मदन विसिख लगे मुरछि परी सुधि नाहिँ।
दूजे वद बदरा अरी घिरि घिरि विष बरषाहिँ ॥३५६॥
कहे कहा न कहा कहे अहे अरंभहि माघ।
मेरे हित तेरे भरे तन कन ओघ निदाघ ॥३५७॥
बलि हां की वा दिन बिहँसि जब हरि हांकी गाइ।
अब ना की मोसों कहा बांकी भौंह चढ़ाइ ॥३५८॥
पहिले कहि ले कहन जो तब गहि ले पी अंक।
नत गहिली पछतायगी लखि खन माहिँ मयंक ॥३५९॥
कवि समता औरन लहैं लखि छबि बलय अलेष।
इनहीं की परिबेष भो रविहि ससिहि परिवेष ॥३६०॥
है ही तूं दरकत न कत अजहुँ भयहु पाषान।
बिरह दहन की दाह दहि लहि प्रवाह अँसुआन ॥३६१॥
नहिँ यह नाभी रावरी सुनि प्यारी बृजनाह।
बिधि रचि बिमल खरी करी परी चिबुक की छांह ॥३६२॥

हौं बरजी बहु बार जी पी पर-दार बिहाय।
अब से मरजादहि गहो रहो कृपा करि आय ॥३६३॥
जब तें तेरे कुच रुचिर हरि हेरे भरि नैन।
कनककलस कंबुक कुकुद नीके तनक लगै न ॥३६४॥
चंदन कीच चढ़ायहूं बीच परै नहिँ रांच।
मीच नगीच न आ सकै लहि बिरहानल आंच ॥३६५॥
आज रहे बलबीर री बीर अबीर उड़ाय।
सोभा भाषि न जाय जो आंखिन देखि न जाय ॥३६६॥
जब तें हँसि वह सांवरो गयौ कनखियनि चाहि।
मृग कैसे दृग मैं भई अनमिष निरखनि याहि ॥३६७॥
मो मति थकित चकित भई नेसुक भेद न पाय।
अलख तिहारी गति दई कहो कही किमि जाय ॥३६८॥
औंर गयौ जरि लेप तें तन चंदन स कपूर।
अरु चितए चित ह्वै गयौ चंद्रप्रभा चकचूर ॥३६९॥
गुरु जन मैं मूंदे बदन रही चले घनस्याम।
बात न आई नाक मैं वाती नाई बाम ॥३७०॥
बरु बरछी कै बर लगैं खरग लगैं सर पैंन।
कारी लगैं कटारिहूं सखि पर नैन लगै न ॥३७१॥
रस बरसत है रावरो तन पुलकित घनस्याम।
कहो अधर मैं कौन को रहो अधकहो नाम ॥३७२॥
आई सिर नीचे किए खीचे नैन निहारि।
कहत रुखावट सों गई चित चिकनाहट नारि ॥३७३॥
ज्यौं ज्यौं चंदन को ललन लेपत हैं निज गात।
त्यौं त्यौं ललना के नयन तकि तकि अति खियरात ॥३७४॥
नहिँ अन-लगिबे दीठि कों ईठि दिठोना दीन।
टोनो मन बसकरन कों ये कपोल मैं कीन ॥३७५॥

हिय लोचन मैं भरि रहे सुंदर नंदकिसोर।
चलत सयान न बावरी मान घरों किहि ठौर ॥३७६॥
कहत थकी ये चरन की नई अरुनई बाल।
जाके रँग रँगि स्याम सूं बिदित कहावत लाल ॥३७७॥
पहिर नवेलो नीलपट मृगमद तिलक लगाय।
केलि-अयन आली लिए चली अकेली जाय ॥३७८॥
सीस झरोखे डारि कै झांकी घूंघट टारि।
कैवर सी कसकै हिये बांकी चितवनि नारि ॥३७९॥
बिचरि चहूं दिसि लखत हैं बर पूजैं बृजराज।
चंदमुखी कों लखि सखी सुरुजमुखी सी आज ॥३८०॥
चूक समै न विचारि तू बादि करै अपसोस।
अपने करम फलद चितै हरि को देइ न दोस ॥३८१॥
लाल ललाई ललितई कलित नई दरसाय।
दरसो सारसरसभरे दग आदरस सँगाय ॥३८२॥
ए जवननि पीने कि सौं हौं कीने अपराध।
तेरे त्यौर तरेर की नित मेरे चित साध ॥३८३॥
सास ननद नाहिन सदन पिय मन करत बरात।
लखि परोस नँदनंद को हिय न अनंद समात ॥३८४॥
अहे अरे आंगन खरे हास-भरे बृजराज।
लखिबे कों ललकत हियो खरी भरी दग-लाज ॥३८५॥
अरुन स्याम बेंदी दिए मुकुर दरसि मुसुक्याय।
मनहु बिमल सर ससि गयौ कुज सनि संग लवाय ॥३८६॥
लाल चलत लखि बाल के भरि आए दग लोल।
आनन तें बात न कढ़ो पीरी चढ़ी कपोल ॥३८७॥
टरति न चौबारे खड़ी अरी भरी रस बाम।
अरो खरो त सांवरो प्रेमभरो बस-काम ॥३८८॥

नाभि भौंर परि किमि कढ़ै मन करि साहस जोर।
त्रिबली तरल तरंग दै डारि डारि ता ठोर ॥३८९॥
उत तें नेकु इतै चितै राति बितै तजि कोह।
तेरो वदन सुहास सों ससिप्रकास सों सोह ॥३९०॥
कत इत ताकति ताकि उत करत तमासो मैन।
दौरि रहे घरि दोइ तें दुहु के नैन थकैं न ॥३९१॥
लसत पीत पट हरि कटी ऊंचे करि दृग नीच।
मनु चपला छवि सों पटी है लपटी घन बीच ॥३९२॥
भट्ट लट्ठू सी ह्वै रही सनी सनेह बिसाल।
बैठे पेखि रसाल कों रोम उठे ततकाल ॥३९३॥
भरन गई जमुना जलै जोहि ललै ललचाइ।
ईछन भरि छबि छैल की आई चेत गँवाइ ॥३९४॥
सुवरन पाय लगे लगै दुरित उदित जग माहिँ।
परत रजत पायल अरी सुवरन की ह्वै नाहिँ ॥३९५॥
बिथुरे कच कुच पैं परे सिथिल भए सब गात।
उनदोहें दृग में भई दुगुनी प्रभा प्रभात ॥३९६॥
मैं मोही मोहे नयन खेह भई यह देह।
होत दुखै परिनाम करि निरमोही सों नेह ॥३९७॥
थाके खंजन भृंग मृग झष लखि बांके पैन।
वा ललना के लसत हैं चपल चलाके नैन ॥३९८॥
उत तकि तकि ताकैं ससी लखि सखि रोष न आइ।
नँदनंदन दूहत गगन छुवत न हैं थन गाइ ॥३९९॥
चित्रभानु जे करत हैं दीपनि बीच प्रकास।
तेती तेरे तेह तकि चकि थकि भरत उसास ॥४००॥
जिहि पहिरे छगुनी अरी छिगुनी छबि छहराहिँ।
सोने के लोने भले छले छले किहि नाहिँ ॥४०१॥

आगे चलि पाछे चलै फिरि आगे समुहाइ।
तरुनी तरल तुरंगिनी चली अली सँग जाइ॥४०२॥
हौं हारी समुझाय कै चरचारीहि डरैं न।
लगैं लगोहें नैन ये नित चित करत अचैन॥४०३॥
सूरज कर परचंड सों दिन अंगद है वीर।
रीछराज हनुमान सै निसि धारें किमि धीर॥४०४॥
पहिरन की हौंसै रही मो जियरे जदुराय।
पहिरे कंचनहार हौं हियरे जाय हिराय॥४०५॥
जाय उतै वलि पेखिए छाय रही छवि स्याम।
सोभति बेलि बिकास सों लसति हास सों बाम॥४०६॥
सुप्रसंसा या बात की करि जातीगन पास।
धनि जगती मैं चातकी इक स्वाती-घन आस॥४०७॥
झीनी सारी सजि लगी न्हाय निरखि जदुराय।
खरी सकोचन सों भरी लोचन रही नवाय॥४०८॥
ल्याई लाल निहारिए यह सुकुमारि बिभाति।
उचके कुच कच-भार तें लचकि लचकि कटि जाति॥४०९॥
मैं न लखी ऐसी दसा जैसी कीनी मैन।
तब तें लागे नैन नहिँ जब तें लागे नैन॥४१०॥
जाहि जोहि भारद भई मरी परो दुख-फंद।
ताहि सुधाधर क्यों कहैं दारद सारद चंद॥४११॥
या खिन लों चित पै चढ़ो आंखिन लागि लगाय।
भुवन भरन आई गई मो ही आगि लगाय॥४१२॥
तकि विकासता तरलई नई नारि दृग नाह।
कमल धँसे बन माह लजि कमल बसे बनमाह॥४१३॥
घरहाइन चरचैं चलैं चातुर चाइन सैन।
तदपि सनेह सने लगैं ललकि दूहूं के नैन॥४१४॥

सजि सुबरन अभरन तिया तजि रसना मंजीर।
सेज परी रति दूसरी चितवति मग बलबीर ॥४१५॥
हरिहि हेरि ही हरि गयौ बिसिख लगे झषकेत।
थहरि सयन तें हेत करि डहरि रहरि के खेत ॥४१६॥
अति सूछम लखि लंक को जिय कलंक ठहराइ।
नीवी कसत न ओढ़ की प्रौढ़ सखी डरि जाइ ॥४१७॥
लंक तलक छलकत चितै इक पल पलक परै न।
अलक तिहारी खलक के करि करि खून डरै न ॥४१८॥
झूमि झूमि मुख चूमि लै झुलनी मुकुतनि साथ।
मनहुँ सुरासुर गुर ससिहि फिरि फिरि नावत माथ ॥४१९॥
डोलै नहिँ खोलै नयन मौन भई मन मारि।
गोरी गोरी पैं अरी कौन ठगोरी डारि ॥४२०॥
तकति तिरीछे ईछननि पीछे भौंह चढ़ाय।
सरन धँसति बिहँसति कसति अँगिया-बँद अँगिराय ॥४२१॥
काहि पुकारो को सुनो को न उघारो नैन।
हरि कारो सुधि लै गयौ दै गारो इक सैन ॥४२२॥
चलत सदन तें सखि दई मदन ठगोरी डारि।
पिय-सूरति लखि कै भई तिय मूरति अनुहारि ॥४२३॥
रोम उठे तन कंप स्रम अनमिष चखवन छाय।
कर न चलै वैन न कढ़ै बदन गयौ मुरझाय ॥४२४॥
गली सांकरी हेरि री दई कांकरी मारि।
नहिँ बिसरै बिसरायहूं हरे हां करी नारि ॥४२५॥
इष्टदेव कै वा कह्यो पिय आवैं निसि माहिँ।
वोई आए होहिँगे आप लखैं मैं नाहिँ ॥४२६॥
जात सखी काहु न लखी रहे अथाइन गोप।
लोप भई ती जोन्ह में निज अंगनि की ओप ॥४२७॥

पाती आई पीत पट छाती लई लगाय।
दई लपट बिरहागि की दुगुन गई लपटाय ॥४२८॥
नई चाह मैं डुबि रही दही बिरह बर नारि।
छला लला को लै लई मुदरी दई उतारि ॥४२९॥
ए कुच सुबित कठोर कल लखि यह श्रीफलहाल।
चढ़े लगी भोरं बिना तोरे बाल अबाल ॥४३०॥
बिन चाहे नहिँ चैन चित चाहे तेहु न चैन।
कौनि कला के बिधि रचे चाहि लला के नैन ॥४३१॥
कहि यह कौनि दसा भई हरि हरि उठति बराय।
मदन दई बैराग कै मद न गई यह खाय ॥४३२॥
जे तीपम ग्रीषम रहे सुखप्रद सीरे कुंज।
ते अगहन हिय गहन बिन भए दहन के पुंज ॥४३३॥
हरितन हरितन कत तकै हरि-तन हरित निहारि।
चरित न तो तन लखि परै कित चित हित न बिसारि ॥४३४॥
ललित नील कन चिबुक मैं लसत प्रभा लहि दून।
मनु अरसी की पांखुरी लगी गुलाब प्रसून ॥४३५॥
गुरजन दुरजन मैं अली उरजन बनज छुवाय।
सिरमनि चिकुर चुराय कै गली चली ललचाय ॥४३६॥
ह्वैहूं कहूं सिधारिए चित बिचारिए काहि।
बलि बरषा ऋतु आइहै जियत पायहैं याहि ॥४३७॥
लखि सखि री इत आय खन स्वेद खेद भो दूर।
बारिज अरु बनितावदन बिकसे निकसे सूर ॥४३८॥
चहुँ कित चितवै चित चकित सजल किए चल नैन।
लखि सनवा मनवा परै मन वाके नहिँ चैन ॥४३९॥
हाहा री हारी हगै कै बा लाख सिखाय।
आप भरैं आपै ढरैं बरबस परबस जाय ॥४४०॥

नार नवाए तकि हरी करी कांकरी चोट।
चौंकि कँपी झझकी चकी चपी हँसी गहि लोट ॥४४१॥
लगे हमारे गात मैं नख रद तिनकी छांह।
लसहिँ बिमल ही रावरे लखहु छबीले नांह ॥४४२॥
काननचारी चपल हैं कजरारी छबि ऐन।
तातें अमल कमलमुखी कमल सही ये नैन ॥४४३॥
बिन सेवे तस कुंज तकि तिय हिय लागी लाइ।
नलिन बिना नलिनी बिपिन दरस गयौ सियराइ ॥४४४॥
तिय-हिय मान-मरोर सुनि पाय परे पिय आनि।
मलिनाई मुख तें गई आई मृदु मुसुक्यानि ॥४४५॥
नांक उचै चख भ्रूष नचै नेह रचे कहि नाहिँ।
चढ़ी छनछटा सी अटा अजहुँ चढ़ी चित माहिँ ॥४४६॥
स्वेदभरे तनसिज खरे जागे मनसिज गात।
सजल भए द्दग नहिँ कढ़ै मुख सरसिज तें बात ॥४४७॥
दीप दीप के दीप की दिपति दुहिन दुहि लीन।
समससि दामिनि भा मिलै वा भामिनि कों कीन ॥४४८॥
जिनकी सरि दीप न लहैं तूलैं सीप न कोइ।
स्यामकरन तकि बाम के कांम उदीपन होइ ॥४४९॥
लखि सु उदर रोमावली अली चली यह बात।
नागलली मुरली करै मनु त्रिबली के पात ॥४५०॥
तीछन ईछन बान तें भौंह कमानहि तानि।
हरिही हरिन हनै खरी तरुनि बधिक तजि कानि ॥४५१॥
वा दिन भाजे मुखनि की तुम नासौं मुसुक्याइ।
ते राजे यह सुनि उठी सुमना सी बिकसाय ॥४५२॥
बार बार बरजी अरी बार बगारनवार।
उर उरझो वा यार को को सुरझावनहार ॥४५३॥

कुंज गई न विथा गई कुसुमित ताकि अतान ।
बहुरि दई दूनी भई लगे अतन के बान ॥४५४॥
मारि छलंक रहे अहे पारि रहे द्दे चैन ।
ये न नैन हैं रावरे लसत मैन के ऐन ॥४५५॥
मेरो ही तो धाम है तो ही मेरो धाम ।
ये भेदन तें मोहि है नख-खत वेदन स्याम ॥४५६॥
ऐसे चंचल जगत गत देखे सोधि न कोइ ।
मनु विधि काढ़े हग-तुरग सुछवि-पयोधि बिलोइ ॥४५७॥
सुरत निसानी गात तकि सकुचत नहिँ समुहात ।
चरवाही जानो करो वेपरवाही वात ॥४५८॥
मुरछि परी हाहा खरी यह जागी नहिँ नीठि ।
कहि आली कालो दस्यौ नहिँ लागी हरि-दीठि ॥४५९॥
इतै चितै तूं कत खरी नहदी मिहदी नाहिँ ।
वे लोयन कोयन अरी प्रतिबिंबित दरसाहिँ ॥४६०॥
यह सुनि जगपति पाय को अचरजवारी वात ।
मो मन भूलो मांग मैं सूधेहू मग तात ॥४६१॥
सौरभ सुमन बरन लगे जरन उसीर पटीर ।
जेठ मास जलजंत्र तें झरन दहन-कन वीर ॥४६२॥
घरहाइन की घेरु मैं रही गए घनस्याम ।
नैनन सैनन वैन कै बार बगारयौ वाम ॥४६३॥
गई दावरी वावरी आई आतुर न्हाइ ।
तपनि तरलनैनी सही मोहित हफनि मिटाइ ॥४६४॥
हरि-हिय भृगु-पगु-रेख री वादि बिदित सब ओक ।
यह सुगरत परिगो अरी गड़त गड़त कुच-नोक ॥४६५॥
मान बिना सनमान नहिँ है यह लोक-प्रमान ।
तेरे जान सयान है मेरे जान अयान ॥४६६॥

काहू विधि हिमकर लहै या मुख समता नाहिँ ।
उहि लखि कमल सुकाहि री अरु यहि लखि विकसाहिँ ॥४६७॥
अधरनि की लखि मधुरई पीय पियूष पराय ।
सरदे कों सरदी चढ़ै दाख दुरै दुख पाय ॥४६८॥
जग जोहन ही के लिये दृगनि दिए करतार ।
मनमोहन - छबि मोहनी सुनी सखिन सों बार ॥४६९॥
और गए कछु दिवस के ह्वैहै लायक केलि ।
बनमाली विकसन लगी रस मैं सुबरन बेलि ॥४७०॥
सासौ बात सुनी न ती सकल सखीन लखी न ।
नहि सपनेहुँ मलीनहीं तन मन प्रीत मलीन ॥४७१॥
आप करहिँ मनुहारि नहिँ वे न तजहिँ बलि रोस ।
इत उत दोसन नेकु दो एकु हमारो दोस ॥४७२॥
हौं तो हौं गोरी खरी तुम कारे जदुराय ।
नहिँ छिरके आवो कहूं या अँग रँग लगि जाय ॥४७३॥
मान किए अपमान पी हीन धरों री माष ।
लाख भरे अपराधहू लखि पूजै अभिलाष ॥४७४॥
सद रद छद रद छद लगे नटि न लजीले बैन ।
बसी रसीले सँग सही कहत नसीले नैन ॥४७५॥
एरी या ती के मुखै पूनो ससि सम जोइ ।
पर यामैं लखि मित्र कों लखि दूनी दुति होइ ॥४७६॥
बाल दरीचे बिच लसै नीचे लाल बिभाहिँ ।
अनमिष से दुहुँ के नयन लखि अनमिष दरसाहिँ ॥४७७॥
सगरब गरब खिचैं सदा चतुर चितेरे आय ।
पर वाकी बांकी अदा नेकु न खींचो जाय ॥४७८॥
कौन कहै बलि अमल से छकित अमल से है न ।
ए न रावरे कमल से चकित कमल से नैन ॥४७९॥

सोक - पुंज सों भरि रही नारि निकुंज निहारि।
बिलखि गगन लखि सखि कही तोहि दया न त मारि ॥४८०॥
चामीकर चौकी रुचिर जड़ित जवाहिर जाल।
जगर मगर दुति जगि रही तड़ित छबीली बाल ॥४८१॥
लै चुभकी निकसै धसै विहँसै अँगनि दिखाय।
तकि तकि चित चिहुँटै खरी ऐंड़ भरी अँगिराय ॥४८२॥
कलरव करि झुकि स्तुति लगै रसगाहक चितचोर।
स्याम बरन सुंदर सुखद कुंजविहारी भौंर ॥४८३॥
लोल नैनि थारे लसैं अमल अमोल कपोल।
जिनमैं तिल के छल बसैं गोलक स्याम अडोल ॥४८४॥
यौं सोभति सिति कंचुकी सुछबि कुचनि की दून।
ज्यौं हलबी सीसानि के संपुट गेंद प्रसून ॥४८५॥
चंदहार चंपाकली काहि भली पहिराय।
फूलनिहूं के हार को भार सहो नहिँ जाय ॥४८६॥
अँखिया अनमिष लेहु लखि चलन चहत घनस्याम।
निति रहिहो घनस्यामहीं रसबस आठो जाम ॥४८७॥
बिरहदहन लागी दहन घर न घरीक थिराति।
रहति घरी सी ती भई बूड़ति और तिराति ॥४८८॥
बसन फटे उपटे सुचुक चिबुक ददोरे हाय।
चिहुँटन सुमन गुलाब कों अब मम जाय बलाय ॥४८९॥
लाल जगहि बाउर करो देहु कहा उर साल।
राउर सरल सुभाव है लखहु महाउर भाल ॥४९०॥
चलहु सिँगार कहा करो सहज हरो मन मैन।
ऐसेही नीके लगैं बिन काजर के नैन ॥४९१॥
समुझि भली बिधि लखि लली बेलि बली रसछाक।
भूलि अली न रली करै कनक कली अरु आक ॥४९२॥

जब तें हरी लख्यौ अरी तब तें छरी दिखाय।
घरी घरी घर तें निकरि खरी खरी अकुलाय ॥४९३॥
रुख रूखे भौंहें सतर नहिँ सोहें ठहरात।
मान हितू हरि बात तें घूमजात लों जात ॥४९४॥
वलि चलि कै अब चाहिए चाह चढ़ी चित बाल।
चिकनाई आई चखनि गई रुखाई लाल ॥४९५॥
अबस अरस उपचार करि करि अब सरस उपाय।
बिन मनमोहन के दरस जी की लाइ न जाय ॥४९६॥
सखि लखि नंदकिसोर सिर मोर मोर पर है न।
मनु सुमनसपति अकस सों सहस किए हैं नैन ॥४९७॥
चैत बसी जलधार मैं राध लसी ससि संग।
सीत बसी वलि जेठ मैं नवनारिन के अंग ॥४९८॥
भरे नेह सौंहैं खरे निपट रहे मलिनाय।
ल्याय पीत पट कों अहे अरुनारे लै जाय ॥४९९॥
निकसि परसि कल कूकि कै तनहिँ दिए करि खाक।
गिले पिए न दरे मरे तम काकोदर काक ॥५००॥
पी पीछे यह सुनि लगे ही सर तीछे मैन।
हार डारि हेरन लगी तरुनि तिरीछे नैन ॥५०१॥
कुंद मघा की सखि सुभा दसन निवारी जाय।
सांझ कि बेला रस पगी लगी मोगरे आय ॥५०२॥
को कहि गारे लेय री को पारे यह लिंब।
अधर निकारे बिंदु नहिँ ये तारे प्रतिबिंब ॥५०३॥
हौं चलि देउँ दिखाय कत चकित चितै चहु ठोर।
तेरे सँग वारी गई वा वारी की ओर ॥५०४॥
सुनि सखियनि तें आंगने खरे पीत पट आय।
धाइ अनल की लपट सी रही हिए लपटाय ॥५०५॥

उठि मिलि अति आदर कियौ नेह नह्यौ कहि बैन।
मान तिरोहित नहिँ रह्यौ तकि गति रोहित नैन ॥५०६॥
जोय न लीजै आरसी गोयन हाली हाल।
लोयन कोयन रावरे लोयन लाली लाल ॥५०७॥
मेरे चख चय सुख लहे ती तेरे तकि भाग।
छल गुंजनि की माल के झलकत पी अनुराग ॥५०८॥
निरखि बिमल पानिप परचौ नाभी नद ललचाइ।
अब किमि निकसि सकै अरी मीन भयौ मन जाइ ॥५०९॥
लखि हरि रुचि गुरु जन सकुचि भई पिछौंड़ी नीठि।
दई निरदई नहिँ दई ईठि पीठि मैं दीठि ॥५१०॥
स्याम तिहारे सीस की सौंह कहों सति बानि।
चित्रसदन मैं ती परे पलक परे पहिचानि ॥५११॥
पेखि चंदचूड़हि अली रही भली बिधि सेइ।
खन खन खोटति नखन छद न खनहुँ सूखन देइ ॥५१२॥
जो अतुलित गति कान्ह की सो भुलि तजत न नारि।
कत दृग मुकुलित करति हो प्रफुलित गात निहारि ॥५१३॥
भए कठिन ये ठग नए नय न नयन के राज।
रूप-उदधि मैं लागि कै मारत लाज-जहाज ॥५१४॥
निसि अँधियारी मैं कहो क्यौं प्यारीहि मिलाइ।
मुखमयंक की दिनहुँ मैं जाइ उँज्यारी छाइ ॥५१५॥
लंगर कों जीते जु करि रति-संगर जुग जाम।
तातें अंग रहे भरे सुनि मुसुकानी बाम ॥५१६॥
वाहि चाहि चित रीझिहो सुनिए नंदकिसोर।
निसि दिन भीर लगी रहै आनन तीर चकोर ॥५१७॥
झँकि उझकै झांकै उझकि लगी झरोखे ऐन।
बाम भई छन जोति सी नहिँ छन ईछन चैन ॥५१८॥

जब लगि जाय बराय कै ल्यावों केतक फूल।
तब लगि न्हाय दुकूल कों सखि सुखाय या कूल ॥५१९॥
सीतल मंद सुगंध चलि अनिल अखिल दुख देहिँ।
चैत चैत को चंद अलि चित चेतहि हरि लेहिँ ॥५२०॥
नैन बाल मानैँ न री हारी कोरि सिखाइ।
वा मुसुक्यानि सिता निमित दौरि जाहिँ ललचाइ ॥५२१॥
बरसाइत को बार है बर पूजन मिसु लाल।
सुख बर बरसाने चहैं बरसाने की बाल ॥५२२॥
चंचलता वे चखन सी झषनहुँ माहिँ हरी न।
ऐसे कोन हरीन हैं जासु छलंक हरी न ॥५२३॥
सपने मैं अपने निकट आए राति रसाल।
लपटत हीं पट जगि उठी समुझि उठै नटसाल ॥५२४॥
केलि-भवन कों गवन लखि चतुर सखी मुसुक्याय।
पियहि उढ़ायौ पीत पट सित पट तियहि उढ़ाय ॥५२५॥
पाय लगों छोरो न अब हायल नंदकुमार।
छूटतहीं घायल करैं छरकायल ये बार ॥५२६॥
छमा छमा सी छबि छनी बनी छमासी बाल।
छपे छपाकर ल्यायहों छपा छबीले लाल ॥५२७॥
अली गली मैं कर धरे कही हरे हँसि नाहिँ।
सो ही ते नहिँ ऊतरी चढ़ी पूतरी माहिँ ॥५२८॥
तपन-ताप तें चौगुनी बिरह-ताप सरसाइ।
घन उसीर चंदन छुहे छनहुँ न तन सियराइ ॥५२९॥
यौं बाजूबँद मैं भली झवियनि झुमका झोंरि।
कनकलता मानहुँ फली मरकत मनि की घोंरि ॥५३०॥
चाह तिहारी ब्याह सों कुंजबिहारीलाल।
हेम-माल सी होति है हेम-माल सी बाल ॥५३१॥

नैन तिहारे नैन मैं मैं न कहों कहै मैन।
उतरत ह्वै राते भए इत आते समुहैं न ॥५३२॥
बनी सुबरनी उर बसी पहुँची है चलि लेहु।
जब मोहन माला बनै मोहि सुबनिता देहु ॥५३३॥
अरुन नयन हैं रावरे अरुन कालि सी पाग।
आज कहो कासों लरे खरे भरे नख-दाग ॥५३४॥
वाह वाह नीकी बनी परतहिं नेकु निगाह।
डारि दियौ चित चाह मैं तो ठोढ़ी की चाह ॥५३५॥
पीरी पाती पावते पीरी चढ़ी कपोल।
कारे बदन बिलोकि रे मुदिता भई अबोल ॥५३६॥
अँधियारी जामिनि खरी दुति लहि जगि जगि जाय।
लखि दामिनि घनस्याम के उर में लगि लगि जाय ॥५३७॥
निरखि कनखियनि चित कहति नित के आज पिया न।
सीलभरी अँखियनि नमित सौहैं चहति तियान ॥५३८॥
लाज भरी अँखियानि मैं चाह भरी चित माँह।
बिबस परी है सुंदरी खरी सखीजन जाँह ॥५३९॥
सुखद सरद की कौमुदी भूषन भूषि जराइ।
सुबरनबेली सी अली चली नवेली जाइ ॥५४०॥
ढिग हिरकी घर की बड़ी पी आए ससुरारि।
नार नवाए लाज मैं जाति गड़ी नव नारि ॥५४१॥
जीते चारु चकोर रुचि सुचि मनसिज सर पैन।
थारे अनियारे लसैं रतनारे ये नैन ॥५४२॥
हौं पुकारि कहि देति हौं मान न मानैं लोइ।
हुकुम भवानी को भयौ ब्वारि न मानै कोइ ॥५४३॥
बंधुजीव लागैं मलिन भागैं बिंब प्रवाल।
बाल अधर कों लाल लखि नलिन कुसित कुस लाल ॥५४४॥

छकी अछेह उछाह मद तनक तकी यहि घांह।
दै छतिया छद छोभ हद गई छुवावति छांह ॥५४५॥
कोक-कला सी केलि कै सुरस-मई सरसाय।
गई निसा न निसा भई बेलि रही लपटाय ॥५४६॥
जब तें सुनी अनंग सी मूरति नंदकुमार।
तब तें रूप तरंग मैं पैरि न पावति पार ॥५४७॥
भलो कियौ तौ जौ पियौ चलो इहाँ ते नाह।
हा सब सखियां पेखिहैं आसब अँखिया माह ॥५४८॥
सजनी सज नीले बसन भूषन भूष न अंग।
रजनी रज नीकी चली अली अली लै संग ॥५४९॥
पवन परस तें झूलते बर अँचरो फहराय।
चाहि सकुच हिय तिय खरी सकुच भरी मुसुक्याय ॥५५०॥
न्हाय बसन पहिरन लगी बस न चल्यौ चित दोर।
खाय मरोर खड़े गिरयौ गड़े कड़े कुच कोर ॥५५१॥
जऊ किए रुख रूखो कहति कपट के बैन।
तऊ नेह घट नहिँ दुरै प्रगट कहैं मुख सैन ॥५५२॥
यौं स्रुतिभूषन भास मुख कलित मयूखन जोइ।
मनहु पियूषन कों घिरे ससि कों पूषन दोइ ॥५५३॥
कहत जो सोति सोहाग है तो जावक रुचि चाहि।
बजहिँ न ये बिछिया कहैं छिया छिया सुनि ताहि ॥५५४॥
कत मुकुरै मो तें दुरै नेह न नेसुक थोर।
कहत तो मतन रोम ये खरे भरे दृग नीर ॥५५५॥
उचके कुच उघरे चितै ढँपि आंचर सकुचाइ।
मृगसावकनैनी निरखि जावक मृदु मुसुक्याइ ॥५५६॥
सो न कहो बूझति जु हों बात बदो बलि आन।
कहो सैन की जो कहैं सो न नैन लगि कान ॥५५७॥

चंदकला कै चंचला कै चंपे की माल।
कै चामीकर की छरी सुछबि भरी कै बाल ॥५५८॥
छनपरभा के छल रही चमकि मार-करवार।
बीरबधू के ब्याज री दहकत आज अँगार ॥५५९॥
वे नैनन से आसबी मैं न लखे घनस्यांम।
छकि छकि मतवारे रहैं तव छबि-मद बसु जाम ॥५६०॥
रोम तने तन मैं घने स्वेदकने घन माथ।
नीके नारी देखिए थरथरात हैं हाथ ॥५६१॥
क्यौं न अँगारे देत रे मो मन जानि ससोक।
आंच तोहि नहिँ पांच की तूं है सांच असोक ॥५६२॥
मोहि मनावन कों कहो क्यौं बलाय ल्यौं लाल।
दहिगो ती जी हेरि ही बीती मोतीमाल ॥५६३॥
धनगनबेली बनबदन सुमन सुरति मकरंद।
सुंदर नायक औरवन दच्छिन पवन सुखंद ॥५६४॥
रहति चढ़ी चित चाय सो लोचन बंक नचाय।
अँगनि बँचाय अली गली चलौ जो लंक चलाय ॥५६५॥
कारी सारी जनि पहिरि हेरि पयोधर बोर।
मग ही में ससि ऊगिहै चलत प्रभंजन जोर ॥५६६॥
पूस सकारहिँ कहि कोऊ सांच मानिहै नाहिँ।
कहा कहों मुख इंदु पै ये स्रमबिंदु सोहाहिँ ॥५६७॥
सुबदनि निचलाई निसा बिकलाई लखि लेइ।
तजि मचलाई लाल कों गहन कलाई देइ ॥५६८॥
आनि इतै छन वारि दे सखि घनसार मसाल।
कौन काज तहँ राज जहँ सुधन बदन दुति जाल ॥५६९॥
बैन करत हैं सैन सों चैन ऐन घनस्याम।
बने पैन सर मैन के नैन जैन जग काम ॥५७०॥

लगे सोम कर तोम सर भई हिए बर घाइ।
कूक काकपाली दई आली लाइ लगाइ ॥५७१॥
बिसद बसन मेहीन मैं ती-तन-नूर जहूर।
मनु बिलूर फानूस मैं दीपै दीप कपूर ॥५७२॥
किहि विधि जाउँ बसंत मैं विकसित बेलि निकुंज।
सो मुख लखि चहुँ ओर तें झुकत झपत अलिपुंज ॥५७३॥
गंधबाह सीरे करैं हीरे ताप अछेह।
दई ताहु पर निरदई दाहत देह अदेह ॥५७४॥
बलि तिय हिय तें राग बढ़ि अधरनि रँग सरसाइ।
बिद्रुम बिंब बँधूक की आभहि रहेउ बढ़ाइ ॥५७५॥
बाल न चमकै चंचला है करबाल अनंग।
जलद-जाल घाते नए माते काल मतंग ॥५७६॥
बनी-बदन तें झरत हैं ये सुमना के फूल।
धनि सुसीलता मूल धन लगन धनी अनुकूल ॥५७७॥
दलन लगे हरि नारँगी गुरजन बीच निहारि।
चख चलाय लै गागरी चली नागरी नारि ॥५७८॥
ससि सो गोने जात कत यह आनन-मलिनाइ।
इत उत हेरति हो कहा हीरो गयो हिराइ ॥५७९॥
स्वेद भरे तनसिज खरे करज लगे गन ठाम।
सुथरे कच बिथुरे अरी लरी ललन तें बाम ॥५८०॥
अरुन चुनीन जड़ित ललित छिगुनी छोर सभाग।
लसत छला के छल लला यह ललना अनुराग ॥५८१॥
पट ना देरी लख न ऊ का समीर सुख देत।
करनाटक नैपाल की चढ़ि चलि कंत-निकेत ॥५८२॥
भोर चले सुनि सोर मन बाल भई बेताब।
मालिनि बनमाली गले मेली माल गुलाब ॥५८३॥

चुगि चितवनि चारा परचि गहे ढिठाई आय।
हांसी फांसी परि सकै मन कुलंग न उड़ाय ॥५८४॥
पी चूमे परबाल लखि बालहि गुरजन साथ।
कचनि परसि बाहूँ धरे कुचनि खरे पर हाथ ॥५८५॥
जब वाके रद की चिलक चमचमाति जिहि कोति।
मंद होति दुति चंद की चपति चंचला - जोति ॥५८६॥
आज बनी औरै प्रभा उर कपोल पल भाल।
औरै नयन पयन बयन मयन कियौ नँदलाल ॥५८७॥
गजराजनि के सीस चढ़ि निपट झुमाए वार।
ते अब तेरे गर परे झूमत मुकुताहार ॥५८८॥
ईठिहु नीठि न लखि सकैं ढीठि ढिठाई ल्याइ।
गुरजन डीठिहिँ पीठि दै रही सु दीठि नचाइ ॥५८९॥
बिरह आंच नहिँ सहि सकी सखी भई बेताब।
चनकि गई सीसी गयौ छिरकत छनकि गुलाब ॥५९०॥
त्रिभुवन सुखमा सार है सोम सलिल सों सानि।
रबि ससि सांचे ढारि बिधि रचे कपोल सुजानि ॥५९१॥
लखि कपास को नास री बिलखि न धर हरि धार।
बिसनी अजहुँ पलास हैं सखि सूखे कासार ॥५९२॥
सीसी करि मुरि मुरि गई जिन पहिरत तूं बाल।
चूर चूर चित ह्वै गयौ तिन चुरियनि मैं लाल ॥५९३॥
इक तो हायल रहत हों मायल ह्वै वा चाय।
ता पर घायल कै गई पायल बाल बजाय ॥५९४॥
कच चिकने मेचक चटक चारु चिलक चितचोर।
छहरि रहे छबि छाय छुटि छुए छवा के छोर ॥५९५॥
करत करी कर करभ कों अरु कदलों सम तूल।
जो कबि तेरे जानु सों सो अजानु मति भूल ॥५९६॥

पी पिक से निकसे बयन उर उकसे कुच दोइ।
बलि बिकसे लोने नयन अब चिक से लगि जोइ ॥५९७॥
हरषित भई गई भयौ अधिक वधिक तें मार।
नहिँ पायौ बनजा रतन लगे सिँगार अँगार ॥५९८॥
कहति सखी सों मुद भरी हेरि हरी की आस।
या निसि बन मैं सदन तें दुगुन दिखात प्रकास ॥५९९॥
गरज भरे बिलसत सरस सुछन छटा छहराइ।
आए हैं घनश्याम री चाहि अटा चढ़ि जाइ ॥६००॥
बलि सुनिए गुनिए कहा कहत कहत मृदु बैन।
नेह रचौहैं अब भए तेह नचौहैं नैन ॥६०१॥
आधी निसि नव पाहरू जिन आवै या गैल।
किमि बाचै दिन-चारि तें नाचै एक चुरैल ॥६०२॥
अलि वेचन चलिहैं चलो सफल करहिँ रसनाहिँ।
जो रस गोरस मों भलो सो रस गोरस नाहिँ ॥६०३॥
बलि कुंजत हैं कोकिले गुंजत हैं अलि-पुंज।
तने वितान लतान के घने बने बन-कुंज ॥६०४॥
मंजुल वंजुल मंजरी दरसाई जदुराय।
पीर भई ही सुधि गई तई मरोरे खाय ॥६०५॥
केती हौं बरजति रहों निचले नेकु रहैं न।
हरि तन पानिप पी अरी भले पियासे नैन ॥६०६॥
दरसि निसा यह दरस की दरसहि लागि उताल।
चलो जाति सुवरन बलो लोने चंद मसाल ॥६०७॥
कामिनि कानन कान हे मार कला रस हास।
हग मतवारे हित कनक कुंभनि ढारे पास ॥६०८॥
दरपभरो दरपन लिए ईंठि खरी मुसुक्याय।
हग-कोरन उरजन लखै गुरुजन दीठि बचाय ॥६०९॥

बलिहारी उत ही रहो हाथ गहो जनि नाथ।
हाथ हमारे लेत हैं देत तिहारे हाथ ॥६१०॥
अब झकि झांकि झमकि झुकी उझकि झरोखे ऐन।
कसे कंचुकी जरकसी लसी बसी ही नैन ॥६११॥
गोए गोयन जाहिँ सो धोए तें न धोवाहिँ।
भरी लाल लाली जु हैं लोयन कोयन माहिँ ॥६१२॥
तो अब लों सुरलोन की को कब लों सिख देइ।
लखि मुरली मृदु बोल सों अधरनि के रस लेइ ॥६१३॥
पहुँचत द्वार गली अली पहुँचि कही बृजनाथ।
कढ़त अँगनवां तें खसे कसे कँगनवां हाथ ॥६१४॥
विधि बाजीगर निरमई तासों कुच ठहराहिँ।
तो कटि हेरनहार री परसहु पावत नाहिँ ॥६१५॥
रंग-भवन प्रमुदित गई कौनि भई गति हाय।
सेजहि जोहि तई दई कई असम सर घाय ॥६१६॥
रिजु बृषभानुसुता लता तेजमान बृष भान।
तुमहि कहो कैसे सहो सुंदर स्याम सुजान ॥६१७॥
वलि सब भांति अलीक हो लीक कपोलन पीक।
अरु अलीक पैं रावरे जावक लीक अलीक ॥६१८॥
लै लोयन लोयन लगो चितवनि लोयन लाय।
तरुनि सिकारी लै गई मन लोयनहिँ लगाय ॥६१९॥
ज्यौं ज्यौं सखी कढ़ति है बालबदन तें बात।
त्यौं त्यौं प्रीति प्रतीति तें प्रीतम-चित चिकनात ॥६२०॥
करि सिँगार सजि आभरन तजि रसना अरु हार।
रजनी-मुख सजनी चली अली लगे सर मार ॥६२१॥
मो दिसि हेरि न हेरि री तजि सतरौहैं बैन।
रंच उचौहैं करि इतै चितै निचौहैं नैन ॥६२२॥

भाभी बरसाने गई गई मायके माइ।
सजनी सूने सदन मैं रजनी नींद न आइ॥६२३॥
स्याम इहाँ नीठि न रुकै ढोठि तिहारी डीठि।
बाम मनावो सुचित ह्वै कहि मुसुक्यानी ईठि॥६२४॥
कुटिलाई तजि जानती तूं न सुधाई काम।
सुनि याही सों गुनि धरे नाम बिधातैं बाम॥६२५॥
करन करत दिल कल न तिल सुमन समीरन चाल।
सिथिल भई नारी चले कुंजबिहारीलाल॥६२६॥
परी परी कै बीजुरी अरी खरी जु निहारि।
नरी हरी छबि की छरी मरी डरी यह नारि॥६२७॥
मुखहि अलक को छूटिबो अवसि करै दुतिमान।
बिन बिभावरी के नहीं जगमगात सित भान॥६२८॥
चारु चांदनी चैत की चमचमाति तन भाति।
कौनि अली उघरति दुरति चली गली मैं जाति॥६२९॥
छनक दईमारी अरी कोइल ले इतराय।
मृदुबैनी बोलन चहै अब मुसुक्यानि दिखाय॥६३०॥
विकल परी बरि रहि खरी अरी जगावति काहि।
न जर नजर यह स्याम की नजर करी अब याहि॥६३१॥
बिबरन आनन अरि गनी निरखि भँवारे भोर।
दरकि गई आंगी नई फरकि उठे कुच-कोर॥६३२॥
घेरु सखी जन लखि ललै रोम उठे थहराय।
तुरित लगी बीजन झलैं नागरि नीर भिजाय॥६३३॥
बिरह-बरी सकुचनि भरी रहति खरी या गैल।
पल न लहति कल है अरी छरी छबीले छैल॥६३४॥
मान सुधा तजि बाल बलि बोलि खोलि मुख ऐन।
अधर-सुधा लालच भरे लाल लालची नैन॥६३५॥

आधी निसि लौं सीतकर रह्यौ बगारे लाइ।
अद्दह दई आधी गई तारे गनत सिराइ ॥६३६॥
सखि नख-रेख असेष लखि बिलखि कियौ तिय तेह।
परत पाय पिय लाय हिय विहँसि उठी स-सनेह ॥६३७॥
निसि जागे रागे नयन झूमत आए भोर।
छिगुनी छोर छला लला लखि रहि खाय मरोर ॥६३८॥
पहिरे नगगन आभरन नेहनही नँदलाल।
रंगमहल मैं बरि रही दीपमाल सी बाल ॥६३९॥
भौंह उचै अँखिया नचै चाहि कुचै सकुचाय।
दरपन मैं मुख लखि खरी दरप भरी मुसुक्याय ॥६४०॥
ये चोखे कोयन लगैं कोय न मनसिज बान।
ये लोयन लखि नहिँ लगैं लोयन लोयन आन ॥६४१॥
मनसिज दीरघ ताप री देत तपा लहि बीर।
ता पर हार हरे हरे हरहिँ हरी बिन धीर ॥६४२॥
पूस बरुन दिसि कों अरुन ज्यों ज्यों अथवन जात।
नवल बधू को मुख कमल त्यों त्यों बलि कुँभिलात ॥६४३॥
छवा छुए छहरत भली बलि बेनी छबि देइ।
सुर गिरि तें चलि अलि अली कमल कली रस लेइ ॥६४४॥
माधव मैं माधव नहीं माते माधव पुंज।
मनसिज निज डेरा कियौ मंजुल बंजुल-कुंज ॥६४५॥
हरिहिं उपर सासी कसी मान मरोरन मारि।
अधर-सुधा सी है बसी खासी हांसी नारि ॥६४६॥
सुमन सिलीमुख धनुष लै कोपि हन्यौ झखकेत।
धन अतूल छोभित भई तकि अतूल बन खेत ॥६४७॥
ढीले अरसीले किए अँगनि छबीले मैन।
प्रगट भली रस-रँग रली कहत रँगीले नैन ॥६४८॥

कौनि अँधेरी राति मैं जाति चली चहि आइ।
पग पग पर जाके चले जगमग मग ह्वै जाइ ॥६४९॥
कहन हुवो सो कहि चुकी अब न दुराति रति बीर।
रस की मसकी कंचुकी कहत मरगजे चीर ॥६५०॥
सहसा परि पछताय जनि हिय धरि ता बिपरीत।
ए री लालहि ल्याय दौं करि मेरी परतीति ॥६५१॥
हिय लगाय सिसु पिय रह्यो मुदित खेलाय दुलारि।
निरखि परोसी दिसि पुलकि मृदु मुसुक्यानी नारि ॥६५२॥
धकधकात ही गात मैं बन कन बाढ़ी स्वास।
बापा धाय गई गई नहिँ पापी पी पास ॥६५३॥
खरी निदाघो दुपहरी तपनि भरी बन गेह।
हहा भरी यह कहि कहा परी थरहरी देह ॥६५४॥
नई लगन बन सों नहीं कुंज-भवन कों जाति।
सखि लखि दुति दूनी भई यह पूनो की राति ॥६५५॥
भोरहि चखनि चकोर कों धनि धनि दियौ अनंद।
चाहि कियौ नँदनंद मुख चंद अहो सुखकंद ॥६५६॥
कटी कटीली काति पै लटी लटी अति जाय।
जटी जटी अरि हरि घटी घटो सुदीपति जाय ॥६५७॥
केलि कलानि बिना भरी बेलि बितानि सकेलि।
बीर बली अबली करी हगनि अँधेरी फेलि ॥६५८॥
दिनहिँ देखि इत हौं उतै अलप ननद को सैन।
मेरी तलप रतौंधिहे राही भूलि परै न ॥६५९॥
कबरी तर झमकन भरी कामिनि ग्रीवाँ भाय।
मनु कादंबिनि मेह-झर दामिनि दमक दिखाय ॥६६०॥
चतुराई लिक चपलई धिक धिक कारे काग।
तोहि अछत निधरक रहैं कूकत पिक कुल बाग ॥६६१॥

मुकुतादिक गथ सों गथी मनमथ रथ सुबिसेखि ।
मति न थकी कहि कौन की गति नथ की यह देखि ॥६६२॥
गोप-लली कों लखि भ्रली चली दली सी आय ।
छली रली करि लाल री भली गली मैं पाय ॥६६३॥
नीम कपास बिकास पै बिरमि करै कल गान ।
कत मधुकर मधु माधवी मधुर करत नहिँ पान ॥६६४॥
तकि तकि तन मुसुक्याति है सुनि बानी रति-केलि ।
कोने में चलि जाति है बलि सोने की बेलि ॥६६५॥
सुनि सजनी सुरभान है अति मलान मतिमंद ।
पूनो रजनी मैं जु गिलि देत उगिलि यह चंद ॥६६६॥
टीको कच ठग मांग मग मो मन राही पाय ।
इक दिन मैं इक रैनि मैं लूटत धीर मताय ॥६६७॥
ललचाने लखि भीर मैं लालहि नागरि बाल ।
बोरि सखी सारी दई दोरि सु घोरि गुलाल ॥६६८॥
मनिमय भूषन छोरहूं दीप बुझायहुँ स्याम ।
वा नव धनि के बदन सों रहत उँजेरो धाम ॥६६९॥
मुरझानी नव बेलि सी ती जमुना के तीर ।
निंदति बीर प्रबाह कों खरी भरी दृग नीर ॥६७०॥
बिन पर उड़त रहैं ग्रहे कौन कहे पतियाय ।
उन नैनन खंजनि लिए मो मन उड़त बझाय ॥६७१॥
नखन मलिन रुचि होति री नखन नलिन दुति बाल ।
अनख होत लखि सौति जी सनख होत ही लाल ॥६७२॥
जो जसुदा को लाड़िलो नै सो री जानै न ।
बन मैं बरजोरी करै बरजो री मानै न ॥६७३॥
मसकी नीली कंचुकी कुचनि भली छबि जोइ ।
बिकसति कली गुलाब की अली मनो ये दोइ ॥६७४॥

आज अहेरी नैन ये भए अहैं री बीर।
हरि मन करसायल किए घायल चितवनि तीर ॥६७५॥
ऐसी है सुकुमारता वा ती मैं जदुराय।
मिहँदी-रँग के भार सों पाय सकै न उठाय ॥६७६॥
मृगमद तिलक सुभाल की झाईं झांकि कपोल।
बाल कियौ नँदलाल पै लाल लाल दृग लोल ॥६७७॥
छपे छपाकर चलि चहो वैसी खानि तिया न।
कान कुहू हू मैं वुहू बारन देय दिया न ॥६७८॥
अब तौ दिन रज के रही बिरह बरहि की गाथ।
सुनि सजनी सुख तौ गयौ मनभावन के साथ ॥६७९॥
काहि खोलिए यह हरी कैसे खोली जाइ।
नहिँ नीली चोली परी झलक अलक की आइ ॥६८०॥
तब लगि ललहि तचाय ले बिधु मचाय ले दूंदि।
जब लगि यह ललना रही घूंघट मैं मुँह मूंदि ॥६८१॥
बिरह-बिकलता तें रह्यौ बालबदन पियराइ।
सुनत अवाई लाल की गई ललाई धाइ ॥६८२॥
एक बली मैं बहु दली बिदित बिधातैं कीन।
चकित अली इक पात मैं त्रिबली चाहि नबीन ॥६८३॥
कलित अली नभचर ललो लखहु भली हरसोग।
बलित बलो बर तें तलो ललित रलो के जोग ॥६८४॥
जौ रंग न मैलो करो अंगन नेह लगाय।
तौ बलि जाय उताल दों लाल बसन को ल्याय ॥६८५॥
झलके पग बनजात से झलके मग बन जात।
अहह दई जलजात से नैननि तें जल जात ॥६८६॥
भौंहनि के बीचें न है यह मेचक तिल नारि।
मनु दृग मृग पै मंद है खींचे द्वै तरवारि ॥६८७॥

कुंज रूख दल सूख री खरी खरीहु न पाइ।
निरखि ऊखरी ऊखरी खरी खरी बिललाइ ॥६८८॥
इहां सुपास कहां अरे स्वेद भरे हैं बास।
बात बगारे बास है वा नारे के पास ॥६८९॥
सुनि तो दीपति दीप लखि सिर धुनि धुनि जरि जाय।
सुदुति निहारे चांदनी भूलि पछारे खाय ॥६९०॥
नीबी बँधनि लसनि भलो तकनि निचोही राज।
सब दिन सों नीकी बनी कसनि तनी की आज ॥६९१॥
यह अटपट कैसे पटै लटपटाति रस नारि।
इत आए मनु हारि उत करिबे हित मनुहारि ॥६९२॥
चख खींचे नीचे चहो भली भला कहि रीति।
रंचक ऊंचे चाहि लो चंद चलाकहि जीति ॥६९३॥
दरसन सों परसन न हैं किमि पूजै मन काम।
अब अरबिंद चढ़ाइए सुरधुनि धर पर स्याम ॥६९४॥
रंच न देरि करहु सुरुख अब हरि हेरि परै न।
बिनय बयन मो सुनि भए सुरुख तरुनि के नैन ॥६९५॥
तनक चितै सजनी इतै बनक बनी बृजराज।
इन कमलनि मो मुख किए दिन रजनी ससि आज ॥६९६॥
निरखि अटारी पर खरी तकत हरी टक लाइ।
सखि लखि प्यारी कों दई सिति सारी पहिराइ ॥६९७॥
कालि सकारे ही चलै सजनी तिनके पास।
इक दिन इक रजनी करैं जिनके नैन प्रकास ॥६९८॥
चहुँकित चकित चितै रही ताप-तई अकुलाइ।
बर तरु मैं सजनी गई रजनी छाप लगाइ ॥६९९॥
ताको वा तरु के तरे सुचित नचत है मोर।
उतरि अपर द्विजगन मुदित ललित मचावत सोर ॥७००॥

हौं बूझ्यो कबरीन सों क्यों कारी दरसाइ।
कही जु रबि सनमुख रहै सो कारो ह्वै जाइ ॥७०१॥

दरस निसा दरसै नयौ ऊग्यौ राका चंद।
ता सुचंद मैं जगि रहो चंद अहो जगवंद ॥७०२॥

लगन नई बनि ठनि दई हाय गई धन धाय।
छरी अपछरी सी भई सुमन-छरी बन पाय ॥७०३॥

बदन गयौ कुँभिलाय तन मदन कियौ सर-घात।
सदन चलो लिखिकै अली कुरम केतक पात ॥७०४॥

मोरी सौं जनि मान करि खोरी खोरी खोइ।
सो हिय धरि जो पिय कहै तौ तेरे बस होइ ॥७०५॥

मेरे और कपोल नहिँ अरु मैं हूं नहिँ और।
ईठि आज पो दीठि को दीठि और यहि ठौर ॥७०६॥

मुख देखन कों पुर-बधू जुरि आईं नँदनंद।
सबकी अँखियां ह्वै गईं घूंघट खोलत बंद ॥७०७॥

बसन लगी चित चातुरो हसन लगी सहसान।
लोचन लागे कान लों लोचन लागे कान ॥७०८॥

मैं प्यारी हों रावरी सो प्यारी नहिँ लाल।
जो चित छोभित करि करै नट मरकट की हाल ॥७०९॥

यह अचरज की बात सुनि को न अली पतियाइ।
दिनहिँ दरसि तम संग लै चली चांदनी जाइ ॥७१०॥

हेरि हरी अचरज भरी कहति खरी करि सोर।
दिनहिँ तरनिजा तीर री कूजित मुदित चकोर ॥७११॥

इन भृकुटिन की वार कों को न सकै सहि बाम।
सहन खरग की धार कों है हमरो ही काम ॥७१२॥

जात दिवस जलजात लौं आवत कुमुद समान।
वा आनन भो फिरि नयौ कहियौ कान न जान ॥७१३॥

जोबन लहि विकसित सुमन साजे सुखद सुबास।
केसरि सोभति पदुमिनी लिए अली गन पास ॥७१४॥

आज हियै चंदन कियौ अभिनंदन नँदनंद।
सखि वंदै इत आनि कै यह जगवंदन चंद ॥७१५॥

सखि हरि राधा संग दिन चले विपिन की ओर।
लखि अनंद सों सोर करि दौरे मोर चकोर ॥७१६॥

जमुना-तीर बलोन पै वस अलीन मँड़राइ।
सुनि चातुर आतुर चली छल वल ईठि उठाइ ॥७१७॥

आगे पाछे मचि रही खिचाखिची की ठान।
बाल जान पी पैं भयौ भान जान मो जान ॥७१८॥

चढ़े पयोधर कों चितै जात किते मति खोइ।
छन मैं घन रस बरसिहै रहौ बरोठे सोइ ॥७१९॥

चाखन की ता छनि कहा अधर-अँगूर सुबाल।
धरी रहैगी ताक पैं ताक तिहारी लाल ॥७२०॥

चले पिया न अटक सुनो रही जऊ जमुहाइ।
तऊ तिया मुख पैं गई चटक चौगुनी छाइ ॥७२१॥

पिय रुख लखि नागरि सखी कनक कसोटी आनि।
तियहि दिखाई लीक लिकि आई मृदु मुसुक्यानि ॥७२२॥

अली गई अब गरबई इकताई मुकुताइ।
भली भई ही अमलई जौ पी दई दिखाइ ॥७२३॥

ज्यौं ज्यौं फूकै नव वधू पगी रसोई लागि।
त्यौं त्यौं धूमै दै अहो लगी तमासे आगि ॥७२४॥

तारे तरनि दुरे भए मुकुलित सरसिज दोइ।
सखि प्रभात तम-तोम मैं सोम सुहावन जोइ ॥७२५॥

श्री राधा माधव हमैं निति राखो निज-छांह।
मेरो मन तुम मैं बसो तुम मेरे मन मांह ॥७२६॥

कलित ललितई सतसई रामसहाय बनाय।
हरि राधाहि नजर दई अजर लई रति पाय ॥७२७॥

(६) वृंद-सतसई

श्रीगुरुनाथ प्रभाव तैं होत मनोरथ सिद्ध।
घन तैं ज्यौं तरु बेलि दल फूल फलन की वृद्धि॥ १ ॥
किए वृंद प्रस्ताव के दोहा सुगम बनाय।
उक्ति अर्थ दृष्टांत करि दृढ़ कै दिए बताय॥ २ ॥
भाव सरस समझत सबै भले लगैं यह भाय।
जैसैं अवसर की कही बानी सुनत सुहाय॥ ३ ॥
नीकी पै फीकी लगै बिनु अवसर की बात।
जैसै बरनत युद्ध मैं रस सिँगार न सुहात॥ ४ ॥
फीकी पै नीकी लगै कहिए समय बिचारि।
सब को मन हरषित करै ज्यौं विवाह मैं गारि॥ ५ ॥
रागी अवगुन ना गनै यहै जगत की चाल।
देखौ सब ही श्याम कौं कहत बाल सब लाल॥ ६ ॥
जो जाकौं प्यारौ लगै सो तिहिँ करत बखान।
जैसैं विष को विष-भखी मानत अमृत समान॥ ७ ॥
जो जाकौ गुन जानहीं सो तिहिँ आदर देत।
कोकिल अंबहि लेत है काग निबौरी लेत॥ ८ ॥
अन-उद्यमही एक कौ यौं हरि करत निबाह।
ज्यौं अजगर भख आनि कै निकसत वाही राह॥ ९ ॥
हलन चलन की सकति है तौ लौं उद्यम ठानि।
अजगर ज्यौं मृगपति बदन मृगन परत है आनि॥ १० ॥
कहा होय उद्यम किए जौ प्रभु ही प्रतिकूल।
जैसैं निपजै खेत कौं करै सलभ निरमूल॥ ११ ॥

जाही तैं कछु पाइयै करियै ताकी आस।
रीते सरवर पै गएं कैसैं बुझत पियास ॥ १२ ॥
जो जाही को ह्वै रहै सो तिहिँ पूरै आस।
स्वाति बूंद बिनु सघन मैं चातक मरत पियास ॥ १३ ॥
गुन ही तऊ मनाइयै जो जीवन सुख भौन।
आग जरावत नगर तउ आग न आनत कौन ॥ १४ ॥
रस अनरस समझै न कछु पढ़ै प्रेम की गाथ।
बीछू मंत्र न जानई सांप - पिटारे हाथ ॥ १५ ॥
कैसैं निबहै निबल जन कर सबलन सों गैर।
जैसैं बसि सागर विषै करत मगर सों वैर ॥ १६ ॥
कीजे समझ न कीजियै विन विचारि विवहार।
आय रहत जानत नहीं सिर को पायन भार ॥ १७ ॥
दीबौ अवसर कौ भलौ जासौं सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिबो घन को कौनै काम ॥ १८ ॥
अपनी पहुँच विचारि कैं करतब करियै दौर।
तेते पांव पसारियै जैती लांबी सौर ॥ १९ ॥
पिसुन छल्यौ नर सुजन सों करत बिसास न चूकि।
जैसे दाध्यौ दूध कौ पीवत छाछहि फूंकि ॥ २० ॥
प्रान तृषातुर के रहैं थोरे हूं जलदान।
पीछै जल भर सहस घट डारे मिलत न प्रान ॥ २१ ॥
विद्या धन उद्यम बिना कहौ जु पावै कौन।
बिना डुलाए ना मिले ज्यों पंखा की पौन ॥ २२ ॥
बनती देख बनाइयै परन न दीजै खोट।
जैसी चलै बयार तब तैसी दीजै ओट ॥ २३ ॥
ओछे नर की प्रीति की दीनी रीति बताय।
जैसे छीलर ताल जल घटत घटत घट जाय ॥ २४ ॥

अन-मिलती जोई करत ताही कौ उपहास।
जैसैं जोगी जोग मैं करत भोग की आस ॥ २५ ॥
बुरे लगत सिख के बचन हिए विचारौ आप।
करुवे भेखज बिन पियै मिटै न तन कौ ताप ॥ २६ ॥
बड़े बड़न को दुख हरत पै न नीच यह थाप।
घन मेटत पै ना सरित गिरवर ग्रीषम ताप ॥ २७ ॥
गुरुता लघुता पुरुष की आस्रय बसतें होय।
करी बूंद मैं विंध्य सौं दर्पन में लघु सोय ॥ २८ ॥
रहे समीप बड़ेन के होत बड़ो हित मेल।
सब ही जानत बढ़त है वृच्छ बराबर बेल ॥ २९ ॥
उपकारी उपकार जग सबसों करत प्रकास।
ज्यों कटु मधुरे तरु मलय मलयज करत सुबास ॥ ३० ॥
होय बड़ेरु न हूजिए कठिन मलिन मुख रंग।
मरदन बंधन छति सहत कुच इन गुननि प्रसंग ॥ ३१ ॥
कहूं जाहु नाहिन मिटत जो विधि लिख्यौ लिलार।
अंकुस भय करि कुंभ कुच भए तहां नख मार ॥ ३२ ॥
विधि रूठै तूठै कवन को करि सकै सहाय।
बन दव भय जल गत नलिन तहँ हिम देत जराय ॥ ३३ ॥
प्रेम पगत बरजी न क्यौं अब बरजत बेकाज।
रोम रोम विष रमि रह्यौ नाहिन बनत इलाज ॥ ३४ ॥
फेर न ह्वैहै कपट सों जो कीजै ब्योपार।
जैसैं हांड़ी काठ की चढ़ै न दूजी बार ॥ ३५ ॥
करियै सुख कौं होत दुख यह कहु कौन सयान।
वा सोनै कौं जारियै जासों टूटै कान ॥ ३६ ॥
नैना देत बताय सब हिय कौ हेत अहेत।
जैसैं निरमल आरसी भली बुरी कह देत ॥ ३७ ॥

अति परचै तैं होत है अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी चंदन देत जराय॥ ३८॥
सो ताके अवगुन कहै जो जिहिँ चाहै नाहिँ।
तपत कलंकी बिष भरयो बिरहिन ससिहि कहाहि॥ ३६॥
सुखदाई ए देत दुख सो सब दिन कौ फेर।
ससि सीतल संयोग में तपत बिरह की बेर॥ ४०॥
बिधि के बिरचे सुजन हूं दुर्जन सम है जात।
दीपहि राखै पवन ते अंचल वहै बुझात॥ ४१॥
जासों जैसौ भाव सो तैसौ ठानत ताहि।
ससिहि सुधाकर कहत कोउ कहत कलंकी आहि॥ ४२॥
आप बुरे जग है बुरौ भलौ भले जग जानि।
तजत बहेरा छांह सब गहत आंब की आनि॥ ४३॥
सौ जु सयाने एक मति यहै कहावत सांच।
कांचहि पांच कहै न कोउ पांचहि कहै न कांच॥ ४४॥
भले बुरे सब एक से जौ लौं बोलत नाहिँ।
जान परतु हैं काक पिक ऋतु बसंत के माहिँ॥ ४५॥
भाव भाव की सिद्धि है भाव भाव में भेव।
जो मानौं तो देव है नहीं भीत कौ लेव॥ ४६॥
निरफल स्रोता मूढ़ पै कविता बचन बिलास।
हाव भाव ज्यौं तीय कै पति आंधे के पास॥ ४७॥
भले बुरे जहँ एक से तहां न बसिए जाय।
ज्यौं अन्यायीपुर बिकै खर गुर एकै भाय॥ ४८॥
न करि नाम रँग देखि सम गुन बिन समझे बात।
गात घात गो दूध तें सेंहुड़ केतें घात॥ ४६॥
बिन गुन कुल जाने बिना मान न करि मनुहारि।
ठगत फिरत सब जगत कौं भेष भक्त कौ धारि॥ ५०॥

हित हूं की कहियै न तिहिँ जो नर होय अबोध।
ज्यौं नकटे कौं आरसी होत दिखाए क्रोध ॥ ५१ ॥
अति अनीति लहियै न धन जो प्यारौ मन होय।
पाए सोने की छुरी पेट न मारै कोय ॥ ५२ ॥
मूरख कौं पोथी दई बांचन कौं गुन गाथ।
जैसैं निर्मल आरसी दई अंध के हाथ ॥ ५३ ॥
मधुर बचन तैं जात मिट उत्तम जन अभिमान।
तनकि सीत जल सों मिटै जैसैं दूध उफान ॥ ५४ ॥
जासों रच्छा होत है ह्वै ताही सों घात।
कहा करै कोऊ जवै वारि ककरिया खात ॥ ५५ ॥
सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग कौं दीपहि देत बुझाय ॥ ५६ ॥
कछु वसाय नहिँ सबल सों करै निबल पर जोर।
चलै न अचल उखारि तरु डारति पवन झकोर ॥ ५७ ॥
सबै समझ कै कीजियै काम वहै अभिराम।
सैंधव मांग्यौ जेंवते घोरा कौ कहा काम ॥ ५८ ॥
जो जाही सों रमि रह्यौ तिहिँ ताही सों काम।
जैसे किरवा आक कौ कहा करै बस आम ॥ ५९ ॥
जिय चाहै सोई मिलै जियत भलौ हिय लागि।
प्यासौ चाहत नीर कौं कहा करै लै आगि ॥ ६० ॥
जिय पिय चाहै तुम करौ घन चंदन उपचार।
रोग कछू औषध कछू कैसैं होत करार ॥ ६१ ॥
बिरह तपन पिय बात तैं उठत चौगनी जागि।
जल के सींचे बढ़त है ज्यों सनेह की आगि ॥ ६२ ॥
रोस मिटै कैसै सहत रिस उपजावन बात।
ईंधन डारे आग मैं कैसैं आग बुझात ॥ ६३ ॥

अति हठ मत कर हठ बढ़ै बात न करिहै कोय।
ज्यौं ज्यौं भीजे कामरी त्यौं त्यौं भारी होय॥ ६४॥
लालच हू ऐसौ भलौ जासैं पूरे आस।
चाटेहू कहुँ ओस के मिटै काहु की प्यास॥ ६५॥
विष हू ते सरसी लगे रिस में रस की भाख।
जैसे पित्तज्वरीन कौं करवी लागति दाख॥ ६६॥
जो जेहिँ भावे सो भलौ गुन को कछु न विचार।
तज गजमुक्ता भीलनी पहरति गुंजा - हार॥ ६७॥
हरि-रस परिहरि बिषय-रस संग्रह करत अयान।
जैसैं कोऊ करत है छाँड़ि सुधा बिषपान॥ ६८॥
कुल मारग छोड़ै न कोउ होहि वृद्धि कै हानि।
गज इक मारत दूसरो चढ़त महावत आनि॥ ६९॥
जासों निबहै जीविका करिए सो अभ्यास।
वेस्या पालै शील तौ कैसैं पूरे आस॥ ७०॥
दुष्ट न छाँड़ै दुष्टता कैसैं हू सुख देत।
धोएहू सौ बेर के काजर होय न सेत॥ ७१॥
कहुँ अवगुन सोइ होत गुन कहुँ गुन अवगुन होत।
कुच कठोर त्यौं हैं भले कोमल बुरे उदोत॥ ७२॥
असुभ करत सोइ होत सुभ सज्जन बचन अनूप।
स्रवन पिता दिय दसरथहि स्राप भयो वर रूप॥ ७३॥
एक भले सब कौ भलौ देखौ सबद विवेक।
जैसैं सत हरिचंद के उधरे जीव अनेक॥ ७४॥
एक बुरे सब कौ बुरौ होत सबल के कोप।
अवगुन अर्जुन के भयौ सब छत्रिन कौ लोप॥ ७५॥
बड़ेन पै जांचे भलौ जदपि होत अपमान।
गिरत दंत गिर ढाह तें गज के तऊ बखान॥ ७६॥

अवगुन करता और ही देत और कौं मार।
जौं पहुँचै नहिँ रुद्र कौं जारत विरहनि मार॥७७॥
मान होत है गुननि तें गुन बिन मान न होइ।
सुक सारो राखैं सबै काग न राखै कोइ॥७८॥
आडंबर तजि कीजियै गुन संग्रह चित चाय।
छीर रहित न बिकै गऊ आनो घंट बँधाय॥७९॥
जैसौ गुन दीनौ दई तैसौ रूप निबंध।
ए दोऊ कहँ पाइयै सोनौ और सुगंध॥८०॥
अभिलाषी इक बात के तिनमें होय विरोध।
काज राज के राजसुत लरत भिरत करि क्रोध॥८१॥
जो जाकौ चाहै भलौ सो ताही की भीर।
नीर बुझावै आग कौं सोखै ताहि समीर॥८२॥
अहित किए हू हित करै सज्जन परम सधीर।
सोखे हूं सीतल करै जैसैं नीर समीर॥८३॥
है सहाय हित हू करै तऊ दुष्ट दुख देत।
जैसैं पावक पवन कौं मिलै जरायै लेत॥८४॥
अपनी अपनी ठौर पर सोभा लहत विसेष।
चरन महावर ही भलौ नैनन अंजन-रेख॥८५॥
जो चाहौ सोई करौ मेरौ कछु न कहाव।
जंत्री के कर जंत्र है जो भावै सो बजाव॥८६॥
जाकौ जैसो उचित तिहिँ करिए सोइ विचार।
गीदर कैसे ल्याइहै गज-मुक्ता गज मार॥८७॥
जुदे न जैसे लहत हैं मिले विरंगहु रंग।
काथ संग चूनो परत होत लाल मिलि संग॥८८॥
नहिँ इलाज देख्यौ सुन्यौ जासों मिटत सुभाव।
मधुपुट कोटिक देत तऊ विष न तजत विषभाव॥८९॥

जाकौ जासों मन लग्यो सो तिहिँ आवै दाय।
भाल भस्म बिष मुंड शिव तौऊ शिवा सहाय ॥ ९० ॥
होय कछू समझै कछू जाकी मति बिपरीत।
कनक भखी जैसे लखै स्याम सेत कौ पीत ॥ ९१ ॥
प्रेम निवाहन कठिन है समझ कीजियौ कोय।
भाँग भखन है सुगम पै लहर कठन ही होय ॥ ९२ ॥
कोउ बिन देखे बिन सुनै कैसें कहै विचार।
कूप भेख जाने कहा सागर को विस्तार ॥ ९३ ॥
देव सेव फल देत है जाको जैसौ भाय।
जैसैं मुख करि आरसी देखै सोइ दिखाय ॥ ९४ ॥
कुल बल जैसौ होय सो तैसी करिहै वात।
बनिक पुत्र जाने कहा गढ़ लैबे की बात ॥ ९५ ॥
जाकी ओर न जाइयै कैसैं मिलिहै सोइ।
जैसैं पच्छिम दिस गए पूरब काज न होइ ॥ ९६ ॥
जैसो बंधन प्रेम कौ तैा सौ बंध न और।
काठहि भेदै कमल कौ छेद न निकरै भौंर ॥ ९७ ॥
जे उदार ते देत हैं रीझत जिहि तिहिँ चाल।
गाल बजाए हू करै गौरीकंत निहाल ॥ ९८ ॥
अपनी अपनी गरज सब बोलत करत निहोर।
बिन गरजै बोलै नहीं गिरिबरहू कौ मोर ॥ ९९ ॥
जो सब ही कौ देत है दाता कहियै सोइ।
जलधर बरषत सम विषम थल न विचारत कोइ ॥ १०० ॥
तिन सों बिमुख न हूजियै जे उपकार समेत।
मोर ताल जल पान करि जैसैं पीठ न देत ॥ १०१ ॥
जो समझे जा बात कौं सो तिहिँ कहै बिचार।
रोग न जानै ज्योतिषी वैद्य ग्रहन कौ चार ॥ १०२ ॥

नवल नेह आनँद उमँग दुरै न मुख चख ओर।
तब ही जान्यौ जात है ज्यौं सुगंध कौ चोर ॥१०३॥
प्रकृत मिले मन मिलत है अनमिलते न मिलाय।
दूध दही तैं जमत है कांजी तैं फटि जाय ॥१०४॥
बात कहन की रीति मैं है अंतर अधिकाय।
एक बचन तैं रिस बढ़ै एक बचन तैं जाय ॥१०५॥
एक वस्तु गुन होत है भिन्न प्रकृत के भाय।
भटा एक कौं पित करत करत एक कौं बाय ॥१०६॥
सुख मैं होत सरीक सौ दुख सरीक सो होय।
जाकौ मीठौ खाइयै कटुक खाइयै सोय ॥१०७॥
स्वारथ के सब ही सगे बिन स्वारथ कोउ नाहिँ।
जैसे पंछी सरस तरु निरस भए उड़ि जाहिँ ॥१०८॥
जो लायक जिहिँ भाँति को तासों तैसी होय।
सज्जन सो न बुरी करै दुरजन भली न कोय ॥१०९॥
सुख बीते दुख होत है दुख बीते सुख होत।
दिवस गए ज्यौं निसि उदित निसगत दिवस उदोत ॥११०॥
जो भाखै सोई सही बड़े पुरुष मुख बानि।
है अनंग ताकौ कहैं महारूप की खानि ॥१११॥
दोष-भरी न उचारियै जदपि यथारथ बात।
कहै अंध कौं आंधरौ मान बुरौ सतरात ॥११२॥
पर घर कबहुँ न जाइयै गए घटत है जोति।
रवि-मंडल में जाति ससि छीन कला छवि होति ॥११३॥
औरहि तैं कोमल प्रकृत सज्जन परम दयाल।
कौन सिखावत है कहो राजहंस कौं चाल ॥११४॥
सज्जन अंगीकृत कियौ ताकौं लेत निबाहि।
राखि कलंकी कुटिल ससि तउ शिव तजत न ताहि ॥११५॥

जिन पंडित बिद्या तजहु धन मूरख अवरेख।
कुलजा सील न परिहरै कुलटा भूपित देख॥११६॥
एक सदा निबहै नहीं जनि पछतावहु कोय।
दुरजोधन अति मान तैं भए निधन कुल खोय॥११७॥
होय शुद्ध मिटि कलुषता सत संगति कौ पाय।
जैसें पारस को परसि लौह कनक ह्वै जाय॥११८॥
ब्रह्म बनाए बन रहे ते फिर और बनै न।
कान कहत नहिं बैन ज्यौं जीभ सुनत नहिं बैन॥११९॥
जाहि परयौ जैसौ व्यसन ता विन रहत न सोय।
सुरा सुरापी ना तजै जदपि बिकल गति होय॥१२०॥
जे चेतन ते क्यौं तजैं जाकौ जासें मोह।
चुंबक के पीछै लग्यौ फिरत अचेतन लोह॥१२१॥
घटति बढ़ति संपति सुमति गति अरहट की जोय।
रीती घटिका भरति है भरी सु रीती होय॥१२२॥
प्रापति तैसी होति है जिहिं जैसी लौ भाइ।
भाजन मित भरि सरित में जल भरि भरि लै जाइ॥१२३॥
उत्तम जन की होड़ करि नीच न होत रसाल।
कौवा कैसे चल सकै राजहंस की चाल॥१२४॥
उत्तम जन के संग में सहजै ही सुख भास।
जैसैं नृप लावै अतर लेत सभा जन बास॥१२५॥
या जग की बिपरीति गति समझौ देखि सुभाव।
कहैं जनार्दन कृष्ण कौं हर कौ शंकर नांव॥१२६॥
भले लगैं सब कौं कहौ कोऊ हित के बैन।
पिय आगम के काग बच बिरहनि कौं सुख दैन॥१२७॥
जो जाके हित की कहै सो ताके अभिराम।
पिय आगम भाषी भलौ वायस पिक किहि काम॥१२८॥

कोऊ है हित की कहै ह्वै ताही सों हेत।
सबै उड़ावत काक कों पै बिरहनि बलि देत॥१२९॥
को चाहे अपनो तऊ जा सँग लहियै पीर।
जैसैं रोग सरीर तैं उपजत दहत सरीर॥१३०॥
एक बिरानौ ही भलौ जिहिं सुख होत सरीर।
जैसैं बन की औषधी हरत रोग की पीर॥१३१॥
जो पावै अति उच्च पद ताकौ पतन निदान।
ज्यों तपि तपि मध्याह्न लों अस्त होतु है भान॥१३२॥
अनुचित अविबल आपनौ कहे अनादर होय।
संग्रह कियौ न नृप दुहनि रुक्म गयौ पति खोय॥१३३॥
कलुष भाव देखै जहां उत्तम जन न रहायँ।
जैसैं पावस तजि अनत राजहंस उड़ि जायँ॥१३४॥
जो चाहै सोई लहै यौं सुख होइ सरीर।
ज्यौं प्यासे जिय कौं मिलै निरमल सीतल नीर॥१३५॥
मन-भावन के मिलन बिन यों जिय होय उदास।
ज्यों चकोर की दिन दसा चकवा चंद प्रकास॥१३६॥
जिहिँ प्रसंग दूषन लगै तजिए ताकौ साथ।
मदिरा मानत है जगत दूध कलाली हाथ॥१३७॥
जाके सँग दूषन दुरै करिए तिहिँ पहिचानि।
जैसैं समझैं दूध सब सुरा अहीरी पानि॥१३८॥
जिहिँ देखैं लांछन लगै तासों दृष्टि न जोर।
ज्यौं कोऊ चितवै नहीं चौथ चंद की ओर॥१३९॥
मूरख गुन समझै नहीं तौ न गुनी मैं चूक।
कहा भयो दिन को बिभौ देखै जो न उलूक॥१४०॥
खल जन सों कहियै नहीं गूढ़ कबहुँ करि मेल।
यौं फैलै जग माहिँ ज्यौं जल पर बूंद कि तेल॥१४१॥

एकहि गुन ऐसौ भलौ जिहिँ अवगुन छिप जात।
नीरद के ज्यौं रंग बद बरसत ही मिट जात ॥१४२॥
मूढ़ तहां ही मानिए जहां न पंडित होइ।
दीपक कौ रवि के उदै बात न पूछै कोय ॥१४३॥
बिन स्वारथ कैसैं सहै कोऊ करुए बैन।
लात खाय पुचकारियै होय दुधारू धैन ॥१४४॥
सज्जन तजत न सजनता कीन्हेहु दोष अपार।
ज्यौं चंदन छेदे तऊ सुरभित करहि कुठार ॥१४५॥
दुष्ट न छाँड़ै दुष्टता पोखै राखै ओट।
सरपहि केतौ हित करौ चुपै चलावै चोट ॥१४६॥
धन संच्यौ किहिं काम कौ खाउ खरच हरि प्रीति।
बँध्यो गँधीलौ कूप जल कढ़ै बढ़ै इहिँ रीति ॥१४७॥
करै बुराई सुख चहै कैसै पावै कोइ।
रोपै बिरवा आक को आम कहां ते होइ ॥१४८॥
होय बुराई तें बुरौ यह कीनौ निरधार।
खांड खनैगौ और कौ ताकौं कूप तयार ॥१४९॥
दिए सहस गुन देत सो पावै यह सच बात।
बीज देत तिहिँ कर सिरौ और देत तिहिँ दात ॥१५०॥
एक भेष के आसरे जाति बरन छिप जात।
ज्यौं हाथी के पांव में सबको पांव समात ॥१५१॥
जाको जहँ स्वारथ सधै सोई ताहि सुहात।
चोर न प्यारी चांदनी जैसैं कारी रात ॥१५२॥
जैसी ही भवतव्यता तैसी बुद्धि प्रकास।
सीता हरिबे तैं भयौ रावन कुल को नास ॥१५३॥
निहचै भावी कौ कहौ प्रतीकार जौ होइ।
तौ नल से हरचंद से बिपत न भरते कोइ ॥१५४॥

कछू सहाय न चलि सकै होनहार के पास।
भीष्म युधिष्ठिर से तहां भो कुरुबंस-विनास ॥१५५॥
अति ही सरल न हूजियै देखौ ज्यों वनराय।
सीधे सीधे छेदियै बांकौ तरु बच जाय ॥१५६॥
बहुतन कों न विरोधियै निबल जानि बलवान।
मिल भखि जांहिं पिपीलका नागहि नग के मान ॥१५७॥
बहुत निबल मिलि बल करैं करैं जु चाहे सोय।
तिनकन की रसरी करी करी निबंधन होय ॥१५८॥
दुर्जन के संसर्ग तैं सज्जन लहत कलेस।
ज्यौं दसमुख अपराध तैं बंधन लह्यो जलेस ॥१५९॥
सुजन कुसंगति संग तैं सज्जनता न तजंत।
ज्यौं भुजंग गन संग तउ चंदन विष न धरंत ॥१६०॥
कष्ट परेहूं साधु जन नैंक न होत मलान।
ज्यौं ज्यौं कंचन ताइयै त्यौं त्यौं निरमल वान ॥१६१॥
जे उत्तम ते असम सों धरत न रिस मन माहिँ।
घन गरजै हरि हुंकरै स्यार बोल सुनि नाहिँ ॥१६२॥
खल वंचत नर सुजन कों नहि न विसास करेहि।
डहक्यो उड़ प्रतिबिंब तैं मुकुता हंस न लेइ ॥१६३॥
मिथ्या-भाषी सांच हू कहै न मानै कोइ।
भांड पुकारै पीर बस मिस समझै सब कोय ॥१६४॥
सदा समै बलवान पै नाहिँ पुरुष बलवान।
काबरि लरि गोपीं लई विरथ भए पथवान ॥१६५॥
कन कन जोरै मन जुरै खाते निवरै सोय।
बूंद बूंद ज्यौं घट भरै टपकत बीतै तोय ॥१६६॥
थोरे ही गुन तैं कहुँक प्रगट होत जग माहिँ।
एकहि कर तें जय करी करी सहस कर नाहिँ ॥१६७॥

ऊंचे बैठे ना लहैं गुन बिन बड़पन कोइ।
बैठो देवल सिखर पर बायस गरुड़ न होइ ॥१६८॥
दुख पाए बिनहूं कहूं गुन पावत है कोइ।
सहैं बेध बंधन सुमन तब गुन संजुत होइ ॥१६९॥
निपट अबुध समझैं कहां बुध जन बचन बिलास।
कबहूं भेक न जानईं अमल कमल की बास ॥१७०॥
बिनसत सतगुन गुनिय के अगुन पुरुष के पास।
ज्यौं अंजन मिर चंद कर नैक न होत प्रकास ॥१७१॥
सांच झूंठ निरनै करै नीति-निपुन जो होय।
राजहंस बिन को करै छीर नीर कौं दोय ॥१७२॥
इक समीप बसि अहित कर इक हितकर बसि दूर।
हंस बिनासै कमल दल अमल प्रकासै सूर ॥१७३॥
दोषहि को उमहै गहै गुन न गहै खल लोक।
पियै रुधिर पय ना पियै लगी पयोधर जोंक ॥१७४॥
भलौ न होवै दुष्ट जन भलौ कहै जो कोय।
विष मधुरौ मीठौ लवन कहै न मीठौ होय ॥१७५॥
कारज करत असाध के सब मैं साध कहाय।
जैसैं सीत हेमंत को बन जग देत जराय ॥१७६॥
एक उदर वाही समय उपज न इक से होय।
जैसे कांटे बेर के बांके सीधे जोय ॥१७७॥
हरत दैवहू निबल अरु दुरबल ही के प्रान।
बाघ सिंह को छांड़ि कै देत छाग बलिदान ॥१७८॥
जिहिँ जासों मतलब नहीं ताकी ताहि न चाह।
ज्यों निसप्रेही जीव के तृन समान सुरनाह ॥१७९॥
जे पर ते पर यह समझ अपनौ होय न कोय।
पालै पोषै काग तउ पिक-सुत काग न होय ॥१८०॥

दीजै सीख अजान कौं मानै सीख सुजान ।
टारहि ताजन मारियै ज्यौं कांपे के कान ॥१८१॥
उद्यम कबहुँ न छांड़िये पर आसा के मोद ।
गागरि कैसैं फोरियै उनयौ देखि पयोद ॥१८२॥
कारज धीरै होतु है काहे होत अधीर ।
समय पाय तरुवर फरै केतक सींचौ नीर ॥१८३॥
जो पहिलै कीजै जतन सो पीछै फलदाय ।
आग लगे खोदै कुँवा कैसै आग बुझाय ॥१८४॥
होत सिद्धि जैसै समय तैसौ ही अभिलाख ।
कौड़ी बिन जात न लियो करी लेत दै लाख ॥१८५॥
क्यों कीजै ऐसौ जतन जातैं काज न होय ।
परबत पै खोदै कुँआ कैसैं निकसै तोय ॥१८६॥
सांची संपति और की और भोगवै आय ।
कन संग्रह चैंटीन कौ ज्यौं तीतर चुगि जाय ॥१८७॥
सेयौ छोटौ ही भलौ जासौं गरज सराय ।
कीजै कहा पयोधि कौं जातैं प्यास न जाय ॥१८८॥
स्रम ही तैं सब मिलत है बिन स्रम मिलै न काहि ।
सीधी अँगुरी घी जम्यो क्यौं हू निकरै नाहिँ ॥१८९॥
कहियै बात प्रमाण की जासौं सुधरै काज ।
फीकौ थोरे लौन तैं अधिकै खारौ नाज ॥१९०॥
कहै रसीली बात सो बिगरी लेत सुधारि ।
सरस लौन की दाल मैं ज्यौं नीबू रस डारि ॥१९१॥
जो चाहै सोई करै बड़े असंकित अंग ।
सबके देखत नगन हर धरत गौरि अरधंग ॥१९२॥
बड़े सहज ही बात तैं रीझि देत बकसीस ।
तुलसी दल तैं बिष्णु ज्यौं आक धतूरे ईस ॥१९३॥

बड़े कहैं सो कीजियै करैं सु करियै नाहिँ।
हर ज्यौं पंचन मैं फिरैं और जो बिकल कहाहिँ ॥१९४॥
काहू कियौ न कीजियै तिय जिय को बिस्वास।
गौर धरी अरधंग हर हरि घर घर में बास ॥१९५॥
सुधरी बिगरै बेग ही बिगरी फिर सुधरै न।
दूध फटै कांजी परै सो फिर दूध बनै न ॥१९६॥
न कछु तऊ जाकी तलब ताही की मनुहार।
तिलक समैं नृप लेत हैं तृन हू हाथ पसार ॥१९७॥
गुनी तऊ अवसर बिना आग्रह करै न कोइ।
हिय ते हार उतारियै सयन समय जब होइ ॥१९८॥
जदपि आपनौ होय तउ दुख मैं करत न सीर।
ज्यौं दुखती अँगुरी निकट दुसरी ताहि न पीर ॥१९९॥
विद्या मिलै अभ्यास तैं सुजन सुभाव मिलै न।
सौंत विपुल काननि करै विपुल न ह्वैहैं नैन ॥२००॥
काम समै पावै सु दुख जस निर्मल के अंग।
मरदन खंडन सहत हैं ज्यौं अबला के अंग ॥२०१॥
यह कहवत जैसौ करै तैसौ पावै लोय।
औरन कौं आंधे करै आंधी कहियत सोय ॥२०२॥
छोटे नर तैं रहत है सोभायुत सिरताज।
निर्मल राखै चांदनी जैसैं पायंदाज ॥२०३॥
हित हू भलौ न नीच कौ नाहिन भलौ अहेत।
चाटि अपावन तन करै काटि स्वान दुख देत ॥२०४॥
सहज रसीलौ होय सौं करै अहित पर हेत।
जैसैं पीड़ित कीजियै ऊख तऊ रस देत ॥२०५॥
कर बिगरी सुधरै बचहि जैसैं बनिक बिसेख।
हींग मिरच जीरौ कहै हग मर जर लिख लेख ॥२०६॥

अरि के संग कुटुंब लखि जिय उपजत है त्रास।
वैसौ लगै कुठार कौं तब बनराइ विनास ॥२०७॥
कबहू संग न कीजियै किए प्रकृत की हानि।
गूंगे कौं समझाइबो गूंगे की गति आनि ॥२०८॥
कोऊ काहू कौ बुरौ करै परै तिहिं धाम।
काटे पर की नाक कौं नकटी रानी नाम ॥२०९॥
कहा करै कोऊ जतन प्रकृति न बदलै कोइ।
सानै सदा सनेह मैं जीभ न चिकनी होइ ॥२१०॥
जदपि सहोदर होय तऊ प्रकृत और की और।
विष मारै ज्यावै सुधा उपजै एकहि ठौर ॥२११॥
डरै न काहू दुष्ट सों जाहि प्रेम की बान।
भौंर न छांड़ै केतकी तीखे कंटक जान ॥२१२॥
बहुत किए हू नीच कौ नीच सुभाव न जात।
छांड़ि ताल-जल कुंभ मैं कौवा चोंच भरात ॥२१३॥
चतुर कूर इक से गनै जाके नाहिं विवेक।
जैसैं अबुध गँवार कौं पांच कांच है एक ॥२१४॥
कूर न होवै चतुर नर कूर कहै जो कोइ।
मानौ कांच गँवार तऊ पांच कांच नहिं होइ ॥२१५॥
कैसैं हू छूटत नहीं जा मैं परी कुबानि।
काग न कोइल ह्वै सकै जो बिधि सिखवै आनि ॥२१६॥
भेष बनावै सूर कौ कायर सूर न होय।
खाल उढ़ावै सिंह की स्यार सिंह नहिँ होय ॥२१७॥
धन बाढ़ै मन बढ़ि गयो नाहिन मन घट होय।
ज्यौं जल संग बाढ़ै जलज जल घट घटै न सोय ॥२१८॥
सब तैं लघु है मांगिबौ जा मैं फेर न सार।
बलि पै जांचत ही भए बावन तन करतार ॥२१९॥

बड़े न लोपैं लाज कुल लोपैं नीच अधीर।
उदधि रहै मरयाद मैं बहै उलट नद नीर ॥२२०॥
नाम भलौ होत न भलौ भलौ भाग जिहिँ भाल।
लच्छि नाम मांगत फिरै भूखौ नाम भुवाल ॥२२१॥
उत्तम पर कारज करै अपनौ काज बिसार।
पूरै अन्न जहान कौं तापर भिच्छा धार ॥२२२॥
देवन हू सौं देव प्रभु कहा सुरेस नरेस।
कीनौ मीत धनेस तउ पहरैं चर्म महेस ॥२२३॥
सब इक से होत न कहूं होत लघन मैं फेर।
कपरौ खादी बाफतौ लोह तवा समसेर ॥२२४॥
अपनौ समै बिचारि कै अरि जीतिए अचूक।
दिवस काग घूघहि हनै कागहिँ निसि ज्यौं घूक ॥२२५॥
छल बल समय बिचारिकै अरि हनिए अनयास।
कियौ अकेलै द्रोण-सुत निसि पांडव कुल नास ॥२२६॥
काम परै ही जानियै जो नर जैसौ होय।
बिन तायै खोटौ खरौ गहनो लखै न कोय ॥२२७॥
जैसी संगति तैसियै ईजत मिलि है आय।
सिर पर मखमल सेहरै पनही मखमल पाय ॥२२८॥
अनघर सुघर समाज मैं आय बिगारै रंग।
जैसैं हौज गुलाब कौ बिगरै स्वान प्रसंग ॥२२९॥
अनमिल सुमिल समाज सौं होत गए उठि चैन।
जैसैं तिन पर देत दुख निकसै बिकसै नैन ॥२३०॥
चतुर सभा मैं कूर नर सोभा पावत नाहिँ।
जैसैं बक सोभित नहीं हंस-मंडली माहिँ ॥२३१॥
रसिक सभा में निरस नर होत होत रस हानि।
जैसैं भैंसा ताल परि मलिन करत जल आनि ॥२३२॥

मिल्यौ दुष्ट नाहिन भलौ उपजत मिलै अहेत।
ज्यौं काँटौ गड़ि देह में अटकि खटकि दुख देत ॥२३३॥
दोख धरैं निरदोख कौं जे नर होयँ सदोष।
घटि उदार दाता कहै जाहि न जिय संतोष ॥२३४॥
होत सुसंगति सहज सुख दुख कुसंग के थान।
गंधी और लुहार की देखहु वैठि दुकान ॥२३५॥
भले वचन मुख नीच के नाहिन होत प्रकास।
हींग लसुन में ना मिले घन कस्तूरी वास ॥२३६॥
सुधरै विगरि कुसंग तैं सत संगति कौं पाय।
वासहि सीकर हींग की जीरा सँग मिटि जाय ॥२३७॥
मिलै सुसंगति उच्च हू करत नीच सों प्यार।
खर कौं गंग न्हवाइए तऊ न छांड़ै छार ॥२३८॥
बिगरै होय कुसंग जिहिँ कौन सकै समझाय।
लसुन वसाए बसन कौं कैसैं फूल वसाय ॥२३९॥
ह्वैहै बड़े बड़ेन सों होय न छोटे काज।
गहै विटप जु फनीन कौं गहि न सकै गजराज ॥२४०॥
अजुगत लखि नर नीच की काहू कौं न सुहात।
दाख विरानी खात खर को न देखि अनखात ॥२४१॥
छांड़ि सवल अरु निवल की कवहुँ न गहिए ओट।
जैसैं टूटी डार सैं लगै विलंबै चोट ॥२४२॥
प्रेम छके मन कौं हटकि रखि न सकै कुल लाज।
कमल-नाल के तंतु सौं को वांधै गजराज ॥२४३॥
वात प्रेम की राखिए अपने ही मन माहिँ।
जैसे छाया कूप की वाहर निकसै नाहिँ ॥२४४॥
ताकौं त्यौं समझाइए ज्यौं समझे जिहि वानि।
वैन कहत मन अंध कौं ज्यौं वहिरे कौं पानि ॥२४५॥

बिपत परे सुख पाइए ता ढिग करिए भौन।
नैन सहाई बधिर के अंध सहाई स्रौन ॥२४६॥
हीन अकेलौ ही भलौ मिले भले नहिँ दोय।
जैसैं पावक पवन मिलि बिफरै हाथ न होय ॥२४७॥
जैसौ थानक सेइए तैसौ पूरै काम।
सिंह गुफा मुक्ता मिलै स्यार खुरो खुर चाम ॥२४८॥
बांके सीधे को मिलन निबहै नाहिँ निदान।
गुन-ग्राही तोऊ तजत जैसे बान कमान ॥२४९॥
क्यों करिए प्रापति अलप जामें स्रम अति होय।
कौन जु गिरिवर खोद कैं चूहौ काढ़ै जोय ॥२५०॥
होय पहुँच जाकी जिती तेतौ करत प्रकास।
रवि ज्यौं कैसे करि सकै दीपक तम को नास ॥२५१॥
जहां चतुर नाहिन तहां मूढ़नि सौं व्यवहार।
बर पीपर बिन हो रहै ज्यों एरँड अधिकार ॥२५२॥
होत न कारज मो बिना यह जु कहै सु अयान।
जहां न कुक्कुट शब्द तहँ होत न कहा बिहान ॥२५३॥
उत्तम को अपमान अरु जहां नीच कौ मान।
कहा भयौ जौ हंस की निंदा काग बखान ॥२५४॥
यथाजोग की ठौर बिनु नर छवि पावै नाहिँ।
जैसैं रत्न कथीर मैं कांच कनक के माहिँ ॥२५५॥
बिपति बड़ेई सहि सकैं इतर बिपति तैं दूर।
तारे न्यारे रहत हैं गहैं राहु ससि सूर ॥२५६॥
ठौर छुटे तें मीत हू है अमीत सतरात।
रवि जल उखरे कमल कौं जारत गारत जात ॥२५७॥
होत बहुत धन होत तउ गुन जुत भए उदोत।
नेह भरयो दीपक तऊ गुन बिनु जोति न होत ॥२५८॥

कहा भयौ जो धन भयौ गुन तैं आदर होइ।
कोटि दोइ धारी धनुष गुन बिन गहत न कोइ ॥२५९॥
जात गुनी जात न तहां आडंबर युत सोय।
पहुँचे चंग अकास लौं जौ गुन संयुत होय ॥२६०॥
गुनवारौ संपति लहै लहै न बिन गुन कोय।
काढ़े नीर पताल तैं जो गुन युत घट होय ॥२६१॥
को करि सकै बड़ेन सौं कबहूं प्रति उपकार।
गिरि सुर तरु न रख्यो उदधि मुनि अँचयो जिहिँ बार ॥२६२॥
विद्या गुरु की भक्ति सौं कै कीन्हे अभ्यास।
भील द्रोण के विन कहे सीख्यो वान - विलास ॥२६३॥
गुरु हु सिखावै ज्ञान गुन सिष्य सुबुद्धि जु होय।
लिखै न खरदरि भीत पर चित्र चितेरौ कोय ॥२६४॥
पंडित पंडित सों मिलै संसै मिटत न बेर।
मिलै दीप दुहुँ दुहुँन कौं होत अँधेर निबेर ॥२६५॥
उद्दिम बुधि-बल सौं मिलै तब पावत सुख-साज।
अंध कंध चढ़ि पंगु ज्यौं सबै सुधारत काज ॥२६६॥
जाको हृदय कठोर तिहिँ लगै न कोमल बैन।
मैंन बान ज्यौं पथर मैं क्यौं हूं किए भिदै न ॥२६७॥
सबको रस में राखिए अंत लीजिए नाहिँ।
विष निकस्यो अति मथन तैं रतनाकर हू माहिँ ॥२६८॥
फल विचारि कारज करौ करहु न व्यर्थ अमेल।
तिल ज्यौं बारू पेरिए नाहिन निकसै तेल ॥२६९॥
पीछे कारज कीजिए पहिले पहुँच बिचार।
कैसे पावत उच्च फल वावन वांह पसार ॥२७०॥
दुष्ट निकट बसिए नहीं बस न कीजिए बात।
कदली बेर प्रसंग तैं छिदै कंटकन पात ॥२७१॥

तिनके कारज होत हैं जिनके बड़े सहाय।
कृष्ण पच्छ पांडव जयी कौरव गए बिलाय ॥२७२॥
पुन्य विवेक प्रभाव तैं निहचल लच्छ निवास।
जौ लौं तेल प्रदीप में तौ लौं जोति - प्रकास ॥२७३॥
नर कारज की सिद्धि लौं करै अनेक प्रकार।
छूटै रोग सरीर तैं को ढूंढ़ै उपचार ॥२७४॥
अरि छोटौ गनियै नहीं जाते होत बिगार।
तिन-समूह को छिनक मैं जारत तनक अँगार ॥२७५॥
छोटे अरि पर चढ़त हूं सजै सुभट तनत्रान।
लीजै ससा अखेट पर नाहर कौ सामान ॥२७६॥
गुन लैं संग्रह सब करैं कुल न विचारै कोय।
हरि हू मृगमद को तिलक करत लेत जग मोय ॥२७७॥
बुरौ होय तउ सुकुल कौ तासों बुरो न होय।
जदपि धुवां है अगर को करत सुगंधित सोय ॥२७८॥
ताकौ अरि कहा करि सकैं जाकौ जतन उपाय।
जरै न ताती रेत सौं जाके पनही पाय ॥२७९॥
पंडित जन कौ स्रम मरम जानत जे मतिधीर।
कबहूं बांझ न जानई तन प्रसूत की पीर ॥२८०॥
सूर बीर की संपदा कायर पै नहिं जाय।
निहचै जानो सिंह बलि स्यार न कबहूं खाय ॥२८१॥
भूपति के सँग सुभट गन आपस में यह रीति।
बन अभीत ब्यौं सिंह तैं बन तैं सिंह अभीत ॥२८२॥
जाय दरिद कबि जनन कौ सेवै राज-समाज।
सिंह तृपित तब होतु है हाथ चढ़ै गजराज ॥२८३॥
वीर पराक्रम ना करै तासों डरत न कोइ।
बालक हू कैं चित्र कौ बाघ खिलौना होइ ॥२८४॥

वीर पराक्रम तैं करै भुव-मंडल कौ राज।
जोरावर यातैं करत बन अपनौ मृगराज ॥२८५॥
जोरावर अरि मारियै बुध बल कियै उपाय।
कालयमन कौ ज्यौं किसन पट मुचुकुंद उठाय ॥२८६॥
राजा के बल लोक सब फिरै घिरैं चहुँ ओर।
ज्यौं बन में छूटै चरै बांधे हय के जोर ॥२८७॥
नृप प्रताप तैं देस में रहै दुष्ट नहिं कोय।
प्रगटत तेज दिनेस कौ तहां तिमिर नहिं होय ॥२८८॥
यहै बात सब ही कहैं राजा करै सु न्याव।
ज्यौं चौपर के खेल में पांसौ परै सु दाव ॥२८९॥
कारज ताही को सरै करै जु समै निहारि।
कबहुं न हारै खेल जो खेलै दांव बिचारि ॥२९०॥
सब देखै पै आपनौ दोष न देखै कोइ।
करै उजेरौ दीप पै तरे अँधेरौ होइ ॥२९१॥
संत कष्ट सहि आपुही सुखि राखै जु समीप।
आप जरै तउ और कौ करै उजेरौ दीप ॥२९२॥
मारै इक रच्छा करै एकहि कुल कौ होय।
ज्यौं कृपान अरु कवच ये एक लोह सौं होय ॥२९३॥
अपनी अपनी ठौर पर सबकौं लागै दाव।
जल में गाड़ी नाव पर थल गाड़ी पर नाव ॥२९४॥
मुनि मन सुथिर कुबात तैं कैसैं राखे कोइ।
जल प्रतिबिंबित बात बस थिर हू चंचल होइ ॥२९५॥
जो हाजिर अवसान पर सोई शस्त्र प्रमान।
दाभहि तैं बलदेव ज्यौं हरे सूत के प्रान ॥२९६॥
बड़े अनीति करैं तऊ बुरो कहै नहिं कोय।
बालि हत्यो अपराध बिनु ताहि भजे सब कोय ॥२९७॥

नीति-निपुन राजानि कौं अजगुत नाहिँ सुहाय।
करत तपस्या सूद्र कौं ज्यौं मार्यौ रघुराय ॥२६८॥
लघु मिलिए गरुवे जदपि बड़े कछू लै ताहि।
गिरिवर आने कपिन के जौं मकरालय माहिँ ॥२६६॥
भले बुरे छोटे बड़े रहैं बड़ेनि पै आय।
मकर असुर सुर गिर अनल दधि मधि सकल बसाय ॥३००॥
बड़े भार लै निरबहैं तजत न खेद बिचारि।
शेष धरा धरि धर धरैं अब लौं देत न डारि ॥३०१॥
बुरी करैं पर जे बड़े भली करैं हित धारि।
जैसैं दधि बांध्यौ तऊ कपि दल दियौ उतारि ॥३०२॥
उत्तम जन सौं मिलत ही अवगुनहूं गुन होय।
घन सँग खारो उदधि मिलि बरसै मीठौ तोय ॥३०३॥
काहू सौं नाहीं मिटै अपरापत के अंक।
बसत ईस के सीस तउ भयो न पूर्न मयंक ॥३०४॥
कोऊ दूर न करि सकै बिधि के उलटे अंक।
उदधि पिता तउ चंद को धोय न सक्यो कलंक ॥३०५॥
गहिए ओट बड़ेन की जहाँ मिटै दुखदंद।
उदधि सरन मैनाक को कछु करि सक्यो न इंद ॥३०६॥
छल बल धर्म अधर्म करि अरि साधिए अभीति।
भारत में अर्जुन किसन कहा करी युध रीति ॥३०७॥
गाहक सबै सपूत के सारे काज सपूत।
सब को ढंपन होत है जैसे बन कौ सूत ॥३०८॥
आप कष्ट सह और कौं सोभा करत सपूत।
चरखी पींजन चरन खिच जग ढांकन ज्यौं सूत ॥३०९॥
करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तैं सिल पर परत निसान ॥३१०॥

सुख दिखाय दुख दीजियै खल सों लरियै नाहिं।
जो गुर दीने ही मरै क्यों विष दीजै ताहि ॥३११॥
बिन बूझे ही जानिए बुध मूरख मन माहिँ।
छलकै ओछे नीर घट पूरे छलकत नाहिँ ॥३१२॥
सहज सँतोष है साध कौं खल दुख देन प्रवीन।
मछुवा मारत जल बसत कहा बिगारत मीन ॥३१३॥
सुंदर थान न छोड़ियै जौ लौं होय न और।
पिछलो पांव उठाइए देखि धरन को ठौर ॥३१४॥
फिर पीछे पछताइए सो न करै मति सूध।
बदन जीभ हिय जरत है पीवत तातो दूध ॥३१५॥
को सुख को दुख देत है देत करम झकझोर।
उरझै सुरझै आप ही ध्वजा पवन के जोर ॥३१६॥
सब सुख है संतोष मैं धरियै मन संतोष।
नेक न दुरबल होत है सर्प पवन के पोष ॥३१७॥
पांय परे हू पिसुन सों बिससि न करिए बात।
नमत कूप को डोल ज्यौं जीवन हर लै जात ॥३१८॥
सबल न पुष्ट सरीर को सबल तेज युत होय।
हृष्ट पुष्ट गज दुष्ट ज्यौं अंकुस के बस होय ॥३१९॥
कायर नर को देख रन मुख फीको दरसाय।
काँचो रँग ज्यौं धूप मैं झटक चटक उड़ि जाय ॥३२०॥
दोष धरै गुनि को पिसुन इह डर गुन न बिसारि।
जूं के भय ते बसन को देत कहा कोउ डारि ॥३२१॥
भली करत लागत बिलम बिलम न बुरे विचार।
भवन बनावत दिन लगैं ढाहत लगति न बार ॥३२२॥
सोई अपनो आपनो रहै निरंतर साथ।
होत परायो आपनो सब पराए हाथ ॥३२३॥

बिनसत बार न लागई ओछे जन की प्रीति।
अंबर डंबर सांझ के ज्यौं बारू की भीति ॥३२४॥
करिए बात न तन परस खल ढिग जैए नाहिँ।
कटुक नींब तरु जात ही मुख करुओ है जाहि ॥३२५॥
निपट अमिलती बात कों कैसे करिहै कोइ।
बसन नील के माट में कबहूं लाल न होइ ॥३२६॥
देखि ठिकानौ मांगिए मांगे मिलै जु होइ।
मुनि घर भीतर कांगही ढूंढ़ै लहत न कोइ ॥३२७॥
कहे मूढ़ की बात के करिए जो चित होय।
सौंह दिवाए और के परे अग्नि में कोय ॥३२८॥
झूठहु ऐसो बोलिए सांच बरोबर होय।
ज्यौं अँगुरी सों भीति पर चांद बतावै कोय ॥३२९॥
समझै अनसमझै कछुक कहिए मीठी बात।
बालक के सुन सुन बचन जैसैं स्रवन सुहात ॥३३०॥
सुबुध बीच परि दुहुँन कों हरत कलह रस पूर।
करत देहरी-दीप ज्यौं घर आंगन तम दूर ॥३३१॥
अधिक दुखी लखि आप तैं दीजै दुख बिसराय।
धरमसुवन बन-दुख हर्‌यो मुनि नल बिपत बताय ॥३३२॥
होत बुरे हूं तें भलो काहू समै प्रकास।
अधिक मास तें ज्यौं मिट्यौ पांडव फिर बनबास ॥३३३॥
एक अनीति करै लहै संगी दुख सुख नाहिँ।
भीम कीचकन कौं दिए मारि चिता के माहिँ ॥३३४॥
बड़े बिपत में हूं करैं भले बिराने काम।
किय बिराटतनु की बिजय अर्जुन करि संग्राम ॥३३५॥
बड़े बड़े हू काम करि आप सिहावत नाहिँ।
जय जस उत्तर कों दियो पथ बिराट के माहिँ ॥३३६॥

बड़े बचन पलटैं नहीं कहि निरबाहैं धीर।
कियो विभीषन लंकपति पाय विजय रघुबीर ॥३३७॥
बुरी करैं तेई बुरे नाहिँ बुरो कोउ और।
बनिज करै सो बानिया चोरी करै सो चोर ॥३३८॥
झूठ बसे जा पुरुष मैं ताही की अप्रतीति।
चोर जुआरो सों भले याते करत न प्रीति ॥३३९॥
कुल सपूत जान्यो परै लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के होत चीकने पात ॥३४०॥
नियमित जननी उदर में कुल को लेत सुभाव।
उछलत सिंहनि को गरभ सुनि गरजन घनराव ॥३४१॥
बिना सिखाए लेत है जिहिँ कुल जैसी रीति।
जनमत सिंहनि को तनय गज पर चढ़त अभीति ॥३४२॥
सत्य बचन मुख जो कहत ताकी चाह सराह।
गाहक आवत दूर ते सुनि इक शब्दी साह ॥३४३॥
प्रेम पगन जासों भई सुख दुख ताके संग।
बसत कमल अलि वास बस स-कमल भखत मतंग ॥३४४॥
चहल पहल अवसर परे लोक रहत घर घेर।
ते फिर दृष्टि न आवहीं जैसे फसल वटेर ॥३४५॥
बुद्धि बिना विद्या कहो कहा सिखावै कोइ।
प्रथम गांव ही नाहिँ तौ सींव कहां ते होइ ॥३४६॥
बहुत न बकिए कीजिए कारज अवसर पाय।
मौन गहे बक दांव पर मछरी लेत उठाय ॥३४७॥
भजन निरंतर संत जन हरि पद चित्त लगाय।
जैसे नट दृढ़ दृष्टि करि धरत वरत पर पायँ ॥३४८॥
का रस में का रोष में अरि ते जिनि पतियाय।
जैसैं सीतल तप्त जल डारत आगि बुझाय ॥३४९॥

चप चप करती ना रहै नर लवार की जीह।
चल-दल दल जैसे चपल चलत रहै निस दीह ॥३५०॥
जैसो प्रभु तैसो अनुग होय सुभात प्रमान।
बामन कर की लष्टिका बढ़े चढ़ी असमान ॥३५१॥
बढ़े न ऐसो कौन है दान मान को पाय।
पाय धरा बामन भए सीस स्वर्ग धर पाय ॥३५२॥
अपनी कीरति कान सुनि होत न कौन खुस्याल।
नाग मंत्र के सुनत ही बिष छांड़त है व्याल ॥३५३॥
विद्या याद किए बिना विसरत इहिँ उनमान।
बिगर जात बिन खबर के ढोली कैसो पान ॥३५४॥
सबै धकावै निबल कौं सबल पुरातन पाठ।
डारै जारि बहाय दे अनिल अनल जल काठ ॥३५५॥
अंतर अँगुरी चार कौ सांच झूठ मैं होय।
सब मानै देखी कही सुनी न मानै कोय ॥३५६॥
निबहै सोई कीजिए पन अपने उनमान।
कैसैं होत गरीब पै राजा कैसो दान ॥३५७॥
जोर न पहुँचै निबल कौं जो पै सबल सहाय।
भोडर की फानूस कौ दीप न बात बुझाय ॥३५८॥
कारन बिन कारज नहीं निहचै मान बचन्न।
करै रसोई जौ मिले आग इँधन जल अन्न ॥३५९॥
परी बिपत तैं छूटियै करियै जोर उपाव।
कैसैं निकसै जतन बिन परी भौंर मैं नाव ॥३६०॥
दुख सुख दीवे कौं दई है आतुर इहिँ ठाट।
अहि करंड मूसा परयो भखि निकस्यौ उहि बाट ॥३६१॥
प्रेरक ही तैं होत है कारज सिद्ध निदान।
चढ़ैं धनुष हू ना चलै बिना चलाए बान ॥३६२॥

होय भले कैं सुत बुरो भलौ बुरे कै होय।
दीपक कै काजर प्रगट कमल कीच तैं जोय ॥३६३॥
हार बड़े की जीत है निबल न मानै तास।
बिमुख होय हरि ज्यौं कियौ कालयमन कौ नास ॥३६४॥
होय भले चाकरन तैं भलैा धनी कौ काम।
ज्यौं अंगद हनुमान तैं सीता पाई राम ॥३६५॥
सबकी समै बिनास में उपजति मति बिपरीति।
रघुपति मार्‍यौ लंकपति जो हरि लै गयो सीति ॥३६६॥
जो धनवंत सु देय कछु देय कहा धन-हीन।
कहा निचोरै नग्न जन न्हान सरोवर कीन ॥३६७॥
सुख सज्जन के मिलन कौं दुर्जन मिलै जनाय।
जाने ऊख मिठास कौं जब मुख नीम चबाय ॥३६८॥
होत चाह तब होतु है प्रेम सु सज्जन संग।
पास दियै बिन बांस पर चढ़ै न गहरौ रंग ॥३६९॥
जाहि मिलै सुख होतु है ता बिछुरै दुख होय।
सूर उदै फूलै कमल ता बिन सकुचै सोय ॥३७०॥
झूठे ही करियै जतन कारज बिगरै नाहिँ।
कपट पुरुष धन खेत पर देखत मृग भज जाहिँ ॥३७१॥
प्रेम नेम के पंथ कौ है कछु अद्भुत रूप।
पिय हिय लागै लगत ज्यौं सरद जौन सी धूप ॥३७२॥
दुखदाई सोइ देतु सुख सुखदाई सँग जात।
घट जल भीजे चीर कौं लागि लुअ्र सियरात ॥३७३॥
सम सहाय के बिन मिलैं सुखदाई दुख देइ।
भिँजे चीर बिन घट सलिल लागत तपत करेइ ॥३७४॥
कारज सोई सुधरिहै जौ करियै सम भाय।
अति बरषै बरषै बिना जौ करिसन कुम्हलाय ॥३७५॥

सज्जनता न मिलै किये जतन करौ किन कोइ।
ज्यौं करि फार निहारियै लोचन बढ़ौ न होइ ॥३७६॥
बिन बनाव बानिक बने ताही के कुवखान।
दगले पर ज्यौं अरगजो मीठे पर तनत्रान ॥३७७॥
तन बनाय उपजाय रुचि ठानत मान निदान।
ज्यौं पंचामृत छाँहि कै करत तपत जल पान ॥३७८॥
मन देत न तन देन कौं मन मिलयो तजि लाज।
ज्यौं आंकुस कौं नटत कोउ दै गिरि सौं गजराज ॥३७९॥
छोटे मन में आइहै कैसैं मोटी बात।
छेरी के मुँह में दियौ ज्यौं पेठा न समात ॥३८०॥
होत निबाह न आपनौ लीने फिरत समाज।
चूहा बिल न समात है पूंछ बांधिए छाज ॥३८१॥
रहै प्रजा धन यत्न सौं जहँ बांकी तरवार।
सो फल कोउ न लै सकै जहां कटीली डार ॥३८२॥
जासौं परिचै होय सो पावै तिहि उनमान।
रुपिया कौं खोटौ खरौ कैसैं कहै अजान ॥३८३॥
बिना प्रयोजन भूलि हू ठठिए नाहीं ठाट।
जैबो नहिँ जा गांव कौं ताकी पूछ न बाट ॥३८४॥
आंपहि कहा बखानियै भलो बुरी को जोग।
ऊढ़े धन की बान कौं कहैं बटाऊ लोग ॥३८५॥
इंगित तैं आकार तैं जान जात जो भेट।
तासौं बात दुरै नहीं ज्यौं दाई सौं पेट ॥३८६॥
जानै सो बूझै कहा आदि अंत बिरतंत।
घर जन्मे पशु के कहा देखत कोऊ दंत ॥३८७॥
कहबौ कछु करिबौ कछू है जग की बिधि दोय।
देखन के अरु खान के और दुरद रद होय ॥३८८॥

आप कहैं नाहीं करै ताकौ है यह हेत।
आप जाय नहिँ सासुरै औरन कौं सिख देत ॥३८९॥
जो कहियै सो कीजियै पहिलै करि निर्धार।
पानी पी घर पूछबौ नाहिन भलौ बिचार ॥३९०॥
पीछे कारज कीजियै पहिलै जतन बिचार।
बड़े कहत हैं बांधियै पानी पहिले बार ॥३९१॥
अरि हू बूझै मंत्र कौं कहियै सांच सुनाय।
ज्यौं भीषम पांडवन कौं दीनौ मरन बताय ॥३९२॥
कहियै तासौं जो हितू भली बुरी हू जायि।
चोर करै चोरी तऊ सांच कहै घर जायि ॥३९३॥
संपत बीतै बिलसबौ सुख कौं चाहै कोइ।
रूख उसारे फूल फल कहु धौं कैसैं होइ ॥३९४॥
रन सनमुख पग सूर के बचन कहैं ते संत।
निकसन पीछैं होत है ज्यौं गयंद के दंत ॥३९५॥
आय बसें जिहिँ दिन सुछिन जे सज्जन चित माहिँ।
चित्र महावत दुरद पर ज्यौं चढ़ि उतरै नाहिँ ॥३९६॥
बिन पूछे ही कहत हैं सज्जन हित के वैन।
भले बुरे कौं कहत हैं ज्यौं तमचर गत रैन ॥३९७॥
बिछुरे गए बिदेस हू सज्जन बिछुरे नाहिँ।
दूर भए ज्यौं कुरज की सुरति सुतन के माहिँ ॥३९८॥
वसियै तहां बिचार कै जहां दुष्ट गति नाहिँ।
होत न कबहूं भँवर डर ज्यौं चंपक बन माहिँ ॥३९९॥
दान देत धन-हीनता होत तथापि बखान।
दुरबल तऊ सराहियै दुरद झरत जब दान ॥४००॥
ठीक कियै बिन और की बात सांच मत थपै।
होत अँधेरी रैन में परी जेवरी सर्प ॥४०१॥

झूठ बिना फीकी लगै अधिक झूठ दुख-भौन।
झूठ तितौ ही बोलियै ज्यौं आटे में लौन ॥४०२॥
ठौर देखि कै हूजियै कुटिल सरल गति आप।
बाहर टेढ़ौ फिरत है बांबी सूधौ सांप ॥४०३॥
एकतहू रह सजन खल तजत न अपनौ अंग।
मनि विष-हर विष-कर सरप सदा रहत इक संग ॥४०४॥
भले बुरी जौ आदरैं कौन सकै निरबारि।
सीत बिमल पावन करन चलत नीच गति वारि ॥४०५॥
दोऊ चाहैं मिलन कौं तौ मिलाप निरधार।
कबहूं नाहिन बाजिहै एक हाथ सौं तार ॥४०६॥
हिए दुष्ट के बदन तैं मधुर न निकसै बात।
जैसे करुवी बेल के को मीठे फल खात ॥४०७॥
रुखे वचन मिलाप मों कहत होत रस-भंग।
बीन बजत ज्यौं तार के टूटे रहत न रंग ॥४०८॥
आप अकारज आपनौ करतु कुबुध के साथ।
पायँ कुल्हारी आपने मारतु मूरख हाथ ॥४०९॥
ताही कौ करियै जतन रहियै जिहिँ आधार।
को काटै ता डार कौं बैठै जाही डार ॥४१०॥
न्याय चलत बिगरै कछू तौ न करौ अपसोस।
धार परत जो राजपथ तौ न देत कोउ दोस ॥४११॥
भले भलो ही कहत हैं पै न कहत हैं दोष।
सूरदास कहे अंध कौं उपजावत है तोष ॥४१२॥
सदा सुथान प्रधान है बल न प्रधान बताव।
नाग डरावत गरुड़ कौं हर उर हार प्रभाव ॥४१३॥
जामें विद्या नारदी बिगरन देत न लाग।
पैस चोर भुँसि स्वान कौ कहत धनी सौं जाग ॥४१४॥

भाग-हीन कौं ना मिलै भली वस्तु कौ भोग।
दाख पके मुख पाक कौ होत काग को रोग ॥४१५॥
सब कोऊ चाहत भलो मित्र मित्र की ओर।
ज्यों चकई रवि कौ उदै ससि कौ उदै चकोर ॥४१६॥
भले बंस संतति भली कबहूं नीच न होय।
ज्यौं कंचन की खान मैं कांच न उपजै कोय ॥४१७॥
सूर बोर के बंस मैं सूर बीर सुत होय।
ज्यों सिंहनि के गर्भ मैं हिरन न उपजै कोय ॥४१८॥
करै न कबहूं साहसी दीन हीन कौ काज।
भूख सहै पर घास कौं नाहिँ भखै मृगराज ॥४१९॥
मान-धनी नर नीच पै जांचै नाहीं जाय।
कबहुँ न मांगै स्यार पै बलि भूख्यौ मृगराय ॥४२०॥
छोटे नर कौं बड़ेन सों कबहूं बुरौ न होय।
फूस आगि करि ना सकै तपत उदधि कौ तोय ॥४२१॥
नीचहु उत्तम संग मिलि उत्तम ही ह्वै जाय।
गंग संग जल निंद्य हू गंगोदक के भाय ॥४२२॥
अधिक चतुर की चातुरी होत चतुर के संग।
नग निरमल के डांक तैं बढ़त जोति छवि रंग ॥४२३॥
परतछ नीके देखिए कहा बरन कोउ ताहि।
कर कंकन कौं आरसी को देखत है चाहि ॥४२४॥
सहज सील गुन सजन के खल बुधि होत न भंग।
रतन दीप की ज्यों सिखा बुझत न बात प्रसंग ॥४२५॥
रति रस श्रुति रस राग रस पाय न चाहत और।
चाखत मधु अरविंद कौ लै न ईख रस भौंर ॥४२६॥
मोह महातम रहतु है जौ लौं ज्ञान न होत।
कहा महातम रहि सकै भए अदीत उदोत ॥४२७॥

सबुध अबुध की सेव कौ यह सरूप जिय थाप।
थल में रोपित कमल ज्यौं बधिर करन ज्यौं जाप ॥४२८॥
यौं सेवा राजान की दीन्ही कठिन बताय।
ज्यौं चुंबन व्याली बदन सिंह मिलन के भाय ॥४२९॥
पंडित अरु बनिता लता सोभित आश्रय पाय।
है मानिक बहु मोल कौ हेम जटित छबि छाय ॥४३०॥
इक गुन तैं सोभा लहैं इक अवगुन अवरोह।
सोह उरोजन पीनता त्यौं कटि कृसता सोह ॥४३१॥
सुजन सुजन के दरस ही पावत जिय संतोष।
लहत कच्छ के वत्स ज्यौं सोम दृष्टि तैं पोष ॥४३२॥
सब संपति फल करत है सुहृद जनन कौ हेत।
दूरहिँ सूरज उदित ज्यौं कमलन कौं सुख देत ॥४३३॥
ऊंचे पद कौं पाय लघु होय तुरत ही पात।
घन तैं गिरि पर गिरत जल गिरिहू तैं ढरि जात ॥४३४॥
अपनी प्रभुता को सबै बोलत झूठ बताय।
बेस्या बरस घटावही जोगी बरस बढ़ाय ॥४३५॥
अपने लालच के लियै दुख हू आवै दाय।
कान बिधावैं खाय गुर पहिरै बीरबलाय ॥४३६॥
धनी गुनी कौं न्याय ही धन अरपै धरि हेत।
सगुन पात्र कौं कूप हू मिलतहि जीवन देत ॥४३७॥
गुन सनेह जुत होतु है ताही की छबि होत।
गुन सनेह के दीप की जैसैं जोति उदोत ॥४३८॥
सुनि सुनि मीठी बात कौं को चाहत कटु बात।
चाखि दाख के स्वाद कौं कौन निबौरी खात ॥४३९॥
रस की कथा सुनी न तिहिँ कूर कथा की चाहि।
जिन दाखै चाखी नहीं मिष्ट निबौरी ताहि ॥४४०॥

प्रेमी प्रीत न छांड़हीं होत न प्रन तैं हीन।
मरै परे हू उदर मैं जल चाहत है मीन ॥४४१॥
अति उदारता वड़ेन की कहँ लौं वरनै कोय।
चातक जाचै तनिक घन वरस भरै घन तोय ॥४४२॥
वड़े जु चाहैं सो करैं करन मतो उर धारि।
हरि गिरि तारे जलधि पर करी सिला तैं नारि ॥४४३॥
औसर वीते जतन कैा करिबो नहिँ अभिराम।
जैसे पानी वह गए सेतबंध किहिँ काम ॥४४४॥
दुष्ट संग वसियै नहीं दुख उपजत इहिँ भाय।
वसत बांस की अगिन तैं जरत सवै वनराय ॥४४५॥
करै अनादर गुननि कैा ताहि सभा छवि जाय।
गज कपोल शोभा मिटत ज्यौं अलि देत उड़ाय ॥४४६॥
कहूं कहूं गुन तैं अधिक उपजत दोष सरीर।
मीठी वानी वोलि कै परत पींजरा कीर ॥४४७॥
भले वुरे निवहैं सवै महत पुरुष के संग।
चंद सांप जल अगिन ए वसत शंभु के अंग ॥४४८॥
बिना कहे हू सत पुरुष पर की पूरैं आस।
कौन कहत है सूर कैा घर घर करत प्रकास ॥४४९॥
कछु कहि नीच न छेड़ियै भलो न वाकैा संग।
पाथर डारे कीच मैं उछरि विगारै अंग ॥४५०॥
हीन जानि न विरोधियै वह तो तन दुखदाय।
रजहू ठोकर मारियै चढ़ै सीस पर आय ॥४५१॥
नाहिँ करत उपकरन तैं काज सिद्ध वलवान।
मुनि वन वसिवो संग मृग किय अगस्त दधि पान ॥४५२॥
विना दिए न मिलै कछू यह समझै सव कोय।
होत सिसिर में पात तरु सुरभि सपल्लव होय ॥४५३॥

यह निश्चय करि जानियै जानहार सो जाय।
गज के भुक्त कपित्थ के ज्यौं गिर बीज बिलाय ॥४५४॥
दूर कहा नियरै कहा होनहार सो होय।
धुर सींचै नालेर के फल में प्रगटै तोय ॥४५५॥
आए आदर ना करै पीछै लेत मनाय।
आयौ नाग न पूजई बांबी पूजन जाय ॥४५६॥
कहूं अनादर पाय कै गुनी न करहु अँदेस।
विद्या है तौ करहिँगे सब कोऊ आदेस ॥४५७॥
अपने अपने समय पर सब कौ आदर होय।
भोजन प्यारौ भूख मैं तिस मैं प्यारौ तोय ॥४५८॥
होय सो होय हिसाब सौं बिन हिसाब नहिँ होय।
भषै बदन तैं अन्न मन नाहिं नाक तैं कोय ॥४५९॥
जिहिँ डर डरि करियै जतन उपजत सोइ अमेट।
लगै दूखती चोट ज्यों होति कनौड़े भेट ॥४६०॥
मीठी कोऊ बस्तु नहिँ मीठी जाकी चाह।
अमली मिसरी छांड़ि कै आफू खातु सराहि ॥४६१॥
बड़ी बड़ाई नीच कौं दीजै अपने काम।
खरहू कौं बोलत पथिक कहत बिनायक नाम ॥४६२॥
कहा भयौ जौ नीच कौं देत बड़ाई कोय।
कहत बिनायक नाम पै खर न बिनायक होय ॥४६३॥
भले बुरे कौं जानिबौ जान बचन के बंध।
कहै अंध कौं सूर इक कहै अंध कौं अंध ॥४६४॥
जानि बूझि कै करत नर अपने हेत अहेत।
झूठी सांची बात पर दोऊ मुचलका देत ॥४६५॥
चिरजीवी तन हूं तजै जाकौ जग जस बास।
फूल गएहूं फूल की रहै तेल मैं बास ॥४६६॥

बहुत भए किहिँ काम के भार निबाहक एक।
सेस धरे धर सीस पर मैंडक भखी अनेक ॥४६७॥
वृद्ध न ह्वैहै पाप तैं वृद्ध धरम तैं धार।
सुन्यौ न देख्यौ सिंह कै मृग कौ सौ परवार ॥४६८॥
देखत कौ पै कछु नहीं मुख पै खल की प्रीति।
मृग-तृष्णा में होति है ज्यों जल की परतीति ॥४६९॥
ऊपर दरसै सुमिल सी अंतर अनमिल आंक।
कपटी जन की प्रीति है खीरा की सी फांक ॥४७०॥
निबल सबल के परस तैं सबलन सौं अनखात।
देति हिमायत की गधी ऐराकी कैं लात ॥४७१॥
दोष लगावत गुनिन कौं जाकौ हृदय मलीन।
धरमी कौं दंभी कहैं छमियन कौं बलहीन ॥४७२॥
द्वै ही गति है बड़नि की कुसुम मालती भाय।
केशव के सिर पर रहै कै बन माहिँ बिलाय ॥४७३॥
सब बिधि डरियै दुष्ट सौं रहियै जतन समेत।
शंभु सुधाकर सिर धर्‍यो विष विषधर के हेत ॥४७४॥
खाय न खरचैं सूम धन चोर सबै लै जाय।
पीछै ज्यौं मधु मच्छिका हाथ मलै पछिताय ॥४७५॥
जगत बहुत जन तदपि मन बिन सज्जन अति दीन।
ससि तारा निस हैं तऊ रवि बिन नलिन मलीन ॥४७६॥
कोऊ कहै न जानियै जोतिवंत सुनि कोय।
हाथ दिया लै देखियै ऐसी आग न होय ॥४७७॥
खल निज दोष न देखई पर के दोषहि लागि।
लखै न पग तर सब लखै परबत बरती आग ॥४७८॥
जैसौ जैसौ अधिक गुन तैसौ होय मिलाय।
अहि-उर विष गल अनल चख शिव ससि सीस बसाय ॥४७९॥

भागहीन कौं देवहू देत सु लेत बनै न।
दीठ परै जहँ बस्तु तहँ चलै मूंद कै नैन ॥४८०॥
दिवस भले बिगरै न कछु रहौ निचींतै सोय।
आवै चोरी करन कौं चोर अंधेरौ होय ॥४८१॥
दान दीन कौं दीजियै मिटै दरिद की पीर।
औषध ताकौं दीजियै जाके रोग शरीर ॥४८२॥
सबसौं आगे होय कै कबहुँ न करियै बात।
सुधरै काज समाज फल बिगरै गारी खात ॥४८३॥
आवत समै विपत्ति के मित्र शत्रु ह्वै जाय।
दुहत होत बछ बँधन कौं थंभ मातु कौ पाय ॥४८४॥
उत्तम विद्या लीजियै जदपि नीच पै होय।
परयो अपावन ठौर कौ कंचन तजत न कोय ॥४८५॥
निहचै कारन बिपत कौ किएँ प्रीति अरि संग।
मृग के सुख मृगराज को होत कबहुँ अँग-भंग ॥४८६॥
जौ घर आवत शत्रु हू सजन देत सुख चाहि।
ज्यौं काटै तरु-मूल कोउ छाँह करत रह ताहि ॥४८७॥
ताकौ बुरौ न ताकियै जासौं जग ब्यौसाइ।
छाँह फूल फल देत तरु क्यौं तिहि कटन कराइ ॥४८८॥
दुष्ट भाव हिय मुख मधुर तासौं करहु न प्रीति।
भीतर विष पय घट भरयौ ताहि न छुइ इहि रीति ॥४८९॥
दुष्ट न छाँड़ै दुष्टता बड़ो ठौर हू पाय।
जैसैं तजत न श्यामता विष शिव कंठ बसाय ॥४९०॥
बिन उद्यम मसलत किये कारज सिद्ध न ठाय।
रोग न जानत औषधो जानै जाइ जो खाय ॥४९१॥
नृप अनीति के दोष तैं चूकै मंत्र प्रयोग।
करै कुपथ ता पुरुष कौं उपजै क्यों नहि रोग ॥४९२॥

कहा करै आगम निगम जो मूरख समझै न।
दरपन कौ नहिँ दोष कछु अंध बदन देखै न ॥४९३॥
दया दुष्ट कै चित्त मैं कबहूं उपजत नाहिँ।
हिंसा छोड़ी सिंह यह क्यों आवै मन माहिँ ॥४९४॥
प्रीति टुटै हू सजन के मन तैं हेत छूटै न।
कमलनाल कौं तोरियै तदपि सूत टूटै न ॥४९५॥
सज्जन के प्रिय बचन तैं तन संताप मिटाय।
जैसैं चंदन नीर तैं तापन तन कौ जाय ॥४९६॥
सजन बचन दुर्जन बचन अंतर बहुत लखाय।
वे सबकौं नीके लगैं वे काहू न सुहाय ॥४९७॥
धन अरु गैंद जु खेल कौ दोऊ एक सुभाय।
कर में आवत छिनक में छिन में कर तैं जाय ॥४९८॥
प्रभु कौं चिंता सबन की आपु न करियै नाहिँ।
जनम अगाऊ भरत है दूध मात थन माहिँ ॥४९९॥
धन अरु जोबन कौ गरब कबहूँ करिए नाहिँ।
देखत ही मिट जात है ज्यौं बादर की छांह ॥५००॥
नृपति चोर जल अनल तैं धनि कौ भय उपजाय।
जल थल नभ में मांस कौं झख केहरि खग खाय ॥५०१॥
बड़े बड़े कौं बिपति तैं निहचै लेत उबारि।
ज्यों हाथी कौं कीच तैं हाथी लेत निकारि ॥५०२॥
बड़े कष्ट हू जे बड़े करैं उचित ही काज।
स्यार निकट तजि खोज कै सिंह हनै गजराज ॥५०३॥
जिहिँ जेतौ उनमान तिहिँ तेतौ रिजक मिलाय।
कन कीड़ी कूकर टुकर मन भर हाथी खाय ॥५०४॥
बहु गुन श्रम तैं उच्च पद तनक दोष तैं पात।
नीठ चढ़ै गिरि पर सिला टारत ही ढुरि जात ॥५०५॥

छोटे अरि कौं साधियै छोटौ करि उपचार।
मरै न मूसा सिंह तैं मारै ताहि मँजार ॥५०६॥
बड़े बड़े सौं रिस करै छोटे सौं न रिसाय।
तरु कठोर तोरै पवन कोमल तृन वच जाय ॥५०७॥
सेवक सोई जानियै रहै बिपति में संग।
तन-छाया ज्यौं धूप मैं रहै साथ इकरंग ॥५०८॥
बुरौ तऊ लागत भलौ भली ठौर पै लीन।
तिय नैननि नीकौ लगै काजर जदपि मलीन ॥५०९॥
जोराबर हू कौ कियौ विधि वस करन इलाज।
दीप तमहि अंकुस गजहि जलनिधि तरनि इलाज ॥५१०॥
दुष्ट रहै जा ठौर पर ताकौ करै बिगार।
आगि जहाँ ही राखियै जारि करै तिहिँ छार ॥५११॥
विना तेज के पुरुष की अवसि अवज्ञा होय।
आगि बुझै ज्यौं राख कौं आनि छुवै सब कोय ॥५१२॥
पाय प्रकृति वस कीजियै करि बुधि वचन विवेक।
लष्ट पुष्ट सौं एक कौं जष्ट मुष्ट सौं एक ॥५१३॥
नेह करति तिय नीच सौं धन किरपन घर माहिँ।
बरसै मेह पहार पै कै ऊसर वरसाहिँ ॥५१४॥
जहाँ रहै गुनवंत नर ताकी सोभा होत।
जहाँ धरै दीपक तहाँ निहचै करै उदोत ॥५१५॥
खाली तजि पूरन पुरुष जिहिँ सब आदर देत।
रीतौ कुवा उसारियै ऐंच भरयौ घट लेत ॥५१६॥
सब आसान उपाय तैं तुरत फुरत फल देत।
मथि अरनी अरु काठ ज्यौं आगि प्रगटि करि लेत ॥५१७॥
जाकी प्रापति होय सो मिलै आप तैं आय।
पाले पोषे खग बचन देहै कहा कमाय ॥५१८॥

खल सज्जन सूचीन के भाग दुहूं सम भाय।
निगुन प्रकासै छिद्र कौं सगुन सु ढांपत जाय ॥५१९॥
तुला सुई की तुल्यता रीति सजन की दीठि।
गरुवे दिस नै जाति है हरुवे कौं दै पीठि ॥५२०॥
भले वुरे सौं एक सी मूढ़नि की परतीति।
गुंजा सम तोलत कनक तुला पला की रीति ॥५२१॥
जिहिँ दिसि भय तिहिँ दिसि कबहुँ ना जैयै करि चोज।
गज तिहिँ मग पग ना धरै जहां सिंह कौ खोज ॥५२२॥
सिद्धि होत कारज सवै जाके जिय विस्वास।
पूजत ऐपन कौ हथा तिय जिय पूरै आस ॥५२३॥
वहुत द्रव्य संचै जहां चोर राज भय होय।
कांसे ऊपर बीजुरी परति कहैं सब कोय ॥५२४॥
जानि वूझि अजगुत करै तासौं कहा वसाय।
जागत ही सोवत रहै तिहिँ को सकै जगाय ॥५२५॥
जहँ तहँ सज्जन मिलैं नहिं गुन गरुवे जग माहिँ।
जोति भरे पानिप भरे प्रति गज मुक्ता नाहिँ ॥५२६॥
विद्या विन न विराजहीं जदपि सरूप कुलीन।
ज्यौं सोभा पावै नहीं टेसू बास विहीन ॥५२७॥
एकहि भले सुपुत्र तैं सब कुल भलौ कहाय।
सरस सुबासित वृच्छ तैं ज्यौं वन सकल वसाय ॥५२८॥
गुरुमुख पढ़्यो न कहतु है पोथी अर्थ विचारि।
सो सोभा पावै नहीं जार गर्भजुत नारि ॥५२९॥
जाकौं वुधिवल होत है ताहि न रिपु कौ त्रासु।
घन वूंदैं कह करि सकैं सिर पर छतना जासु ॥५३०॥
छमा खड्ग लीने रहै खल कौ कहा बसाय।
अगिन परी तृन रहित थल आपहि तैं वुझि जाय ॥५३१॥

एकै थल विश्राम कौ ताकौ तजि कहँ जाय।
ज्यौं पंछी सुजहाज कौ उड़ि उड़ि तहां बसाय ॥५३२॥
जिहिँ जैसो अपराध तिहिँ तैसौ दंड बखानि।
थाप ककरिया-चोर कौं धन-चोरहि जिय हानि ॥५३३॥
ओछे नर के पेट में रहै न मोटी बात।
आध सेर के पात्र में कैसैं सेर समात ॥५३४॥
चलिए पैंड़े सांच के साईं सांच सुहाय।
सांचो जरै न आग तैं झूठौ ही जरि जाय ॥५३५॥
गूढ़ मंत्र जो लौं रहै कँ जु मिलि जन दोय।
भई छकानी बात तब जानि जात सब कोय ॥५३६॥
गूढ़ मंत्र गरुवे बिना कोऊ राखि सकै न।
धातु पात्र बिन और मैं बाघिन दूध रहै न ॥५३७॥
बहुत जु बीते तनक धन संचै सजन करै न।
मनन हानि ऊपज तहां कन कन कबहुँ भरै न ॥५३८॥
भिरत भार सब तैं उतरि गिरही पर ठहरात।
नीर निवानहि पाइयै ज्यौं बीते बरसात ॥५३९॥
सील करम कुल श्रुत चतुर पुरुष परिच्छा जान।
ताड़न छेदन कस तपन इन तैं कनक पिछान ॥५४०॥
जो पै जैसे होय तिहिँ हित सौं मिलिहै आय।
गांठी चोरा चोर कौ साहै साह मिलाय ॥५४१॥
कबहूं रन बिमुखी भयौ तउ फिर लरै सिपाह।
कहा भयौ काहू समै भाग्यौ तऊ बराह ॥५४२॥
कबहूं प्रीति न जोरियै जोरि तोरियै नाहिँ।
ज्यौं तोरै जोरै बहुरि गांठ परति गुन माहिँ ॥५४३॥
अंतर तनक न राखियै जहां प्रीति बिवहार।
उर सौं उर लागै न तहँ जहां रहतु है हार ॥५४४॥

निरखत पलक न मारियै सज्जन मुख की ओर।
उदय अस्त लौं एकटक चितवत चंद चकोर ॥५४५॥
सेवक साहिब के बढ़ै बढ़ै बड़ाई ओज।
जेतौ गहरौ जल बढ़ै तेतौ बढ़ै सरोज ॥५४६॥
ओछे नर के चित्त मैं प्रेम न पूर्यौ जाय।
जैसैं सागर को सलिल गागरि में न समाय ॥५४७॥
जे न होयँ दृढ़ चित्त के तहां न रहै सटेक।
ज्यौं काचे घट मैं सलिल नहिँ ठहरतु छिन एक ॥५४८॥
रस पोषै बिनहीं रसिक रस उपजावत संत।
बिन बरसै सरसै रहैं जैसैं बिटप बसंत ॥५४९॥
मन भावन के मिलन कौ सुख कौ नाहिन छोर।
बोलि उठै नचि नचि उठै मोर सुनत घन घोर ॥५५०॥
बिरही जन के चित्त कौं नाहिँ रहतु बुधि बोध।
थिर चर कौं बूझत फिरैं राघव सीता सोध ॥५५१॥
जहां सजन तहँ प्रीति है प्रीति वहां सुख ठौर।
जहां पुष्प तहँ बास है जहां बास तहँ भौंर ॥५५२॥
जो प्रानी परबस परयौ सो दुख सहत अपार।
जूथ बिछोही गज सहै बंधन अंकुस मार ॥५५३॥
गुनी होय श्रम कष्ट करि लहै राज-दरबार।
बोध बंध मुक्ता सहै तब उर-हार बिहार ॥५५४॥
मन प्रसन्न तन चैन जहँ स्वेच्छाचार विचार।
संग मृगी मृग सुख सबै बन बसि तृन आहार ॥५५५॥
रहनहार जाइ न बसत तदपि जतन बिवहार।
देखौ सब के देखियै काहे द्वार किवार ॥५५६॥
है पासे के दाव पर कहां जीत कहँ हारि।
सारि उठै यौं चौकसी छक पौ उठै न सारि ॥५५७॥

सबकौं व्याकुल करति है एक जठर की आगि।
परै किलकिला जलधि मधि जल जलचर डर त्यागि ॥५५८॥
उदर भरन के कारनै प्रानी करत इलाज।
नांचै बांचै रन भिरै रांचै काज अकाज ॥५५९॥
दुरभर उदर न दीन कौ होत न तन संताप।
तौ जन जन कौ को सहत तरजन गरजन ताप ॥५६०॥
उदर धरन नर तैं भलौ राहु उदर तैं हीन।
कबहूं नाहिन होतु है जन जन कौ आधीन ॥५६१॥
करी उदर दुरभरन भय हर अरधंगी दार।
जौ न होय तौ क्यौं रहै अब लौं तनय कुमार ॥५६२॥
भरत पेट नट निरत कै डरत न करत उपाय।
धरत बरत पर पायँ अरु परत बरत लपटाय ॥५६३॥
एक एक कौ शत्रु है जो जातैं बलवंत।
जलहि अनल अनलहि पवन सरप जु पवन भखंत ॥५६४॥
एक एक तैं देखियै अधिक अधिक बलवंत।
सेस धराधर गिर धरै गिरधर हरि भगवंत ॥५६५॥
देत न प्रभु कछु बिन दियै दियै देत यह बात।
लै तंदुल धन दुजहि मुनि त्रिपत किए भखि पात ॥५६६॥
यथाशक्ति ही दै सकै जो कुछु जाके पास।
ब्राह्मन कन चावर दिए श्रीपति धन आवास ॥५६७॥
जोरावर कौं होति है सबके सिर पर राह।
हरि रुक्मनि हरि लै गयो देखत रहे सिपाह ॥५६८॥
अगम पंथ है प्रेम कौ जहां ठकुरई नाहिँ।
गोपिन के पीछैं फिरे त्रिभुवनपति बन माहिँ ॥५६९॥
बचन रचन कापुरुष के कहे न छिन ठहराय।
ज्यौं कर पद मुख कछप के निकसि निकसि दुर जाय ॥५७०॥

कबहूं झूठो बात कौ जो करिहै पछपात।
झूठे सँग झूठौ परत फिर पाछैं पछतात ॥५७१॥
कुल कुपुत्र किहिँ काम कौ तिहिँ सुख सोभा नाहिँ।
ज्यौं बकरी के कंठ थन दूध न जल तिहिँ माहिँ ॥५७२॥
बिगरनवारी वस्तु कौं कहौ सुधारै कौन।
डारै पय-औटाय कै मिसरी भोरै नौन ॥५७३॥
काहू कौं हँसियै नहीं हँसी कलह कौ मूल।
हाँसी ही तैं ह्वै गयौ कुल कौरव निरमूल ॥५७४॥
दुरजन गहत न सजनता जतन करौ किन कोय।
जौ पै जौ कौं रोपियै कबहूं सालि न होय ॥५७५॥
जग परतीति बढ़ाइयै रहियै सांचे होय।
झूठे नर की सांचिहु साखि न मानै कोय ॥५७६॥
बड़े बड़ाई के जतन गहैं बिरद की लाज।
भए चतुर्भुज चोर तैं नृप कन्या के काज ॥५७७॥
है अयुक्त पै युक्त है करिए वहै प्रमान।
ब्राह्मन सौं गुरु जनन सौं हारे होत बखान ॥५७८॥
जामैं हित सो कीजियै कोऊ कहौ हजार।
छल बल साधि विजै करी पारथ भारथ वार ॥५७९॥
सुनियै सबही की कही करियै सहित बिचार।
सर्व लोक राजी रहैं सो कीजै उपचार ॥५८०॥
प्रापति के दिन होति है प्रापति बारंबार।
लाभ होतु ब्यौपार में आमंत्रन अधिकार ॥५८१॥
अपरापति के दिनन में खरच होत अविचार।
घर आवतु है पाहुनौ वित जन लाभ लगार ॥५८२॥
दीन धनी आधीन ह्वै सीस नवावत नाहिँ।
मान-भंग की भूमि यह पेट दिखावत ताहि ॥५८३॥

रूखे सूखे उदर कौं भरे होतु संतुष्ट ।
ये मन लाख करोर के पायैं तुष्ट न दुष्ट ॥५८४॥
एक एक के काम कौ रचि राखै जगदीस ।
जैसैं भरियै पेट कौं निहुरै सब कौं सीस ॥५८५॥
भली किए ह्वैहै बुरी देखौ विधि विपरीत ।
भक्ति करी द्विज जमदगनि अर्जुन करी अनीति ॥५८६॥
कहे बचन पलटैं नहीं जे सत पुरुष सधीर ।
कहत सबै हरिचंद नृप भरयो नीच घर नीर ॥५८७॥
मति फिर जाय विपत्ति में राव रंक इक रीत ।
हेम हिरन पाछैं गए राम गँवाई सीत ॥५८८॥
जानहार सो जाय अरु होनहार ह्वै आय ।
रावन तैं लंका गई बसे बिभीषन पाय ॥५८९॥
अन उद्यम सुख पाइयै जौ पूरब कृत होय ।
दुख कौ उद्यम को करतु पावतु है नर सोय ॥५९०॥
प्यारी अन प्यारी लगै समै पाय सब बात ।
धूप सुहावै शीत में सो ग्रीषम न सुहात ॥५९१॥
जन्मत ही पावै नहीं भली बुरी कोउ बात ।
बूझत बूझत पाइयै त्यौं त्यौं समुझत जात ॥५९२॥
भलौ ज्ञान अज्ञान नहिँ है अज्ञान न ज्ञान ।
भानु उयौ तौ तम नहीं है तम उयौ न भान ॥५९३॥
सत पुरुषनि तैं उतरि कै होत नीच अधिकार ।
यह खटकत रवि से असित तम कौ जगत प्रचार ॥५९४॥
हरवी गरुवे के हिए ठहरत नाहीं बात ।
तुंबी जल में दाबियै ज्यौं ऊपर ही आत ॥५९५॥
पावत बहुत तलास तैं कर तैं छूटी बात ।
आंधी में टूटी गुड़ी को जानै कित जात ॥५९६॥

पिय के बिछुरे विरह बस मन न कहूं ठहरात ।
धरनि गिरतु बीचहि फिरतु परयौ भँभूरे पात ॥५९७॥
होत अधिक गुन निबल पै उपजत वैर निदान ।
मृग मृगमद चमरी चमर लेत दुष्ट हत प्रान ॥५९८॥
आप तरै तारै अवर काठ नाव चित चाव ।
बूड़ै बोरै अवर कौं ज्यौं पाथर की नाव ॥५९९॥
जूवा खेलै होतु है सुख संपति कौ नास ।
राज-काज नल तैं छुट्यौ पांडव किय बनबास ॥६००॥
सरसुति के भंडार की बड़ो अपूरब बात ।
ज्यौं खरचे त्यौं त्यौं बढ़ै बिन खरचै घटि जात ॥६०१॥
यह अनखोही बात पर को न देखि अनखात ।
नकटी बूची इक-नयनि पान खाति मुसकात ॥६०२॥
देखा देखी करत सब नाहिन तत्त्व विचार ।
याकौ यह अनुमान है भेड़ चाल संसार ॥६०३॥
काज विगारतु और को इक निज काज सुधारि ।
किय मंत्रिनि मिल राज नृप सुरथहि दियौ निकारि ॥६०४॥
काज बिगारतु आपनौ एक और के काज ।
बलहि निवारत नैन की हानि सही कविराज ॥६०५॥
एक आपनौ और कौ साधत काज सतोल ।
अंगद अपने राम कौ कीनौ सभा सबोल ॥६०६॥
एक विगारतु आपनौ और परायौ काज ।
रावन कौ अरु आपनौ इँद्रजित कियौ अकाज ॥६०७॥
देखत कौ सुंदर लगै उर में कपट विषाद ।
इंद्रायन के फलन सम भीतर कटुक सवाद ॥६०८॥
बिरह पीर ब्याकुल भए आयौ प्रीतम गेह ।
जैसैं आवतु भाग तैं आग लगे पर मेह ॥६०९॥

खरचत खाति न जातु धन औसर किये अनेक ।
जातु पुण्य पूरन भए अरु उपजै अविवेक ॥६१०॥
चलै जु पंथ पिपीलिका समुद पार ह्वै जाय ।
जौ न चलै तौ गरुड़ हू पैंड़हु चलै न पाय ॥६११॥
एक्क एक अच्छर पढ़ै जानै ग्रंथ विचार ।
पैंड़ पैंड़ हू चलत जो पहुँचै कोस हजार ॥६१२॥
भले बुरे हू सौं करत उपकारी उपकार ।
तरवर छाया करत है नीच न ऊँच विचार ॥६१३॥
सजन करत उपकार कौ वित मांफिक जग माहिँ ।
गहरे गहरी छांह तरु विरले बिरली छाहिँ ॥६१४॥
विन देखे जाने परै देखै जहां निसान ।
दीप धरै धन लाख पर कोर ध्वजा फहिरान ॥६१५॥
भले वंस कौ पुरुष सो निहुरै वहु धन पाय ।
नवै धनुष सदवंस कौ जिहिँ द्वै कोटि दिखाय ॥६१६॥
एक एक सौं लगि रहै अन्नोदक संबंध ।
चोली दामन ज्यौं रच्यौ जगत जँजीरा बंध ॥६१७॥
नेगी दूर न होतु है यह जानौं तहकीक ।
मिटत न ज्यौं क्यों हूं किए ज्यौं हाथन की लीक ॥६१८॥
चिदानंद घट में बसै बूझत कहां निवास ।
ज्यौं मृगमद मृगनाभि में ढूंढ़त फिरत सुवास ॥६१९॥
कै सम सौं कै अधिक सों लरियै करियै वाद ।
हारे जीते होतु है दोऊ भांति सवाद ॥६२०॥
सज्जन सों रस पोखियै त्यौं त्यौं बढ़त हुलास ।
जेतौ मीठौ वस्तु मैं तेतौ अधिक मिठास ॥६२१॥
करियै सभा सुहावतौ मुख तैं बचन प्रकास ।
बिन समझे सिसुपाल के वचनन भयौ बिनास ॥६२२॥

जासौं पहुँचि न आइयै तासौं बहसि न ठान।
गई प्रतिष्ठा करन की फिर न बसे पुर आन ॥६२३॥
सब काहू की कहत हैं भलो बुरी संसार।
दुरजोधन की दुष्टता विक्रम कौ उपकार ॥६२४॥
जोति सरूपी हिय सबै सब शरीर में जोति।
दीपक धरिए ताक में सब घर आभा होति ॥६२५॥
वय समान रुचि होति है रुचि प्रमान मन मोद।
बालक खेल सुहावही जोवन विषै विनोद ॥६२६॥
दान मान सनमान अरु अपनी अपनी बान।
छोटो छोटी गति कही मोटो मोटी मान ॥६२७॥
भले बुरे दोऊ रहैं चिरंजीव संसार।
जिनते गुन अरु दोष कौ जान्यौ परतु बिचार ॥६२८॥
सरस निरस नर होतु है समय पाय सब कोइ।
दिन में परम प्रकास रवि चंद मंद दुति होइ ॥६२९॥
बांके रन तैं होतु है बंदनीक सब लोय।
नमत दुतीया चंद कौं पूरन चंद न कोय ॥६३०॥
करियै तहँ पैसार जहँ जो जानियै निसार।
चक्रव्यूह अभिमन्यु कौ सुन्यौ सबनि संसार ॥६३१॥
अधिक अधिक बल फोरि कै कंस हत्यो ब्रजराज।
चढ़तैं चढ़तैं मोल ज्यौं दरसै बसन बजाज ॥६३२॥
परुष वचन तैं रोष हित कोमल वचन समाज।
रजक पछारयो कूबरी राखि लई ब्रजराज ॥६३३॥
सुदृढ़ सूर नाहिन चलै कायर लगि रन घात।
देवल डिगै न प्रवन तैं जैसैं ध्वज फहरात ॥६३४॥
मित्र मित्र के काम कौ देतु बिभव करि हेत।
जैसैं चंद प्रकास करि रवि-मंडल तैं लेत ॥६३५॥

तन धन हू दै लाज के जतन करत जे धीर।
टूक टूक ह्वै गिरत पै नहिँ मुख फेरत बीर ॥६३६॥
भले बुरे गुर जन बचन लोपत कबहुँ न धीर।
राज-काज को छाड़ि कै चले विपिन रघुवीर ॥६३७॥
बिपति समय हू देत हैं सत पुरुषन के काम।
राज बिभीषन को दियो वैसी बिरिया राम ॥६३८॥
लोकन के अपवाद को डर करियै दिन-रैन।
रघुपति सीता परिहरी सुनत रजक के वैन ॥६३९॥
भले भले बिधिना रचे पै सदोष सब कीन।
कामधेनु पसु कठिन मनि दधि खारो ससि छीन ॥६४०॥
जैसौ कारन होतु है तैसौ कारज थाप।
कर सर धनु प्रानी हनत कर माला हरि जाप ॥६४१॥
इन कौं मानुष जन्म दै कहा कियो भगवान।
सुंदर मुख बोल न सकै दै न सकैं धनवान ॥६४२॥
कहा कहौं विधि की अविधि भूले परम प्रवीन।
मूरख कौं संपति दई पंडित संपति-हीन ॥६४३॥
वह संपति केहि काम की जन काहू पै होउ।
नीठ कमावै कष्ट करि बिलसै औरहि कोउ ॥६४४॥
नर भूषन सब दिन छमा विक्रम अरि घन घेर।
ज्यौं तिय भूषन लाज है निलज सुरति की बेर ॥६४५॥
यौं निबाह सब जगत कौ रस रिस हेत अहेत।
एक एक पै लेत है एक एक कौं देत ॥६४६॥
तृन हू तैं अरु तूल तैं हरवौ जाचक आहि।
जानतु है कछु मांगिहै पवन उड़ावत नाहि ॥६४७॥
नृप गुरु तिय बन्हि सेइयै मध्य भाग जग माहिँ।
है बिनास अति निकट तैं दूर रहै फल नाहिँ ॥६४८॥

देखत है जग जातु है तउ ममता सौं मेल।
जानतु हौ या जगत मैं देखत भूलो खेल ॥६४९॥
भले बुराई तैं डरैं राख्यौ चाहै सोय।
जानत है पै दुष्ट के अवगुन कहत न कोय ॥६५०॥
गुन तैं अवगुन होतु हैं लिखे मिटत नहिँ अंक।
बढ़ति जात ज्यौं ज्यौं कला त्यौं त्यौं ससि सकलंक ॥६५१॥
निस दिन खटकत तनक तृन परै जु आंखनि माहिँ।
तिनमैं सज्जन राखिए सो छिन खटकतु नाहिँ ॥६५२॥
सज्जन बचावत कष्ट तैं रहैं निरंतर साथ।
नैन सहाई ज्यौं पलक देह सहाई हाथ ॥६५३॥
धनी होत निरधन बहुर निरधन तैं धनवान।
बड़ो होति निस सीत ऋतु ज्यौं ग्रीषम दिन-मान ॥६५४॥
सबही कुल में होत है एक एक सरदार।
गज ऐरावत सुर सुरिंद तरुवर में मंदार ॥६५५॥
जहां सनेही तहँ रहत भ्रमत भ्रमत मन आय।
फिरत कटोरी मंत्र की चोरहि पै ठहराय ॥६५६॥
प्रान पियारे के दरस हिय तैं बढ़त हुलास।
फैलत लगै बयार तैं ज्यौं फूलन मैं बास ॥६५७॥
सुनत स्रवन पिय के बचन हिय विकसै हित पागि।
ज्यौं कदंब बरषा समय फूलति बूंदनि लागि ॥६५८॥
ज्यौं ज्यौं छुटै अयानपन त्यौं त्यौं प्रेम प्रकास।
जैसे कैरी आंब की पकरत पकै मिठास ॥६५९॥
चोरा चोरी प्रीति के कीने बढ़त हुलास।
अति खाए उपजै अरुचि थोरी बात मिठास ॥६६०॥
नीति अनीति बड़े सहैं रिस भरि देत न गारि।
भृगु उर दीनी लात की कीनी हरि मनुहारि ॥६६१॥

रहै न कबहूं दोय लखि एक सदन के माहिँ।
एक म्यान में द्वै छुरी जैसे मावैं नाहिँ ॥६६२॥
परधन लेत छिनाय इक इक धन देत हसंत।
सिसर करतु पतझार तरु गहरे करत वसंत ॥६६३॥
जो न परत किहि बात मैं तिहिँ मनुहारि न गारि।
ऐसो खेल न खेलिए जामैं जीति न हारि ॥६६४॥
गहत तत्त्व ज्ञानी पुरुष बात बिचार विचार।
मथनिहारि तजि छाछ कौं माखन लेत निकारि ॥६६५॥
मात पिता के पच्छ के पुरुषहि प्रगट प्रभाव।
जामदग्नि में देखिए सम रस वीर सुभाव ॥६६६॥
गुरु बच जोग अजोगहू करिए भ्रम बिसराय।
राम राज सुख छाड़िकै बनवासी भए जाय ॥६६७॥
ओछी मति युवतीन की कहैं बिबेक भुलाय।
दशरथ रानी के बचन बन पठए रघुराय ॥६६८॥
पूजनीक गुन तैं पुरुष दरसन पूज न होय।
यज्ञ तिलक किय कृष्ण कौं छांडि बड़े सब कोय ॥६६९॥
स्रवन करी त्यौं कीजिए मात पिता की सेव।
कांधे कांवरि लै फिरयौ पूजे जैसैं देव ॥६७०॥
बड़े जिती लघुता करैं तिती बड़ाई पाय।
काम करैं सब जगत के तातैं त्रिभुवनराय ॥६७१॥
अरि के कर में दीजियै अवसर कौ अधिकार।
ज्यौं ज्यौं द्रव्य लुटाइयै त्यौं त्यौं जस विस्तार ॥६७२॥
जो लायक जिहि होय सो ताही ठौर मनोग्य।
चंदेरीपति क्यों बरै रुक्मिनि श्री हरि जोग्य ॥६७३॥
घन घेरे को मिलन सुख होत भरोसौ नाहिँ।
होय न होवै चांदनी जैसे पावस माहिँ ॥६७४॥

बड़े भले सब लच्छ तैं नहिँ बिन लछ के जोग।
राम लखन धनु धरि बिपिन कहत पारखी लोग ॥६७५॥
ता बिनु होय न काज सिधि जासौं लागी बात।
गुड़ बिनु होत न चौथ व्रत दूलह बिना बरात ॥६७६॥
प्रभु सौं बात दुरी न तउ करियै अरज मुखेन।
रुक्मिनि आतुरता लिखी हरि कहा जानत हे न ॥६७७॥
कठिन कला हू आइहै करत करत अभ्यास।
नट ज्यौं चालतु बरत पर साधै बरस छ मास ॥६७८॥
जहँ उपजै सोई करैं जिहिँ कुल जो अभ्यास।
छोटे मच्छहु जल तिरैं पंछी उड़ैं अकास ॥६७९॥
विद्या लक्ष्मी पुरुष पै होय नहीं इक ठांय।
नाहिन दुख सुख सौति में पिय पै एकहि जाय ॥६८०॥
गुन प्रगटै अवगुन दुरै जाके कमला साथ।
तिय मारी परिहरी तउ कृष्ण त्रिलोकी-नाथ ॥६८१॥
मिलै दियो पूरब जनम न दिए मिले न सोइ।
कौन सयाने धन कियौ किहिँ अयान दियौ खोइ ॥६८२॥
जाको न्यौत जिमाइयै ताही की मनुहारि।
परनै सोई गाइयै बचन सुधारि सुधारि ॥६८३॥
निरस बात सोई सरस जहां होय हिय हेत।
गारी हू प्यारी लगै ज्यौं ज्यौं समधिन देत ॥६८४॥
जो जिहिँ कारज में कुसल सो तिहिँ भेद प्रवीन।
नद-प्रवाह मैं गज बहै चढ़ै उलट लघु मीन ॥६८५॥
जो जैसौ तिहँ तैसियै करियै नीति प्रकास।
काठ कठिन भेदै भ्रमर मृदु अरविंद निवास ॥६८६॥
इन लच्छन तैं जानियै उर अज्ञान निवास।
ऊंघै कथा पुरान सुनि बिकथा सुनै हुलास ॥६८७॥

उर उछाव हित धरम सौं असुभ करम की हानि।
मन प्रसन्न रुचि अन्न सौं ज्यौं ज्वर छूटै जानि ॥६८८॥
जपत एक हरि नाम तैं पातक कोटि बिलाय।
एकहि कनिका आगि तैं घास ढेर जरि जाय ॥६८९॥
जो समरथ सब बात मैं तिहि भजिए तजि संक।
करै रंक तैं राव हरि करौ राव तैं रंक ॥६९०॥
गर्व-प्रहारी हरि सही या मैं नहिँ संदेह।
जरे लंक के लाख ज्यौं लाख लाख के गेह ॥६९१॥
कहा बड़े छोटे कहा जहँ हित तहँ चित लागि।
हरि भोजन किए बिदुर घर दुरजोधन कूं त्यागि ॥६९२॥
परजन सो मनसो करै परहरि हरि सौं प्रीति।
भूंठे सौं मानैं हरष अहो जगत बिपरीति ॥६९३॥
अहै अवधि अबिबेक की देखि कौन अनखाय।
काग कनक के पांजरा हंस अनादर भाय ॥६९४॥
मूरख कौं हित के बचन सुनि उपजतु है कोप।
सांपहि दूध पिवाइयै वाके मुख विष ओप ॥६९५॥
गुन गरुवो लघुता गहै तिहिँ सनमानत धीर।
मंद तऊ प्यारो लगै सीतल सुरभि समीर ॥६९६॥
बड़ी ठौर को लघु लहै आए आदर भाय।
मलयाचल की ज्यौं पवन परसै मंद सुहाय ॥६९७॥
महिमा युत को देत ही लेत न तन सकुचाय।
लेत भात जगनाथ को नृपहू सीस चढ़ाय ॥६९८॥
धन पूरन धनवान पै बिन दीने न लहात।
ज्यौं बिन बरषै सघन जल लियौ पियौ नहिं जात ॥६९९॥
इक बिन मांगे ही लहै मांगे एक लहै न।
घन जल सर सरिता भरै चातक चोंच भरै न ॥७००॥

बड़ेन की संपति सबै लघु विलसंत अनंत।
दधि जल घन घन जल धरा धर जल जग बिलसंत ॥७०१॥
जिहि जेतो निहचै तितौ देत दई पहुँचाय।
सक्कर खोरे को मिलै जैसैं सक्कर आय ॥७०२॥
जिय संतोष बिचारियै होय जु लिख्यौ नसीब।
खल गुर काच कथीर सौं मानत रली गरीब ॥७०३॥
जथाजोग सब मिलत है जो बिधि लिख्यौ अँकूर।
खल गुर भोग गवारनी रानी पान कपूर ॥७०४॥
समय सार दोहानि को सुनत होय मनमोद।
प्रगट भई यह सतसई भाषा वृंद विनोद ॥७०५॥
संवत ससि रस बार ससि कातिक सुदि ससि बार।
सातैं ढाका सहर मैं उपज्यौ इहै विचार ॥७०६॥

(७) विक्रम-सतसई

कूल कलिंदी नीप तर सोहत अति अभिराम।
यह छवि मेरे मन बसो निसि दिन स्यामा स्याम॥ १ ॥
राधापति हिय मैं धरौं राधापति मुख बैन।
राधापति नैनन लहौ राधापति सुख दैन॥ २ ॥
मनमोहन मन मैं बसौ हृषीकेस हिय आहि।
कमलनैन नैननि बसौ मुरलीधर मुख माहिँ॥ ३ ॥
है प्रचंड अति पौन तैं रुकत नहीं मन मंद।
जौ लौं नाहीं कृपा कर बरजत हैं ब्रजचंद॥ ४ ॥
आधि अगाधा व्याधि हरि हरि-राधा जप सोइ।
साधि समाधा सिव कह्यौ बाधा-बाधक होइ॥ ५ ॥
बृंदावन राजैं दुवौ साजैं सुख के साज।
महरानी राधा उतै महाराज ब्रजराज॥ ६ ॥
विहरत बृंदा-विपिन मैं गोपिन सँग गोपाल।
विक्रम हृदै सदा बसौ इहि छवि सौं नँदलाल॥ ७ ॥
सुरतरु तैं बुधि कृत बिनै हत दित तनै सजोर।
करुनामय भव-भय-हरन जै जै जुगल-किसोर॥ ८ ॥
मोहन लखि छबि परसपर चंचल चख चित चोर।
मंजु मालती-कुंज मैं बिहरत नंदकिसोर॥ ९ ॥
फिरि फिरि राधा-कृष्ण कहि फिरि फिरि ध्यान लगाइ।
फिरिहौ कुंजन बे-फिकिर कब बृंदावन जाइ॥ १० ॥
मेरी करुना की अरज दीनबंधु सुनि कान।
ना तर करुनाकर तुम्हैं कैहै कहा जहान॥ ११ ॥

हौं चेरौ तेरौ भयौ तापर पेरौ कर्म।
कहा हमारी दासता कह प्रभुता कौ धर्म॥ १२॥
करुना उर मैं धारि प्रभु वेग सुधारहु काज।
ना तर करुनाकर-बिरद छाँड़ि देहु ब्रजराज॥ १३॥
चंद सूर जाके हुकुम निस दिन आवहिं जाहिं।
स्रुति साखे जाके कहत बिक्रम ताके आहि॥ १४॥
करुना-कोर किसोर की रोर-हरन बरजोर।
अष्ट सिद्धि नव निद्धि जुत करत समृद्ध करोर॥ १५॥
नाउ जाजरी धार मैं अदफर भौंर भुलान।
जदुपति पार लगाइए मोहिं अपनो जन जान॥ १६॥
त्रन समान बज्रहि करत त्रन कहँ वज्र समान।
नंद-नंद जग-चंद प्रभु औढर-ढरन अमान॥ १७॥
नदी-नीर तीछन बहै मेघ-बृष्टि अति घोर।
हरि बिनु को पारहि करै लै नैया बरजोर॥ १८॥
मेरी दीरघ दीनता दयासिंधु दिल देव।
प्रभु गुन-आला जानि कै बालापन तैं सेव॥ १९॥
प्रनत-पाल-बिरदावली राखी आनि जहान।
अब मम बार अबार कत कीजत कृपानिधान॥ २०॥
कै तुव कान परी नहीं दीनबंधु मम टेर।
चार जुगन सुनि चारि भुज लगी न एती देर॥ २१॥
दीनबंधु है दीन की जौ तुम नहिँ सुध लेत।
नाम कियो इमि प्रगट किमि दीनबंधु केहि हेत॥ २२॥
निज सुभाय छोड़त नहीं कर देखौ हिय गौर।
अधम-उधारन नाम तुव हौं अधमन-सिरमौर॥ २३॥
तेरौ तेरौ हौं कहत दूजो नहीं सहाइ।
कहिबी बिरद सम्हार अब बिक्रम मेरो आहि॥ २४॥

हौं चेरौ ब्रजराज कौ जानत सकल जहान।
मेरो कहत न चूकबी अधम-उधारन-बान ॥ २५ ॥
दीनबंधु तुम दीन हौं यह नातो उर लेख।
ह्वै कृपालु सुन लीजिए विक्रम बिनय विशेष ॥ २६ ॥
भूलि तजत हौं भूल नहिँ यहै भूलि कौ देस।
तुम जिन भूलौ नाथ मम राखहु सुरत हमेस ॥ २७ ॥
भू भारे तारे पतित गनि हारे स्रुति सेष।
हिय हारै कत जात अब तिहि गिनती मुहि लेख ॥ २८ ॥
समुझि समुझि गुन आपुनै अपडर हिए सकात।
सुनि सुनि प्रभु तेरै गुननि तुव खातर कै जात ॥ २९ ॥
नभ तारे तारे जिते कहत निगम हरषात।
अब प्रभु बिक्रम ओर कौ हिय हारे कत जात ॥ ३० ॥
जरतारी मुख पै सरस सारी सोहत सेत।
सरद जलद भिद जलज पर सहज किरन छबि देत ॥ ३१ ॥
सोहत गोल कपोल पर हृद रद-छद-छबि बेस।
जनु कंचन के नगन मैं मानिक जड़े सुदेस ॥ ३२ ॥
नूपुर के ऊपर बढ़ी कहत न बनत सिताब।
छीन लई गुलफन मनौ गुल गुलाब की आब ॥ ३३ ॥
गोरी की रोरी लसत थोरी आड़ लिलार।
मनौ चंद ऊपर लसत इंद्रबधू सुकुमार ॥ ३४ ॥
स्याम बसन पहिरत बढ़ी तिय-तन मैं अति आब।
मनौ सघन घन घटा नै लई छटा छिन दाब ॥ ३५ ॥
सोहत सघन सिवार सैं निज कर बिब तरवार।
मनौ कमल मुकलित ललित छयौ सघन तिमिधार ॥ ३६ ॥
तरल तरौना पर लसत बिथुरे सुथरे केस।
मनौ सघन तमतौम नै लीनो दाब दिनेस ॥ ३७ ॥

सेत कंचुकी मैं लसत राते कुच गरकाव।
मनौ काच सीसीनि मैं झलकत साफ सहाब ॥ ३८ ॥
लाल साल बिच बाल कौ झलकत बदन अमंद।
मनौ साँझ बदरान तैं निकस्यो राका चंद ॥ ३९ ॥
मुख उघारि प्रासाद तैं चली सुघर गति मंद।
जनु अकास तैं अवनि पै आवत राका चंद ॥ ४० ॥
आलस-जुत लखि अधखुले प्रात नयन अभिराम।
मनहु अपूरब कमल जुग बिगसे पूरब जाम ॥ ४१ ॥
नील बसन दरसत दुरत गोरी गोरे गात।
मनौ घटा छन रुचि छटा घन उघरत छपि जात ॥ ४२ ॥
मृगनैनी बेनी निरख छबि छहरत बरजोर।
कनकलता जनु पन्नगी बिलसत कला करोर ॥ ४३ ॥
सोहत अलक कपोल पर बढ़ छबि-सिंधु अथाह।
मनौ पारसी हरफ इक लसत आरसी माह ॥ ४४ ॥
तिरछौहैं करि करि दृगनि चितई भौंह चढ़ाइ।
मनौ मैन जग विजय कौ खैंच्यौ धनु हरषाइ ॥ ४५ ॥
अरुनाई एड़ीन की झलकत गहक गँभीर।
मनहु काच सीसीनि मैं झलकत जावक-नीर ॥ ४६ ॥
मोतिन मांग भरी खरी सोहत छबि बरजोर।
मनौ कलानिधि किरन इक धसी निबिड़ तम घोर ॥ ४७ ॥
काजर - रेख अशेष दृग छबि दरसत पट झीन।
नागफांस बाँधे मदन जनु चंचल जुग मीन ॥ ४८ ॥
पाटी लखि तरुनी जुगल लखियत आभा सोइ।
ससि - मंडल ऊपर उमड़ उठो घटा जनु दोइ ॥ ४९ ॥
सोहत जड़ित जराय के तरल तरौना कान।
मानहु परसत भानु जुग ससि मंडल कौ आन ॥ ५० ॥

हरुए कर छूवत बज्यौ बिछिया छवि सरसात।
बँध्यौ कोकनद कोस जनु गुंज उठ्यौ अलि प्रात॥ ५१॥
कनक दंड जुग जंघ तुव लखियत आभा ऐन।
धर जोवन खर सान पर मनौ खरादे मैन॥ ५२॥
कनक तरौना तरुन के सोहत ऊपर पान।
मनमथ के रथ पर लसत फहरत मनौ निसान॥ ५३॥
कर परसत ससकत खरी रोवत दृग अकुलात।
जनु खंजन धोखे चुने मोती उगलत जात॥ ५४॥
तरुन तिहारो देखियतु यह तिल ललित कपोल।
मनौ बदन-विधु गोद मैं रविसुत करत कलोल॥ ५५॥
राते पट विच कुच-कलस लसत मनोहर आब।
भरे गुलाब सराब सौं मनौ मनोज नवाब॥ ५६॥
नूपुर राजत रजत के वजत मधुर धुनि लाल।
जनु पग पिंजर चहचहे चहचर करत मराल॥ ५७॥
आनन हैं स्रम-स्वेद-कन परसत उदित उरोज।
मानौ मोतिन संभु जुग पूजत मुदित सरोज॥ ५८॥
गोरे मुख चूनर हरी अति छवि बढ़ी बिसाल।
हरित भूमि बगरी मनौ इंद्रबधूटी लाल॥ ५९॥
मृगनैनी की पीठ पर बेनी लसत सुदेस।
कनकलता पर जनु चढ़ो स्याम भुजंगिनि वेस॥ ६०॥
कहा कलानिधि कमल कह अमल लसत मुख वेस।
खैार भौर अहि-सुतन से सोहत कुंचित केस॥ ६१॥
पिय आनन की आन तूं तुव प्रिय आनन आन।
जान परत गुनवान अब हित चित के अनुमान॥ ६२॥
तुव तन निरखत पिय प्रिया क्यों कहि सकै सिताब।
आफताब की ताब कहँ कहँ गुलाब महताब॥ ६३॥

हार दयौ पिय पहिर कै हार दयौ निसि चंद।
हुलसत बिलसत सपनि मैं बिलसत लसत अमंद॥ ६४॥
दई पिया जो सतलरी सो सतलरी समान।
सौत देखि अति हिय जरी मुदित नई सुखदान॥ ६५॥
गति गयंद कटि केहरी श्रीफल उरज उतंग।
बदन चंद दृग झख जितौ भौंहैं धनुष अनंग॥ ६६॥
कै रंभा कै उरबसी कै तिलोत्तमा नाम।
किधौं काम की कामिनी किधौं बाम अभिराम॥ ६७॥
क्यों नख-छत छबि ढाकियत सुंदर सुखद सुनैन।
ज्यों ससि-सेखर ससिकला है पिय मंगल दैन॥ ६८॥
चंदमुखी अति चंद सै अकस बढ़ी सबिसेख।
चंद चांदनी क्यों जुरै रूप चांदनी पेख॥ ६९॥
कहँ मिसरी कहँ ऊख रस नहीं पियूष समान।
कलाकंद-कतरा कहा तुव अधरा-रस-पान॥ ७०॥
रंध्र-जाल है देखियतु तिय तन प्रभा बिसाल।
चामीकर चपला लखौ कै मसाल मनिमाल॥ ७१॥
रूप-सिंधु तेरो भरौ अति घनि अधिक अथाह।
जे बूड़त हैं बिन कसर ते पावत मन चाह॥ ७२॥
मिहो अगौंछनि पोंछ लै फैल्यो काजर नैन।
सरद चंद अति मंद यह चाहत समता ऐन॥ ७३॥
है मुख अति छबि-आगरौ कहा सरद कौ चंद।
पै हित मान समान किय तुव ठोढ़ी को बुंद॥ ७४॥
जानि परत अब परसपर यह इक बस्तु अनूप।
तुव नैननि पिय-रूप है पिय-नैननि तुव रूप॥ ७५॥
कह रंभा कह उरबसी कितिक मैनिका सान।
जिहि देखैं तैं होत है ग्यानी ग्यान अग्यान॥ ७६॥

भोगवती भोजन रचत मृगलोचनि सुखदानि।
घूंघटपट की ओट करि पिय को आगम जानि॥ ७७॥
लगन दसा आबाल तन उजियारी किमि होति।
बिना नेह नहिँ बढ़त है तिय-तन-दीपति-जोति॥ ७८॥
गौने आई नवल तिय बैठी तियन समाज।
आस पास प्रफुलित कमल बीच कली छवि साज॥ ७९॥
जलचर थलचर गगनचर मोहि रहत सब जीव।
चढ़ी रहत मोहन दृगन तेरी छबि सब जीव॥ ८०॥
नहिँ नजरत हियरौ जरत चकित चितै चहुँ ओर।
तिय तेरे मुखचंद के मेरे नैन चकोर॥ ८१॥
ठोढ़ी धर अँगुरी कहत दई निरदई लोग।
करत बियोग सँजोग मैं करत सँजोग बियोग॥ ८२॥
ऊधौ कछु कहत न बनत कहत सु आवत लाज।
कै जानत मेरौ हियौ कै जानै ब्रजराज॥ ८३॥
यह तोमै नोखो नई भई अटपटो बीर।
जाहि चाह तुव दृगन की ताहि करत कत पीर॥ ८४॥
बिन बूझै सूझै न कछु होत हिए अति संक।
उर परजंक उतारि कै कति पारत परजंक॥ ८५॥
करि सिँगार सखि लै चली बनी बनिन सिरताज।
ज्यौं मतंग गाठे करी लिए जात सजि साज॥ ८६॥
मदन महावत लै चल्यौ यह तन तिय गजराज।
रुकि रुकि त्यौं फिर फिर चलत पगनि सु आधू लाज॥ ८७॥
वन तज चलिए कुंज कौ परत सघन सखि बुंद।
नहिँ जानत इहि गांउ के क्यौंरे है मुख सुंद॥ ८८॥
दै महदी पग पर रही कहै चाहियत बात।
नहिँ राखे रँग जात है राखे सब रँग जात॥ ८९॥

यौ प्यारी परजंक मैं नैकु न ठिक ठहराव।
रजत थार मुकता बिमल ज्यौं चलदल कौ पात॥ ९० ॥
पहिलौ दिन पहिलौ मिलन ऐसौ बढ़त न मोह।
यौं चित चुभकै दुहुन के ज्यौं चुंबक कौ लोह॥ ९१ ॥
मानि सु यह सांचो कहत मोहि रावरी आन।
लगी रहत उनके दृगनि तो मुख की मुसक्यान॥ ९२ ॥
हौं बोलौ लसि चुप रही जानि गाँव को तोत।
सिर डुलाइ नाहीं करत नाहीं नाहीं होत॥ ९३ ॥
सोच मोच मृग-लोचनी मिलि लीजै भर अंक।
ब्रज मैं पूरन चंद मैं है इक स्याम कलंक॥ ९४ ॥
बड़रे गुन बड़रे दृगन बड़रे बोल न बोल।
कहत कहा समुझत कहा लए स्याम कहँ मोल॥ ९५ ॥
यह देखन कौ रैन दिन राखत मो दृग लोच।
मृगलोचन खोलौ हँसौ मेरो कौन सँकोच॥ ९६ ॥
आली बनमाली कहा कहँ सूनौ संकेत।
बिधि बिधि करि बिधि निसि रची तो बिलास के हेत॥ ९७ ॥
यौं कहि टेरत प्रानपति भामा अति अभिराम।
पै मेरे मन रुचि बढ़त कहत कामिनी नाम॥ ९८ ॥
दुहुँ कर सौं तारी बजत है प्यारी यह रीति।
प्रीति बढ़ावत बनत तब जब लखियत उत प्रीति॥ ९९ ॥
डरत नहीं भय लाज ते काम करत अति घोर।
तेरे री दृग जो रहैं मेरे री दृग जोर॥१००॥
चटकि चटकि चहुँ दिसि उठे चक्रवाक मिलि जात।
प्रफुलित भए सरोज सर भामिनि भयौ प्रभात॥१०१॥
मनि मंदिर सुंदर खरी बिलसत लसत अमंद।
लेखै हिय बिष सूल सौं देखै उदित मयंक॥१०२॥

जहां जहां नागरि नवल गई निकुंज मझाइ।
तहां तहां लखियत अजौ रही वही छबि छाइ ॥१०३॥
तुव तन सरस सुगंध तैं अति सुगंध अधिकात।
तहँ तहँ अतर गुलाब सौं छिरक्यो जान्यौ जात ॥१०४॥
पद पंकज मन मैं धरत जहां नवेली बाल।
तहां तहां लखियत दृगनि बगरत मनहु गुलाल ॥१०५॥
तनक नजर फेरै कहूं मिलत सु हेरे नाहिं।
सरद-मयंकमुखी दुरी सरद जुन्हाई माहिं ॥१०६॥
जटित जवाहिर तन झलक मिलि मसाल के जाल।
नैकु नहीं जानी परत यह मसाल यह बाल ॥१०७॥
देखहु बलि चलि औचकनि नवल वधू सुकुमार।
भौंह कसति हुलसति हँसति रीझ भरी रिझवार ॥१०८॥
लखौ लाल कैसी लसत लखत छबीली छांह।
ठोड़ी कर अँगुरी दिए ठाढ़ी आंगन मांह ॥१०९॥
देखहु बलि चलि औचका यह औसर फिरि नाहिं।
खेलत कर कंदुक लिए रंग रावरी माहिं ॥११०॥
गात गुराई मिलत पट अरुन पीत ह्वै जात।
नित नित देत उराहनो रँगरेजहि उठि प्रात ॥१११॥
चंदन की चौकी चढ़ी पटतर दीजै काहि।
वहै चांदनी चौक मैं रहो चांदनी चाहि ॥११२॥
तिरछौंहैं करि करि दृगनि भौंहैं कसत सुभाइ।
तकति छकति उझकति जकति हरषि हरै हँसि जाइ ॥११३॥
रस उलही दुलही वही अंगनि दुति अधिकात।
सौंहैं कर भौंहैं कसत हँस बिहँसत बतरात ॥११४॥
निकसि निकसि सखि साथ तैं बिहँसि बिहँसि हँसि देत।
लंक चलनि लचकनि लचनि कसकनि हिय हरि लेत ॥११५॥

फूल गेंदना इक नवल मेलत मृदु मुसुकाइ।
बिहँसि बिहँसि करि ओट तन नागरि लेत बचाइ ॥११६॥
मनि मंदिर आंगनि खरी फैल रही छबि वृंद।
गात गुराई लखि भई सरद जुन्हाई मंद ॥११७॥
रंग रँगीली सेज पर जबै सहज हँसि देत।
सुमुखि सबै सुख-सिंधु कौ सुधा सकेले लेत ॥११८॥
जगत जवाहिर जेव-जुत मनि मय साज-समाज।
नवल बधू दुति पै अरी न जुरी विजुरी आज ॥११९॥
विनु देखे समुझ न परत तुव कटि कौ अनुमान।
उरज बिलोक बिरंचि कौ कछु प्रपंच परवान ॥१२०॥
काम-कामिनी तैं ललित केलि कला कमनीय।
रंगभरी राजत रवन बहर बनी रवनीय ॥१२१॥
ऐंड़िन पिँडुरिन जंघ कटि त्रिवली उरजन जाइ।
कंठ कपोलन मुख सुमन अधरन रह्यौ लुभाइ ॥१२२॥
ललकि रूप लालच लग्यौ पल न कहूं ठहरात।
भयौ रहै मुखचंद कौ चित चकोर दिन-रात ॥१२३॥
जहँ जहँ सहज सुभावही चलत अजिर सुखदान।
तहँ तहँ लाली पगन की चुई परत सी जानि ॥१२४॥
गोरे गोल कपोल पर सोहत अति छवि सोइ।
तरुनी तिल तेरो लखे बनत न उपमा कोइ ॥१२५॥
छन बितवत जुग कोटि सम दृग चितवत इहि ओर।
मग परबत प्यारौ पिया जिमि ससि उदय चकोर ॥१२६॥
भुज मृनाल लोचन कमल पानिप रूप प्रथाह।
तिय सरिता मन मीन पर तिहि पायो तिहि माह ॥१२७॥
नयन मीन भुज तट दुवौ कुच चक्क कुंतल ग्राह।
नागरि सरित सुहावनी पूरित प्रेम-प्रवाह ॥१२८॥

मोर मुकुट कटि पीत पट उर बनमाल रसाल।
आवत गावत सखिन मग लखे आज नँदलाल ॥१२९॥
अहे अहेरी लखत नहिँ मृगमाला ब्रज-बाम।
नैन-सरन घनश्याम नै बेधे हिए तमाम ॥१३०॥
रूप सिंधु मुख रावरो लसै अनूप अपार।
पैरवार दृग ललन के पैर न पावत पार ॥१३१॥
कसे कंचुकी मैं दुवौ उच्च कुच करत बिहार।
गुंमज के गजकुंभ के गरभ गिरावनहार ॥१३२॥
कुंद कुंद-कलिका करौ कनिकी हीर कहौ न।
देखे दसनन की दमक दामिनि की दर कौन ॥१३३॥
गरैं परत गहत न बनत गुन सौं गुंफित गास।
यह नथ पथ दृग पथिक कौ ठग मनमथ की फांस ॥१३४॥
जगमगात पग धरत लूं जहँ जहँ पग जलजात।
तहँ तहँ आली अवनि पर लाली परसत जात ॥१३५॥
तिय तेरे यह देखियतु उपजावत रतिभाउ।
करत चित्त तापस रलो त्रिबली तीरथराउ ॥१३६॥
लगन लगी सो हिय लगी पगी प्रेम रस रंग।
लाज खगी मोहन ठगी देखि जगमगी अंग ॥१३७॥
दुवौ हुलास बिलास सौं आसव धरो गिलास।
पीवत झुकि झूमति झपति बिलसति बिमल बिलास ॥१३८॥
झलक कपोलन की लखे अटक्यो मन सुख पाइ।
हार हिए कुच-भार छ्वै रह्यौ तहां ठहराइ ॥१३९॥
नैन चोट आसी लगी गासी ज्यौं भरपूर।
मचत चलत क्योंहू नहीं खैंचत काम अमूर ॥१४०॥
चित्र लिखी मूरत लखी पति हिए सिहात।
खैंचत नीबो कुच सकुच आपुन जात लजात ॥१४१॥

उठ जैबो कैसो अली लगत न ऐसो सोइ।
जौ लौं पल बैठी रहो तौ लौं कल हिय होइ ॥१४२॥
हार निहार उतार धर बिधि तन रचे सिँगार।
धरनि चलत लचकत तरुन बार भार सुकुमार ॥१४३॥
उतरत कहुँ परजंक तैं पग द्वै धरत ससंक।
कुम्हलान्यौ अति ही परत आतप बदन मयंक ॥१४४॥
कहत सु आवत लाज मुहिँ चलि देखौ नँदनंद।
रंध्र-गलिन लखि नलिनपति होत मलिन मुखचंद ॥१४५॥
पगन मंद आवत अजिर लखियतु निपट ससंक।
उरज-भार लचक्यौ परत ललित लचीलौ लंक ॥१४६॥
देखत रूप अनूप वह बढ़त दृगन दृग जोत।
फिर कैसै वह सांवरो आंखिन ओलक होत ॥१४७॥
बिसरि जात सुधि बुधि सबै देत जबै हँसि हेरि।
रोमन तन मन सदन मैं हेरे मिलत न फेरि ॥१४८॥
हटके हठ पैंड़े परत डरत न नैकु कलंक।
बिन विचार भेंटे बनत भुज पसारि धरि अंक ॥१४९॥
मिलत नहीं हेरे कहूं तू कत होत अजान।
जाको मन मोहन ठगो ठग्यौ सु ठग्यौ निदान ॥१५०॥
चौज चवाइन के रचत हँसत सबै व्रज लोग।
तैंही कहि सखि सांवरो है नहिँ देखन जोग ॥१५१॥
रँगी सांवरे रंग जे पगी प्रेम दिन-रात।
जे व्रज मैं कुलकान तैं नैकु न सुनी सकात ॥१५२॥
कहा कहौं कहत न बनत परी कठिन अब आनि।
नेह निबाहे हू बनै किए बनै कुलकानि ॥१५३॥
मोहि सिखावत तू कहा मैं हूं जानत बात।
उर उरझ्यो चितचोर सौं सो फिर सुरझ्यो जात ॥१५४॥

नँदनंदन पैंड़े परयो नित निकसत इत आन।
भई बहुत कलकान अब राखन को कुलकान ॥१५५॥
सुनत सबै समुझत सबै तऊ न छोड़त छोह।
परबस हठ मोही करत निरमोही सौं मोह ॥१५६॥
बरजे नैकु न मानई कैहू लाख कहौ जु।
कपट भरी चूचतौ खरी चरच चवाइन चौजु ॥१५७॥
बिन बातन रचती खरी बृथा सखी परिहास।
मिलवौ जो मन-भावतौ तौ नीकौ परिहास ॥१५८॥
नित पनघट अनघट फिरत तजत न वाही बान।
भरबस करि हँसि हँसि करत बरबस हरि पहिचान ॥१५९॥
सखी सांवरो रूप वह देखत दृग न अघात।
लोच भरे लालच लगे नित उत ही चलि जात ॥१६०॥
नित नित जाइ उराहनो का कहि दीजै काहि।
गो-रस कौ चसकौ नहीं रस कौ चसकौ वाहि ॥१६१॥
हौं जानत हिय की दसा तू नहिँ जानत बीर।
ए री कठिन अहीर कौ पीर रहित बे-पीर ॥१६२॥
उर औरै आनत नहीं पहिचानत नहिँ पीर।
जरद भई जाके दरद निपट बेदरद बीर ॥१६३॥
ब्रज-बीथिनि नोखो रचत नित ही नित यह ख्याल।
दोऊ चाहत फिरत हैं गोरस गोरस लाल ॥१६४॥
सोवत जागत मैं वही सही सवेरे सांझ।
सूरत वह सखि सांवरी बसी रहत उर मांझ ॥१६५॥
गोकुल मैं कुल की कहौ क्यौं निबहै कुसलात।
बलिहारी तुम सौं लला हौं हारी हर भांत ॥१६६॥
केलि-कुंज मग पाइ कै मैन मसूसन मेटि।
छैल छली कब भेंटिहौ भरि भरि भुजन समेटि ॥१६७॥

लोक-लाज कुल-कानि अब रहै सबै किन जाइ।
वह निसंक उर संक तजि लैहौ अंक लगाइ ॥१६८॥
लोक-लाज गुरुजन-सकुच ताको नहीं डराउ।
विनवति या देखत दृगनि छतिया सों लग जाउ ॥१६९॥
अनत दृगनि फेरत बहुत टेरत हिए हिरात।
जान परत नहिँ कौन सी लला कला करि जात ॥१७०॥
चल न सकत उत ही रहत पल न कहूं ठहरात।
उर उरझत सुरझत न फिरि फिरि फिरि उरझत जात ॥१७१॥
लगन लगावत निपट हठि सबै बचावत डीठ।
लखि ललचावत मो हियौ बरबस नैन बसीठ ॥१७२॥
कानन लागे ही रहत कानि न लागत ऐन।
हिए कसाले दै कठिन होत निराले नैन ॥१७३॥
मिलत अगाऊ बिन कहे यहै दोष इन माहिँ।
उर उरझावत हठ नयन सुरझावत फिर नाहिँ ॥१७४॥
रही भरोसे हौं सदा दिनहू के दिन राति।
दृग बसीठ पारत हियो परबस हठ हर भांति ॥१७५॥
जुरत नैन पर जरत हिय अरी कौन यह रीति।
यह न कहूं देखी नई नेह नगर की रीति ॥१७६॥
हित अनहित समुझत नहीं इत उत करत अचेत।
रंग रचाइ लचाइ चित फिर फँसाइ दृग देत ॥१७७॥
कल न परत कैहूं कहूं पल न लगत दिन रैन।
वही सांवरी छवि छके भरत भांवरी नैन ॥१७८॥
या ब्रज मैं सखि सांवरो जिन देखौ अँखियान।
लोकलाज नाखी न किन किन राखी कुलकान ॥१७९॥
जिन अँखियन सखि सांवरो लख्यो कहूं इक बार।
ते किमि घूंघट राखतीं करि कुल-कानि-बिचार ॥१८०॥

ये अँखियाँ कैहूं कहूं आनन आन लगैं न।
थकी पल न उझकी न छबि छकी रहैं दिन रैन ॥१८१॥
उझकि झरोखन ह्वै कहूं दृग सौं दृग जुरि जात।
चाह भरे चित दुहुन के फिरि आवत फिरि जात ॥१८२॥
इत चितयो नागर नयौ उत चितई हँसि ईठ।
लगी अचानक मूठ सी दुहुनि दुहुनि की दीठ ॥१८३॥
कहौं कहा कहत न बनत अहे लखत ब्रजनाथ।
दृग दलाल बेचत हियो उर बस मनमथ हाथ ॥१८४॥
वा मुख की छबि-माधुरी पियत न नैकु अघात।
अनिमिष चख चंचल चितै चाह भरे चलि जात ॥१८५॥
खंजन सरि करि क्यों सकै मीनौ मन हिल जाहि।
मनरंजन अंजन वलित कंज लखत सकुचाहि ॥१८६॥
तरुन तिहारे दृगनि की भए नहीं छबि लीन।
याते वनचारी भए अलि खंजन मृग मीन ॥१८७॥
हित चित लेत चुराइ कै लेत न देखे जात।
जुरत सुरत बिष दृग लगत तुरत फुरत करि जात ॥१८८॥
नेह फौज दुहुँ दिसि बढ़ी अपनी अपनी जोट।
दृग हरौल कटि कटि लरत करत परसपर चोट ॥१८९॥
कोऊ बन कोऊ बिपिन उपमा रही न ठौर।
देख्यो वलि तुव दृगन कौ अजब अनोखो त्योर ॥१९०॥
खंजन कंजन मीन से कहत सबै कवि मैन।
तेरेई जुग मैन से तेरेई जुग नैन ॥१९१॥
क्यो हूं काटे कटत नहिं एरी मेरी बीर।
अनियारे दृग यौं लगे ज्यौं कनियारे तीर ॥१९२॥
खंजन छवि गंजन सु ए कंज लखत सकुचाहिं।
अली मैन तुव सर लगे मतिवारे मत जाहिं ॥१९३॥

चंचल चोखे चपल अति नहीं देत पल चैन।
कमनैती सीखी नई अमनैकी इन नैन ॥१९४॥
कमल-दलन की छबि-दलन ललन तरुन के नैन।
कजरारे कानन लगे भरे खरे रस मैन ॥१९५॥
तुव दृग उपमा कमल की सब कबि कहैं सु मैं न।
ए पिय हिय सुख-दैन हैं वे सब जन सुख-दैन ॥१९६॥
चपल चलाकन सौ चलत गनत न लाज लगाम।
रोके नहिँ क्यों हू रुकत दृग-तुरंग गति बाम ॥१९७॥
तोरत कानि जँजीर हठ पल अंकुस न डरात।
लाज अगड़ कैहु न रुकत दृग मतंग चल जात ॥१९८॥
हटके हठ मानत नहीं दृग-तुरंग तजि नेहु।
समुझ सयानी अब इन्हैं लाज लगाम न देहु ॥१९९॥
कै हरौल अगमन जुरत मरत न देखे सोइ।
मन महीप के निकट ए बिकट सुभट दृग दोइ ॥२००॥
लोभ लोह मुख मेलि फिरि पाइ प्रेम चौगान।
मन बाहन फेरे फिरत दृग तुरंग गति आन ॥२०१॥
मीन मृगन कौ हीन करि मैन सरन दै ऐन।
अब न सजब करि है गजब अजब अजूबे नैन ॥२०२॥
अंजन जुत लखि कै सदा खंजन मीन लजाहिं।
तेरे अलि दृग देखियतु ऐन मैन सर आहिं ॥२०३॥
चंचल समद तुरंग हैं देखि कुरंग लजात।
आली नैन तुरंग लौं चमक चहूं दिसि जात ॥२०४॥
तिय तड़ाग मंजन करत मकर सऊ मनमान।
सी सी यह जल सीत की मीत सुधा सी जान ॥२०५॥
बूड़ि कहूं उछलत कहूं यों सखि अति छबि देत।
अलक नाग खैंचत ससी मनौ सुधा के हेत ॥२०६॥

अलक भूमि दुहुँ ओर तैं तिय मुख रही प्रकास।
मनौ मदन राख्यौ ससी नागफांस सौं फांस ॥२०७॥
सखिन संग नागरि नवल मनहि बढ़ावत मोद।
करत केलि जल मैं खरी बिलसति भरी विनोद ॥२०८॥
जहां जहां सरसिजमुखी मंजन करत प्रभात।
तहां तहां प्रफुलित सबै कमल कला ह्वै जात ॥२०६॥
फौजदार कचनार किय दिय पलास भट साज।
किय जुवराज रसाल कौ इहि बसंत महराज ॥२१०॥
मौर धरे सब द्रुम लता अपने अपने तौर।
इहि ऋतुराज समाज मैं है रसाल सिरमौर ॥२११॥
सुभट समीर हरौल करि मधुप मतंग समाज।
आयौ ढाहन मान गढ़ मैन हुकुम ऋतुराज ॥२१२॥
लगे पवन झुकि झुकि लता डोलैं मृदुल समाज।
घने मान मानिन मनै मने करत ऋतुराज ॥२१३॥
कुंज कुंज विहरत बिपिनि गुंजत मधुप मदंध।
ललित लता लपटी तरुनि प्रफुलित बलित सुगंध ॥२१४॥
दिसि विदिसिनि संरितन सरनि अवनि अकास अपार।
वन उपवन वेलिन बलित ललित बसंत वहार ॥२१५॥
वन वन वनक बसंत की बेलिन बलित सुदेस।
वलि वहार वगरी वही बाग वंगलन बेस ॥२१६॥
सुमन सेत प्रफुलित ललित सोहत कुंज लतान।
मनौ मैन मुकतानि के तानै मंजु वितान ॥२१७॥
झरत मंद मकरंद मद गुंजत मंजुल भृंग।
मनु वसंत महराज कौ मारुत मत्त मतंग ॥२१८॥
बरवै—बहत समीर सु-सीतल मंद सुगंध।
ठौर ठौर सखि गुंजत मधुप मदंध ॥२१६॥

सीतल मंद सुगंधित बहत समीर।
चलि बलि मिलि बलबीरहि जमुना तीर ॥२२०॥
लखि जमुना-तट सूनौ अति अनमोल।
लिय प्यारी प्यारी के चूमि कपोल ॥२२१॥
पाइनि परि हौं हारी अब नहिं सोर।
मिलत नहीं ब्रजचंदहि का मति तोर ॥२२२॥
ढूंढ़े बन सब उपबन खो बन चाहि।
जो बन मिलै बिहारी जोबन जाहि ॥२२३॥
रति रंभा छबि निदरत मंदिर माहिँ।
सोवत दिए उसिसवां पिय की बाहिँ ॥२२४॥
जब कब पाइ अँगनवां धरति सुभाइ।
कसकनि वही करिजवां कसकति आइ ॥२२५॥
नहिं सुहाइ घर बाहिर जहर जहान।
मोहन मोहि मिलावो वे प्रिय प्रान ॥२२६॥
अंजन आंजत अँखियन कै मनुहार।
लालहि नाच नचावत नोखी नार ॥२२७॥
दोहा—झिर पिचकारी की मची आंधी उड़त गुलाल।
यह धूंधरि धँसि लीजिए पकरि छबीले लाल ॥२२८॥
मुख मोड़त अनखाति कति कर कर टेढ़ी भौंह।
होरी मैं यों होत है मेरी तेरी सौंह ॥२२९॥
लै लै मूठ गुलाल की घालत सबै समाज।
वह घालन औरै कछू ज्यों घालत ब्रजराज ॥२३०॥
मिल लीजै अब अंक भर ह्वै निसंक सब गात।
सुनि गोरी होरी दिवस कहँ चोरी की बात ॥२३१॥
नीचे मुख मुसक्यात कत यहै फागु बड़ भाग।
फगुवा मांग गुलाल सौं दिन दिन बढ़ै सुहाग ॥२३२॥

होरी मिस भोरी तिया लिय लगाय सब गात।
चुप करिए थोरी न यह बरजोरी की बात ॥२३३॥
लाज मान गुरु-जनन की बनत न और उपाय।
छाया सौं लागी फिरै होरी औसर पाय ॥२३४॥
लखियतु लाल गुलाल की धूधरि अवनि अकास।
खेलैं खुलि दंपति खरे विलसति बिमल विलास ॥२३५॥
चोरी कर होरी धरत भोरी हिय न सकात।
सुनि गोरी यह दिवस मैं है चोरी की बात ॥२३६॥
धूम धमारिन की मची अंगन अतन उमंग।
अरी आज बरसत घनो ब्रज-वीथिन रस रंग ॥२३७॥
पिय पिचकारिन रंग भरि भिंजवत करि करि प्यार।
सब विधि सब भांतिन भलै भौंजति वह सुकुमार ॥२३८॥
होरी मैं जोरी करत भोरी करि ब्रजबाल।
कहूं तकत घालत कहूं भरि भरि मूठ गुलाल ॥२३९॥
उझकि अलिन की ओट ह्वै नवल नारि दृग जोइ।
घालत मूठ गुलाल की छुटत अरगजा होइ ॥२४०॥
साजि साजि भूषन सकल अंग अंग छवि दौर।
पूजि पूजि गुन गौर कौ मांगत वर गुन गौर ॥२४१॥
लिए लचोली लोद कर उजवति भौंहनि तान।
करि सतून जन तून तै लै प्रसून धनु बान ॥२४२॥
लौद लचोली लौं लचति घालत नहिं सकुचात।
लगि जैहै बोदर लला वहै कसोदर गात ॥२४३॥
तीज तमासौ रस भरी नवल वधू छवि लौन।
लियै लौद हरि करि रहे कौल मुखिन पै कौल ॥२४४॥
गरक गुलाब उसीर बहु सीरे कर उपचार।
तऊ निपट ग्रीषम लपट निकटहु झपटनिवार ॥२४५॥

घसि चंदन चंद्रक चहल महलनि नहल फिराइ।
विषम गरम ग्रीषम तऊ नैकु न नरम लखाइ ॥२४६॥
अति भीषन सीखन तपन पिय सीखत लिखि लेख।
ग्रीषमऊ से तै उषन विषम विषन दृग देख ॥२४७॥
चंद्रक चंदन बरफ मिलि हिले विजन चहुँ पास।
ग्रीषम गाल गरम लगै गै गुलाव के त्रास ॥२४८॥
बर साइति है मिलन की बरसाइत है लेखि।
पूजन बर साइत भली बरसाइत चलि देखि ॥२४९॥
पगनि धरत कसकत खरी भरी सनेह निसोत।
नागरि बर भांउर भरत लाल निछावर होत ॥२५०॥
दिन प्रति बारह मास भर करि सनेह रस रीति।
दियौ जीति मनमथ मनौ गड़ा सुबारह जीति ॥२५१॥
हरित पीत अंकुर बसन नव लतानि कै हार।
जनु असाढ़ कीनी मही दुलही नयो सिँगार ॥२५२॥
चढ़ी अटा छन छटा सी वह लचकीले लंक।
अंक भरै पिय मोद सौं देखत घटा निसंक ॥२५३॥
उमड़ि घुमड़ि बरसै घटा मोर सोर सरसात।
धनि दंपति सोवत सुखनि रस भोवत सब गात ॥२५४॥
चात्रक मुख मूंदत नहीं दादुर दूदै देइ।
बिरहिन हिय खूंदै खरी खूदै रूंधै लेइ ॥२५५॥
पावस निसि कारी घटा दामिनि दमकत जोर।
मोर सोर घन घोर सुनि चित चाहत चितचोर ॥२५६॥
दामिनि दमक दिसानि मैं देखि दृगन दुख देति।
उमड़ि घुमड़ि हठि करि हियौ जलद जलद हरि लेति ॥२५७॥
झीने झर झुकि झुकि झमकि झलनि झांपि झकझोर।
झुमड़ घुमड़ बरसत सघन उमड़ि घुमड़ि घन घोर ॥२५८॥

लहराती लतिकान नित छहराती छित छोर।
छहराती कारी घटा रँगराती बन मोर ॥२५९॥
रहे झुमड़ि घन गगन घन भौ तन तोम बिसेख।
निसि बासर समुझ न परत प्रफुलित पंकज पेख ॥२६०॥
अरुन बसन तन मैं पहिरि पीत सु दौना हाथ।
साउन मैं भाउन लगत सखी सुहावन साथ ॥२६१॥
हरित भूमि गिरि तरु हरित हरी लता लपटात।
बीर-बधूटी सी बधू लखि लालन ललचात ॥२६२॥
तरुन तमालन सौं लता लपट रहीं चहुँ कोद।
मनभावन दावन लगौ सावन सरस बिनोद ॥२६३॥
हठ तरसावन चित लग्यौ मनभावन बिन बीर।
लाग्यौ बरसावन सलिल सावन दावनगीर ॥२६४॥
मनभावन आवन भवन सुख सरसावन काज।
सावन बरसावन सुखनि समय सुहावन आज ॥२६५॥
रंग हिँडोरे नवल तिय झूलत दुति दरसात।
जनु अकास तैं दामिनी छिति छ्वै आवत जात ॥२६६॥
प्यारी झूलत प्यार सौं पीय झुलावत जात।
मनौ सितारे भूमि नभ फिरि आवत फिरि जात ॥२६७॥
रेसम डोरे कर गहे रंग हिँडोरे हेत।
झूलत पिय झोरै लगी मोह अरोरै लेत ॥२६८॥
हरष हिँडोरै डोर गहि झूलत अति छबि देत।
गोरे मुख छबि सौं छहरि लहरि लहरिया लेत ॥२६९॥
पाइन लखि लाली ललित नाइन अति सकुचात।
चितै चितै मृदु आँगुरिन फिरि फिरि मीड़त जात ॥२७०॥
सहज अरुन ऐंड़ोनि की लाली लखै बिसेखि।
जावक दीवै जकि रही नाइन पायन पेखि ॥२७१॥

भादौं भयकारी लगत पिय बिन कारी रैन।
धाराधर धारी लखै प्यारी मन नहिँ चैन ॥२७२॥
सोभित अवनि अकास अति अनुपम अमल अमंद।
अब बिधु बदन बिलोकितै सरद सरद कौ चंद ॥२७३॥
सुखद सरद ऋतु पाइ कर कुंजित सरनि सरोज।
चलि चलि द्दगनि बिलोकि यह प्रमुदित उदित मनोज ॥२७४॥
बैठी जसन जलूस करि फरस फबी सुखदान।
पानदान तैं लै दयै पान पान प्रति पान ॥२७५॥
जै दसमी जानी जगत महरानी सुख पाइ।
पीराहर सब सखिन कौ बीरा बगसे आइ ॥२७६॥
जुवा खेल खेलन गई जोषित जोबन जोर।
क्यौं न गई तैं मति गई सुन सुरही के सोर ॥२७७॥
अगहन मैं गौने चली संग साजि अधिकात।
पन्नग नग भूषन बसन ससकत रोवत जात ॥२७८॥
सेज सुपेती तरुन तिय सुरा सुराही प्रीति।
देखि रीति भयभीत ह्वै भजत सिसिर कौ सीति ॥२७९॥
घटत नहीं कैहू कहूं अधिक अधिक अधिकात।
हनत हियै अति निरदई सिसिर सीत दिन-रात ॥२८०॥
सुखद सँजोगिनि कौ निसा सुखमय पल सम जात।
सम सम बिरहिन कौ लगत वही पूस की रात ॥२८१॥
कल न परत परजंक पर द्दग न नींद नियरात।
अब ग्रीषम दिन तै बिषम लखी माघ की रात ॥२८२॥
तबै न मान्यौ मो कह्यौ सूधौ अलि जुग कंज।
देखि अधर छत झुकत अलि अब पिय कौ मन रंज ॥२८३॥
निय तिय तो पिय पहँ रमैं आवन चाहत आज।
साजि आरती पांउड़े अब अलि तज वह काज ॥२८४॥

नव रसाल के पौन लगि डोलत डारन मौर।
जनु बसंत रतिकंत पर झुकि झुकि ढारत चौर ॥२८५॥
नख फौकै मनि गन कलित ललित आंगुरी तीर।
तो कर सोभा के सदन मानौ मदन तुनीर ॥२८६॥
हियै और मुख और कछु अब ब्रज की यह चाल।
उत्तिम मारग एक तुम निरबाहौ नँदलाल ॥२८७॥
दुसह बिरह बृष सूर सम चलन कहत अब आप।
तिय कौ कोमल प्रेम-तरु क्यौं सहिहै संताप ॥२८८॥
बिधु सम सोभा सार लै रच्यौ बाल मुख इंदु।
दियौ इंदु मैं अंक मिस राहु हेत मसि बिंदु ॥२८९॥
ऐसौ और न जानिबो जग अनीत कर नार।
जामैं उपज्यौ सरन सौ ताकौ बेधत मार ॥२९०॥
लखि पुरैनि के पात मैं लसत बकी चल नाहिँ।
मनौ संख सूती धरी मरकत भाजन माहिँ ॥२९१॥
चारु चाहि गोपाल के गरै मालती माल।
अरुन तरुन अँखियान तैं अँसुवा चलत बिसाल ॥२९२॥
जाको मुख ससि सौ सुखद सजल जलद सी देह।
बसन बीजुरी सी धरै लख्यौ सु वह बन गेह ॥२९३॥
तोसी मोरै को हितू आई काम बनाइ।
धनि धनि तैं मेरे लियै सहे रदन नख घाइ ॥२९४॥
स्वास स्वेद कर ताड़िबौ लचि लचि मुरनि अनेक।
तो सँग यौं खेलत तरुन धनि कंदुक तैं एक ॥२९५॥
ज्यौं ज्यौं दुहू दुहून के रस सौं भिंजवत गात।
त्यौं त्यौं चित्त दुहूनि के रस सौं भींजत जात ॥२९६॥
सकल ससिन तैं सकल सुख मो दृग चहत निहार।
चंदमुखी मुख चंद तैं हरै हरै पट टार ॥२९७॥

दोऊ द्रोही तात के दया दुहुन कै नाहिँ।
हर जारयौ दृग मदन क्यौं ससि धारयौ सिर माहिँ ॥२९८॥
बरनहीन इव रन बिना अनिल वाहि तुव आन।
हरि बृषभानुकुमारि कौ ससी भयौ बृष-भान ॥२९९॥
तो मन बास दृगंत सर भौहैं चाप समान।
सुतन अतन चाहत भयौ तुव सुन कान पयान ॥३००॥
हरि राधा राधा भई हरि निसि दिन के ध्यान।
राधा मुख राधा लगी रट कान्हर मुख कान ॥३०१॥
हर जारयो लोचन-अनल भौ अलि मदन पिसाच।
मीडे डारत मो हियो रति सहाइ लहि साच ॥३०२॥
दृग सु जरायौ सिव मदन तौ वह भूतल दंभु।
फिरि फिरि मींजत मो हियौ समुझि छरोजन संभु ॥३०३॥
तरुनी मुख छबि पान कौ नैनन बांध्यौ नेत।
सुमन सुमन पै बैठि जनु रस खोरा रस लेत ॥३०४॥
वा मुख की छबि पै परत जब मग लोल अमोल।
हरत बिरह अहि बिषम बिष तुव लोचनन कलोल ॥३०५॥
गुललाची के फूल की क्यौं न लखत छबि बाल।
उलटी कूकत है मनौ मधुप काम कर माल ॥३०६॥
गसे परसपर कुच घने लसे बसे हिय माहिँ।
कसे कंचुकी मैं फँसे मुनि मन निकसे नाहिँ ॥३०७॥
सेत कंचुकी कुचन पै लसत मिही चित चोर।
सोहत सुरसरि धार जनु गिरि सुमेर जुग ओर ॥३०८॥
उठी केलि करि ससिमुखी नैन मूंदि अँगिराइ।
जल-कन-छबि झलकन लगी अलकन पलकन छाइ ॥३०९॥
कहा मैनका उरबसी कहा काम की बाम।
रहे चित्र कैसे लिखे लखि राधा घनस्याम ॥३१०॥

लिखे चितेरे चित्र मैं पिय बिचित्र तसबीर।
हरसत दृग परसत हियै पसरत तिय धर धीर॥३११॥
तो घनस्याम बिसेस छवि चित्र पूतरी चाहि।
जानत परसन पूतरी जनु पखान की आहि॥३१२॥
है बिदेस तो प्रानपति कीजै बचन प्रमान।
स्याम धूम तैं कीजियतु बिरह-अनिल अनुमान॥३१३॥
लखि ससंक सूनौ सदन मंद हास गति मंद।
चंदमुखी कौ अंक भर लूटौ सुख ब्रजचंद॥३१४॥
कुंभकरन कौ देखि कपि नासा-करन-बिहीन।
अट्टहास करि भू झुके मन भौ मोद अधीन॥३१५॥
मारतंड परचंड महँ फरकत जुग भुजदंड।
रघुनंदन दसकंध लखि टंकोरयो कोदंड॥३१६॥
पाटौ अवनि अकास सर डाटौ दुज्जन जाल।
काटौ दस दसकंध के मुंड आज विकराल॥३१७॥
हनूमान बहु गिरि लिए गरजत प्रभु कौं घेर।
लगी दृगन मैं टकटकी रहे रिच्छ कपि हेर॥३१८॥
भूमि भूधराकार लखि अद्भुत जुद्ध कराल।
कँपे रिच्छ लखि लच्छ कपि कुंभकरन जनु काल॥३१९॥
रघुनंदन दसकंध के काटे मुंड कराल।
छलक्यौ छतज कबंध तैं करयौ भूमि नभ लाल॥३२०॥
रोदन करत सुलोचना पिय कौ मरन सुनाय।
रघुनंदन के दृग कमल रहे आंसु उतराय॥३२१॥
भावत कुंज करील की जातिन माँह अहीर।
जानौ जात बड़ेन कौ मन नहिँ मेरी बोर॥३२२॥
कुबजा मन टेढ़ौ कियौ वह टेढ़ेई गात।
कौन चलावत बोर अब ब्रज की सीधी बात॥३२३॥

सत्रु न मारयौ रोस करि रीझ पची मन माहिँ।
तहां न जैए सुघर नर वा दर की दर नाहिँ॥३२४॥
लै कै दै राख्यौ तऊ गए पताले स्यात।
बलि बावन लौं देखिए सब तैं सब छल जात॥३२५॥
मघा मेघ बरसत विविध उमड़ि भरहि दरियाउ।
चातक पातक श्रापनै कहत पियाउ पियाउ॥३२६॥
धरषत हर हरषित जगत पूरित अवनि अकास।
सांची प्रीति पपीहरै स्वात बुंद की आस॥३२७॥
बिटप रसाल रसाल ए वड़े किए जगदीस।
फिरि बसंत श्राए मधुप मौर धरैंगे सीस॥३२८॥
कहा भयौ जौ लखि परत दिन दस कुसुमित नाहिँ।
समुझि देखि मन मैं मधुप ए गुलाब वे आहिँ॥३२९॥
जो पराग मकरंद मधु कमल फूल मैं होइ।
मधुकर तू चाहत लह्यौ कनक कली मैं सोइ॥३३०॥
कत गुमान गुड़हल करत समुझि देखि मतिमंद।
छोड़ि नलिनि पीवत कहूं अलिन मलिन मकरंद॥३३१॥
बहकायै बहकत फिरत अहे कहा मति भूल।
सुख स्वादहि चाहत लह्यौ सेकै सेमर फूल॥३३२॥
नहिँ जानत गुन जासु कौ सो तिहि निंदत जाइ।
गजमुक्ता तजि कै अधम गुंजा लेत उठाइ॥३३३॥
सघन घनै उडुगनि गगनि अगनित करत उदोत।
परम प्रकासक पै निसा निसानाथ तैं होत॥३३४॥
पंकज के धोखै मधुप कियौ केतकी संग।
अंध भयौ कंटक बिधौ भयौ मनोरथ भंग॥३३५॥
परमारथ साधत सदा अवराधत गुन एक।
ते बिरले जग देखिए कहुँ हजार मैं एक॥३३६॥

तो ढिग आवत कल परत गुन पूरन तौ होइ।
गुन बिहीन लघु कीर की पीर सुनावै कोइ ॥३३७॥
बिटप तिहारे पुहुप हम सोभा देत बढ़ाइ।
और ठौर सीसन चढ़त पै रावरे कहाइ ॥३३८॥
श्रीफल दाख अँगूर अति नूत तूत फल भूर।
तजिकै सुक सेमर गयौ भई आस चकचूर ॥३३९॥
देखि सुधाकर लसतु है सिव के सीस समोइ।
समय पाइ तम परसि कै दरस फेर नहिँ होइ ॥३४०॥
केसर पूर कपूर सौ अगर धूर करपूर।
अति रस मोइ समोइ कै तजै प्याज नहिँ नूर ॥३४१॥
कहँ तड़िता सुबरन लता कहँ मनिमाल बिसाल।
दीप-सिखा फीकी लगै देखत बाल रसाल ॥३४२॥
पिय प्रानन की प्रान तूं तुव प्रिय प्रानन-प्रान।
जान परत गुनखानि अब चित हित के अनुमान ॥३४३॥
हित उत ही चितवत नयौ नाह नेह सरसात।
लिखत चित्र पिय आनकौ फिरिकी लौं फिरि जात ॥३४४॥
जानत रिस ठानत नहीं नहिँ आनत मन मान।
मनहु मैन छतिया लगी बतिया कहत सुआन ॥३४५॥
छमा छमा सी अनुहरत पिय प्रानन की प्रान।
कै कमला बिमला कला कै कुल की कुल-कान ॥३४६॥
गवन करत रत तौलनौ मान मौन लौं पेखि।
बचन रचन सखि स्रवन लौं छमा अवनि लौं लेखि ॥३४७॥
पतिब्रत लौं ब्रत करत है भाषत अनृत न लेस।
सील छमा छिति लौं करै हित लौं रहै हमेस ॥३४८॥
सदा सत्यमय सत्यब्रत सत्य एक-पति इष्ट।
बिगत असूया सील सै ज्यौं अनसूया सृष्ट ॥३४९॥

ज्यौं ज्यौं पिय परतिय मिलन त्यौं त्यौं तिय दिनरात।
हसत लसत हुलसत हियै विलसत नहिँ अनखात ॥३५०॥
अरुन उदै लौं तरुनई अँग अँग झलकी आइ।
छिन छिन तिय तन ओस सी मिटत लरकई जाइ ॥३५१॥
मंद भई गति मति बिमल मुख छबि छई अमंद।
परी सौति दुख फंद सी मुदित होत नँदनंद ॥३५२॥
छुटत लरकई तरुनई नित नूतन अधिकात।
करक निसा मकरादि दिन घटत बढ़त जिमि जात ॥३५३॥
अभिरामा स्यामा सरस यह लचकीले लंक।
ह्वै निसंक उर संक तजि गहि लीजे भरि अंक ॥३५४॥
छुटत लाज भय अतन तन बाढ़त जात सहूर।
सौति हिए बिषमूर सी पिय हिय जीवन-मूर ॥३५५॥
लोचन बढ़ि कानन लगे पगे मधुर रस बोल।
मनौ मदन मौजै मुकर झलकत गोल कपोल ॥३५६॥
तिय तन मैं पानिप भरे उलहे तनक उरोज।
रूप सरोवर जनु जुगल सुबरन कली सरोज ॥३५७॥
मधुराई बैनन बसी लसी पगन गति मंद।
चपलाई चमकी चखनि चखन लखै नँदनंद ॥३५८॥
नई तरुनई नित नई चिलक चिकनई चोप।
नजर नई नैनन नई नई नई अँग ओप ॥३५९॥
नवल बधू अँगन बस्यौ अतन जतन सौं आइ।
छिन छिन जोबन छनछटा दिन दिन अति अधिकाइ ॥३६०॥
तन तैं निकसि गई नई सिसुता सिसिर समाज।
अंग अंग प्रति जगमग्यौ नव जोबन रितुराज ॥३६१॥
कहा करत देखत कहा लालन इत चित देहु।
ललित अंकुरित कुचन की बनी बनी लखि लेहु ॥३६२॥

जगत जगौंहीं जेब जुत जोबन जगमग जोर।
ललित लगौंहीं लखि परत उकसौंहीं कुच-कोर ॥३६३॥
बस्यौ मदन तन सदन मैं बदन मंद मुसक्यान।
पग्यौ प्रेमरस सौं बचन लग्यौ लाल ललचान ॥३६४॥
नैननि कौ प्रतिबिंब लखि जल मैं चितै अयान।
गहिबे कौ मेलै भुजा खेलत सफरी जान ॥३६५॥
कान्ह कौन है कौन के कहि गोरी मुसक्यान।
कछु प्रतीत कछु भीत उर कछुक नैन ललचान ॥३६६॥
थाकी मत लखत न बनत जाकी सखी बिचित्र।
बनत न मन औरै उकत चुकत चितेरे चित्र ॥३६७॥
सिसुता मैं जोबन झलक जगमगात प्रति अंग।
ईंगुर अरुनाई लसै ज्यौं मिलि केसर रंग ॥३६८॥
भय भीनी दुलही नई दई सकुचि बिधि भूर।
गई समिटि पिय कर परस भई लजावन मूर ॥३६९॥
नाहीं नाहीं कहत ही नाहीं सौं लगि जाइ।
छुटी मुठी तैं भय भरी लगी धाइ उर धाइ ॥३७०॥
भवन नाह आवत सखी तज भज चली निहार।
लाज पगी अति डगमगी रही ठगी सी नार ॥३७१॥
भरी अंक परजंक पर गर मेलै भुजमाल।
जाल परी सफरी मनौ उछल परी तिहि काल ॥३७२॥
जदपि सखी के सँग रहत तदपि न थिर मन माहँ।
जल सफरी लौं तरफरत छरकत छुअत न छाहँ ॥३७३॥
घरी धाइ पिय रस भरी सूनौ भवन बिलोकि।
गई पाइ ससकत सकत सकत न हिलकी रोकि ॥३७४॥
लखि परछाहीं लाल की जानत नहिँ रस रीत।
त्रसत मृगी लौं जकि रही इत उत चितै सभीत ॥ ३७५ ॥

कर परसत ससकत खरी संकत न अंग सम्हार।
इंद्र-बधूटी लौं दुरत नवल बधूटी नार ॥३७६॥
नेह नीर बंसी नयन बतरस गारौ लाइ।
कछु प्रतीत कछु भीत तिय भझकि भझकि झुकि जाइ ॥३७७॥
चाहि चाहि चित नाह के लोचन लखि ललचात।
आइ आइ कर नाह की नहिँ छाती लगि जात ॥३७८॥
छयौ अतन अति सकल तन लाज सु अति हिय माहिँ।
बैननि मैं नाहीं करत नैननि नाहीं नाहिँ ॥३७९॥
नहीं करत इतही रहत नहीं लगत उर आइ।
मदन जगाइ जगाइ उर रहत लजाइ लजाइ ॥३८०॥
रद-छद अधर न कीजिए नागर नंद-किसोर।
सास ननद सौजोर मुख कहा कहैंगी भोर ॥३८१॥
सास ननद ये कूर हैं मेरो दुरनय जान।
करिहैं भोर अनर्थ जे प्रतिभा संका मान ॥३८२॥
आजु राति इहि भांति मैं देख्यौ सपन प्रसंग।
काम लाज के जुद्ध मैं लिय फतूह जुर जंग ॥३८३॥
सास ननद जागत अबै भौंजन दै रजनीय।
कर सौं पाइ छियौ नहीं है घुँघरू बजनीय ॥३८४॥
रहत चाह चित नित नई बढ़त सनेह उदोत।
करत बिमुख हठ लाज हिय पिय मुख सनमुख होत ॥३८५॥
मुख सौहैं नहिँ मुख करत भूठै मूंदत नैन।
पग लागत लागत लपट जागत लगत हियै न ॥३८६॥
सखिन ओट कै पिय बदन सुमुखि सुलोचनि हेर।
हरषि हँसति बिहँसत रहत सकुचि सकुचि मुख फेर ॥३८७॥
लाज गहौ धीरज धरौ ए पिय चतुर सुजान।
स्रवन सुखद नूपुर निनद ननद न सुनिहै कान ॥३८८॥

सरस सलौनी सखिन सँग लखि लालन सकुचात।
उझकि उझकि झाँकति झुकति झिझकि झिझकि दुर जात॥३८९॥
छिन बिहँसति छिन छिन हँसति छिन छिन कहति सिताब।
इत उत चितै गिलास गहि पीवति गुले गुलाब॥३९०॥
मुरि मुरि मुख नाहीं करत पलकाही लगि जात।
हँसि हँसि पिय बाँही गहत मन माही मुसकात॥३९१॥
तरफरात तलफत खरे नैन ऐन पट झीन।
रूपसिंधु पर जुगल जनु उछलत मनसिज मीन॥३९२॥
रस रंगनि संगनि करत अंगन छुवन न देत।
काम उमंगन मैं भरी अंगनि लौं चित चेत॥३९३॥
प्रथम नगरि नूपुर रही जुरत सुरत रन गोल।
घाइल ह्वै सोभा बढ़त कुच भर अधर कपोल॥३९४॥
मोर मोर मुख लेत है जोर जोर दृग देत।
तोर तोर तर लाज कौ चोर चोर चित लेत॥३९५॥
रति बिपरीत समै दुवौ झलकै मुख कन स्वेद।
निकसे मानौ अमृत कन ससि मंडल कौ भेद॥३९६॥
दंपति रति बिपरीत मैं करत किंकिनी सोर।
मनौ मदन महिपाल की नौबत होत टकोर॥३९७॥
जटित जवाहिर आभरन छवि के उठत तरंग।
लपट गहत कर लपट सी लपट लगी सब संग॥३९८॥
लपटानी घन-श्याम सौं ज्यौं तमाल सौं बेल।
रही हार सी नारि गल-बाँह मृनालिनि मेल॥३९९॥
सुरति समै स्रम स्वेद कन तिय मुख आइ सिताब।
जनु प्रीतम निज करन सौं छिरके आब गुलाब॥४००॥
मिलत खिलत बतरस पगन मिल मिल बिहँसत जात।
भौंह भूर भाइन भरत सौंह परसपर खात॥४०१॥

बिहँसि बिहँसि लागत हियै लपटि लपटि लपटात।
गह्यौ तरौनन तामरस बसन छपावत जात ॥४०२॥
रस ही रस वतरस पगत नेहै बर सरसात।
देखि देखि दोऊ दुनी रीझ रीझ मुसक्कात ॥४०३॥
उठ न जाइ चाहत उठौ अति अलसात जम्हात।
ललकि ललकि लालन गरै ललकि ललकि लपटात ॥४०४॥
दोऊ काम कलानि कर लूटे सुख अनमोल।
नींद भरे झूमत झुकत चूमत चारु कपोल ॥४०५॥
सुरति प्रेम-मद सौं छकी रंग-महल छबि लेत।
लपटि लगति लालन गरै हरै हरै हँसि देत ॥४०६॥
बिगसत सुमन गुलाब को सुरभित परसत पात।
ज्यौं ज्यौं पिय भेटति भुजनि त्यौं त्यौं तिय अकुलात ॥४०७॥
परखि परखि अति प्रेम रस करषि करषि चित लेत।
परखि परखि पिय हित हियै हरषि हरषि हँसि देत ॥४०८॥
हिय हुलसत बिहँसत बदन बिलसत बिमल बिलास।
सुखनि समोइ रही लही रसिक रसीले पास ॥४०९॥
भरत अंक परजंक पर दोऊ रसनि समोइ।
कंचन चित हित सौं कसत बुद्धि कसौटी दोइ ॥४१०॥
स्रवन सरोजन की कली मली भोर बहु बार।
मुकतहार परिहार कर किय तिय पिय हिय हार ॥४११॥
पाइन परि बूझत तुम्हैं रसिक रसीले सोइ।
कहिए छाती छाप कौ कितिक महातम होइ ॥४१२॥
सुचि सुगंध सोभा सरस राजत अमल अमंद।
सखि गुलाब के फूल तैं झरत मधुर मकरंद ॥४१३॥
तुमही मैं देखी नई ललन रीति जग जोइ।
सिसिर निसा मैं स्वेद-कन अंगन लखियतु सोइ ॥४१४॥

तुरत स्वेद सात्त्विक भयौ मोहि लखत बड़ भाग।
जान परत दुर दुर परत उमगि उमगि अनुराग ॥४१५॥
पगनि चलत अति स्रम भयौ इत आवत उत जात।
पलक पौढ़िए पलँग पर प्यारे प्रीतम प्रात ॥४१६॥
अरुन नील पियरे लसत अंकन सुमन समाज।
अरी आज रितुराज की बनक बनै ब्रजराज ॥४१७॥
आए पिय प्यारे प्रिया पेखे प्रगट प्रभात।
रँग सौं जाती राति रति मुसकानी बिन बात ॥४१८॥
झपकि झपकि लागत पलक नैकु न उघरत स्याम।
मूंदि मूंदि राखत वही बलकन प्यारी बाम ॥४१९॥
बाद करत बकवाद बे-सवाद रस बाद।
नीकै उनही कै रहौ पीके प्रेम प्रमाद ॥४२०॥
मन भावन आवन कियौ हियौ जुड़ावन लेखि।
उत प्यारी दावन लगे छल बावन लौं पेखि ॥४२१॥
निसि बीते आए इतै हिय तैं कहत सुबात।
नित नीतै रीतै करत जीतै जौ न सुहात ॥४२२॥
कीनै रँग रति राति मैं आए प्रात सखेद।
नेह नवीनै स्रम कहत सीनौ स्रवन सुस्वेद ॥४२३॥
नहिँ जम्हाति अलसात नहिँ नींदौ नहिँ नियरात।
वह विभावरी भवन की भरत भावरी जात ॥४२४॥
आंसू लखि पिय हँसि कह्यौ बोली बचन सभाग।
लखै रूप छुटि छुटि परत मो हिय कौ अनुराग ॥४२५॥
इत आवत अति स्रम भयौ प्रीतम प्रान अधार।
आए मंजुल कुंज तैं नई बिलोकि बहार ॥४२६॥
घर आवत पिय सुघर तिय नहिँ बोली अनखाइ।
ज्यौं ज्यौं अति आदर करै त्यौं त्यौं हियौ सकाइ ॥४२७॥

कलाकंद बतरान मैं मधुराई मुसकानि।
है पियूष मुखचंद मैं क्यों दृग बान समान ॥४२८॥
देखिस चिह्न गुपाल कौ वाधिमान कौ सेत।
नहिँ हिरकी फिरकी नहीं रुखैही रुख देत ॥४२९॥
नींद भरे आलस भरे भरे खरे रस मैन।
लखि लालन लागी गरै करै निचौहैं नैन ॥४३०॥
पिय सौंहैं भौंहैं कसै करि तिरछौहैं नैन।
कहत जाहु मन भावते जितै करत नित सैन ॥४३१॥
कह्यौ एक सौ लखि भए तुव मुख मुकुलित कंज।
तौ लगि प्यारी के लिए चूमि कपोल सु मंजु ॥४३२॥
लाल लखावत एक कौ साँझ गुड़िन कौ ख्याल।
परसि उरोज मनोज बस मुदित भई तिय बाल ॥४३३॥
इक कौ रति विपरीत कौ चित्र दिखायौ लाल।
रही मूंदि लोचन सु वह्व भुज भेंटी पिय बाल ॥४३४॥
दीठि गई सिरपेंच पै फिर हारी मैं ऐंच।
जो उरझी सुरझी न फिर परी पेंचि कै पेंच ॥४३५॥
डारौ डर गुरु जनन कौ कहुँ इकंत मह पाइ।
अति रुचि दोउन उर बढ़ी अधरन अधर लगाइ ॥४३६॥
भरत भाँवरैं जिय रहत नैन तावरे जोइ।
गाउ नाउ रे किन धरौ मिलन साँवरे होइ ॥४३७॥
कल न परत देखे बिना देखे लगत कलंक।
कब भुज भेंटन पाइए भरि भरि अंक निसंक ॥४३८॥
बिन बूझे अपसोस यह बूझे होत सकोच।
मिलन अनमिलन एक कौ करि मेरे मन सोच ॥४३९॥
हौं कब आवत ती इतै सखी लियाईं घेरि।
फिरि मद मयौ न मन कियौ गडुवा गढ़त न भेरि ॥४४०॥

हिलकी लै दिल कहत सुन सखी स्रवन संदेस।
मिलकी मोहन मोह के ये दृग रहत हमेस ॥४४१॥
खटकी चित भटकी फिरत हटकी रहत हियै न।
अटकी यह नटसाल सी नागर नट की सैन ॥४४२॥
थाकी करि करि जतन अति अतन तपन अति ताप।
गजब हियै समझ्यौ न तव अजब इसक संताप ॥४४३॥
छ्वै छिगुनी छल सौं कहूं छली छैल छक पाइ।
लखि रूखौ रुख करि रही अँगुरी अधर लगाइ ॥४४४॥
छल सौं छपि छतिया छुई कहूं अचानक स्याम।
गोखै गहि रसना दसन बसन कँपायौ बाम ॥४४५॥
घूंघट पट की ओट मैं रहे थके से नैन।
नूह छके पिय छवि छके छके रहे दिन रैन ॥४४६॥
नेह दुरावत दुहुन कौ द्वेस देत सुख भूरि।
राति मिलत है रति हँसत होत रुखाई दूरि ॥४४७॥
फिरि कै चितई प्रेम वस चली जात सतसंग।
चाह मित्र के चित बढ़्यौ सुख-अनुराग अनंग ॥४४८॥
जानि भीत संकेत मैं मिलिवे कौ अकुलात।
देखि अँधेरो बैठवो सखि ढिगहू न सुहात ॥४४९॥
उन हँसकै बीरा दई हरषि लई सुखदान।
होन लगी अब दुहुन की मग मधुरी मुसक्यान ॥४५०॥
सबै कौन परमान सम रच्यो बिरंच अचूक।
सोच मैन-सरजाल भिद भयो हजारक टूक ॥४५१॥
कुंजन प्रति गुंजत मधुप कूजत कीर कपोत।
इत कछु करिबे कौं सखी पर अधीन मन होत ॥४५२॥
और हाथ मन होत है देखौ याही ठौर।
कारन कौन सखी कहौ तू प्यारी सिरमौर ॥४५३॥

यह मग देख भयावनी अहे सघन बन कुंज।
बढ़ी सीक उर धकधकी भयौ स्वेद कन पुंज ॥४५४॥
वंशीवट की गैल मैं हौं सखि गई भुलाइ।
तब बरआइ जदुराज नैं दीन्हौं राह बताइ ॥४५५॥
आजु चतुर्थी व्रत कियौ गई लैन हौं फूल।
पापिन पाप लगावती इहा पाप नहिँ मूल ॥४५६॥
मनचाही सब कहत है नहिँ मेरे मन मैल।
आवत है नित फैल कर वही छैल नित गैल ॥४५७॥
सांचे कौ झूठो करत लिखत चित्र बिनु भीति।
देखी हौं अतिही अजब गजब गाड़ की रीति ॥४५८॥
भूली बन भटकी फिरत गली अँधेरी माहिँ।
बिलखी लखि सखि सांवरे पहुँचाई गहि बाहिँ ॥४५९॥
कालिंदी जल-केलि मैं आली घाले हाल।
लखि अलि ये उरधर लगे कंटक कमल सनाल ॥४६०॥
सरिता मैं मेरो सदन बसौ पथिक इत आइ।
चित तै ग्रीषम गरम कौ दीजै भरम भगाइ ॥४६१॥
बसौ बरोठै पथिक ह्यां बसन न पावत और।
यह मेरौ यह सास कौ यह ननदी कौ ठौर ॥४६२॥
यह निकुंज सीतल सुखद सुखद मंद गत बात।
बितै दुपहरी फिरि गवन करौ सांवरे गात ॥४६३॥
पिय बिदेस घर सास नहिँ ननद न रहत घरीक।
सूनौ घर कैसै बनत पथिक बसेरो ठीक ॥४६४॥
सुभग सरित सीतल सलिल पथिक न अति सुख देत।
भीषन तीखन जेठ की तुरत ताप हरि लेत ॥४६५॥
लखि लालन प्रफुलित बदन पुलकित सुरस सरीर।
गहि गाधर आलिन अरति भरत न गागर नीर ॥४६६॥

यह ग्रीषम तीखन तपन भीषन अति दरसाइ।
मंजुल कुंज-लतान मैं बसौ बिहारी जाइ ॥४६७॥
मुख छपाइ सकुचाइ कछु अरु कँपाय भुज-मूल।
इंदीवर नैननि लखति कान्ह कलिंदी कूल ॥४६८॥
बैठी गुर जन साथ मैं लखी अचानक लाल।
नैन इसारन सौं कही सैन निसारत बाल ॥४६९॥
छबि सागर सागर गुननि नट नागर तकसीर।
गुन आगर नागर नवल भरत न गागर नीर ॥४७०॥
सरित तीर मीतहि निरखि हरषि हरषि हँसि देत।
नीर तरफ तकि तकि रहत फेर फुरहरू लेत ॥४७१॥
न्हात सरोवर सखिन सँग बिहँस बेस बर बाम।
जोरि जुगल कर मित्र मिस मित्रहि करत प्रनाम ॥४७२॥
साजि जतन तन अति अतन तनकु न बनत न जात।
नई सुघर बैठी सुघर उघर परैगी बात ॥४७३॥
चढ़ी अटा देखति घटा कितिक करत छल-छंद।
नेह निसेनै पैठती तेरी नजर बिलंद ॥४७४॥
हठक हठीलो हठ करत बरजौ बार कितेक।
चोट अचूक न चुकत ये तेरे दृग अमनैक ॥४७५॥
हरित बसन तन मैं पहिरि तिय न रँगै कर हेत।
घूंघट पट की तार की दृग फँसिया फँस लेत ॥४७६॥
कान्ह कान्ह मुख आन नहिँ कौन परी यह बान।
तू जानत है। जान है सब जग जान-अजान ॥४७७॥
नाम सु मोहनलाल कौ सबै कहत चितचोर।
चोरन की चोरी करत री तेरे दृग - जोर ॥४७८॥
बेसर है सुंदर सुखद तैसी लसत सुढार।
मित्र लखत प्रमुदित हियौ अमल कमल सी नार ॥४७९॥

लोक लाज खांई खुदी घूंघट पट की ओट।
हरदफ बेधत हेर हिय ज्यौं हरदफ की चोट ॥४८०॥
घरहू तैं निरसंक तैं भरहू तैं न डरात।
पहिर चूनरी तैं निते हर पूजन कौ जात ॥४८१॥
यह पूजन कौ वेष नहिँ हरहि पुजावन जात।
हर पूजन कौ जात नहिँ पहिरि चूनरी रात ॥४८२॥
कहा छपैयतु लखि परत प्रगट हियै कौ हेत।
सारी गत अनुराग की सारी कहि कहि देत ॥४८३॥
नागर नट नागर निरखि बिहँसि बिहँसि हँस देत।
निते निते हरि कौ चितै चितै चितै हरि लेत ॥४८४॥
बांके बिरुदैती भरै भौंह धनुष सर नैन।
कहौ करत है कौन पै कमनैती तुव नैन ॥४८५॥
अनियारे अंजन सहित अति अमनैक सुमान।
सरफ सरफ रस होस कै तेरे दृगन समान ॥४८६॥
हँसि हेरत फेरत दृगन लगन लगावन ईठ।
छनक छबीले छल छकत तकत तिरीछी दीठ ॥४८७॥
मंजु करन मांजे मदन धरि सुहाग खर सान।
तीछन लग बेधत हियौ तेरे ईछन बान ॥४८८॥
भेद तेरिए उर कढ़े ये उरोज जुग बाम।
औरन उर बेधत इन्हैं दया होइ किहि काम ॥४८९॥
आनन तैं स्रम स्वेद कन छुटि छुटि परत उरोज।
मानौं मोतिन संभु जुग पूजत मनहु मनोज ॥४९०॥
मिलन सबै रस लै सकत लख लख मन न सकात।
इक गुलाब के फूल पै बहु मधुकर मँडरात ॥४९१॥
कोमल तन धन मालती सहत भार धन कोति।
देत अलिन मधुकर गलिन पै न मलिन दुति होति ॥४९२॥

जोबन छाक छकी रहत मद के मद उमहात।
कहति नटति रीझत खिझत हँसति झुकति झहरात ॥४६३॥
लखत छांह छन छबि छकति छलनि छबीली छैल।
अरबीली ऐंड़ति अड़ति गरबीली गहि गैल ॥४६४॥
नैकु न उत टारे टरति नित निदरति सखियान।
मन ललच्यावत जगत कौ अनियारी अँखियान ॥४६५॥
जुन्हरी राखन जात नित पहिरे चुनरी लाल।
वह लुमरी हुमरी कुचनि गरे गुंज की माल ॥४६६॥
ढीमर वह छीमर पहिरि लूमर मदन अरेर।
चितहि चुरावत चाहिकै बेंचत बेर सुरेर ॥४६७॥
फिर फिर कुच कसकत कसत लसत गुंज उर हार।
तीछन ईछन सरन सौ बेधत हियै गँवार ॥४६८॥
अंग मोर आंचर उचै बार बार अँगिरात।
ऐंड़ भरी ऐंठति खरी पैंड़ पैंड़ इठलात ॥४६९॥
गुंज-हार उर मैं पहिर दीन्है आड़ लिलार।
मदमाती झूमति झुकति विहँसति हँसति गँवार ॥५००॥
आवत लखि रितुराज कौ समुझि सुखन कौ मूल।
फूलि भई मालिन हियै लखि गुलाब कौ फूल ॥५०१॥
निकट परोसिन कलह बस रहि न सकी तिहि ठाम।
सुख सौतन दूनौ भयौ सूनौ ग्रह लखि वाम ॥५०२॥
ज्यौं ज्यौं पति परनारि सौं करत सनेह निहार।
त्यौं त्यौं प्यारी के हिए बाढ़त मोह अपार ॥५०३॥
ननद सासुरै पिय अनत सासु सौत के धाम।
विहँसि उठे दृग वाम के सूनै सदन सकाम ॥५०४॥
सोरठा—अरहर आई जानि भाई नहिँ तन थरहरी।
यहै सोच उर आनि विरह ज्वाल जालन जरी ॥५०५॥

दोहा—अपत करी बन की लता जपत करी द्रुम साज।
बुध बसंत कौ कहत हैं कहा जानि रितुराज ॥५०६॥
परिहरि सुख थरिहरि परी करि करि सुरत बिसेखि।
तरिहरि आनन करि रही अरिहरि याकी पेखि ॥५०७॥
लखि आगम रितुराज कौ घर बाहिर न सुहात।
पिय हियरै लागी रहत तऊ हियै अकुलात ॥५०८॥
हरि दृग समता कवि कहैं करि कविता मिस सोइ।
नाहक तोरत कंज बन मूरख कहत न कोइ ॥५०९॥
बंसी धुन स्रवनन सुनत अंग अनंग मरोर।
चित्र लिखी सी ह्वै रही चकित चितै चहुँ ओर ॥५१०॥
मृगलोचनि सोचति कहा कह मोचत जल नैन।
बन उपवन बहु बाटिका सुनियतु पिय पुर ऐन ॥५११॥
नाह महल आगै बनौ सुंदर बाग तड़ाग।
सोच मोच मृगलोचनी चलौ भलौ तौ भाग ॥५१२॥
सुंदर हारसिंगार कौ हरि उर हार निहारि।
हारि परी हिय हहरि कै यह सुकुमारि कुमारि ॥५१३॥
आवत केलि-निकुंज कर लिए मंजरी लाल।
देखि मंजरी मंजरी रूप मंजरी बाल ॥५१४॥
लखी कंज कर आम की मंजु मंजरी ऐन।
पीरी सब अंगन परी बीरी लेत बनै न ॥५१५॥
गहत चहत नहिँ पंचसर जान याहि जय मूल।
एकै रौदा पर धरयौ मदन करौंदा फूल ॥५१६॥
छबि-सागर नागर निरखि नट नागर बर बेस।
कदलि पत्र सम थरहरी कदलि पत्र कर देखि ॥५१७॥
सुन सखि हौं बौरी भई मोहि चढ़ो यह गारि।
हा हा जाउँ जु नंदघर तन मन आऊं वारि ॥५१८॥

करत उछाहै मिलन की सुनि चाहै चित चाहि।
बिन ब्याहै ब्रजचंद की छाँहीं छुवत लजाहि ॥५१९॥
चटक चटकतानन फटिक लटकि लटकि फिर जाति।
खटक खटक्क पिय हिय अटकि गहति सु पर मुसक्याति ॥५२०॥
गाइन अति भाइत भरति अर्प तर्प की तान।
अर्प दर्प कंदर्प जनु कीनौ सर संधान ॥५२१॥
सबज पोस जरपोस करि लीनौ लाल लुभाइ।
भाइ भाइ फिर भाइ करि करति घाइ पर घाइ ॥५२२॥
मो दृग बांधे तुव दृगनि बिना दाम बे-दाम।
मन महीप के हुकुम तैं फौजदार कौ काम ॥५२३॥
तन तैं मन तैं मिलन तैं भई कबहुँ न्यारी न।
रही लालसा री हियै दई लाल सारी न ॥५२४॥
हित ही कौ नौकौ कियौ जी कौ जीवन जंत्र।
सी कर रति आरंभ कौ महाबसीकर मंत्र ॥५२५॥
कर परसत सिसकीन कौ सोर सुनावत बाम।
चहति अदा मैं कौनही चहति अदामै दाम ॥५२६॥
अंग अंग आभा दृगनि निरखति तजति न भैान।
नित पलकन दूषित रहत पिय सुभाय यह कौन ॥५२७॥
अलि आए परदेस तैं कालि सांवरे गात।
आज संग के सखन सौं पूछत मग की बात ॥५२८॥
तेरो पति सब काम तजि आवत सांझ सहेत।
मेरे देखन कौ ललन फिर फिर फेरी देत ॥५२९॥
सांझ समै कुंजन गई देखत चकित चकोर।
ससि तैं नैन निवार कै चितवत मो मुख ओर ॥५३०॥
अंग अंग छवि बनक लखि कनक तनक छवि देत।
भूषन दूषन से लसत पहिरावत किहि हेत ॥५३१॥

यह समता क्यौं करि बनत मो कर मुख मृदु गात।
कमल कलाधर कनक लखि कबि कुल कहत लजात ॥५३२॥
मो दुति देखे दामिनी दमयंती रँग फीक।
रंभा मैं रंचक नहीं रति मैं नहीं रतीक ॥५३३॥
गात गुराई हेम की दुति सु दुराई देत।
कंज बदन छवि जान अलि भूलि भाउरै लेत ॥५३४॥
नाह और के हाथ यह सुनी सखिन मुख बात।
समुझ रूप गुन चतुरई चतुर न हिए सकात ॥५३५॥
मो हित तू अति स्रम कियौ यहै स्वेद कन साख।
भली गई आई भली भलौ लाल रुख राख ॥५३६॥
भाग नगर काबिल दिनी निपट कुमाऊं लेखि।
मो रँग रह्यो विहार मैं आई सूरति देखि ॥५३७॥
अरी बदी सी लखि परी अवधि बदी सी जाइ।
गई नदी सी तासु ढिग रही नदी सी न्हाइ ॥५३८॥
कलित स्वेद-विगलित बचन लखियतु कंपित गात।
भली भांति समझी अली कहत चली क्यों जात ॥५३९॥
तू न लखति कसि तून कटि सजि प्रसून धनु बान।
प्रान आनि फेरी मदन करी मान तजि मान ॥५४०॥
होत सुजान अजान कत बैठी भौंहन तान।
ल्यायो मदन महीप कौ ना फुरमा फुरमान ॥५४१॥
यह बसंत आयौ लखौ रह्यौ मदन सर तान।
अब न मार नैहै कहूं मानिन मानि न मान ॥५४२॥
देखि घटा छन छबि छटा छुटत मुनिन के ध्यान।
बैठी भौंहैं तान सखि क्यौं रैहै मन मान ॥५४३॥
मोरि मोरि मुख लेत है नहिँ हेरत इहि ओर।
कुच कठोर उर पर बसत तातै हियो कठोर ॥५४४॥

गही गुसा चितवत मही कही बहुत समुझाइ।
यही पकर पारी रही रही मनाइ मनाइ ॥५४५॥
कही मान ऐंठति कहा दै दै बैठति पीठ।
पिय मुख किन हेरत हरष फिर फिर फेरत दीठ ॥५४६॥
नए मान देखे न ये उनए घन अमनैक।
लालन ये पाइन नए नए मानती नैक ॥५४७॥
तोहि रसत तो तन वसत निकसत मन अकुलात।
मंजु मालती तजि अली कनक कली पर जात ॥५४८॥
मनहि मान मेरी कही नव दुलही सुखदान।
इतनौ तन सोहत न ये एरी इतनौ मान ॥५४९॥
कहियतु सो करियतु नहीं धरियतु रिस मन आन।
अनख अंग छीजत खरौ कत कीजतु मन मान ॥५५०॥
पर सौहैं चितवत कहा घर सौहैं चित लेखि।
बर सौहैं दृग कर अहै बरसौहैं घन देखि ॥५५१॥
अभिरामिनि जामिनि सरद दामिनि दुति सरसाव।
गज-गामिनि तज मान अब कामिनि सुख सरसाव ॥५५२॥
यह तोमैं नोखी नई परी अरी कह बान।
गई बीत जुग जामिनी कह्यौ भामिनी मान ॥५५३॥
कोटि जतन करि करि थके तजत न कैहूं मान।
हरष हँसी नागर सुघर दो हा कहत सुजान ॥५५४॥
सौहैं लखि सौहैं करत अब त्यौरी न तरेरि।
नेह भरे निजु नाथ सौं नेह नजर भर हेरि ॥५५५॥
दंपति एकै सेज पर काम-कला रस लेव।
मान करै मानै दुवौ मान मनावन हेव ॥५५६॥
ताकी यौ ताकी दसा थाकी कर उपचार।
मार सुमार करी खरी वह सुकुमार कुमार ॥५५७॥

पानिपहीन लखै परत कहा छपैयतु आप।
नथ-मोती तैं जानियतु अली बिरह कौ ताप ॥५५८॥
फूल-माल अति प्यार कर कर सौ दिय पहिराइ।
तुरत उतार लई सुघर पिय की दीठ बचाइ ॥५५६॥
चंदन चूर कपूर घसि अरु कपूर लपटाइ।
आब गुलाब सुलाब किय तऊ न ताप बुझाइ ॥५६०॥
मोर सोर घन घोर तैं उर उपजावत मार।
लपटी लता तमाल सौं बिरहिन करत सुमार ॥५६१॥
कल न परत तलफत तलप अलप बचन मुख नाहिं।
जतन जतन की जाचना करत अतन तन माहिं ॥५६२॥
अनत रसत मिलत न बनत रहत न बनत बिहाल।
घरी घरी तलफत खरी परी परी सी बाल ॥५६३॥
अलप सलिल सफरी भई नए बिरह सुकुमार।
तलप परी तलफत खरी करी सुमार सुमार ॥५६४॥
बिरह जरनि गुरजन दुरनि छुवत न पंकज-पात।
जोवति मग सोवति नहीं रोवत रैन बिहात ॥५६५॥
नहिँ बोलत डोलत नहीं खोलत नहीं कपाट।
लेखत दिन बेषत गहै पेखत पिय की बाट ॥५६६॥
लै प्रसून पूजत सिवा मेटन बिरह कलेस।
खोल मुठी चित चकित ह्वै देत चढ़ाइ महेस ॥५६७॥
यह निसि दिन माथे बसत वह सिव कियौ अनंग।
बंधु हेतु हिय समुझि ससि करत ताप अति अंग ॥५६८॥
अधरन पर बेसर सरस लुरकत लुरक बिसाल।
राखन हेतु मराल जनु मुकति चुगावति बाल ॥५६९॥
तन झुरसी तरसी हियै परसी बिरह जरूर।
द्गनि वारि झर सी लगी दरसी अरसी नूर ॥५७०॥

कहत आन की आन मुख सुनत आन की आन।
पिय प्यारे चल चाहियै तिय प्रानन की प्रान ॥५७१॥
कोइन की छबि कहि सकै को इनकी छबि लाल।
रोचन तैं रोचन कहा जावक जपा गुलाल ॥५७२॥
लसत हिए छबि देत यह बिन गुन मन की माल।
रोचन रँग रोए मनौ सोहत लोचन लाल ॥५७३॥
लाल लाल लोइन निरखि लालन के नव बाम।
हाथ आरसी लै लखति निज लोचन अभिराम ॥५७४॥
उसनीधे बींधे बिधे सुखन लखि लोचन भर पाथ।
बोली नहिँ सुंदर सुघर सुकर मुकर दै हाथ ॥५७५॥
सुनियत गुनगन रावरे गुनियत मन दै ठीक।
वहै लीक जाहिर करत यहै पीक की लीक ॥५७६॥
ओंठनि अंजन दृग अरुन बनी घनी छबि आज।
भोरहि आए भोर बन मोहि भोरवन काज ॥५७७॥
वाके उर लागे निसा पागे परम सनेह।
लागे नख रागे रँगन अनुरागे अवगेह ॥५७८॥
सब गुन आगर देखिए नागर परम प्रबीन।
रस-सागर जा उर लगे रूप उजागर कीन ॥५७९॥
निसि जागे रागे नयन पागे परम सनेह।
भाल लाल इहि हाल सौ आए मेरे गेह ॥५८०॥
झपकौहैं पल देखियतु कहत हँसौहैं बैन।
अलसौहैं सौ गात कत करत मिचौंहैं नैन ॥५८१॥
रोस सोस फिरि होस करि फेर पठावति मोहि।
मोह सुमोहन सौ लग्यौ कहा सिखाऊं तोहि ॥५८२॥
कलह करत नेहै करत तेरी बान सनाम।
कहा चूक है स्याम की तूही बाम सुबाम ॥५८३॥

कल न परति हहरति हियै नए बिरह ब्रजनाथ।
खिन खिन छबि छीजति खरी खिन खिन मींजति हाथ ॥५८४॥
बिन गुनाह निज नाथ सौ नाहक भई सरोस।
अनख हिए कत कीजियतु काहि दीजियतु दोस ॥५८५॥
हौं रस मैं अनरस कियौ तूं न लगी रस राह।
तब कस ना बस ना कह्यौ अब रसना लगि नाह ॥५८६॥
साजि साज कुंजन गई लख्यौ न नंदकुमार।
रही ठौर ठाढ़ी ठगी जुवा जुवा सौ हार ॥५८७॥
पिय बिन सूनी सेज लखि सूनी सी हिय बाल।
भौंहैं चढ़ी कमान सी उतर परी तिहि काल ॥५८८॥
सजि सिँगार कुंजन गई लह्यौ नहीं बलबीर।
ठीढ़ी ठाढ़ी सी तरुन बाढ़ी गाढ़ी पीर ॥५८९॥
दिनकर कर दरसे सुखद गई निसा सब बीति।
मोसौं प्रीति प्रतीत दै कहूं रची रस-रीति ॥५९०॥
यही अवधि पर ल्याइहौं तेरी सपथ सुजान।
उडगन गन बिरले परे भामिनि भयो बिहान ॥५९१॥
अधरतिया की कर अवधि कीनी फिर न सम्हार।
भए कौन धौं तिया के छक छतिया के हार ॥५९२॥
दीप-सिखा फीकी भई गई छपा की छांह।
जानत पिय पागे अनत अनुरागे छबि मांह ॥५९३॥
उडुगन गगन मलीन छबि छनदा गई सिराइ।
रसिया रस लूटौ कहूं बन तैं अनतै जाइ ॥५९४॥
नहि डोलति खोलति दृगनि सकुच न बोलत बोल।
अमल कमल दल से दुवौ पीरे परे कपोल ॥५९५॥
कुंजन अलि गुंजन लगे किय कलक्खिकन सोर।
सजनी गत रजनी भई नीरजनी छबि ओर ॥५९६॥

इतै उतै चितवत रहै चितै रहै निसि जाम।
हितै हितै तन कौ अली कितै रहै घनस्याम ॥५९७॥
जटित जवाहिर आभरन करि बैठी इक तौर।
पिय कौ आउन जानि कै दिया दिया कहि दौर ॥५९८॥
करि मजेज सज सेज पर बैठी साज सिँगार।
खोलि किवारन कौ रही इकटक नैन निहार ॥५९९॥
महल महमही महक मग मनवर मैन मजेज।
सौति सुहागहि रेज करि साजी सुंदर सेज ॥६००॥
सजि सिँगार आनँद मढ़ी बढ़ी सरसऊ छाह।
रंगमहल फूली फिरति चितवत मग चित चाह ॥६०१॥
उदित उमंग अनंग वर उर उमग्यौ अनुराग।
सजत सेज भूषन बसन अंग अंग अँगराग ॥६०२॥
सज सिंगार सुख सेज पर बैठी बाल रसाल।
लाल लाल मनि लालमनि जनु जगमगत रसाल ॥६०३॥
तन सिंगार कुच-भार तैं हार हियै पहिरै न।
ल्याई प्यारी प्यार कर प्यारे हिय हहरै न ॥६०४॥
भौंहैं तान कमान बर नैन सरन कर साधि।
गहि राख्यौ मन लाल कौ अलक जँजीरन बांधि ॥६०५॥
प्यारी पेखत पेखनौ उभक झकोरन वंक।
भौ प्यारे कौ पेखनौ प्यारी बदन मयंक ॥६०६॥
घन घेरे नेरे रहत हेरे खरी लजात।
मो मुख देखे बिन उन्हैं कल न परत दिन-रात ॥६०७॥
चलौ छबीली हित चितै छोड़ सहेली साथ।
अति इतरात बतात कह परखत गोपीनाथ ॥६०८॥
चंदमुखी मुखचंद की दई छटा छुटकाइ।
रही चांदनी चौक मैं चारु चांदनी छाइ ॥६०९॥

बड़ अँखियां बड़रे दृगन बड़े रूप यह बाल।
वह चित चाहति चाह सौं चलौ छबीले लाल ॥६१०॥
चलौ लाल वह बाल सौं कीजै सरस बिलास।
मंजु कुंज मैं करि रही अति छबि पुंज प्रकास ॥६११॥
लाई मान मिटाइ सखि पाइन पारी आइ।
रहे लाल उर लाइकै मनौ रंक निधि पाइ ॥६१२॥
लता लचत बरही नचत रचत सरस रसरंग।
घन बरसत दरसत दृगन सरसत हियै अनंग ॥६१३॥
सुंदरि मनि-मंदिर खरी छिति छलकत छबि जाल।
लसत मंजु महँदी नखनि चखनि बिलोकहु लाल ॥६१४॥
तैसी जरतारी सुही सारी जगमग जोति।
चलि प्यारी पिय पै बिहरि बलिहारी रति होति ॥६१५॥
सजि सिँगार अनुराग कर देखौ बाग बहार।
चलि बस मैं प्रीतम करहु रसमय समय निहार ॥६१६॥
चलन कहत नाहीं कहत कौने सिखई तोहि।
बहिरावत बातन कहा बहकावति नित मोहि ॥६१७॥
चलि बल अब न बिलंब कर लखि इत रात सिरात।
समुझ सयानी बात अब कत बैठी इतराति ॥६१८॥
सटकारे कारे सरल लसत सुहाए बार।
देखहु बलि चलि औचका नवल बधू सुकुमार ॥६१९॥
जुवति कन्हाई रस पगी पगन डगमगी ऐन।
सुचि सौंधे से सगबगी करी जगमगी रैन ॥६२०॥
चीर चुरैलन भीर मग नीर गभीर मझाइ।
करि पन्नग के पाउँड़े पिय पै पहुँची जाइ ॥६२१॥
तन-दुति लखि लाजति तड़ित भाजत घन छपि जात।
छबि छाजत राजत खरी नए नेह सरसात ॥६२२॥

सरद कलानिधि कमल की नारद करत बिसेखि।
छवि छलकत झलकत बदन मन ललकत दुति देखि ॥६२३॥
खरी दुपहरी जेठ की लखि न परी तिहि माहिँ।
लपट अरुन पट लपट सी झपट चली छपि छाहिँ ॥६२४॥
चलि देखौ दुति दामिनी दिपति मनौ दुति रूप।
मंजु मंजुघोषा भई जोषा जगत अनूप ॥६२५॥
कुंजन लौं नव नलिन की कली रही फब फैल।
कीनी गरक गुलाब सौं तिन कुंजन की गैल ॥६२६॥
पंकज से पसरे लखे कंटक बिकट अपार।
दिखि अपंथ सौ पंथ लौ चली भली अभिसार ॥६२७॥
अली जात मग देखिए दीप सिखा सी नार।
चली भली निज गेह तैं स्याम सनेह निहार ॥६२८॥
काम-केलि सुंदर कला निसि दिन करति अलेखि।
पिय-अनुराग सुभाग कर चली सुहागिल देखि ॥६२९॥
फैले बूंद फनिंद के गैल छैल नहिँ भूल।
मेघपुंज तमकुंज कौ चली अली अनुकूल ॥६३०॥
भूर भाइ हिय दूर लगि लखियतु सदा सहूर।
नेह नूर दरसत दृगन प्रेम पूर भरपूर ॥६३१॥
पहिरि सेत सारी सरस चंदन चरचित देह।
चंद्र उदै लखि चंद्रमुख बिहँसि चली पिय-गेह ॥६३२॥
लखि निकुंज सूनौ दृगनि रही सुघर मुख मोर।
पिय लखि फूलन मिस चली कलित कुंज की ओर ॥६३३॥
वह न कहत हौं हूं कहत तन कौ बिरह कलेस।
घरी एक मैं होइगो दुर्लभ वचन सदेस ॥६३४॥
ललन चलन सुनि पलन मैं आइ गयो बहु नीर।
अधखंडित बीरी रही पीरी परी सरीर ॥६३५॥

तिय हिय अंकुर प्रीति के होन लगे द्वै पात।
यह हांसी छोड़ौ चलन ललन चलन की बात ॥६३६॥
रवन गवन सुनि भवन मैं चटपट निपट उदास।
हियै दहत कहत न कछू दीरघ लेत उसास ॥६३७॥
ललन चलन कौ चलन सुनि मलिन हिए अकुलात।
फिलकी बूझति सासु के हिलकी उर न समात ॥६३८॥
मांगी बिदा बिदेस कौ दै जराइ अनमोल।
बोली बोलन सुघर तिय दिय अलाप हिंडोल ॥६३९॥
पीरी पीरी तन भई बीरी लेत लजात।
सुनि स्रवनन प्रीतम गमन सोसन हियौ हिरात ॥६४०॥
कल न परत जब तैं कही ललन चलन की बात।
लगी पिया छतिया तिया छतिया नहीं सिरात ॥६४१॥
चितवत घूंघट ओट ह्वै गुर जन दीठ बचाइ।
स्रवन सुनत प्रीतम गमन अगमन गई ससाइ ॥६४२॥
कहा कहौं कहत न बनत प्रीतम करत पयान।
बरबस आप समान मुहि करिहै अतन अमान ॥६४३॥
गमन तिहारौ सुनि रवन पठवत सब सुख साथ।
निज प्रानन प्यारी वहै सौंपति मेरे हाथ ॥६४४॥
मिलि बिछुरत मिलि मिलि चलत फिरि फिरि मिलि अकुलात।
दिन दिन चलन कहै ललन दिन दिन रहि रहि जात ॥६४५॥
तुरत गमन सुनि ललन कौ सुन सखि परम प्रबीन।
छिन उछलत छिन छिन बिकल जल बिछुरत जनु मीन ॥६४६॥
ललन चलन सुनिकै वही रही हिए मैं हार।
मुख बोलत खोलत न दृग नवल बधू सुकुमार ॥६४७॥
मनभावन आवन सुनौ सुख सरसावन बोल।
पुलकत तनु हुलसत हियौ बिहँसत ललित कपोल ॥६४८॥

बहु बासर बिछुरे मिले दंपति परि परजंक।
हियरे लगि मेटति बिरह भेंटति भरि भरि अंक ॥६४९॥
स्रवन सुनत पिय आगमन हरषि हरषि सुखदानि।
भुज फरकत हुलसत हियौ दरसत मुख मुसक्यानि ॥६५०॥
तन की गति औरे भई नहिं जानत सखि सोइ।
वाम आंख फरकत चुरी कर की करकी दोइ ॥६५१॥
आवत पति परदेस तैं लखि हरषी हिय वाम।
ललकि लगाइ लगाइ उर सुख पावत अभिराम ॥६५२॥
सखिन संग सोहत खरी आए सुनि नँदनंद।
लोचन लालन के लखे भयौ मोद-सुख-वृंद ॥६५३॥
मनि मंदिर डोलत खरी हँसि हँसि बोलत बैन।
लखि नँदनंद अनंद की उघरी सुघरी ऐन ॥६५४॥
नींद भरे आलस भरे लखि पिय अंकित गात।
तऊ ललकि लागी गरैं हरैं हरैं मुसक्यात ॥६५५॥
गहौ मौन धीरज धरौ रति अंकित पिय पेखि।
हरैं बात कहि अलि अहे वे हिय बसे बिसेखि ॥६५६॥
आवत अंक न अंक लखि रति के तिया ससंक।
करौ मान पिय पगन पर तजौ मान तिहि बंक ॥६५७॥
पगनि परो पेखत न पिय हिय न लगत अनखात।
हगन असुभर सी लगी झुकि झुकि झुकि झहरात ॥६५८॥
डरत नहीं कुलकानि तैं जदपि कठिन ब्रज तौर।
तदपि तरुनि तरुनी भई नेह नदी की भौंर ॥६५९॥
उन नैननि चितवत न अब चितवत चित कौ हेत।
नई नई रीतैं करत नई नई चित देत ॥६६०॥
कहत और औरै करत निसिदिन आठौ जाम।
नीकै नेह निबाहिबो है सबही को काम ॥६६१॥

सोच मोच मृगलोचनी कितिक सौति छलछंद।
मंद करत ससि सरद कौ तो मुख राका चंद ॥६६२॥
चरचि चबाइन कहति है सो नाहीं चित देहु।
नैन कलस कर सांवरौ रूप-सुधा-रस लेहु ॥६६३॥
सीख मान मेरी हियै तजि सब चार बिचार।
सो तन देखत ह्वै रहौ निज प्रीतम उर हार ॥६६४॥
कहत रात कौ पेखनौ क्यौं सब सखिन सुहात।
मो उर गांसी सी लगत मो हाँसी की बात ॥६६५॥
तुव तन लगि सुरभित पवन गवन करत गति मंद।
ताकौ अति आदर सहित परिरंभत नँदनंद ॥६६६॥
रस ही मैं रस पाइयतु यह सुरीत जग जोइ।
वा मुख की बतियान सौं अनरस मैं रस होइ ॥६६७॥
यह समयो पैहौ न फिर अजौ समुझ चित चेत।
बनत न फिरि कौनो जतन अतन अतन कर देत ॥६६८॥
स्रम बिलोकि दोरत पवन कहत न गवन प्रसंग।
राखत पिय करि प्यार जिमि हरि गिरिजै अरधंग ॥६६९॥
दरसै तै दुख दूर है परसै होत अनंद।
तुव तन सोभासिंधु है तुव मुख राकाचंद ॥६७०॥
नेह भरी अँखियान सौं चितवत तो तन ओर।
भयो रहै नँदनंद अलि मो मुख-चंद चकोर ॥६७१॥
मुख नांही बांही गहत नाही नाहीं ठीक।
प्यारी तौ प्यारी लगत ही तै नाहीं नीक ॥६७२॥
करी बहुत मनुहार पै अनख भई अनखैल।
गांठी कस दीबी मिसन नीबी छोरत छैल ॥६७३॥
बचनन मैं दरसावती अनखाहट की रौस।
बनी रहत उर मैं ललक रूखे रुख की हौस ॥६७४॥

लियै आरसी लाल कर माँगी एक लुभाइ।
राखि उकर सबकौ गए मंदिर मुकर लिवाइ ॥६७५॥
तोर कंज दीजे हमैं सबन कह्यौ पिय आइ।
तोरि कंज मंजुल बिहँसि दीन्हें स्याम चलाइ ॥६७६॥
तोरि फूल दीजै हमैं सबनै कह्यौ सुनाइ।
चंपक तरुनी स्याम हँसि दीन्ही डार नवाइ ॥६७७॥
धरत न चित सीखे कहा दुरत न लोक कलंक।
रहत सदा परदार हित परदा रहित निसंक ॥६७८॥
बिहँसि बिहँसि सखि साथ तैं मुरकि चितै इहि ओर।
मो मन माँझ गड़ी रहै वह कजरारी कोर ॥६७९॥
वदन मोरि हँसि हेरि इत नैन नैन सौं जोर।
गोरी थोरी बैस की लै जु गई चित चोर ॥६८०॥
मिली साँकरी खोर मैं गोरी मुख मुसकाय।
नैन जोरि ढिग ह्वै कढ़ी नैंसुक नेह जनाय ॥६८१॥
रूप सरस पानिप भरयौ पावत नेकु न थाह।
घूम घूम मन घिरतु है झूम झूमकन माह ॥६८२॥
मन मनमथ फंदन परयौ क्यों हूं निकसतु नाह।
तिहि पर लुरकन लुरक की गड़ी रहत हिय माह ॥६८३॥
हावनि वहु भावनि करति मनसिज मन उपजाइ।
दाइल वह थाइल करत पाइल पाइ बजाइ ॥६८४॥
धनुष वेद के भेद बहु मनौ पढ़ाए मैन।
चुकत न चोट अचूक ये मृगनैनी के नैन ॥६८५॥
घूंघट पट की ओट है चोट अचूक चलाइ।
चंचल चखन चितै गई चितै गई ललच्याइ ॥६८६॥
सरसत सुख दरसत दृगन परसत रस की खानि।
गांसति चित चितवनि ललित फांसति मुख मुसक्यानि ॥६८७॥

बदन फेरि हँसि हेरि इत करि ललचौंहैं नैन।
उर उरकी दुरकी लुरक जुर मुरकी कर सैन ॥६८८॥
दृगन जोरि चित चोर विधु बदन मोरि मुसक्याइ।
गई अली की ओट ह्वै चितवन चोट चलाइ ॥६८९॥
ऐन मैनमय सैन करि बदन मोरि दृग जोरि।
नागर नेह निसा करी वहां सांकरी खोरि ॥६९०॥
ललचौंहीं कछु बात कहि तिरछौंहीं अँखियान।
खटकी उर अटकी रहत वा मुख की मुसक्यान ॥६९१॥
सखिन संग कर गहि अटति नटति दिवावति सौंह।
नैकु नहीं हिय तैं टरति वह तिरछौंहीं भौंह ॥६९२॥
कछुक मोरि मुख जोरि दृग तिरछी भौंह चढ़ाइ।
गई अली की ओट उठि मंद मंद मुसक्याइ ॥६९३॥
कहु ऐसी रति वर कला अनत न लखियतु चारु।
या तैं मो मन पुरवधू भई हिए को हारु ॥६९४॥
झिलमिलात भूषन बसन अंग अंग सुकुमार।
मनमथ की बूटी मनौ नगर-बधूटी नार ॥६९५॥
और तौर आभा अमल भूषन औरै तौर।
रची बिधाता पै न कहु बार-बधू सी और ॥६९६॥
तीन कौन दिन भौन मैं सोनजुही सी बाल।
झमकि लागिहै मो गरे ज्यों बनमाल रसाल ॥६९७॥
बिरह लपट की झपट की तवै तपन यह जात।
लपटि लपटि पिव भेटिए गोरो गोरे गात ॥६९८॥
नैन सुने जे नेह के गड़े हिए निकसै न।
वह इठलानि बतानि वह बिसराए बिसरै न ॥६९९॥
सालै नित नटसाल सी निकसि सकै किहि भांति।
बड़ी बड़ी अँखियां हियै गड़ी रहैं दिन राति ॥७००॥

मुख बिलोक दृग करि सकल गरै मेलि भुजमाल।
सुख समेटि कब भेंटबी सोनजुही सी बाल ॥७०१॥
हँसि हँसि हठि हियरा हरति करति बहुरि मनुहारि।
सुखद प्रीति परनारि की रची बिरंचि बिचारि ॥७०२॥
सौंहैं करि लोचन जुगल करि करि भौंहैं बंक।
कब लगिहै गुन आगरी नगर नागरी अंक ॥७०३॥
अंग अंग आभा अमित अमल कमल सी बाल।
तासौं रुख रूखो करत कौन चाल यह लाल ॥७०४॥
बार बार यातें कहत यह मेरे जिय सोस।
क्यों सैहै सुकुमार वह तुमरौ आतप रोस ॥७०५॥
जब तें रुख रूखो कियो तब तें अति अकुलात।
लालन लखि वाकी दसा मो पर कही न जात ॥७०६॥
लाल तिहारे रूप कौ नयो जाल दरसात।
जामै खंजन दृगन के दृग गंजन फँसि जात ॥७०७॥
लगी अंक परजंक पर मुख मयंक मुसकात।
जान परी नहिँ ललन कौ वह जिय तैं रिस जात ॥७०८॥
उठे सघन घन लखि गगन अधिक अँधेरी रात।
कहो अकेलो जावगी बरसाने किहि भांत ॥७०९॥
हम सबके दृग मूंदिहैं जान आपनो मेल।
आवो जुर मिल खेलिए चोर-मिहाचन खेल ॥७१०॥
हँसकै हरि सब सौं कह्यौ देखहु बाग बहार।
हम गूंदत निज करन सौं सुमन सुमन कौ हार ॥७११॥
लखी लाल कर नागरी सुघर मंद मुसक्याइ।
मुख मिलाय गवरी रहो अँगुरी हियै लगाइ ॥७१२॥
खेलन के मिसि संग की दई सबै बहराइ।
मनभाई प्यारी ललन लीन्ही कंठ लगाइ ॥७१३॥

ससकत मुख सीबी करत वहै छबीली बाल।
फिर फिर चित्र भुजंग कौ दृगन दिखावत लाल ॥७१४॥
दोऊ प्रेम भरे खरे करि करि स्वांग अनूप।
लालन ललना रूप धरि ललना लालन रूप ॥७१५॥
अंगराग अंगनि चरचि भूषन साज सिँगार।
बिहँसति रति-मंदिर चली सुंदर अति सुकुमार ॥७१६॥
अंग अंग छवि जगमगत पहिरत भूषन अंग।
वही हरी सारी हरी सारो सौति उमंग ॥७१७॥
बंसी धुनि स्रवनन सुनत तन मन अति अकुलाइ।
दौरी जावक दै दृगनि अंजन पगनि लगाइ ॥७१८॥
उझकि झरोखनि झांकि झुकि लखि लालन मन मोद।
हिय हुलसति सरसति सुखनि बिलसति विविध विनोद ॥७१९॥
रस मैं हौं अनरस कियौ प्रीतम दियौ उठाइ।
अब कासौं कहिए कहा ल्यावै कौन मनाइ ॥७२०॥
भरत अंक परजंक पर हँसि बिहँसति बतरात।
ज्यौं ज्यौं तिय नाहीं करत त्यौं त्यौं सुख सरसात ॥७२१॥
कह्यौ न मानत हौं कहूं सीखे कौन सुभाय।
सकुचत नैकु न आपने कत सकुचावत आय ॥७२२॥
सजि सिँगार भूषन बसन सुंदर सरस सभाग।
चली भली नँदलाल कौ मिलो सहित अनुराग ॥७२३॥
हौं तो सौं सांची कहत तू झूठी मति मान।
मन भावन देखे धरी लाज लजावत आन ॥७२४॥
दुरि दरसति दामिनि दमक बरसत घन घनघोर।
चाहत चित चित-चोर कौ डारी मदन मरोर ॥७२५॥
जितै बसै प्रीतम वहै करि करि उर अभिलाष।
राखत सूरजमुखी लौं मुख वाही रुख राख ॥७२६॥

रहत बिसूर बिसूर नित तातैं बिनऊं तोहिं।
दै रे लिखि सूरत वहै चतुर चितेरे मोहिं ॥७२७॥
यह रँग है घनश्याम कौ काहू दीनौ तूल।
तिहि रँग सौं रँग सी गई देखत अरसी फूल ॥७२८॥
मान करन नाहीं करन फिर हिय सौं लगि जान।
निसि दिन चतुर सुजान की नहिं बिसरति वह बान ॥७२९॥
लागत अगर अँगार सौं कहा कहौं सखि तोहिं।
गर सौं बर लागत सबै नगर नाग सौ मोहिं ॥७३०॥
औरै मन औरै बिपिन औरै पौन बिसेखि।
औरै ना औरै कछू औरै औरै देखि ॥७३१॥
हारो हरि करि करि जतन करी अतन तनवी न।
सेज परी तलफत खरी बिना बारि ज्यौं मीन ॥७३२॥
घटत नहीं कैहूं कहूं अनुदिन बढ़त अछेह।
वही कूबरी के विरह भई दूबरी देह ॥७३३॥
सपनैं मैं प्रीतम मिले हिले खेल रस ऐन।
कहा कहौं तौ लगि गई नींद निगोड़ी नैन ॥७३४॥
वह चितवन बिहँसन वहै आए प्रीतम भौन।
बीरी लेत न देत कर कहा रहे गहि मौन ॥७३५॥
मोर मुकुट कटि पीतपट मुरली अधर विराज।
पाइ दरस पायौ अली नैनन को फल आज ॥७३६॥
जब जान्यौ या जीव कौ कहूं नहीं बिस्राम।
सुन साके जुग चार के तातै ताके राम ॥७३७॥
सचर अचर जग जीव ते सब बिधि होत सनाथ।
देत काम सब काम के तकत कामतानाथ ॥७३८॥
मन बच कर्म सुनाइ कर रघुपति पद अनुराग।
सो जानत सिय राम हैं धन्य भरथ कौ भाग ॥७३९॥

जो कविता मैं आदरत साहित रीति बिचार।
सो निहार लघु करि कह्यौ निज मति के अनुसार ॥७४०॥
जो कछु पूरब कविन तै बरनी काव्य सुबानि।
से बिचार करु चारु मैं दोहा कहे बखानि ॥७४१॥
रस धुनि गुनि अरु लच्छना बिंग्य सब्द अभिराम।
सप्त सही यामैं सही धरयौ सतसई नाम ॥७४२॥

दीपिका

[अंक दोहों की संख्या के सूचक हैं]

(१) तुलसी-सतसई

१. परधाम—सबसे परे है धाम जिसका अर्थात् सर्वोपरि।

२. सुर-तरु—कल्पवृक्ष जो इच्छानुकूल फल देता है।

३. जापर—जिसके ऊपर; अपर न आन—और दूसरा कोई नहीं। निरबान—निर्वाण, मोक्ष।

७. घरतर—श्रेष्ठ घर।

८. अनत—अन्यत्र, और जगह। अटन—दौड़ना, भटकना।

१०. रुख—(फारसी) सम्मुख।

११. वदहि—(संस्कृत वदति) कहता है।

१२. न अथवत—अस्त नहीं होता। कुतसित—कुत्सित, तुच्छ, नीच। तम—अंधकार, पाप, अज्ञान।

१८. बरन-बिपरजय—वर्ण-विपर्यय, अक्षरों की उलट पुलट। 'राम' शब्द सब मंत्रों का और ज्ञान का मूल समझा जाता है। रेफ और अनुस्वार से ही व्याकरण के सूत्रों के अनुसार प्रणव मंत्र 'ॐ' और 'सोऽहम्' तथा ह्रीं, श्रीं, क्लीं आदि सब बीज मंत्र सिद्ध किए जाते हैं।

२१. इस दोहे से तुलसी-सतसई का रचना-काल निकलता है। अहि-रसना—२, थन-धेनु—४, रस—६, गनपति द्विज—१। अंक उलटी तरफ से गिने जाते हैं—अंकानां वामतो गतिः। इस प्रकार १६४२ संवत् निकलता है। माधव—वैशाख मास। सित—शुक्ल पक्ष। सिय-जनम-तिथि—सीताजी का जन्म नवमी को हुआ था।

५१

२४. म-न-भ-य-ज-र-स-त—पिंगल के नियमानुसार विभिन्न गणों के नाम। एक गण में तीन वर्ण होते हैं। म गण में तीनों गुरु, न गण में तीनों लघु, भ गण में केवल आदि का वर्ण गुरु, य गण में केवल आदि का वर्ण लघु। ज गण में केवल मध्य का गुरु, र गण में केवल मध्य का लघु, स गण में केवल अंत का गुरु और त गण में केवल अंत का वर्ण लघु होता है। प्रथम चार गण मंगलकारक माने जाते हैं और शेष चार अमंगलकारक। मंगलकारक गणों से ही छंदों को आरंभ करने का विधान है, अमंगलकारक गणों से नहीं। ला—लघु; ग—गुरु। घटना—योजना।

२५. समान—अ-इ-उ-ऋ-ऌ ये पंच स्वर समान कहे जाते हैं। अपर बेद गुरु मान—और गुरु चार प्रकार के होते हैं (वेद ४); दीर्घाक्षर, संयुक्ताक्षर के पहले का अक्षर, अनुस्वार-युक्त और विसर्गयुक्त अक्षर। विकल्प—जहाँ दोनों रूप हो सकते हैं यथा पद के अंत का लघु अक्षर भी कभी कभी सुबीते के अनुसार गुरु पढ़ा जाता है।

२८. मुनियों के कहे हुए उनके सहस्रों नामों में से 'तुलसी-वल्लभ' नाम को सुनकर धर्म-परायण राम को हँसकर देखती हुई सीताजी हृदय में सकुचा जाती हैं। हँसीं इसलिये कि अब आप दूसरों के भी वल्लभ होने लगे और संकोच इस बात का कि हमने राम से ऐसी दिल्लगी की।

२९. रस—काव्यास्वाद। परिजन—सेवक। बरन—राम नाम के अक्षर।

३०. पुरट—सुवर्ण।

३१. करतब—कृत्य, यहाँ पर कविता।

३५. मोर चाहे (वर्षा ऋतु में) मदमत्त होना छोड़ दें।

३६. जोय—स्त्री।

३८. रस आठ—चौदह (६ + ८) विद्या। जुग—भक्ति और ज्ञान।

४०. केवल—एकमात्र। आराम—उद्यान। कलि-कर—कलि रूपी हाथी। निहत—गिराया हुआ। मोहि—मोह में पड़कर।

१०३. चरग—बाज़।

१०४. तुख—छुकला, भूसी।

१०५. जीवन-दानि—जल देनेवाला, बादल। जीवन जल का एक नाम है।

११३. परिहेलु—त्याग दे।

११७. घुर-विनियाँ—घूर पर जाकर मुर्गी की तरह एक एक दाना बिननेवाला अर्थात् हर किसी की सेवा करनेवाला।

१२१. कुतरुक—बुरे वृक्षोंवाला, दंडकारण्य जो रामचंद्रजी के पदार्पण से नंदन वन के समान हरा-भरा हो गया।

१४८. सतर—सत्वर, शीघ्र। लोगों ने इसका अर्थ त्रिगुण अर्थात् स से सत्त्व त से तम और र से रजगुण भी माना है, पर यह खींचा-तानी मात्र है।

१५१. हलंत—व्यंजन, र् और म्। रेफ और अनुस्वार अक्षरों के ऊपर ही दिए जाते हैं। रामचरितमानस में यही भाव तुलसी-दासजी ने और खूबी के साथ प्रकट किया है—

एक छत्र, एक मुकुटमनि, सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के, बरन बिराजत दोउ॥

१५३. विहरत—हरता है। आसु-कर—शीघ्रता से।

१७३. निरय—नरक, नरक, नरय।

१९७. तामरस—(देशज शब्द) कमल।

१९८. बिड़ार—दुःख देती है। बढ़ियार—बढ़ती हुई, बाढ़ में।

२०४. बिलसत—भोगता है।

२१४. दस-जान—दशरथ। उरग-ईस—शेषावतार लक्ष्मण। भ—भरत। स—शत्रुघ्न। दस पद—पाँच व्यक्तियों के दस पैर।

२१५. राग-धर—शार्ङ्गधर (शार्ङ्ग एक राग का भी नाम है) विष्णु।

२१६. तरक-विसेख-निखेध-पति—उमापति, शिव। (विशेष तर्क में उ अक्षर का प्रयोग होता है और निषेध के लिये मा का); मराल ल-रहित पलटि—राम।

२१७. शुक्ल का पर्याय सित होता है। इसके आदि और अंत में एक मात्रा बढ़ाने से सीता हो जायगा। इसी प्रकार कमला का पर्याय **रमा** है। रमा के अंत से **मा** की मात्रा को मध्य में रख देने से राम हो जायगा।

२१८. धनंजय (अग्नि) का बीज र, सूर्य का अ और मयंक (चंद्रमा) का **म** हुआ। इन बीजाक्षरों के योग से राम हुआ। यहाँ यह भी ध्वनित होता है कि अग्नि आदि का मूल राम में है। तम—अज्ञान। तमी—रात।

२१९. कोकनद कानन रंजन वंस अवतंस—सूर्यवंश के भूषण। पुरहित-अरि—पुरहूत इंद्र का शत्रु रावण।

२२०. छत्तीस ह्वै—पीठ फेरकर, जैसे ३६ में ३ और ६ के अंक, विमुख होकर। छव तीन—सम्मुख जैसे ६ और ३।

२२१. कं—सिर। दिग—दस, दशशीश, रावण। दून—इसके दुगुने २०। नक्षत्र—हाथ (हस्त एक नक्षत्र का नाम है)।

२२२. सिला—अहल्या।

२२४. विहँग—(शकुनि), उसका बीच कु। रैयत—(पूरजा), उसका तृतीय अक्षर **जा** इस प्रकार कुजा बना जिसका अर्थ है पृथ्वी की पुत्री सीता। भोर—असावधान।

२२५. कोल (वराह) का दूसरा (**रा**) और राजिव (महोत्पल) का पहला अक्षर (**म**) मिलकर राम। वाहन के पर्याय

जान और निश्चय के पर्याय **किल** के आदि **कि** में एक मात्रा बढ़ाकर (**की**) योग करने से जानकी हुआ।

२२६. जलज—मच्छ। राघव—मत्स्य विशेष; मिति—मर्यादा। रावण के निकट रहने से सागर की मर्यादा भंग हुई, उस पर पुल बँधा।

२२७. तरनि (सूर्य) के अरि राहु का आदि **रा** तथा आत्मज (काम) का अंत्य **म**—राम। पंचानन—शिव। पदुम–कमल, वेद।

२२८. सैल (हिमालय)-सुत मैनाक के आस (निवास) समुद्र की वनिता (स्त्री) गंगा के जन्म का स्थान, विष्णु के चरण। प्रनत–भक्त।

२२९. पतंग (सूर्य) के सुत राधेय (कर्ण) का आदि रा और मृत्युंजय (शिव) के शत्रु काम का अंत्य म—राम। पुष्कर (तीर्थ) में यज्ञ करनेवाले, ब्रह्मा। पांसु—धूलि।

२३०. उलटे तासी—तासी का उलटा, सीता। सौ हजार (लाख) मन—लक्ष्मण; एक (१) सून (०)रथ—दशरथ।

२३१. हर के आसन वाराणसी का द्वितीय और चर्म का तृतीय अक्षर—राम। सास न लहे—प्राणायाम अथवा योग से। उपास—उपवास, लंघन।

२३२. द्वितीय अवतार कूर्म का आदि **कु**, नृप (राजा) का अंत्य **जा**—कुजा, सीता। कमल (राजीव) का प्रथम **रा** और कमल का द्वितीय **म**—राम।

२३३. सुर-पति-अरि—इंद्र का शत्रु रावण। सुचिता-अवधि–गंगा।

२३४. नैन करन-गुन-धरन-बर—आँखों से कानों के गुण को धारण करनेवाले सर्पों में श्रेष्ठ शेषनाग, जिनके लक्ष्मण अवतार माने जाते हैं। यह प्रसिद्ध है कि सर्प के कान नहीं होते, वह नयनों ही से सुनता है। इसी लिये उसे चक्षुःश्रवा कहते हैं। ता वर—उनसे भी श्रेष्ठ राम।

२३५. वाटिका (आराम) के आदि के अक्षर आ को दूर करके राम रहता है और राजिव (ससी) के अंत्य अक्षर के साथ ता जोड़ देने से सीता बनता है।

२३६. जड़ (मृग) मोहनेवाले (राग) और चंचल चित्त (मन) दोनों के आदि—राम।

२३७. अमर-अधिप-वारन—(ऐरावत) का दूसरा वर्ण, रा और अगार (धाम) का अंतिम वर्ण म। इखु—इषु, बाण। सारंग-धनुष।

२३८. उरबिज-उर्विज, भूमि का पुत्र मंगल। सुमनस-देवता।

२३९. पयोधर (धाराधर बादल) का द्वितीय वर्ण रा और बाग (आराम) का अंतिम म—राम।

२४०. पति (भर्ता) चीर-सागर पावन पयोधि और पवन (मरुत) के क्रमशः पहले, दूसरे और अंत्य अक्षर के योग से भरत बना। ता मत—भरत का मत, राम-भक्ति।

२४१. हंस (मराल) का अंतिम, कपट (छल) का पहला, रस (मकरंद) का पहला और गुन का अंतिम अक्षर मिलाकर लक्ष्मण बनता है।

२४२. कना (मकरा) का क निकालकर मरा हुआ। इसमें अंत का अक्षर आदि में रख देने से राम हो जायगा।

२४३. (दश) अंक दसा में, रस का आदि र और पार्थ (पांडु-सूनु) का अंतिम वर्ण—दशरथ।

२४४. (आशु) झटिति का आदि अक्षर निकालकर उसमें सखा (मित्र) जोड़ने और अंत में प्रथम स्वर अ को लगाने से सुमित्रा हुआ।

२४५. चंद्र (राकेश) और चंचल (मन) का आदि—राम

२४६. विगत देह तनुजा—विदेह जनक की पुत्री, सीता।

२४७. करता—ब्रह्मा। सुर-सर-सुता—मानसरोवर की पुत्री, सरयू; शशि (राकेश) का आदि और सारंग (विहंगम—पपीहा) का अंत—राम।

२४८. गिरिजापति (शिव) के आदि अक्षर में एक मात्रा बढ़ाकर, तारा (नक्षत्र) का आदि हरि (तारा) का अंत और संग्राम का अंत्य अक्षर जोड़ो —सीताराम।

२४९. ऋतुपति (बसंत) पद में से आदि अर्थात् ब निकाल लो और पड़िक (रजत—चाँदी में) के अंतिम अक्षर अर्थात् त को निकालकर जोड़ दो, संत-पद-रज हुआ।

२५०. शेष का वाहन कूर्म का आदि कु।

२५१. उडुगण (तारा) के अन्त्य अक्षर तथा वनज (चंद्रमा, समुद्र से उत्पन्न) के अंतिम अक्षर रा और मा को जोड़कर एक कला रहित करने से राम होगा।

२५२. वारिज (राजीव—कमल) और वारिज (मत्स्य) के आदि अक्षरों को मिलाने से राम बनता है।

२५३. कुलिस (हीरा) का अंत्य रा और धाम का अंत्य म दोनों को मिलाकर राम। अली—सखो, सखी फारसी में उदार के लिये कहते हैं इसलिये अलि का अर्थ उदार।

२५४. चंचल (पारा) और चंचला (बाम—स्त्री) के अंतिम अक्षरों को मिलाने से राम हुआ।

२५५. बसंत के आदि में इकार देने से बिसंत हुआ जिसका अर्थ हुआ विशेष संत।

२५६. धरा और महीध (धराधर) के दो चुने हुए वर्ण रा और म।

२५७. धनंजय-सुनु-पति—वायु के पुत्र हनुमान् और उनके पति रामचंद्र।

२५८. पूर्णिमा की रात्रि (राका) का आदि और हार (दाम) का अंत्य।

२५९. भानु (सूर्य) का बीज अक्षर अ, गोत्र (अग्नि) का बीज अक्षर र और तमी (रात्रि) के पति चंद्रमा का बीज अक्षर म को उचित क्रम से मिलाने से राम होता है।

२६०. ओघ (समूह, राशि) का आदि और व्योम (एक तत्त्व का नाम) का अंत्य।

२६१. प्रसन्न होने पर राजा (पान का) बीरा देता है और अप्रसन्न होने पर मर्यादा छीन लेता है। बीरा का अंत और मर्यादा का आदि मिलाने से राम हुआ।

२६२. अनुराधा (एक नक्षत्र, नक्षत्र चंद्रमा की स्त्रियाँ मानी जाती हैं) शब्द का तीसरा (गुण तीन होते हैं) रा और अनुराग (प्रेम) का अंतिम अक्षर म—राम।

२६३. हरिवाहन—गरुड़, संकेत से गरुआपन या गंभीरता; दधि-सुत-सुत—उदधि का पुत्र चंद्रमा, उसका पुत्र बुध, अतएव बुद्धि।

२६४. चंचल रवि—लोलार्क। ब्रह्मद्रव—गंगा। काशी में अस्सी पर लोलार्क और गंगाजी के बीच तुलसीदासजी की कुटी थी।

२६५. बन (नारा—जल) का अंत्य और स्त्रियों की आँखों की उपमा मछली का आदि—राम।

२६६. उरबी (धरा—पृथ्वी) का अंत्य और उरबी (मही) का आदि—राम। सील (कुल की शोभा, शील) का आदि और कमल (तामरस) का आदि ता।

२६७. तामरस (बारिज, कमल) का तृतीय वर्ण र हटा देने से तामस (तमोगुण) रह जाता है। तमोगुण के कारण ही इंद्रियाँ बलवती होती हैं।

२६८. सुभ-आसु-अरि—शुभ आशा (मोक्ष) के बाधक काम क्रोध इत्यादिक। सुमनस-अरि-काल—देवताओं के शत्रु रावण के काल, रामचंद्र। ईस-अवंतिका—उज्जयिनी के देवता महादेव। उनका मत—राम-भक्ति।

२६९. एत-वंस बर—सूर्य-वंश में श्रेष्ठ राम।

२७०. य का मित्र वर्ण रकार, उसमें एक और स्वर अ जोड़ देने से रा हुआ, उसके साथ पवर्ग का पंचम वर्ण म जोड़ो।

२७१. हल—ह य व र ल में र, ञ म—ञ से ण ङ न म में से म लेकर इनके बीच में समान (अ इ उ ऋ ऌ को समान कहते हैं) अ जोड़ देने से राम होता है।

२७२. इसमें प्रश्नोत्तर साथ है। सीता की कौन जाति ? सती; दुख देनेवाली कौन ? कर्कशा स्त्री; चंद्रमा की किरणें किसके लिये दुःखद हैं ? कोक (चकवा) के हृदय को; सुखदायक कौन है ? राम।

२७३. संकर—कल्याणकारी। वाग—वाणी। सिव—मंगल। अज—ब्रह्मा।

२७४. तामरस (राजीव, कमल) का अक्षर से ३ (गुण) र में श्रेयस् (कल्याणकारी क्योंकि अ विष्णु स्वरूप माना जाता है) स्वर अ मिलाकर फिर पवर्ग का पंचम वर्ण मिलाने से राम होता है।

२७७. कं—जल। खं—आकाश।

२७८. आस—निवास; सरदेव—मानसरोवर। हरि-बाम—सरस्वती। हंस मानसरोवर में रहते हैं और सरस्वती के वाहन माने जाते हैं।

२७९. वा विकल्प-सूचक वर्ण है इसमें चप (च ट त प) का तीसरा आकार मिलाने से वात हुआ।

२८०. चंचल (पारा) और तिय (बाम) का पहला अक्षर निकालकर (हरि) रा और म शेष रहते हैं।

२८१. कुलिस (हीरा) और धरम दोनों के अंत्याक्षर मिलाने से राम होता है।

२८३. दो हा—दोनों प्रेम और वैर का नाश कर अर्थात् उदासीन होकर।

२८४. प्राग—पहला स्थान पाने योग्य, बड़ा।

२८५. निरय (नरक) का नाश करनेवाले नारायण का द्वितीय वर्ण रा और रसाल (आम) का अंतिम वर्ण म—राम।

२८६. चप—च ट त क प में के क में अंत्यस स्वर अ मिलाकर यम—ञ ण ङ न म में से म मिला देने से काम हुआ जो दुखदायी है। 'हल' प्रत्याहार में से ल के स्थान पर र कर देने से 'हर' हुआ। इसके अंत में इकार कर देने से 'हरि' (विष्णु—राम) हुआ जो कुशल-क्षेम के कर्त्ता हैं।

२८७. यम और गुन शब्दों के म और न अक्षर मिलाने से मन हुआ। मन को जब तक ज्ञान न होगा तब तक संसार-जनित दुःख मिट नहीं सकता, क्योंकि जगत् का भ्रम-ज्ञान मन ही का प्रपंच है।

२८८. भगन—भादि गुरुः-तामस इसी प्रकार जगन—जो गुरुमध्यः, विरोध। किससे तामस (क्रोध) करते हो किससे विरोध, सब तो राम ही हैं।

२८९. तगन—(ऽ ऽ ।) संतोष। नगन—(।।।) जगत। (आवागमन)। यगन—(। ऽ ऽ) सुखाशा। सगन—(।।ऽ) जड़ता।

२९०. इंद्रवँनि—इंद्राणी, मगण। सुर—अमर, न-गण। देव-ऋषि—नारद, भ-गण, रुक्मिणी-पति—कन्हैया, य-गण। ये चार पिंगल में शुभ गण माने जाते हैं और कवित्त के आदि में बरते जाते हैं। भोजन—आहार, ज-गण। काक-दुहिता—कोकिला, र-गण। अलि—सजनी, स-गण। सुख—आनंद, त-गण। ये चार कविता के आदि में अशुभ माने जाते हैं।

२९१. प्रश्नोत्तर साथ साथ हैं।

२९२. नगन, (१) शिव। (२) ।।।, भरत। जगन—(१) संसार में। (२) ।S।, विचार, विज्ञान।

२९३. भगन—भक्ति। S।। माधव की भक्ति। तगन—SS।, संतोष। सगन—।।S, शुचिता। विधि—यह आज्ञा है, इनको धारण करो। सगन—।।S, जड़ता, (अज्ञान)।

२९४. शृंगज (धनुष) के असन (आहार अथवा फेंकने की चीज) सर (बाण) के साथ जू जोड़ देने से सरजू होता है। यज्ञ (मख) और (मय) पाप (मल) का है पाद-त्राण (जूता) जिसका।

२९५. बाण (सर) युक्त जू—सरजू।

२९६. मृदु-मेचक-सिर-रुह—कोमल काले बाल।

२९७. हंस (मराल) और कमल बीच के वर्ण मिलाने से राम हुआ।

२९८. आदि...तेहि जान—मरम, मर्म, भेद, रहस्य।

२९९. आदि...बात—दरद, दुःख।

३००. भरन—(१) किसी अक्षर को भरना या जोड़ना, (२) अलंकार, रस आदि काव्य-गुणों से पुष्ट करना। हरन—(१) अक्षरों को निकालना, (२) कर्ण-कटुता तथा अश्लीलता आदि दोषों को निकालना गोसाईंजी ने अपने ही सांकेतिक (कूट) दोहों को लक्ष्य करके यह दोहा कहा है।

३०२. विशिष्ट—विलक्षण, कूट। कूटों को समझने के अधिकारी अथवा सुलक्षण कवि का वर्णन।

३०६—अधिकारी लोग ओसरी (अवसर) के वश भले और बुरे होते हैं, चंद्रमा अमृत का घर है किंतु चौथे, आठवें और बारहवें स्थान पर वह भी बुरा फल देता है।

३०७. नरश्रेष्ठ कवि स्वर्ग के तालाब (नभ-सर) हैं जिनके जल में विनय और विज्ञान (संसार की असारता का ज्ञान)-रूप कमल खिल रहे हैं। उनकी सुमति उसमें सीप है जिसमें से सरस्वती (कविता)-रूप मोती (स्वाती की बूँद) निकलता है।

३०८. सम—इंद्रिय, मत, अहंकार आदि का शमन। दम—नेत्र, रसना, नासा, कान तथा त्वचा को उनके बाह्य विषय रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श से हटाकर वश में रखना। दोख-दुरत-हर—दोषों और पापों (दुरित) को हरनेवाली। दरद-दर—दुःख को दलनेवाली।

३०९. धरा—पृथ्वी। धराधर—पर्वत।

३१०. चौंतिस के प्रस्तार में—क से लेकर च तक ३४ अक्षर हैं। इन्हीं के सहारे क्रम के उलट-पुलट, संयोग और भेद से, सार्थक शब्द बनते हैं। प्रस्तार—पिंगल का पारिभाषिक शब्द है। नियत मात्रा के छंद कितने प्रकार के हो सकते हैं यह इसके द्वारा जाना जा सकता है।

३११. क वर्ण से वेद (चौथा) और विषम (बीसवाँ) अक्षर मिलाकर घन हुआ। घन से भी अच्छी (सु-तर) और शीघ्र फल देनेवाली (सतर) रीति रामचंद्रजी की है। मेघ के समान दया (जल) से भरते हैं, परंतु फिर उसे हरते (सोखते) नहीं। मेघ से अधिकता यह कि मेघ तो समय ही पर बरसता है परंतु रामचंद्र भक्ति-पूर्वक माँगते ही शीघ्र अपनी दया की वर्षा करते हैं। श्लेष से वेद, विषम क-वर्ण के माने घन वर्ण, श्याम रंग भी यहाँ पर लगेंगे।

३१२. ब से तीसरा (गुन) वर्ण म, न से तीसरा वर्ण र और कानन (वन) से तीसरा वर्ण न लेकर मिलाने से मरन। दिशा दिशा में और तीनों लोकों में मरन (मृत्यु) व्याप्त है; कहीं जाकर उससे बच नहीं सकते।

३१३. चंद्र अनल—शीतोष्ण; ठंड गरम के भेद से सब प्रकार के भेद की ओर संकेत है।

३१४. पर पद—परमपद। तुल—तुल्य। सम—सब दशाओं में एक सा बरतनेवाला।

३१५. चौदह विद्या—चार वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, निरुक्त और ज्योतिष छः वेदांग, मीमांसा, न्यायशास्त्र, धर्मशास्त्र और पुराण। चार उपवेद—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्ववेद और स्थापत्य-वेद। अठारहों उप-पुराण—आदि, नरसिंह, स्कंद, शिव, धर्म, नारद, कपिल, वामन, वरुण, शांब, सौर, पराशर, भार्गव, मारीच, कालिका, देवी, महेश्वर और पद्म।

३१६. इस दोहे का आध्यात्मिक अर्थ भी है। (आध्यात्मिक पक्ष में) गृह—शरीर। सुंदरि—भक्ति। कवि—जीवात्मा।

३२०. सुचैन—आनंदपूर्ण।

३२१. रसना-सुत—जीभ से उत्पन्न शब्द अर्थात् शब्द-ब्रह्म।

३२२. त्रिबिध—दोहा ३३५ देखिए। बिघट न लट परमान—बाल बराबर भी नहीं घटते। कारण—शब्द ही सारे संसार का बीज रूप है। अबिरल—अखंड। अल—समर्थ। अपि तु—और। अबिद—मूर्ख।

३२४. वर्णात्मक श्रेष्ठ शब्द भुलावे में डाल लेता है। यह चार कारणों से—१ जाति (हम ब्राह्मण हैं अथवा क्षत्रिय हैं इस गर्व में पड़कर धर्म-कार्य की अवहेलना करना), २ यदिच्छा (हम तो राजा हैं, हरिभजन करना तो प्रजाजन का काम है, यह विचार), ३ गुण (हम सुंदर हैं यह गर्व), ४ क्रिया (हमने अमुक कार्य किया है जिसके कारण हमारा यश हो रहा है, यह गर्व)। इनके अति-रिक्त और कोई नहीं। ये गुण दोष-युक्त हैं। यही सदुपयोग से गुणमय हो जायँगे। दिगभ्रम—जीव का भटकना।

३२८. रचत जगत—वेदांत का मत है कि संसार वास्तविक नहीं भ्रम मात्र है। जो कुछ भ्रम में पड़ा हुआ जीव विचार करता है उसे ही वह देखता है, यही संसार है। मनुष्य इस भ्रम से माया का वंधान रचता है कि उसे उससे सुख मिलेगा।

३२९. मनुष्य चाहे तो अपने विभव को सुखप्रद अथवा दुःखप्रद बना सकता है।

३३०. रसना-सुत—शब्द-ब्रह्म, वेद इत्यादि धर्म-ग्रंथ।

३३१. माया के संसर्गजात जो ईश्वर, ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं वे भी शब्द-ब्रह्म का उपदेश करते हैं और सरस्वती से लेकर ब्रह्म तक इसी का उपदेश करते हैं। अथवा शब्द-ब्रह्म से ही इनका उपदेश अथवा परिचय मिलता है।

३३२. बरन—अक्षर।

३३३. सु-बेल—सुंदर किनारा, भक्ति।

३३४. कानों से जो सुनते हैं वह आँखों से जो देखते हैं उसके साथ मेल नहीं खाता, उनमें स्पष्ट विरोध है। सुनते तो हैं कि ब्रह्म एक है किंतु देखते हैं अनेक।

३३५. श्रवणात्मक—सदा व्याप्त मूल रूप। ध्वन्यात्मक—जो मृदंग आदि के शब्द के समान अस्पष्ट हो। वर्णात्मक—जो अकारादि अक्षरों से बना हो और स्पष्ट सार्थक सुन पड़े।

३३६. कहने-सुनने में तो ब्रह्म वर्णमय है कुछ अक्षरों से वह व्यक्त किया जाता है, किंतु तात्त्विक दृष्टि से देखने में वह अक्षरों से रहित है। चर अचर जो दिखाई देते हैं उनमें भी विरोध दीखता है।

३३७. स्वेदज—पसीने से पैदा होनेवाले, जैसे खटमल।

३३८. अस्थावर—स्थावर, अचर सृष्टि।

३४१. सरखप—सरसों। सुमेरु—परमात्मा का विराट् रूप।

३४२. वाचक ज्ञानी का वर्णन।

३४३. जल कहँ परम पियास—जल ही को बड़ी प्यास लगी रहती है। अर्थात् परमात्मा के अपने में ही होते हुए भी जीवात्मा, अज्ञान के कारण, उसके अभाव का दुःख उठा रहा है।

३४४. प्रति वर्ष सेमल से धोखा खाते हुए भी मोह में पड़ा हुआ सूआ चेतता नहीं है। वसंत होते ही फिर सेमल के घूआ पर चोंच मारता है और धोखा खाता है।

३४५. समन—यमराज के समान अटल।

३४६. बस हा भौ अरि—शत्रु (काम क्रोधादिक) के वश होकर।

३४७. वाचक ज्ञानी का वर्णन।

३४८. जो—माया। सो—माया-रहित सुख।

३४९. इष्ट—(१) व्यावहारिक दृष्टि से, जिससे आजीविका चले। विधाता भी जिस उपदेश से अब तक कष्ट उठा रहे हैं। विधाता के पिता विष्णु ने उनसे कहा कि सृष्टि करिए। अब तक उस झंझट से छूटे नहीं। तब और पुत्रों की क्या दशा होगी ?

इष्ट–(२) कल्पित इष्ट देवता। झूठा धर्म (वाम मार्ग) जिसे मानकर उन्हें क्लेश उठाना पड़ता है।

३५०. मिथ्या विश्वासी सब देवताओं से मनौती मानकर आकाश का गेड़ुआ बना रहा है, अर्थात् असंभव की आशा कर रहा है।

३५१. बलि के बहाने हिंसा-वृत्ति की तुष्टि की इच्छा से जो देवता को देखते हैं, उसे पूजते हैं, और मरे पशु को मारते हैं वे मूर्ख स्वार्थी हैं। जैसी उनकी करनी है वैसे ही उनके देवता भी।

३५२. बिना बीज तरु—परब्रह्म राम का विराट् रूप। शाखा—ब्रह्मा, विष्णु, महेश। पत्र—और देवता। फल—त्रिलोकादि सृष्टि।

३५३. मुनि इत्यादि उस वृक्ष पर बसनेवाले पक्षी हैं जो उसके फलों की आशा रखते हैं। तासु—परमात्मा के।

३५५. इस वृक्ष से फलों की आशा तो लोग बहुत करते हैं, परंतु प्रमाणरूप से किसी ने उस पर से एक भी फल नहीं पाया। प्रतिष्ठा—फल मिलने का महत्त्व।

३५७. नभ-तरु-मूल—आकाश-वृक्ष की जड़ जिसका अस्तित्व ही नहीं।

३५८. गाडर ढरनि—भेड़िया धसान।

३५९. ससि-कर-स्रग—चंद्रमा की किरणों की माला जिसका बनना असंभव है। स्वरग-सुमन-अवतंस—आकाश के फूलों का गहना।

३६६. गगन-बाटिका—आकाश का बगीचा, असंभव।

३६७. दृखत—दृषत, पत्थर। बिहरि—फोड़कर। तूल—समान। तूल—क्रोध।

३६८. तेरी इच्छा अपने आपसे पूर्ण हो जायगी। दूसरों का मुँह मत ताक, केवल अपने स्वामी राम को पहचान, उससे अधिक और किसी को मत मान।

३७०. तोख—तोष, संतोष।

३७२. कुथि—कूथता हुआ। अटत—भटकता है। उदघटत न—खुलता नहीं।

३७३. भू-भुजंग-गत-दाम-भव—पृथ्वी पर पड़ी रस्सी में सर्प का भ्रम जिस प्रकार होता है वैसे ही अपनी सब कामनाओं को समझ।

३७४. भोडर—अभ्रक। पड़िक—रूपा, चाँदी।

३७७. मालाकार न जान—माली को नहीं जानते। बिद—ज्ञान।

३७८. करतब—करनी। करम—भाग्य।

३७९. लट पद—व्याकरण में वर्तमान के लिये लट लकार प्रयुक्त होता है, आज कल, संसार में।

३८१. बारत—त्यागते हैं। स्वऽपि पदारथ—अपना सार पदार्थ, आत्म-तत्त्व।

३८२. सुनहा—श्वान, कुत्ता।

३८३. मुट्ठी में आकाश भरना—असंभव काम की आशा करना।

३८४. बसन बारि बाँधत—कपड़े में पानी बाँधता है। विधि-विधान, रीति।

३८६. अधवर—अधर, अंतरिक्ष। बधूर (भँवर) में पड़ा पत्ता अधवर ही में घूमता रह जाता है, न ऊपर को उड़ता है, न नीचे ही गिरता है।

३८७. कीर सरिस—बिना अर्थ समझे हुए।

३९०. बरन-बिंदु-कारन...—जैसे अक्षर बिंदु से बनते हैं, वैसे ही शरीर भी मन की कृति है।

३९२. नाम—संसार में नाम पाना। जगत सम—भ्रम मात्र। वस्तु न चित चैन कर—सांसारिक वस्तुओं में चित्त को सुखी न समझ। ग़ैन (غ) फारसी में अशुभ अक्षर समझा जाता है और ऐन (ع) शुभ। बिंदु रूप सांसारिक वासनाओं के चले जाने से जीवात्मा शुद्ध चेतन आत्म-तत्त्व रह जाता है।

३९३. ऐन—शुद्ध आत्म-तत्त्व। सिद्धि—पूर्णता।

३९५. हिम मूर्ति को सूर्य की किरणों से पानी की प्राप्ति होती है उसी प्रकार गुरु के उपदेश से संसार की आशाएँ छूटकर मुक्ति मिलती है।

३९६. जिस किसी श्रेष्ठ हृदय साधु पुरुष के हृदय में भगवदुपासना के अतिरिक्त कोई और सांसारिक वासना उदय हो जाय तो उसके भ्रम का प्रमाण देना अत्यंत कठिन होता है।

३९८. वचन-अमल-बल—सामर्थ्यवान् के वचनों के बल से। कुचाह—विविध वासनाएँ।

३९९. त्रिजिनि—पाप, संसार-जन्य दुःख।

४०२—०३. विधि—कर्तव्य। उलटो—विधि का उलटा, निषेध, अकर्तव्य। गति राम की—कर्मों को रामाभिमुख करके शुभाशुभ फल का त्याग। बर मेधा—श्रेष्ठ धारणा-शक्ति जिसे गुप्त सरस्वती नदी माना है। न्यग्रोध—(अक्षय) वट।

४०५. बिसेसर—विश्वनाथ, महादेव।

४०६. नय-क्रिय—न्याय।

४०७. सित—पवित्र, शुक्ल पक्ष। असित—कृष्ण पक्ष, अपवित्र। वसु जाम—आठों पहर।

४०८. बीते दिन तो आवेंगे नहीं, जो वर्तमान है उसको पहिचान कर उपयोग कर। आज और कल मत कर। भविष्य के लिये कुछ मत छोड़ क्योंकि जैसा आज वैसा कल। कल भी तुम आज की तरह टाल-मटूल करोगे। भ्रम में मत पड़।

४०९. निरुवार—निर्वाह कर।

४१०. पंडितों अर्थात् सज्जनों की नीति सुस्थिर हो जाती है।

४१३. राम बरा पुरि—राम की श्रेष्ठ नगरी।

४१५. सुरसर-सुता—मानसरोवर की पुत्री, सरयू।

४१६. बिखयि—विषयी।

४१९. जतन—(संसार-सागर को तरने का) उपाय। सकल-कला-गुन-धाम यह तनु (मनुष्य शरीर) धरि अविनासी अव्यय अमल राम भेंट।

४२०. अप्रमेय—जिसका कोई परिमाण या माप नहीं। यातें—इस शरीर के होने मात्र से ही ज्ञान छिपता नहीं। इस शरीर के होते हुए भी वल्कि इसी मनुष्य शरीर से ज्ञान प्राप्त होता है।

४२१. हंस-रसाल—जैसे सूर्य (हंस) की किरणें ही जल (रसाल) को वरसाती हैं और फिर ऊपर खींच लेती हैं, उसी प्रकार जीव ईश्वर की माया से संसार में आता है और उसी की दया से मोक्ष पाता है। यही भाव ४२२वें दोहे में भी है।

४२३. आहन—लोहा। रिच्छ-रसम—नक्षत्र की रीति अथवा गति। आर्द्रा नक्षत्र में मछली अंडे देती है।

४२४. जल वरसते सव कोई देखते हैं किंतु सूर्य कैसे जल को सोखते हैं (हरत) यह किसी को नहीं दिखाता। इसी प्रकार जन्मते समय सव देखते हैं परंतु मरकर कौन कहाँ गया यह किसी को नहीं दिखाई देता। (परंतु यह निश्चय है कि) सुगुरु इत्यादि।

४२५. असमंजस—कठिनता।

४२६. अप—आप, पानी।

४२७. कोस—आवरण। विलसै—भोगता है। परै कहाँ पहिचान—आत्म-स्वरूप पहचान नहीं पड़ता।

४२८. हेतु—कारण, वीज।

४२९. आदरस—आदर्श, दर्पण।

४३१. इन दोउन तें—शुभाशुभ कर्म से।

४३३. अभि-सदन—अमृत के घर में अर्थात् भक्ति में। करम-विपरजय—कर्म की विपरीतता, प्रभु से विपरीत दिशा में ले जाने-वाले कर्म।

४३४. सदा एक-रस निसिकर—चंद्रमा जो सदा एक सा पूर्ण रहे, घटे-वढ़े नहीं।

४३५. उरविजा—पृथ्वी की पुत्री, सीता। रसमय—रस-पूर्ण राम।

४३६. जात-रूप—सोना। सीत-कर—ठंडी किरणोंवाला चंद्रमा।

४३७. सुख-दायक—रामचंद्र अथवा सत्संग।

४३८. अधम—नीचे। उरध—ऊपर। तंतु—तार।

४३९. बानि—स्वभाव। सुधरै—बानि इसका कर्ता है।

४४०. सूर्य और चंद्रमा जिस प्रकार पृथ्वी तथा उसमें रहनेवाले जीवों का पालन करते हैं, उसी प्रकार राम और सीता स्थूल शरीर के कारणभूत जीवात्मा का सद्‌गुणों द्वारा पालन करते हैं।

४४३. प्रगटत—पैदा होते हुए। दुरत—छिपते या मरते हुए।

४४४. सुख-दुख का मार्ग मनुष्य स्वयं पकड़ता है, वे किसी को राह चलते नहीं लग जाते। तात्पर्य यह कि सुख-दुःख अपने कर्मों के फल हैं।

४४५. ससि-मग—चंद्रमा का मार्ग, सीता की भक्ति।

४४६. सीतकर—चंद्रमा, सीता।

४४७. ससि—चंद्रमा, सीता। असिय तजत—अमृत की वर्षा करता है, मुक्ति देती है। गहत नहीं—ग्रहण नहीं करते, भजते नहीं।

४४८. कोक—चकवा। चकवा चकई के और कमल सूर्य के विरह में दुःखी रहता है, चंद्रमा उन्हें वास्तव में दुःख नहीं देता फिर भी वह उन्हें दुःखप्रद ही मालूम देता है। इसी प्रकार दुष्ट जनों को सीताजी वास्तव में दुःख नहीं देतीं परंतु वे उनसे विमुख रहते हैं। इसी से उनका निस्तार नहीं होता।

४५०. जवास घास बरसात में पानी पड़ने से जल जाती है। ज्ञान और भक्ति से यदि किसी दुष्ट को दुःख पहुँचे तो उनका क्या दोष, वे तो स्वभाव से सुखद ही हैं।

४५१. चंद्रमा संसार के ताप-रूप विष को हरकर अमृत की वर्षा करता है, ऐसी ही अपार महिमा सीताजी की भी है।

४५२. सूर्य चंद्रमा दोनों के जोड़े का यश संसार कहता है क्योंकि रात को चंद्रमा और दिन को सूर्य उसे अपने किरणों से पालता है इसलिए दोनों समान हैं। संकेत से राम-सीता समान हैं।

४५३. पृथ्वी से अपनी किरणों के द्वारा लिए हुए जल का सार अमृत के रूप में सूर्य चंद्रमा के द्वारा पृथ्वी को देते हैं। सूछम—(१) जीवन। (२) जीव। रबि-रजनीस—राम-जानकी।

४५४. स्थूल शरीर (भूमि) में सूक्ष्म जल है जिसे सूर्य पृथ्वी को देता है। सारी चराचर सृष्टि का यही रूप है। वह रामचंद्र सूर्य रूप पर जीवन रूप जल के लिये अवलंबित है।

४५५. निसिकर—(१) चंद्रमा। (२) सीता। (३) भक्ति। रवि—(१) सूर्य। (२) रामचंद्र। (३) ज्ञान। भक्ति सरल है, ज्ञान कठिन।

४५७. विभीषण ने सेवक पद ग्रहण किया, राम ने अपनी शरण लिया। रावण ने सेव्य स्वामी पद ग्रहण किया तो निर्वंश हुआ।

४५८. सूर्य और चंद्रमा शीत और उष्ण के रूप मात्र हैं, इनमें से करतार एक भी नहीं। वास्तव में रात-दिन का कर्ता तो परमात्मा है।

४५९. जो चीज नहीं है उसका नाम नहीं पड़ता। परमात्मा को देखा किसी ने नहीं है पर परमात्मा नाम लोगों ने रख ही दिया है।

४६०. उदाहरण, अमृत को किसी ने देखा तो नहीं परंतु उसके रोगनाशक गुणों को सब कहते हैं।

४६१. गंध, शीत और उष्णता गुणों को सब जानते हैं। ये देखे नहीं जा सकते परंतु पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि में फिर भी

लोग इन गुणों में से कुछ या संपूर्ण को मानते ही हैं। अर्थात् आँखों से देखना ही एक मात्र प्रमाण नहीं है।

४६२. बिलखत—देखते हैं।

४६४. काक-सुता—कोयल, उसका सुत या सुता, कोकिल या कोकिला। कोयल कौवे के अंडे फोड़कर खा जाती है और उनके स्थान पर अपने अंडे रख आती है। कौवी अपने ही अंडे समझकर उन्हें सेती है। परंतु उनमें से निकले हुए बच्चों के पंखों में जब बल आ जाता है तब वे उड़कर कोयलों से मिल जाते हैं। माया में भी मनुष्य तभी तक पड़ा रहता है जब तक उसके ज्ञान रूप पंख नहीं उगते। ज्ञान हो जाने पर वह आत्म-स्वरूप में मिल जाता है।

४६५. जिनहिं अनेक न एक—जिन्हें एक ही का भरोसा है, अनेक का नहीं।

४६६. घटत न—नहीं घटता, पूरा होता।

४६८. मनवा—रुई। कार्य—कारण का फल-रूप आनंद। आनंद की तो सबको इच्छा है। परंतु जिस कारण का आनंद कार्य है, उसे कोई नहीं देखता। अच्छे कपड़े पहनना चाहते हैं, मिठाई खाना चाहते हैं, पर कपास और ऊख नहीं बोवेंगे।

४६९. कारन कार्य—कारण से कार्य होता है। कारन-कार—कारण का भी करता है, तू ही है।

४७०. कर्ता लोपत—कर्ता को लोप कर देता है और अहंकार-वश आप कर्ता बन बैठता है और बंधन में पड़ जाता है।

४७१. वायु और जल के योग से तरंगें उठती हैं परंतु तरंगों का करना, करवाना इनके बूते का काम नहीं, उनका कर्ता और कारण परमात्मा है। क्योंकि उसके बनाए नियम से यह सब अपने आप होता रहता है।

४७४. कार्य तो घटते-बढ़ते रहते हैं परंतु कर्ता और कारण सार-पद, अविनाशी निर्मल और भेद-रहित अर्थात् एक हैं।

४७६. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तेरे व्यक्त रूप हैं।

४८०. अकस्मात् भगवान् की दया से।

४८२. चंद्र, सूर्य, प्रकाश से जगत् (महि) में शारीरिक असुविधा दूर होकर सुख मिलता है। ज्ञान से मोह दूर होकर आत्मानंद मिलता है।

४८३. चेतन समुझ अचेत—हे अचेत अपनी आत्मा को समझो।

४८४. जिनमें यश-लिप्सा का दूषण न हो, ऐसे कर्मों की घटना समझकर कोई बात कहनी (अथवा करनी) चाहिए।

४८५. सूर्य और चंद्रमा जब मिलते हैं तो चंद्रमा की कला क्षीण होने लगती है। अमावस को पूरा मेल होता है। फिर वे अलग होने लगते हैं और चंद्रमा की भी कला बढ़ने लगती है।

४८६. जैसे तेरे माता-पिता उत्पन्न हुए वैसे ही तू भी। माता-पिता की उसमें कोई विशेषता नहीं। वास्तव में न माता है न पिता। जो (परमात्मा) है उसे जानो।

४८७. विसलेसित—विश्लेषित, अलग, सब ठौर व्यापक।

४८८. अलंकार घटना कनक—मूल तो सोना है, गढ़ने से भिन्न भिन्न गहने हो जाते हैं। यही बात नाम, रूप और सत, रज, तम गुणों की भी है। उनके मूल में एक ही तत्त्व है।

४८९. संज्ञा—नाम।

४९०. गंधन—स्वर्ण। मूल—ब्रह्म तत्त्व।

४९१. प्रभास—मालूम देता है।

४९२. असथिर—स्थिर।

४९४. परखे—पहचाने।

४९५. एक उपाधि—धर्म, सगुण भक्ति में एक ही उपाधि धर्म है। उपाधि—विघ्न, परंतु निर्गुण ज्ञान की प्राप्ति के लिये अनेक विघ्न होते हैं।

४९६. बेद गुन—चार गुण; शक्ति, सत्य, शील और सौंदर्य। इन एक एक के अंतर्गत कई भेद हैं।

४९८. पराय—पलाय, भागा (नहीं जाता)।

५०४. मृण्मय—मिट्टी का। कुलाल—कुम्हार।

५०६. बिना साक्षी के अनुमान प्रमाणित नहीं होता, इसलिये जो प्रत्यक्ष है उसी का कथन करो। दूसरा है ही कौन ?

५०७. मृद—मिट्टी।

५०९. चामीकर—सोना। करतब—करनी, कर्म। ताहि रमित—गहनों में (नाम रूपों में) रम रहते हैं।

५१०. सोई परमान—वैसा ही बरतने लगा।

५१२. मृत—मिट्टी।

५१३. बरतन—पात्र, शरीर। नित्य-स्वरूप—मिट्टी, निर्विकारी आत्मा।

५१५. श्वास की हवा में जो जल है वह साफ आईने पर प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

५१६. तुल—कुछ, कहीं तिल पाठ भी है। जुग-तन—सूक्ष्म और स्थूल शरीर।

५१७. कर्ता समय के योग से शुभ-अशुभ कर्म करता है, फिर काल के परिवर्तन से कर्ता में भी परिवर्तन हो जाता है परंतु कारण ज्यों का त्यों रह जाता है।

५१८. समन—काल।

५२१. सबद—शब्द-ब्रह्म। सुर-गुरु—बृहस्पति अर्थात् जीव जो ब्रह्म का अंश माना जाता है।

५२२. बिभावरि—पृथ्वी; पृथ्वी में गंध का गुण माना जाता है। इसी लिये उसे गंधवती भी कहते हैं।

५२३. तासु रहित—अनुस्वार रहित, क्योंकि एक एक करके कई बिंदुओं से ही अक्षरों की आकृति बनती है।

५२७. अनिल...रज—वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्त्व। तन गत—शरीर में एकत्र होते हैं।

५२९. संग्या—संज्ञा, नाम। कहतब—कहना (संज्ञा का गुण)।

५३१. वर्णों के संयोग से ही संज्ञा बनती है। परंतु जब तक वर्णों का वियोग रहता है तब तक संज्ञा नहीं हो सकती। इसी तरह माया के संयोग से ही ब्रह्म की जीव संज्ञा होती है।

५३३. सुत-पद—जीवात्मा पद। पिता-पद—ब्रह्मत्व। चोप—बुद्धि।

५३५. सुअन—माया अथवा कर्म जो माया के बंधन हैं और जीवात्मा-पद के कारणभूत हैं। अगरज—अग्रज। पहले माया-जनित कर्म होता है तब संसार का बंधन होता है।

५३६. मन करत मलीन—मन को मैला करता है अर्थात् वैर-भाव रखता है।

५३८. जाहि—परमात्मा को। कहतब—कहने भर का, यह सृष्टि कहने भर की है; सृष्टि, माया। ऐन—घर। चैन—शांति।

५३९. विडंबना—धोखा।

५४४. पूत—पुत्र, माया के बंधन कर्म। बाप—परब्रह्म।

५४५. बरन-भव—अक्षर से उत्पन्न।

५४७. मृगा गगन-चर—पशु-पक्षी।

५४८. तेहि को—शिष्य को। तोहि को—गुरु को। तुलसी कहत...बात—तुम्हारी कही हुई हित-रहित बात को सुनकर वह (माया के बंधन में पड़कर) दुःख सहता है, सोचो तो।

५४६. निहसंसय—निःसंदेह, शंका-रहित।

५५१. सुरुति—स्रुति, श्रुति, वेद। पथ-रति—सन्मार्ग में प्रीति रखनेवाला। अनय-अतीत—अन्याय के पथ से बाहर रहनेवाला।

५५५. रस निरास—रस छः होते हैं। यहाँ छः कहने से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन छः का भाव है। इनमें मनुष्य को अपनी आशा न रखनी चाहिए। इनसे निराश रहे अर्थात् विरत रहे। चाह न—इच्छा रहित हो। काम-सुरा न रम—काम-लोलुपता की मदिरा में रमण न करे।

५५८. करत...सदा—जिसका कार्य सदा तर्क में लगा रहना है। सो मन दुख-दातार—वह मन दुःख को देनेवाला है, क्योंकि वह अनुमान तर्क के द्वारा कई दुःखों की सृष्टि कर लेता है, जब कि वास्तव में सुख-दुःख कुछ है ही नहीं। तुलसी जौं...बिचार—जिस तर्क के द्वारा मन समझे नहीं उसे विचार करके सर्वथा त्याग देना चाहिए, क्योंकि ऐसा तर्क कुतर्क है। वह उलझन ही में डालेगा, जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में समर्थ न हो सकेगा।

५६०. सुनत कोटि...न हाथ—केवल करोड़ों की संख्या को कहने या सुनने से तो यह नहीं संभव है कि एक भी कौड़ी हाथ आ जाय।

५६३. गुन—त्रिगुण, सत, रज और तम।

५६६. अपनो करमु...काल—जिस समय अपने कर्म का अपने लिये भला-बुरा फल न चाहे, अर्थात् जब मनुष्य निर्लिप्त होकर कर्म करने लगता है।

५६९. तू तो सच्चा है किंतु तू झूठी रचना (कर्म) करते थकता नहीं।

५७१. समय-रूपी ज्योतिषी, कर्म-रूप खड़िया से मोह-रूपी थल (पटिया) पर चराचर जीव रूप अंकों को लिखता और मिटाता हुआ गणित कर रहा है।

५७४. कहना-करना सब के मूल में उसी एक परमात्मा को जान (जिसके विधान से 'फूलि परत रितु अनुहरत' आदि और) जिसके विना कोई नहीं है, अभिमान और अनुमान से दूसरी रीति से नहीं समझना चाहिए अर्थात् अपने आपको कहने अथवा करने-वाला नहीं अनुमान करना चाहिए। यह दंभ मात्र होगा।

५७५. विधान—पहले ही से नियत रीति।

५७६. सालक—दुःख देनेवाला। पालक—पालन करनेवाला। सम—समभाव रखनेवाला, सज्जन। बिखम—विषम अथवा असमानता का भाव रखनेवाला, कठोर व्यक्ति। अट—अटन, भ्रमण (नाना योनियों में)। घट—छोटा होना। लटन—किसी बात में बेतरह पड़ना। नटनादि—नाचना आदि। जीव समय समय पर नाना अवस्थाओं में रहता है, परंतु वह चाहे जिस अवस्था में रहे उसे परमात्मा से रहित न जान अथवा परमात्मा के विधान से रहित न जान।

५७७. कर्म की करनी का वर्णन करना कठिन है। करनेवाला और करानेवाला दोनों काम ही हैं। कर्म ही शरीर-रूपी क्लेश का कारण है (अर्थात् कर्मों के ही कारण आवागमन के फेर में पड़ता है) और समय पाकर कर्म ही शांति अथवा मोक्ष को देनेवाला हो जाता है। निष्काम कर्म से मोक्ष की प्राप्ति कही जाती है।

५७८. चित्त धन, रीति-भाँतियों, कठिन और सहल कामों, जय और मृत्यु, धैर्य और धर्म के धारण में तथा इनके हरण में समय समय पर पड़ा रहता है परंतु (वास्तविक आत्मा में) इन सब अवस्था-भेदों के कारण कोई भेद (बीच) नहीं पड़ता। (वह नित्य और बोधमय है।)

५७९. (इस चित्त का) खर्व (नाश) बिना प्रचंड आत्म-ज्ञान के कभी नहीं हो सकता। और जो लोग गुरु अथवा परमात्मा की

भक्ति से हीन हैं वे वस्तुतः नित्य और बोधमय आत्मा (सोइ) होने पर भी प्रचंड आत्म-ज्ञान को प्राप्त नहीं हो सकते।

५८०. शब्द ब्रह्म के रूप का विस्तार विशेषकर अक्षरों से होता है। अक्षरों को जोड़ने से नाम बनता है। इसी नाम (संज्ञा) से नर अपने को आत्म-सत्ता से भिन्न समझता हुआ त्रिगुणों का धास होकर (कर्म का) कर्त्ता बनता है और भिन्न भिन्न योनियों (जातियों) में भ्रमण करता है।

५८३. करता—वास्तविक कर्त्ता, परमात्मा।

५८४. वर्तमान-विपरीत—जगत की परस्पर विरोधी बातें जिसका उत्तरार्द्ध में उदाहरण दिया गया है।

५८६. विधि—कर्तव्य। निखेध—अकर्तव्य।

५८८. अक—(अ—नहीं + क—सुख) दुःख।

५८९. आक—दुःखी।

५९०. जुग करम—शास्त्र से विहित और निषिद्ध कर्म, कर्तव्य और अकर्तव्य।

५९१. निज कर करि करिहै बहुरि—जो कर्म किया है उसी को फिर करना पड़ेगा। अर्थात् अपने कर्म को भोगना पड़ेगा।

५९२. भौ भान—आभास मिला।

५९३. भौ लघु सुरति भुलानि—क्षुद्र संसार के मोह में डूबा हुआ है।

५९७. सून—शून्य। सार—हीन। बचन-गाय—बात की गौ।

५९८. बात ही से (भली बात जैसे सत्संग) बात बन जाती है और बात ही (बुरी बात जैसे बुरी संगति) से बात बिगड़ती है। जैसे वायु ही में दीपक जलता है (जहाँ वायु न होगी वहाँ दीपक न जलेगा) और वायु (के झोंके) से ही वह बुझता भी है।

५९९. बर बर—श्रेष्ठ वरदान।

६००. (प्रथम दो) बात—वायु या वार्तालाप। (तीसरा) बात—काम। (चौथा और पाँचवाँ) बात—वचन, बोली।

६०३. बिहित—चिह्नित, माने हुए। नरक-निसेनी—नरक के चिह्न।

६०४. सरग—स्वर्ग।

६०६. विधि और निषेध दोनों कार्य अज्ञान (तम) के हैं, पर समय पाकर वे बड़े शक्तिशाली और अचूक हो जाते हैं। (दोनों प्रकार के कर्म बंधन में डालते हैं। उनका फल भोगना ही पड़ता है।) तीन प्रकार के विशेष बल (सत, रज और तम, त्रिगुण) से उत्पन्न हठ इसका कारण है, यह प्रमाण की बात है।

६११. सुखधाम जितने काम हैं, वे सब प्रधान हैं। यह बात वेद में कही गई है। परंतु उसमें गुण और नाम से दो भेद हैं जिनको समझना कठिन है। शुभ कर्म सभी करने चाहिएँ परंतु यदि नाम और गुण के प्रभाव से अर्थात् कामना के वशीभूत होकर वे किए जायँगे तो बंधन के कारण होंगे और यदि निष्काम होकर किए जायँगे तो मोक्ष के कारण होंगे।

६१२. नाम—भगवान् का नाम। खात—कुंड।

६१३. नाम—भगवान् का नाम। नाम—माया।

६१६. पाछे करी—त्याग दी। निरास—संसार से नैराश्य।

६२१. चाड़—चाह, प्रयोजन।

६२२. नाग-नग—गज-मुक्ता। गुंजा—रत्ती, घुँघची।

६२३. करि बास—सुवासित कर, सुगंधित कर।

६२४. निरास—मारवाड़ के कुओं में जल न मिलने के कारण। वंचे—धोखा दिया, ठगा।

६२५. मित्र—(१) सखा। (२) सूर्य।

६२६. बर-तर—अधिक श्रेष्ठ। अनहित मृदुल—वैरी का कोमल भाव। सिसिर जब कि ठंड भी कम हो जाती है और गरमी भी कड़ाके की नहीं पड़ती। निदाघ—ग्रीष्म ऋतु जब कि कड़ाके की गर्मी पड़ती है। अति-लाल—नई पत्तियाँ लाल होतीं हैं।

६२७. दाता-ओप—दाता की कांति, उसका प्रताप।

६२८. करखत—खींचते हुए, सोखते हुए। पृथ्वी ही से सूर्य जल को भाप के द्वारा सोखता है जिससे बादल बनकर वर्षा होती है। वर्षा होते हुए सब लोग देखते हैं और प्रसन्न होते हैं, परंतु कैसे सूर्य ने पृथ्वी से इस जल को ऊपर खींचा इसे कोई नहीं देखता। इसी प्रकार राजा को भी चाहिए कि प्रजा से ऐसे रूप में कर ले जिससे उसको वह खटके नहीं। और फिर उसे प्रजा के ही लाभ में व्यय करे जिसे देखकर वह प्रसन्न हो। ऐसा राजा प्रजा के भाग्य से ही मिलता है।

६२९. समय परे—विपत्ति में पड़े होने पर भी।

६३०. प्रेम-पैज—भक्ति की प्रतिज्ञा या टेक। चाहि—अपेक्षा।

६३१. माली—उद्यान में वृक्ष लगाता है, उन्हें सींचता है और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें काटने छाँटने में भी नहीं हिचकता। सूर्य—देखो टिप्पणी ६२८। अग्नि—तेजस्विता अग्नि का गुण है। जल जाने के डर से कोई उससे छेड़छाड़ नहीं करता। ये सब गुण राजा में भी होने चाहिएँ।

६३३. दत्त न होइ—नहीं दी जाती, नहीं मिलती।

६३५. सकहिं न काढ़ि—दूर नहीं कर सकते।

६४२. सुकृती—पुण्यवान्।

६४३. पर-मन-रंजन—दूसरे के मन को अत्यंत प्रसन्न करनेवाले।

६४५. सरस परिहरे रंग रस—जब तक पूर्वोक्त बातों में आनंद है उसी बीच उन्हें त्याग देना चाहिए। इससे आनंद बढ़ जाता है;

नहीं तो कुछ आनंद नहीं रह जाता। अधिक सहवास से रस फीका पड़ जाता है।

६४७. घाव लगने पर जल्दी से लोहा खींच लेनेवाला, नीच के साथ लाग करनेवाला तथा बलिष्ठ पापी के साथ वैर करनेवाला, इन तीनों ने जानकर मौत मोल ली, यह समझना चाहिए।

६४८. अंध...डोठि—ऐसे को अंधा कह दो तो उसे दुःख मालूम होगा क्योंकि ऐसे किस दृष्टिवाले को भी दिखाई पड़ता है ? अर्थात् ऐसे लोग आँख होने पर भी अंधे हैं।

६४९. अन-समुझे अनु-सोचनो—विना समझे (काम करने से) पीछे सोच करना पड़ता है।

६५१. गयो—नष्ट हुआ। भयो—हुआ, पनपा।

६५३. कि (की)—क्या। कातिबो नान्ह—बहुत बारीक सूत कातना है जो कठिन काम है।

६५४. पाप प्रतिष्ठा—प्रतिष्ठा को भी ज्ञानी लोग अवांछनीय समझते हैं, इसी लिये उसे पाप कहा है।

६५५. बहराइच जाय—बहराइच में मुहम्मद गोरी के साले सैयद सालार (गाजी मियाँ) का रौजा है। हिंदू मुसलमान सभी वहाँ जाकर मनौती मनाया करते हैं।

६५६. जल जल गौ—जल तो बह गया, माया तो हाथ न आई। झख—मछली, जीवात्मा जो बढ़े हुए जल में की मछली की तरह माया के साथ उलटा बहता है। माया तो हाथ नहीं लगती पर वह स्वयं संसार रूपी जाल में फँस जाता है।

६५९. अनट—अन्याय।

६६१. माहुर (गरल)—विष। पराइ—भाग जाता है, उड़ जाता है।

६६२. विमल—देखने में निर्मल, चिकनी-चुपड़ी।

६६३. दान--दया-रूप युद्ध के ही वीर सच्चे धीर वीर हैं, अन्य नहीं।

६६४. सुकरित—सुकृत, पुण्य।

६६५. रिजु—सीधा, सरल, कोमल।

६६७. वामनावतार धर, विष्णु ने राजा वलि से तीन पग पृथ्वी माँगी और सारी पृथ्वी नाप ली। परंतु इसके लिये उन्हें वलि राजा का द्वारपाल होना पड़ा।

६६८. वस—अधीन। देखो ऊपर ६६७।

६६९. तुलसी स्त्री पति-सिर लसै—जालंधर दैत्य की स्त्री विंदा बड़ी पतिव्रता थी। इस कारण महादेव उस दैत्य को परास्त न कर सकते थे। विष्णु ने जलंधर का रूप धारण कर विंदा का धर्म नष्ट किया तब महादेव की जय हुई। इसी के फल रूप में वे उसे अब तुलसी की पत्तो के रूप में अपने सिर पर रखे रहते हैं।

६७०. मेंढक—पंचतंत्र का गंगदत्त जिसने अपने शत्रु अन्य सर्पों के नाश के अभिप्राय से प्रियदर्शन सर्प को बुलाया था। सर्प ने सब सर्पों को खा डाला, इसके परिवार को भी न छोड़ा। यदि गंगदत्त ठीक समय पर न भागता तो स्वयं भी उस सर्प का आहार बनता।

मर्कट—एक बंदर ने एक नदी के किनारे पेड़ पर से फल गिरा-गिराकर एक भूखे मगर के प्राण बचाए। अंत में मगर ने उस बंदर को ही खाने का उपाय सोचा। वह किसी तरह भाग निकला।

वनिक—एक बनिए ने दया कर किसी मंत्र की सिद्धि के लिये अपनी स्त्री एक राजकुमार के पास भेज दी। राजकुमार ने स्त्री का धर्म ही नष्ट कर दिया।

वक—एक बगुले ने भूख से मरते हुए एक नेवले को साँप बतला दिया। परंतु नेवले ने बगुले पर भी हाथ साफ कर दिया।

६७३. कपि—बालि को उसकी स्त्री तारा ने बहुत समझाया कि सुग्रीव से वैर न करो। राम उसके सहायक हैं। पर बालि ने न माना और अंत में मारा गया।

काक—जयंत ने सीताजी के चरणों पर चोंच मारकर चंचलता दिखलाई थी। इस अपराध से उसकी एक आँख फूट गई।

६७६. सोइ—सोए हुए।

६८२. तुपक—तोप। दारू—बारूद। पलीता—चौंप।

६८३. मित्र—सूर्य (अविवेक)। मनोज—चंद्रमा (विवेक)।

६८४. बैर सनेह सयानपहि—वैर, स्नेह और चतुरता कहाँ करनी चाहिए और कहाँ नहीं। बिखान—विषाण, सींग।

६८६. राजा प्रजा को सुधार सकता है। परंतु उसका एक ही अवगुण प्रजा में तिगुना होकर प्रकट होता है।

६८६. नय—न्याय। नेम—नियम, कानून। नियोग—आज्ञा। भय—हो गए हैं। नेवारित—छिपाया जाता है।

६९१. बिटप—वृक्ष (प्रजा)।

६९२. गोठ की गाय—जो स्वच्छंदता से घास चर नहीं सकती, थोड़ी सी घास-भूसी पर ही रहती है।

६९३. कंट कंट—टुकड़ा टुकड़ा।

६९५. प्रभुहिं—राजा को।

६९८. राख—रखते हैं। चपरि—बलपूर्वक। जब कोई चीज डूबने लगती है तो चारों ओर का पानी वेग से उधर ही को आता है।

६९९. जो राजा अपनी सब वस्तुओं को धर्म-रूप सुंदर भुजाओं और सत्य-रूप मंत्री को सौंप देता है वह निश्चित होकर सुख भोग सकता है।

७००. रसना मंत्री—जिह्वा के समान मंत्री जो सब रसों को चखकर खट्टे मीठे आदि का ठीक ठीक ज्ञान कराती है। अर्थात्

मंत्री वस्तु-स्थिति का यथार्थ ज्ञान करानेवाला होना चाहिए। दसन जन—सेवक दाँतों के समान हैं। दाँत भोजन को चबाकर उसे पचने योग्य बनाते हैं परंतु स्वयं उसमें से कुछ नहीं लेते। इसी प्रकार सेवक भी राजा की आवश्यकताओं को जानकर उसके कर्तव्य को सुगम करनेवाले और त्यागी होने चाहिएँ जिससे (मुख के समान राजा) उनके प्रयत्न के फल द्वारा सेना पदाति और प्रजा (बालक) आदि अपने राज-समाज के सब अंगों को पुष्ट कर सके।

७०१. डौवा—चिमचा। सरस—रस सहित, सुख देनेवाले। काज अनुहारि—कार्य के अनुसार।

७०३. मूलहिं अनुकूल—मूल के अनुसार अर्थात् जड़ को अच्छा पानी-खाद मिलेगी तो पेड़ के अन्य अंग भी अच्छी वृद्धि पाएँगे, नहीं तो नहीं।

७०५. साधन समय—किसी कार्य की साधना करते समय ही; अर्थात् कार्य आरंभ हुआ कि सिद्धि मिली। उभय मूल—इस लोक और परलोक दोनों के मूल अर्थात् दोनों को सुधारनेवाले।

७०६. रामायन...रीति—रामायण की शिक्षा का अनुसरण करते हुए संसार भारत की रीति पर चलने लगा। दूसरे प्रकार से भी इसका अर्थ हो सकता है यद्यपि उसमें दूरान्वय दोष आ सकता है। (को) रामायन सिख अनुहरत—रामायण की शिक्षा का कौन अनुसरण करता है ? सत्यप्रतिज्ञा, पितृ-आज्ञापालन, भ्रातृ-प्रेम, स्वार्थ-त्याग, आदि शांतिमय गुणों की कौन परवा करता है ? क्योंकि (जग भौ भारत रीति) संसार में तो अब महाभारत की रीति का चलन हो गया है अर्थात् भाई भाई छोटी सी बात के लिये लड़ मरते हैं।

७०७. हितकारी, सुखद और गुण-युक्त बातें भी समय पाकर दुःख देती ही हैं। परंतु केवल इसी लिये उन्हें त्याग नहीं देना

चाहिए। आग जब घर में लग जाती है तब सब धन-माया को जला डालती है, पर आग को लोग घर में रखते ही हैं। क्योंकि उसे त्याग देने से सुख नहीं मिलता।

७०८. खंभ—खोदकर बनाए हुए तालाबों के बीच में बहुधा एक खंभा गड़ा रहता है। चेतन—आत्मा। तपनहुँ—घाम से भी (नहीं सूखता)।

७१०. अरध आदि हन—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का नाश करनेवाली बातें। अंत गहन सब कहँ—अंत (मृत्यु) सभी को ग्रहण करना पड़ेगा।

७११. उ-कार—ॐकार, हाँ, विधि, कर्तव्य अथवा तर्क के सहित। बिबिचार—विशेष विचार-पूर्वक।

७१२. निरावहिं निरस तरु—नीरस तरु अफीम इत्यादि को मूर्ख लोग निराते हैं, उसके आस-पास की घास को उखाड़कर फेंक देते हैं अर्थात् नीरस वृक्षों को परिश्रम से पालते हैं या विषय के जाल में पड़े रहते हैं जिसमें वास्तव में कोई रस नहीं है, केवल नशा है। ऊख—प्रेम-रस-पूर्ण भक्ति। पोखत...रूख—यद्यपि बादल परमात्मा का विधान विषय (अफीम आदि) के वृक्षों और ऊख को समान रूप से जल-दान कर पुष्ट करता है। विषय-वासना बुरी और भक्ति भली, यद्यपि हैं दोनों मायासंभूत और इस कारण तात्त्विक दृष्टि से एक समान।

७१३. दगौ—दग गया है, प्रसिद्ध है (कि भले को लोग बुरा नाम दे ही देते हैं) धर्मराज को लोग यम और (पवि) इंद्रायुध को गाज कहने में न तो कुछ हिचकते ही हैं और न विचार ही करते हैं अर्थात् चट कह डालते हैं।

७१५. गाँवर—गँवार, अज्ञान।

७१६. तन, धन, महत्त्व और धर्म जिसे प्राप्त हैं परंतु जिसके पास इनके साथ साथ अभिमान भी है, उसका जीना धोखा ही है और परिणाम में भी उसे धोखा ही मिलेगा।

७१७. जप करनेवाले और पूजा करनेवाले राजाओं से अपमानित किए जाते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि हम लोग देवताओं से बढ़कर हैं, ये हमारी पूजा छोड़ देवताओं की पूजा करके भारी अपराध करते हैं।

७१८. बालि ने सुग्रीव से वैर किया और रावण ने विभीषण का निरादर, दोनों ने राम से मिलकर अपने अपने भाइयों का नाश किया।

७२२. चंग—गुड्डी, पतंग। ढिलाई देना—(नीच पक्ष में) कड़ाई न करना।

७२३. खग मृग मीन—पक्षी, पशु और मछली को साथी, अर्थात् क्रमशः बाज, सिंह और बड़ी मछली इत्यादि, कच्चा ही खा जाते हैं और लोग पकाकर खाते हैं। कैसे बेचारे अपना समय व्यतीत करें?

७२४. इतना पापी कि बड़े पापों को करने में प्रशंसा समझता है और छोटे पापों के करने में लज्जित होता है (पापत्व के कारण नहीं बल्कि छोटाई के कारण)।

७२५. सद्बुद्धि का निवारण कर और उसे त्यागकर चाहे आयुधों के स्थान पर फूलों और पत्तों ही से क्यों न संग्राम कीजिए परिणाम बुरा ही होगा। यदुवंशी और कामदेव इसके साक्षी हैं। यदुवंशी एक घास लेकर लड़े थे जिससे उनका नाश हो गया। कामदेव फूलों के बाण लेकर शंकर पर प्रहार करने चले थे सो शरीर खो बैठे।

७२७. डहके तें डहकाइबो—ठगने से ठगा जाना अच्छा।

७२८. परे मामला—मामला पड़ने पर, टीकाकारों ने इसका अर्थ 'न्यायालय में मामला चलने' पर किया है।

७२९. सनाह—कवच।

७३३. कालकूट—विष।

७३४. पाही खेती—पराई खेती जोतना; पाही काश्त।

७३६. बधूर—बवंडर, वात्याचक्र।

७३८. रुचिं अनुहरत अचार—स्वच्छंद आचार, जिसके मन में जैसा आता है वैसा ही करता है।

७४५. महि...सरूप—पृथ्वी पर से जैसे पहाड़ पर का आदमी छोटा (खर्ब) दीखता है और पहाड़ पर से पृथ्वी बड़ी।

७४७. सुकृत...मरजाद—यह सतसई पुण्य, स्वार्थ और परमार्थ सब की सीमा है; इसके अनुसार चलने से तीनों सिद्ध होते हैं।

(२) बिहारी-सतसई

१. स्यामु—(१) कृष्ण, (२) काला, (३) पाप। हरित-दुति—(१) निष्प्रभ, (२) हरा रंग, (३) प्रभाव-रहित।

२. अंग के—राज्य के कई अंग माने जाते हैं जिनमें राजा प्रधान है और उसके कर्मचारी तथा प्रजावर्ग सहायक। इजाफा—(अरबी) वृद्धि, बढ़ती।

३. अर—हठ। बर-परे—बरजोर, बलिष्ठ, जबर्दस्त। मरक—बढ़ावा।

४. गनी—गिनी गई, समझी गई। घनी-सिरताज—बहुतों (सौतों) में श्रेष्ठ। मनी—मणि; भिन्न प्रकार की मणियों के भिन्न भिन्न प्रभाव माने जाते हैं।

५. सनि...लगन—ज्योतिष के अनुसार वह व्यक्ति जिसके जन्म के समय मीन का शनैश्चर हो, राजा होता है।

६. नटसाल—बर्छी की टूटी हुई नोक जो घाव में रह जाती है। (नष्ट शल्य)।

७. सौंधे—सुगंधि।

९. बहके—बे-वश ।

१३. काननु—(१) कानों का, (२) वन का अर्थात् कान-रूपी वन ।

१४. पातरी कान की—कान की पतली अर्थात् कच्ची । बहाऊ—बहा देनेवाली, काम बिगाड़नेवाली ।

१५. दुरजोधन लौं—दुर्योधन को शाप था कि जब उसे हर्ष और शोक एक साथ होगा उसी समय उसकी मृत्यु हो जायगी ।

१९. सुमनु—(१) अच्छा मन, (२) फूल; फूल लगने पर फल होता है । बारी—(१) बालिका, (२) माली । बारी—(१) पारी (नायक के आने की), (२) वाटिका, उद्यान ।

२०. तरयौना—(१) कान का एक गहना, (२) नहीं तरा हुआ, माया में फँसा हुआ । स्रुति—(१) कान, (२) वेद । नाक—(१) नासिका, (२) स्वर्ग । मुकतनु—(१) मणियों के, (२) जो मुक्त हो चुके हैं उनके ।

२१. तरहरि—नीचे । धरहरि—निश्चयपूर्वक ।

२५. उरबसी—एक अप्सरा का नाम । उर-बसी—उर में बसी हुई । उर-बसी—छाती पर पहनने का एक गहना ।

२६. चाँड—लालच, इच्छा । ईठि—इष्ट, मित्र ।

३०. किबलनवी—किब्ल:नुमा, वह यंत्र जिससे दिशा का ज्ञान होता है ।

३१. गीधे—ललचाए हुए, परचे हुए । गीधहिं—जटायु को ।

३४. कमल—चरणों की उपमा होने के कारण इससे चरणों का संकेत होता है । कमल को सिर से छुवाकर नायक ने पाँव पकड़कर मिलने की प्रार्थना की । हरि—सूर्य । सूर्य की ओर दर्पण करके हृदय (कुच) पर लगाने से यह भाव सूचित किया कि जब पर्वतों के उस ओर जाकर सूर्य अस्त हो जायँगे तब मिलूँगी ।

३९. झर—वर्षा की झड़ी। झार—ज्वाला।

४१. हरि—परमात्मा।

४२. बिंदु सुरंग—लाल बेंदी। केसरि-आड़—केसर का तिलक। नारी—(१) स्त्री, (२) ज्योतिष में नाड़ी। जब चंद्रमा, मंगल और बृहस्पति एक ही नाड़ी के चारों नक्षत्रों में से किसी पर होते हैं तो सारे संसार में वर्षा होती है। रस—(१) शृंगार रस, प्रेम, (२) जल (वर्षा से)।

४८. पजरै—प्रज्वलित होती है, जलती है। बात—बातरूपी हवा।

४९. अटपटी—बेढंगी। कर बर—चितकबरा, चीते का रंग चितकबरा होता है, इसलिये चीता।

५३. रोज परै—दिन पड़ने पर, विपत्ति पड़ने पर।

५४. होमति—हवन करती है।

५५. सायक—संस्कृत शायक का अपभ्रंश रूप। सुलानेवाला समय, सायंकाल। संध्या समय की लाली से आँखों की लाली की उपमा दी भी जाती है। लाला भगवानदीनजी ने सायँक पाठ ग्रहण किया है।

६५. खिसौंहैं—अपराध से संकुचित।

६६. कै बा—कै बार, बहुत समय।

६९. दिया बढ़ाएँ—दिया बुझाने को उसे बढ़ाना कहा जाता है।

७२. सतरौंहैं—रोष भरे। रचौंहैं—रचने पर आया हुआ, अनुराग की ओर ढला हुआ। नचौंहैं—प्रेम से चंचल।

७४. सोधति—शोधती है, शुद्ध करती है, तपाती है।

७७. छबि-गुर-डरी—छबि-रूपी गुड़ की डली। वशीकरण के एक प्रयोग में गुड़ की डली अभिमंत्रित करके उस मनुष्य से छुवाई अथवा उसे खिलाई जाती है जिसे वश में करना होता है।

७९. मुकुरु—मुकरनेवाले। मुकुरु—दर्पण।

८०. मौज—आनंद, ऐश्वर्य।

८२. बिकान—बिक गया, लोप हो गया। चौका—आगे के चार दाँत। चीन्ह—चिह्न।

८६. चौसर—चौलड़ हार।

८७. मैना—राजपूताने की एक जाति जो पहाड़ों और जंगलों में रहती है और लूट-खसोट से अपनी आजीविका चलाती है। इस जातिवालों को मीना भी कहते हैं। मवासु—दृढ़ निवास-स्थान।

८८. त्रिबली—नाभि से ऊपर बालों की एक लकीर सी होती है इसी को त्रिवली कहते हैं। समाहि—सामना करके। चाहि—देखकर।

८९. बुरै—उड़ै, उड़ जाता है अथवा डरा जाती है या व्यय हो जाती है। कहीं कहीं दुरै पाठ भी मिलता है।

९०. चुहुटिनी—(१) घुँघुची, (२) चिमटकर पकड़ रखनेवाली।

९२. सुधा दीधिति—चंद्रमा। अगस्तिया—अगस्त्य का वृक्ष।

९३. गदराने—पकने पर आए हुए अर्थात् यौवन में प्रवेश करती हुई। गोरटी—गौर वर्णवाली। ऐपन—चावल और हल्दी को पीसकर बनाया हुआ एक प्रकार का लेप। हूठ्यौ दै—मुट्ठियाँ बाँधकर कमर पर रखना हूठा देना कहलाता है। गँवारू स्त्रियाँ जब इठलाती अथवा किसी को चिराती हैं तो ऐसा करती हैं। वार—आक्रमण।

९४. तंत्रीनाद—वीणा इत्यादि का मधुर स्वर।

९५. सहज सचिक्कन—स्वाभाविक ही (बिना तेल लगाए) चिकने।

९६. छुटैं पीक—प्रिय के चुंबन करने के कारण पीक के छूट जाने पर।

९७. गाड़ैं—गड्ढे। उपट्यौ—कोमल वस्तुओं पर किसी कठोर वस्तु से दबने से चिह्न पड़ जाने को उपटना कहते हैं। गुरेरनु—छोटी छोटी गोलियों से जो गुलेल के द्वारा निशाने पर चलाई जाती हैं।

१००. नीठि—कठिनता से।

१०१. केसव—कृष्ण। केसवराइ—बिहारी के पिता केशव-राय। द्विजराज-कुल (१) चंद्रवंश, (२) ब्राह्मण कुल।

१०२. सरि—सादृश्य, समानता, बराबरी। जातरूप—स्वर्ण।

१०३. मकराकृति—मछली के आकार के। हिय-घर—हृदय-रूप घरा (स्थान)। समरु—स्मर, कामदेव। निसान—निशान, ध्वजा।

१०४. खौरि—बीच में से खुरचा हुआ आड़ा तिलक। सुरक—तिलक का नाक तक आया हुआ भाले के आकार का भाग।

१०६. तरल—चंचल, हिलता हुआ।

१०९. लोइन लगै—लोचनों में लग सकती है, अर्थात् सुंदर लग सकती है।

१११. सूमति—सुमता, कृपणता।

११२. जेठ में दिन बड़े होते हैं और रातें छोटी। उसी प्रकार युवावस्था में कुच बढ़ते हैं और कमर घटती है।

११३. तेह तरेरे—क्रोध से तिरछे।

११४. छाम—क्षाम, क्षीण, दुर्बल। उठति नाँदि—दीए की ज्योति का एकाएक भभक जाना नाँद उठना कहाता है। यह बहुधा तेल चुक जाने पर होता है।

११५. चटकाली—गौरैयों की पंक्ति। चाली—चाल डाली या चलनी चलनी कर दी।

११६. नींदनु जोग—निंदा करने के योग्य।

११७. नवत—(१) बाल नीचे की ओर जाते हैं, (२) नर नम्र होते हैं। सतर—(१) चिड़चिड़े, (२) ऐंठे हुए, उठे हुए। नरम—(१) ढीले, (२) नम्र।

११८. बिय—द्वै, दोनों।

११९. रस—(१) प्रेम, रति। (२) वैद्यक में धातु औषधों को रस कहते हैं।

१२०. नग—रत्न, स्त्री-रत्न। जाइयै—ज्याइयै, जिलाने के उद्देश्य से। सुदरसनु—(१) सुंदर दर्शन, (२) सुदर्शन चूर्ण जो ज्वर में दिया जाता है।

१२२. बिय—द्वितीय, दूसरी, अन्य। डहडही—हरी भरी, प्रफुल्लित। मरगजी—मुरझाई हुई।

१२४. संसौ—संशय, प्राण बचते हैं या नहीं नित्य यह संशय बना रहता है। हंसौ—(१) आत्मा, प्राण; (२) हंस पक्षी; प्राण रूप हंस। मीचु-सचानु—मृत्यु रूप बाज।

१२५. गैल—रास्ता।

१२६. गोरस—इंद्रियों का स्वाद। गोरसु—गव्य, दूध, दही, मक्खन इत्यादि।

१२८. हरकी—हटकी, बरजी, रोकी।

१२९. पर्यौ जोरु—जोड़ा पड़ा (अखाड़े की भाषा), प्रतिद्वंद्वी नीचे आ दबा। यहाँ पर नायिका का पक्ष लेकर कहा जा रहा है, इसलिये जोड़ से अभिप्राय नायक से है। किंकिनी—कमर पर पहनने का एक आभूषण जिसे उस पर बँधी हुई छोटी छोटी घंटियों के कारण क्षुद्रघंटिका भी कहते हैं। मंजीर—नूपुर।

१३०. दियौ बताइ—दीया बुझाकर।

१३३. सौनजाइ—सोनजुही, पीली चमेली।

१३४. चाले—गौने।

१३५. बनौ—ऊख। धरहरि—धैर्य।

१३६. छिगुनिया—छोटी उँगली, कनिष्ठिका।

१३९. डगकु—एक डग या पग। चोरटी—चोरी (चित्त की) करनेवाली।

१४२. अचक्का—सहसा, अचानक, एकाएक।

१४४. जावनु—जामन, दही आदि कोई खट्टी चीज जो दूध जमाने के लिये उसमें डाली जाती है। नेहैं—स्नेह को।

१४५. रैहाल—पारसी 'रहवार' का विकृत रूप जिसका अर्थ होता है चलनेवाला। रूढ़ि से अब रैहाल घोड़े के लिये प्रयोग में लाया जाता है। ग्वैंड़ौ—घर के चारों ओर की भूमि जो उसकी सीमा में सम्मिलित समझी जाती है। पैंड़ौ—मार्ग।

१४६. सवारु—सबेरे, जल्दी, प्रिय को अभी परदेश से आए बहुत दिन नहीं हुए कि उसने जल्दी ही फिर परदेश जाने की तैयारी कर दी, यह भाव है।

१४७. चैंपु—लासा, जिससे बहेलिए पक्षियों को पकड़ते हैं।

१४९. अमिलु—जो अपने मेल के न हों। धर्‌यौ सीस हियैं धरि हाथु—हृदय पर हाथ धरकर फिर उसे सिर पर रक्खा। हृदय पर हाथ रखने से अभिप्राय कि मैं तुम्हें हृदय में रखता हूँ। सिर पर हाथ रखने से यह तात्पर्य है कि तुम्हारी सब प्रेमपूर्ण आज्ञाएँ शिरोधार्य होंगी।

१५०. नैननु लगैं—आँखों के लड़ने से।

१५२. चुभकी—डुबकी। केसरि नीर—(उसके शरीर की कांति से) जल ऐसा मालूम पड़ता है मानों उसमें केसर घुला हो। सरि-नीर—नदी का जल।

१५३. नवोढ़—नवोढ़ा, नई (नव) ब्याही (ऊढ़ा) दुलहन। पिचकी—पिचकारी।

१५५. सुरत—रति।

१५६. मनि-मुत्तिय-माल—मणि और मुक्ताओं की माला।

१५९. छिगुनी—छोटी उँगली; कनिष्ठिका। गिलत—निगल डालते हो। छ्वै छिगुनी पहुँचै गिलत—उँगली पकड़के पहुँचा पकड़ना मुहावरा है। ब्यौंत—ढंग, डौल।

१६२. छटतु—शोभित होते हैं। छाँह—झलक। अटक-भटक-बट—बट का वह वृक्ष जो भूलभुलैया बन रहा हो। 'ब्रजभूमि के 'भांडोर वन' में अभी तक कुछ ऐसे वट के पुराने वृक्ष हैं जिनकी बरोहें लटक-लटककर इस प्रकार जम गई हैं कि उनके नीचे भूल-भुलैयाँ सी बन गई हैं।'—रत्नाकर।

१६३. ओप—द्युति, शोभा, चमक।

१६४. रातैं हियैं—अनुरक्त हृदय से। काती—काटनेवाली, छुरी अथवा कैंची।

१६५. सिहाँति—सिहाती हैं। किसी को देखकर मुग्ध होते हुए स्वयं भी वैसी ही होने की इच्छा करना। उकसौंही भाँति—उभरने पर आई हुई (छाती)।

१६६. उभकौंहैं—आँसू भरे। नराइ—टालकर, बचाकर। गह-वरि आएं गरैं—गला भर आने से, कंठ के रुँध जाने से। गढ़वाली भाषा में इसे गभर भर आना कहते हैं। राखी—रक्षा की।

१६७. दरपन-धाम—काच-मंदिर, शीशमहल। काय-व्यूह—शरीर का मोरचा। व्यूह सेना की उस रचना को कहते हैं जिसमें घुसकर बाहर निकल आना कठिन हो जाता है।

१७०. अठान—ठानने के अयोग्य।

१७२. गरमी के दिन और शिशिर की रातें बड़ी लंबी और दुःखप्रद होती हैं।

१७४. बटपरा—रास्ते में छापा डालनेवाले ठग या डाकू।

१७६. अथाइनु—चौपालों, द्वार पर की ऊँची उठी हुई बैठकें। अभिसार—नायिका का नायक से मिलने के लिये संकेत-स्थान पर जाना। सँझौखैं—साँझ की, संध्याकाल की।

१७७. रोकि...नाहिं—सबका यहाँ पर अशुद्ध प्रयोग हुआ है। सब नहीं रोक सकते हैं कुछ रोक सकते हैं। होना चाहिए था रोकि सकैं कोउ नाहिं।

१७८. सरस—(१) रसीले, (२) पुष्ट और सधे हुए। सुमिल—(१) अनुरागी, (२) गोल में मिलकर चलनेवाले। उठान—(१) उमंगें, (२) कावे। गोइ निबाहैं—(१) छिपाकर निर्वाह करने से, (२) गेंद को निश्चित स्थान तक पहुँचाने से। चौगान—आधुनिक पोलो की तरह का एक खेल।

१७६. उमदाति—उन्मत्त सी होती हुई। बलकि बलकि—बहक बहककर। ललकि ललकि—बढ़ बढ़कर।

१८३. ऐंड़—गर्व। ऐंड़ाति—गर्व से ऐंठती है।

१८४. सौंह—सौगंद। पनिहा (प्रणिधाः)—गुप्तचर।

१८५. कनौड़ो—लजीली (अपराध के कारण)।

१८६. मरकत—नीलम।

१८७. वारैं—बारी (पारी) में।

१८८. चुपरी—चोवा चर्चित।

१९१. कनकु—(१) सोना, (२) धतूरा।

१९३. डीठि-बरत—दृष्टि रूपी (वर्त) रस्सी।

१९५. लोइन—लोचन।

१९६. लफति—लचकती हुई। सटक—पतली लचीली छड़ी।

१९८. हरौल—हरावल की सेना, सेना का वह छोटा सा भाग जो सेना के प्रधान अंश के कुछ आगे आगे चलता है जिससे प्रधान

सेना पर बिना खटका पाए शत्रु का आक्रमण न हो सके। गोल—समूह, सेना का प्रधान अंश।

१९९. अनखुलो—बिना अपने हृदय की बात को प्रकट किए।

२००. बाथ—अंक—'रत्नाकर'; अँकवार।

२०१. प्रयाग—प्रयागराज में गंगा (गौर वर्ण), यमुना (श्याम) और सरस्वती का मेल होता है। व्रज के विहार-कुंजों में राधा के गौर वर्ण, कृष्ण के साँवले रंग और भक्त के हृदय के अनुराग—जिसका रंग लाल समझा जाता है—के मिलने से प्रयाग बनता है।

२०४. नौल सिरी—नवल श्री, नई शोभा। वौलसिरी—मौलसिरी।

२०९. अनवटु—पैर के अँगूठे में पहनने का एक गहना।

२१०. केलि-तरुनु—केले के पेड़ों से जिनकी जंघाओं की उपमा दी जाती है। केलि-तरुन—क्रीड़ा में तरुणों को।

२१३. लोइन—लोचन। लोइन-सिंधु—लावण्य के सागर।

२१४. ढिग—किनारी। हद—अत्यंत, परम। रद-छत (रद-च्छद) रद का आच्छादन करनेवाले, ओंठ। सद—ताजा। रद-छद—दाँतों से किया हुआ घाव।

२१५. यह दोहा रुक्मिणी-हरण के अवसर का है।

२१७. औंधाई—औंधी कर दी, उलट दी।

२१८. छिनदा (क्षणदा)—रात्रि। छाक—एक प्रकार का पकवान जिससे नशा होता है, यहाँ पर नशा।

२२०. जोबन-आमिर (अर०)-जौर (फा०)—यौवन-रूप शासक का अत्याचार।

२२३. बरोठे—प्रकोष्ठ, दीवाल से घिरा हुआ आँगन। विधि की घरी—ब्रह्मा की घड़ी।

२२४. चीर-हरण का प्रसंग। कर-जोरि—हाथ जोड़कर। जिससे कुचों पर से, जिन्हें गोपियाँ लज्जा के मारे हाथ से ढाँपे हुई हैं, हाथ उठ जायँ।

२३०. मलिंग—मलंग, एक प्रकार के मुसलमान फकीर जो बहुत कम कपड़े पहनते हैं और शरीर को लोहे की साँकलों में जकड़कर भगवद्भजन में मस्त रहते हैं।

२३१. छाँहगीरु—छाँह देनेवाला, छत्र।

२३४. ससहरि—डरकर।

२३५. मोखु—मोक्ष।

२३७. चिरम—घुँघुची।

२४०. सौंहैं—सामने। सौंहैं—सौगंद।

२४२. मौरि—मौलि, शिर।

२४३. चूढ़—बीर-बहूटी जिसका रंग लाल होता है।

२४४. निदाघ—ग्रीष्म। उसीर—खस। रावटी—टट्टी की ओट। आवटी—उबली।

२४६. ददोरनु—पित्तों के फूले जिनमें बड़ी खुजली होती है।

२४७. फरी—ढाल। पाइक—पैदल। घाइ—घात, वार, चोट।

२५०. गुनही—(फा०) गुनाही, अपराधी। अगोटि—कैद करके।

२५२. भावकु—थोड़ा। भरु—भारीपन। सीपहार—सीप का हार।

२५३. भटभेरा—मुठभेड़।

२५५. अपत—अपत्र, बिना पत्ते की।

२५७. कुही—बाज की छोटी जाति। नीचैा दयौ—ऊपर से जोर से शिकार पर टूट पड़ा। कुलिंग—एक छोटा पक्षी। झपि—छोपकर।

२५९. हथलेयैं—हाथ लेने में, पाणिग्रहण करने में।

२६०. बाबारि—घर में। एक ही घर में रहने पर भी वर्षों तक नायक और स्त्रियों के पास नहीं जाता।

२६३. जालरंध्र—झरोखे की जाली के छेद। जगत्यौ रह्यौ—जागता ही रहा।

२६८. प्रसंग—गणेश-चतुर्थी, जिस दिन चंद्रमा के उदय होने पर अर्घ्य देकर व्रत समाप्त किया जाता है।

२६९. प्रसंग—वही। सुचिती—स्थिर चित्त होकर, क्योंकि नायिका के अटारी पर रहने से उसका मुख-चंद्र दूसरे चंद्रमा का भ्रम उत्पन्न करता है।

२७४. पुन्यकाल सम दोनु—पुण्यकाल में दोनों समान रहते हैं। जिस रेखा पर किशोरावस्था और युवावस्था मिलती हैं वही यहाँ पर पुण्यकाल माना जायगा। ज्योतिष शास्त्र में सूर्य का मार्ग १२ राशियों में बाँटा गया है। सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में जाना संक्रमण (दोहे में का संक्रोनु) या संक्रांति कहलाता है। सूर्य-पिंड के मध्य बिंदु को दो राशियों की संधि-रेखा में आने और उसे छोड़ने में जो समय लगता है वह पुण्यकाल कहलाता है।

२७५. छत (सत) हूँ—होते हुए भी। अछत समान—न होने के समान। तिथि औम—अवम तिथि जो होती तो है पर उसके नाम से किसी दिन की गिनती नहीं होती। यह बात तब होती है जब कोई तिथि सूर्योदय के बाद से आरंभ होकर दूसरे दिन के सूर्योदय के पहले ही बीत जाती है। सूर्योदय के समय जो तिथि रहती है उस दिन भर वही तिथि मानी जाती है। इससे इस तिथि की गिनती नहीं होने पाती।

२७६. करतार—हाथ की ताली।

२७७. सफरी—मछलियों की एक जाति।

२८१. त्रयताप—शारीरिक, दैविक और आत्मिक। हमाम—हम्माम (अरबी) नहाने का कमरा जो ऊपर, नीचे और दीवालों से गरम किया जाता है। हम्माम में स्नान करने से रोम रोम खुलकर खूब पसीना आता है।

२८५. माह—माघ का महीना।

२८७. लाइ—ज्वाला, लपट।

२८९. लगौहैं—जिन्हें आसक्त हो जाने की आदत ही है।

२९१. लहाछहे—नृत्य में पद-लाघव।

२९२. तरौंस—तटवर्त्ती, कूल के पास का। खिनकु—क्षण भर। खरौंहौं—खारा।

२९३. नै—नदी। बगर बगर कै बार—घर घर के दरवाज़े पर।

२९५. कन—अन्न (भीख)। थुरहथी—छोटे हाथवाली। रहचटैं—लालच में।

२९८. निय—निज। खरौंट—हलका घाव। सरसई—गीलापन। खोंटि—खुरचकर।

३०४. परिवेखु—मंडल, घेरा।

३०७. घरी—समय-दर्शक जल-यंत्र की घड़ी।

३०९. सहबात—मेल की बात-चीत। भेद-उपाइ—भेदनीति से अपनी तरफ मिलाने का उपाय। सुरँग—(१) सुंदर रंग, प्रेम। (२) सुरंग—वह छेद जिसमें बारूद भरकर आग लगाने से बड़े बड़े चट्टान या किले गिरा दिए जाते हैं।

३११. आँटैं परि—दाँव पड़ने पर।

३१४. तिलौंछे—तेल से पोंछे हुए। सुरमा छुड़ाने के लिये आँखें तेल से भींगे कपड़े से पोंछी जाती हैं। तिलौंछे नेत्र रोष के व्यंजक हैं।

३१५. मरगजे मुँह—मलिन मुँह, फीके चेहरे। मरगजैं चीर—मरगजी साड़ी, वह साड़ी जिसमें क्रीड़ा के कारण सलवटें पड़ गई हैं।

३१६. आघु—अर्घ्य, मूल्य।

३१८. काल-विपाकु—अवधि। उछकै न—उतरता नहीं।

३२०. लगनिया—लगन, अभिलाष, अनुराग।

३२२. धर—पृथ्वी।

३२३. सकाइ—शंकित होता है।

३२४. हाँसी—हँसी। हाँसीयै—हाँ के समान ही।

३२५. खुस्याल—खुशहाल (फा०) प्रसन्न, सुखी।

३२८. झरसी—झुलसी हुई। गरी—गली हुई।

३३०. बनौटो रंग—हलका पीला कपासी रंग। बन कपास की एक विशेष जाति है।

३३७. साँठे—पौंडे।

३३९. उरबसी—एक आभूषण। दागु—दग्ध, दाह।

३४०. पँचतोरिया—इतनी झीनी साड़ी कि उसका तोल केवल पाँच तोला हो। जल-चादर—जलकणों का विस्तृत और झीना प्रवाह। इस दोहे से जान पड़ता है कि जल चादर के पीछे किसी उपाय से दीए भी जलाकर रख दिए जाते थे जो निस्संदेह अत्यंत शोभा देते होंगे।

३४४. गढ़वै—गढ़वर्तिनी, किले में रहनेवाली।

३४७. सबी—(अरबी शबीह) चित्र। कूर—कूड़ा, निकम्मा, मूर्ख।

३४८. टुनहाई—टोना करनेवाली। टोल—टोला, मुहल्ला। त्यौं—तरफ। अदोखिल—निर्दोष।

३४९. ईछन—ईक्षण, दृष्टि।

३५०. मूठि—मूठी मारना एक तांत्रिक प्रयोग है जो कई उद्देश्यों से किया जाता है। इसमें उद्देश्य के अनुसार भिन्न भिन्न सामग्री अभिमंत्रित करके मुट्ठी में भर ली जाती है और जिस पर प्रयोग करना होता है उसकी ओर फेंक दी जाती है।

३५१. अरक—आक का पेड़। अरक—सूर्य। उदोत—प्रकाश।

३५५. आहु—ललकार।

३५६. कमनैती—बाण चलाने की विद्या।

३५७. मावस—अमावास्या।

३५९. धन—धन्या, स्त्री।

३६०. सोंठ-मिठासु—सोंठ की कुछ गाँठें विषैली हो जाती हैं। विषैली गाँठों में सोंठ की स्वाभाविक चरपराहट न होकर एक प्रकार की मिठास होती है।

३६१. खुटैं—खुलते।

३६२. कपूर मनि—कुछ पीले रंग का मूल्यवान् पत्थर जो तिनके को आकर्षित करता है, इसी लिये यह तृण मणि भी कहलाता है। फारसी में इसे कहरुवा कहते हैं।

३६४. चिकनाई—चिक्कण अथवा स्निग्ध होता है, प्रेममय होता है।

३६६. मरुधर—मरुभूमि, मारवाड़। मतीरु—बड़ा तरबूज। मारू—मारवाड़ी।

३६७. वृषादित—वृषादित्य, वृष राशि का सूर्य।

३६८. ढोठ्यौ—ढिठाई।

३७१. भजन—भजन करना। भज्यौ—भागा। भजन—भागा। भज्यौ—भजन किया।

३७२. सैक—सैकड़ों।

३७३. अँगना—अंगना, स्त्री। अँगना—आँगन।

३७५. दुसाल—आर पार छेदा हुआ।

३७६. आघु—आदर, मूल्य। गर पर्यौ—गले पड़ा हुआ, निरादृत।

३८०. हरहारु—हर का हार, सर्प।

३८२. उमदाहु—उमंगित होकर झुक पड़ो।

३८३. ईठि—मित्र।

३८६. लंगरु—ढीठ।

३८७. पोढ़—प्रौढ़ा के उपयुक्त। अपोढ़—जो प्रौढ़ा नहीं है। छकए छकी—मद्य के नशे में चूर।

३८८. रनित—बजते हुए। दान—हाथी का मद।

३९३. सूरन—एक प्रकार का कंद होता है जिसकी तरकारी बनाई जाती है। यदि यह जरा भी कच्चा रह जाता है तो मुँह में कनकनाहट मालुम होने लगती है।

३९६. राजसु—राजसिक वृत्तियाँ, क्रोध, गर्व इत्यादि।

३९९. कालबूत—मिट्टी अथवा लकड़ी का साँचा जिसके सहारे जूते का ऊपर का हिस्सा बनाया जाता है या मकान की छत अथवा द्वार का कड़ा जोड़ा जाता है। लदाइ—छत अथवा द्वार के कड़े की जुड़ाई, लदाव।

४०४. बूढ़नु—(१) वृद्धों को। (२) बीरबहूटी।

४०५. जक—असंतोष। भजत—भागते हैं।

४०६. ति—वे। कँटीली—कंटकित हुई, नायिका की।

४१०. उयैं—उदय (सूर्य के) के समय। साँझ—रात भर रति में जागते रहने के कारण आँखों की लालिमा। लालिमा संध्या की विशेषता है।

४११, औथरौ—उथला, छिछला।

४१४. जलथंभ विधि—वह क्रिया जिसके द्वारा जल में बैठा हुआ होने पर भी जल में बैठे हुए मनुष्य पर किसी प्रकार का प्रभाव न पड़े। दुर्योधन को यह क्रिया मालूम थी।

४१५. पति के अवगुण और ऋतु के गुण क्रमशः मान (रोष) और माघ महीने की ठंढक बढ़ती है और उनसे भी क्रमशः स्त्री का मन और मक्खन अत्यंत कठोर हो जाता है।

४१८. सुरंगु रंगु—लाल रंग। कवियों ने प्रेम का रंग लाल माना है। इसी से वह सुरंग भी माना गया है।

४१९. ससिसेखर—शशिशेखर, महादेव। अकस—(अरबी) अक्स, स्पर्धा, किसी से बढ़ जाने की आकांक्षा।

४२४. उभरत—ऊपर सरकने पर। गुभरौट—आँचल का सिमटन पड़ा हुआ वह भाग जो हाथ को ढके रहता है। लौट—लौट जाना। शरीर के अंगों के खुल जाने की आशंका से वह लौट पड़ती है।

४२५. कुबत—बुरी बात। सरल—(१) सीधा, (२) कपट-हीन। त्रिभंगी—तीन जगह से टेढ़े।

४२८. गुन-बिस्तारन काल—(१) जब रस्सी बढ़ाई जाती है। (२) त्रिगुणात्मक माया का प्रसार होने पर। निर्गुन—(१) बिना रस्सी का, जिसकी रस्सी समेट ली गई है। (२) भगवान् का निर्गुण रूप। चंग-रंग—पतंग की तरह।

४३३. छाया-ग्राहिनी—सिंहिका नाम की एक राक्षसी जो राहु की माता मानी जाती है। यह समुद्र में रहती थी। इसे यह शक्ति प्राप्त थी कि आकाश में उड़ते हुए जिस किसी की छाया जल में पड़ जाती उसको उसी छाया के द्वारा खींच ले आकर खा डालती। हनुमान् को भी उसने इसी प्रकार पकड़ना चाहा था, परंतु उन्होंने उसे मार डाला।

४३४. सराध पखु—श्राद्धपक्ष या पितृपक्ष। पितृपक्ष में जब पितरों का श्राद्ध किया जाता है तब कौवों को भी अन्न खिलाया जाता है।

४३६. ब्यौरनि—बाल सँवारने का ढंग विशेष। ब्यौरै—भेद।

४३८. जिन—जिनके। आब—पानी, यहाँ पर कांति। गँवई गाँव—गँवारों की बस्ती।

४४१. भासिहै—चमकेगी, सुंदर लगेगी। भोडर—अभ्रक।

४४२. बकारी—रुपया सूचित करने के लिये जो एक टेढ़ी लकीर खींची जाती है उसको बकारी कहते हैं।

४४३. कसु करि—कैसे ही करके, या बलपूर्वक। दुसार—आरपार छिदा हुआ। भेदै—पीड़ा देता है। सार—साल, शल्य।

४४५. अछेह—अक्षेप, निरंतर। बरत—बलते।

४४६. निर्गुन—डोरी रहित; प्रिय के आलिंगन से उरस्थल में उपटी हुई माला का चिह्न जिसमें डोरी का चिह्न नहीं आता।

४४७. काक-गोलकु—यह प्रसिद्ध है कि कौए की दोनों आँखों में एक ही गोला फिरता है। जिस आँख से वह देखना चाहता है, उसी आँख में गोलक चला आता है।

४४८. नह-दी—नखों पर दी हुई या लगाई हुई (मेंहदी)।

४५२. कटनि—काट, (१) प्रेम का घाव, (२) नदी का कूल को काटना। हौंस—हवस, अभिलाषा।

४५४. कौतुक लग्यो—खेल में लगा हुआ।

४५७. टाँकु—जरा भी, टंक तौल का एक बहुत छोटा परिमाण माना जाता है।

४५९. सटपट परी—सिटपिटाई हुई, घबड़ाई हुई।

४६०. घैरु—निंदा। उहीं—उसी निंदा की बात को। उहीं घर—उसी घर को।

४६१. चहलैं पड़ैं—कीचड़ में फँस जाते हैं। बै नै—(वय नय) नई उमर।

४६२. गाढ़ैं—कठोर, सघन। ठाढ़ैं—ऊँचे उठ आए हुए। उकसौहैं—उभरने पर आए हुए। सबै—सब सौतियाँ। उकसाइ—उखाड़।

४६४. वासु—(१) वसन, वस्त्र। (२) वास-स्थान। गुढ़ौ—छिपने का स्थान।

४६७. देह लग्यौ—अत्यंत निकट। गेहपति—गृहपति, घर का स्वामी, अपना पति।

४६८. मनुहार—मन हरने की रीति।

४७१. ब्यौसाई—उद्योग करनेवाला।

४७२. बतरस-लालच—बातचीत के आनंद के लालच से।

४७५. बटपरा—डाकू। मत मैं न—चेत में नहीं हैं। कुहौ कुहौ—(१) कोकिल की कूक, (२) मारो मारो।

४७६. सर-पंजर—शर-पिंजर, बाणों का पिंजड़ा।

४७७. टटकी—ताज़ी, अभी की। धोवती—धोती। बगर—घर।

४७८. सारद-बारद—शरद्-ऋतु के बादल, जो सफेद होते हैं। रद—व्यर्थ, बेकाम।

४८०. त्यौनार—ढंग, रीति।

४८१. गलीत ह्वै—दुर्दशा में पड़कर।

४८२. निघरघट्यौ—निघरघट होने से भी। जो बिना घूँटे हुए एक बार सब पानी निगल जाय वह निघरघट कहलाता है। यहाँ वह निर्लज्ज होकर खुले आम अपराध करके साफ मुकर जानेवाले के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

४८४. घर परसौंहै—पृथ्वी को छूनेवाले।

४८५. लखि चकई चक्रवानु—चकई चकवा को अलग अलग देखकर रात का अनुमान होता है और एक साथ देखकर दिन का।

४८९. कहलाने—किस लिये। दाघ—दाह, ताप। निदाघ—ग्रीष्म ऋतु।

४९०. अगमन—आगे।

४९१. पोत—प्रकृति, स्वभाव।

४९२. विभावरी—रात्रि।

४९५. अगहनु—अगहन का महीना।

४९७. जुराफा—जिराफ। अफरीका का एक जंतु जिसके जोड़े के विषय में प्रसिद्ध है कि वे एक दूसरे से बिछुड़ने पर मर जाते हैं।

४९८. सौहैं—सम्मुख, सामने।

४९९. ही—थी। गुलाला-रंग—गुलाब के रंग के।

५०२. हई—विस्मय। जोइ—देखकर।

५०३. झझकावत—डर जाता है।

५०४. महुख—महोख, मधु।

५०५. उलमि—झुककर। अँगुरिनि उचि—पाँव की उँगलियों पर ऊँचे उठकर।

५०६. हठ्यौ दै—देखो दीपिका, दोहा ९३।

५०७. बिथुर्‍यौ—फैला हुआ, किसी अनजान का सा लगाया हुआ। गाँस—गुप्त भावना।

५०८. भानति भेउ—भेद भंग नहीं करती, प्रकट नहीं करती।

५०९. ग्वैंठी—टेढ़ी।

५१०. ही—हृदय।

५११. रति जगैं—रति के कारण जागरण, या रात का जागरण।

५१५. कै वा—कै बार। थरथरी—कँपकँपी, कंप (सात्त्विक)।

५१६. मीड़े—मसके हुए।

५२२. ढोरी—धुन, आदत।

५२३. ठिक ठैन—ठाट बाट। चुगल—छिपे भेद को खोल देनेवाले।

५२५. डाढ़ी सी—जली हुई सी।

५२९. अरैं—अड़ में, हठ में। मलै—मलय, चंदन। घनसार—कपूर।

५३०. चोर-मिहीचनी—आँखमिचौनी का खेल।

५३२. लोइन भरी—(१) लावण्य भरी, (२) लालसायुक्त। लोइन—(१) नेत्र, (२) लवा पक्षी। लाँक—कमर।

५३४. जकि—स्तंभित। रितयौ—खाली किया।

५३६. लोच—लचीलापन, नर्मी, सौंदर्य।

५४०. सद—बुरी आदत। बिहरत—घूमते। बिदरत—विदीर्ण करते।

५४२. चुटकि कै—चाबुक से बिना प्रहार किए डराने भर के लिये केवल आवाज करना जिससे डरकर घोड़ा उड़ान लेने लगता है। खूँद—चलने का प्रयत्न करने पर भी लगाम के खिंची रहने से एक ही स्थान पर घोड़े के पाँव पड़ने को खूँद कहते हैं।

५४३. उताल—उतावली। रहचटैं—रस की चाह अथवा लालच में।

५४६. कनतु—दानों से। दारयौ—दाड़िम। कपट-कुचाल—(१) छिपाने की बुरी आदत, (२) अच्छी तरह पकने के लिये कपड़े से दाड़िम का छिपाया जाना।

५४९. धुरवा—बादल। चहुँ कोद—चारों तरफ से।

५८

५५०. नख-रुचि-चूरनु—नखों की शोभा रूप चूर्ण। चूर्ण से ठगों की एक तांत्रिक क्रिया का तात्पर्य है जिसमें अभिमंत्रित राख जिसके ऊपर डाल दी जाती है वह उनके वश में हो जाता है, जिससे वे लोग आसानी से उसके पास का द्रव्य हरण कर सकते हैं। रुचि का अन्वय नख और चूरन दोनों के साथ लगेगा। नख के साथ इसका अर्थ शोभा होगा और चूरन के साथ यथेच्छ प्रभा करनेवाला। हथाहथी—हाथों हाथ।

५५४. चढ़ैं हिडौरैं सैं हियैं—हिंडोले पर चढ़े हुए से हृदय से। झोंके खाते हुए विचलित हृदय से।

५५५. नागवेलि—पान।

५५७. नारी-ज्ञानु—(१) नाड़ी-ज्ञान, (२) स्त्री-चरित्र का ज्ञान।

५५८. झुकावति—खिझाती है।

५५९. अधिकाई—अपने आपको बड़ा समझना, महत्त्व। गौं—अभिप्राय (कि देखना चाहिए कौन अपनी आन पर अड़ा रहता है)।

५६०. हुलसी—हूल, सूल, भाले की अनी सी।

५६१. रुचित—अच्छा लगना। सुचितई—चित्त की शुद्धता।

५६२. आन—सूत, सन इत्यादि पर पड़ी हुई।

५६५. पाहुने—पहुनाई के बहाने किसी परकीया के पास जानेवाले। है गुड़हर कौ फूलु—गुड़हर का फूल लाल होता है। नायक भी बहानेबाजी की पहुनाई से लाल रंग से रँगकर आए। आँखों में जागरण की लाली, कपोलों पर पीक की लीक और माथे पर महावर की रेखा थी। गुड़हर के फूल के विषय में यह भी प्रसिद्ध है कि जिस घर में वह आ जाता है उस घर में कलह ही कलह होती रहती है।

५६८. निमुके—निःस्व, कंगाल। कोसने के अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है।

५६९. नाइ—नाइँ, नाम।

५७०. नावक-सर—वे बाण जो नली के द्वारा चलाए जाते हैं। लोहे की नली में छोटे छोटे तीक्ष्ण बाण भर दिए जाते हैं और पीछे से बारूद भी उसमें डाल दिया जाता है। इसी उद्देश्य से छोड़े हुए एक छिद्र से अग्नि लगाकर ये बाण चलाए जाते हैं। छर्रों की तरह ये बाण चारों ओर फैल जाते हैं और निशाने को चलनी चलनी कर देते हैं।

५७१. मूका—भीत पर का वह छेद जो प्रकाश और वायु-संचरण के लिये बनाया जाता है।

५७५. पितमारक—पितृ-मारक, पिता को मारनेवाले (नक्षत्रों का योग)।

५७७. हित समुहौ चितु—प्रेम की ओर ढला हुआ चित्त।

५८२. दिठादिठी की ईठि—जिससे देखने ही से अभी जान-पहचान हुई थी, इससे आगे नहीं बढ़ी थी। नाहीं करति—उसका 'नहीं' कहना।

५८४. निकलंकु मयंकु के—ज्योतिष के अनुसार जब चंद्रमा निष्कलंक दिखाई दे तब अवश्य कोई बड़ा भारी उत्पात होगा, यह समझना चाहिए।

५८६. भृंगी—एक प्रकार का उड़नेवाला कीड़ा जो और कीड़ों को पकड़कर अपनी बाँबी में रख लेता है और उनके चारों ओर भनभनाकर उनको इतना भयभीत करता है कि उनको हर घड़ी उसी का ध्यान बना रहता है जिससे अंत में तल्लीन होकर वे भृंगी का ही रूप धारण कर लेते हैं।

५८७. सैन न भजै—(चारपाई पर किसी दूसरी स्त्री की वेणी का दाग़ देखकर) बिस्तर पर सोने नहीं जाती।

५८९. जुरि—अँगड़ाई लेकर। बीदि—जानकर।

५९०. सतर है—खूब तनकर। गौन—गगन, गऊन, गयन, गौन।

५९१. बसीठी—दूती।

५९२. दुख-हाइनि—दुःख की मरी, एक प्रकार की गाली। ढूका—परखी।

५९६. डहि—जलकर।

५९९. चढ़ाएँ—चढ़ाने से।

६०३. अरगट—अलंग। पानूस—फानूस, काँच का वह घेरा जिसमें मोमबत्ती या दीपक जलाया जाता है। लक्षणा से फानूस के अंदर की दीप-शिखा अर्थ होता है।

६०७. नटि न—मुकर मत, नाहीं न कर। सीस...मोट—मेरे सुखों की जो गठरी लूटी गई है, वह तेरे सिर पर है (तूने ही लूटी है), यह बात साबित हो चुकी है। चारी—चुगली। सलोट—सलवटें।

६०९. गाढ़ी गड़नि—गहरा धँसाव।

६१३. कोन—कोना।

६१५. इक आँक—एकदम। दगैं—दागती हैं, पीड़ा देती हैं।

६१६. जुदी—अलग। जु दी—जो दी थी। बासु—स्थान। बास—सुगंधि।

६१९. पटु पाँखै—पंख ही तेरे वस्त्र हैं। स पर—पर (पंख) सहित।

६२०. परेखौ—बीती बात का दुःख। परिपारि—परिपालि, मर्यादा।

६२६. चीर चिनौटिया—चुन्नट देकर रँगी हुई चूनरी।

६३६. कहूँ डीठि लागी—किसी से प्रेम हो गया है क्या? लगी...डीठि—या किसी की नज़र लग गई है।

६३७. भावरि अनुभावरि भरे—पसंद हो चाहे नापसंद हो।

६३८. बतरसु—वार्तालाप का स्वाद।

६४२. मिसहा—बहाना करनेवाले को।

६४४. जाइ—नहीं घटती।

६४७. चिकुटी—चुटकी। नारि—गरदन। गति...चलति—नाचने-गाने में गत भी गाती है।

६४८. अनुमान—तर्कशास्त्र का एक प्रमाण।

६४९. चलि गै, एक दूसरे की तरफ।

६५०. आसव—मदिरा।

६५१. धरधरा—धड़कन।

६५३. खलित—अर्थ से स्खलित, निरर्थक।

६५४. सबील—तरीका, उपाय।

६६०. नई-नमित—नई हुई। नई—नवीन। दइ—देव, दई, दी। उसासि—उभार। उसास—उच्छ्वास।

६६२. उनदौहीं—उनींदी।

६६४. लगी अनलगी—है या नहीं।

६६६. मुड़हर—साड़ी का वह भाग जो सिर पर रहता है। मौरु—मौलि, सिर। घूँटेनु तें—घुटनों के बल।

६७०. निचले—निश्चल। कजाकी—तुर्की कज्जाक से, डाकेजनी।

६७२. केम—कदंब।

६७३. मुरासा—कान का एक जड़ाऊ गहना।

६७७. बृषभानु—(१) वृषभानु की लड़की, (२) वृषभ (बैल) की अनुजा (बहिन), (३) वृषराशि के सूर्य की पुत्री। हलधर के बीर—(१) बलदेव के भाई, (२) बैल के भाई, (३) शेषनाग के अवतार के भाई।

६७९. सिलसिले—भींगे।

६८३. त्रासति—डराती है। ऐंचि—खैंचकर। इँची—खिंची हुई।

६८४. करत झाँझि—अड़ता हुआ। झकुरातु—झकोरे लेता हुआ। खूँदतु—देखो दीपिका दोहा ५४२।

६८५. साँक—शंका।

६८६. दुमची-मचक—झूला झूलते हुए पेंग लेने में जो बदन दुहरा सा तोड़ देना पड़ता है।

६८७. खयें—भुज-मूलों पर।

६८८. सगिबगि—सराबोर। कँट्यानी—कंटकित, पुलकित।

६८९. आतपु—घाम।

६९०. आखत—अक्षत के चावल। कुज—मंगल जो पृथ्वी (कु) का पुत्र माना जाता है। ज्योतिष के अनुसार मंगल पर राहु की छाया नहीं पड़ सकती।

६९६. गोधन—गोवर्धन। अनगवति—विलंब करती है।

६९८. कुच-कोर-रुचि—स्तनों के किनारों की शोभा। लोटनु—त्रिवलियों पर। चोंटत—नोचते हुए।

७०२. पाटल—गुलाबी।

७०३. बामा—कुटिला। भामा—क्रोध करनेवाली। कामिनी—कामयुक्त।

७०४. ठकु ठकु—बखेड़ा।

७०७. बुधु...गोद—पौराणिक आख्यान के अनुसार बुध तारा से चंद्रमा का पुत्र है। इससे ज्योतिष के अनुसार सुख-वर्धक सुयोग भी गृहीत होता है।

७०८. गदकारी—गुदगुदी, मोटे या दोहरे शरीरवाली।

(३) मतिराम सतसई

३. मन-कुमार—मन का पुत्र, कामदेव।

७. मुसिक्यानी—इसलिये कि तुम्हारी कथा सुनने से लड़का होता तो यह उपाय पहले तुम पर ही क्यों न सफल होता।

८. सीमंत—गर्भस्थिति के तीसरे मास में एक संस्कार होता है। मुसिक्याइ—इसलिये कि गर्भ उस पड़ोसी से है।

९. पति—स्वामी। पति—प्रतिष्ठा।

११. पानिप—पानी, आब, चमक।

२९. किंसुक—पलास।

३०. बिसारे—विषवाले।

३३. नैन मृगनि सों—मृग के से नयनों से। नैन-मृगनि—नयन रूप मृगों को।

३४. मृगपति—सिंह जिसकी कमर पतली होती है। लंक—कमर। मृग-लच्छन—मृग-लांछन—चंद्रमा। मृग-मद—मृगों का गर्व। मृगमद—कस्तूरी।

४२. लाल—माणिक्य। लाल—लाल रंग की।

४३. हर...कपार—इसी लिये शिव को कपर्दी कहते हैं।

४४. लोनी—लावण्यमयी।

४५. सुबरन—सोने ऐसे। रूपै—रूपा, चाँदी। सुबरन—सुंदर वर्ण का।

५३. डाढ़े ठाढ़े ठूँठ—पेड़ों के (विरह ज्वाला से) जले ठूँठ खड़े हैं।

६५. जो—पाठांतर-व्रज।

६६. नीप-माल—कदंब की माला, सात्त्विक भाव के कारण रोमांचों के हो उठने से।

६७. पटेल—गाँव का प्रधान। ऊख और अरहर के खेत गुप्त मिलन के लिये अच्छे स्थान माने गए हैं।

६८. चंचल चित्त को बेध देनेवाले नेत्र-बाणों के डर से लज्जा लुकी फिरती है।

६९. घायल करनेवाले नेत्रों से प्रेम करना, यही मन की सज्जनता है।

७०. नेह—(१) स्नेह। (२) चिकनाई (घी)।

७१. गिलि—निगल।

७४. भौंरा चंपे की कली पर नहीं बैठता।

८०. नेह-रहचटौ—प्रेम का लालच।

८४. अगमन—आगे या पहले ही।

८५. अनमिख—अनिमेष, एकटक। गई—भाग गई। मीच—मृत्यु। पजरि—प्रजरि, जलकर।

८७. मौर—मुकुट। तुनीर—तूणीर, तरकस।

८८. अंचल...तऊ—अपने शरीर की कांति के कारण प्रकाश हो रहा है, जिससे नायिका को दीपक का बुझना मालूम नहीं होता।

९०. पाट—रेशम।

९२. छटूक—छः टुकड़े।

९७. बंदनि—भाटनी।

९९. और—अधिक।

१०६. जैतवार—जीतनेवाली। अकस—स्पर्धा। गोसा—किनारा।

१११. जँबीर—जँभीरी नीबू। चूक—बहुत खट्टा पदार्थ।

११३. कंद खाकर अरूसे के फूल को चूसने से कोई स्वाद नहीं मिलता।

११९. बरुनी—पलकों के बाल। जलचादर—देखो दीपिका बिहारी दो० ३४०।

१२०. मेरु—पर्वत का नाम (कुच)। सित—गंगा (पसीना)। असित—काले रंग की यमुना (रोमावली)।

१३३. अच्छिनि—अच्छत, आँखों। अच्छ—अच्छो। स-पच्छ—पंख सहित।

१३७. मखतूल—काला रेशम।

१३६. हिलकी—सिसकना।

१४४. गाज—वज्र।

१४७. इंदु-उपल—चंद्रकांत मणि जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि चंद्रमा की किरणों के पड़ने से वह पसीजने लगती है।

१५५. दीप सिखा लौं—डरते डरते कि अब बुझी और तब बुझी।

१६६. रेह—रेखा।

१६७. कोकनद—कमल।

१७४. ऊख-पियूष-रसाल—गन्ने और अमृत की भाँति मीठे।

१८४. तन को बंधु—शरीर की बिरादरी अथवा बराबरी का।

१६०. घट—स्तन। गरुए—भारी। हरऐं—धीरे धीरे।

१६५. गूंदी गूंदति—गुथी माला को फिर गूथती हुई।

२०१. चाहि—देखकर।

२०३. इक बारि—एकबारगी, सहसा। मूँदी—गुप्त।

२१२. तीछन—तीक्ष्ण, तेज़। ईछन—ईक्षण, आंख।

२१४. स्रौन—श्रवण, कान।

२१८. सौंरियत—स्मरण करती हूँ।

२२२. बिभूति—राख। अवदात—सुंदर। श्वेत वस्त्र पहने हुए स्त्री की तुलना राख से ढके जलते अंगारे से दी गई है।

२३४. छला—अँगूठी। छलाइ—छल करके।

२३५. कुआर के बादलों में पानी कम रहता है।

२३८. दृग-सावँत-सर—आँख रूपी अधीन राजाओं के बाण। कुवलय—(१) कमल, (२) एक हाथी का नाम था।

२४०. कौल—कमल, कँवल, कौल।

२५४. पैंड़े कौ खेद—मार्ग की थकावट (रति के कारण)।

२६३. तेह—क्रोध।

२६४. सहेट—संकेत-स्थान।

२७३. द्रौपदी कौ बसन—जिसका कभी अंत न हो, बढ़ता ही जाय।

२७६. अँड़दार—अड़नेवाले। गँड़दार—महावत जिसके हाथ में अंकुश रहता है।

२७७. आँदू—डोरी।

२८५. मित्र—(१) प्रिय, (२) सूर्य।

२८६. बौंडर—बवंडर।

२९६. सौतुक—सम्मुख, प्रत्यक्ष बात।

३०१. आपुनयौ—अपनी ही।

३०२. माह—माघ। करि...कीच—जिससे विरह की तपन न लगे।

३०३. सौंहैं—सामने। सौंह—सौगंध।

३०५. सियराई—ठंढक।

३०९. दंपति चौसर खेल रहे हैं।

३१०. रँग पीत—पीतांबर का रंग जिसे कृष्ण पहने रहते हैं।

३१३. प्रसेद—प्रस्वेद, पसीना। मनोभव चाप—कामदेव का बाण।

३१५. उलट्यौ...पर—छाती उभर आने के कारण।

३२४. साहसुत—शाहजी भोंसला का पुत्र, शिवाजी (सिवा)।

३४२. करार—कूल। करार—इकरार, प्रतिज्ञा।

३४७. कुंद न—चमेली नहीं। कुंदन—सोना।

३५६. नेह—(श्लेष से) प्रेम रूप चिकनाई (घी तेल आदि)।

३६४. नव-द्वै—अठारह।

३७०. इंदीवर—कमल।

३७१. पियूष-मरीच—अमृत है किरणों में जिसके, चंद्रमा। मरिच—मिर्चा। मरीचि—किरण।

३७८. विष-तीर—विष में बुझे हुए बाण।

३९१. गणेश की वंदना।

३९३. हंसवाहिनी—हंस जिसका वाहन है, सरस्वती। हंस—आत्मा, प्राण।

३९४. राजाओं की आँखें मत ताका करो, लक्ष्मी की आराधना करो, धन मिलेगा।

३९६. मारु—मार, थप्पड़। मिरचि-किरच—मिर्चां की चरपराहट।

३९७. मारु—आघात। मारु—कामदेव।

४००. विकच—खिले हुए।

४०८. त्रिभंगी—कृष्ण, तीन जगह टेढ़े होकर जो खड़े होते हैं।

४१३. प्रवाल—मूँगा।

४२६. अँगरानी—अँगड़ाई।

४२७. मुख की छवि से चंद्रमा तो हारकर कलंकी हो गया और कमलों को दुःख हो गया, दोनों में से कोई भी बराबरी न कर सका।

४२८. स्यामनि—काले लोग, जो शरीर और दिल के भी काले हैं। जाति—कृष्ण भी काले थे और भौंरा भी काला होता है, इसलिये दोनों एक ही जाति के हुए।

४४६. कमल के बहुत से दल होते हैं, इसलिये कभी उसे शत-पत्र (सौ दलवाला) और कभी सहस्रपत्र (हज़ार दलवाला) कहते हैं।

४४७. कोकनद—कमल (नायक के हाथ)। रजनिकर—पराग का समूह। रजनिकर—चंद्रमा (नायिका का मुख)।

४४८. सरस्वती का रंग लाल माना जाता है।

४५६. साँकरें—गाढ़े समय में, विपत्ति काल में।

४६०. मदरसे—पाठशाला में। मदरि से—मदारी के समान।

४८१. कान्ह करज छत—कृष्ण का हाथों से मर्दन करना।

४८४. इंदिरा-रूप—लक्ष्मी-स्वरूपा, नायिका।

४८७. इंद्र...लाल—नीलम के रंगवाला कृष्ण।

४६०. द्विजराजनि—(१) ब्राह्मणों, (२) दाँतों की पंक्ति। दुजराज—चंद्रमा।

५००. पुन्नाग—सफेद कमल। मुकुलनि—अधखिले फूल।

५०१. स्नात कुंभ—आनंद राशि।

५०७. पीठ में कड़े का चिह्न, भुजाओं पर तरयौना के और छाती पर स्तनों पर के कुसुंभी रंग के छाप अन्य स्त्री के साथ रति के चिह्न हैं।

५०८. अधर-अंजन-प्रभा—किसी दूसरी स्त्री की आँखों को चूमने से नायक के ओठों पर काजल का रंग लग गया है।

५१२. निसेनी—पताका।

५१६. अतनु-सुतनु—शरीर रहित कामदेव की प्रखरता से वह सुंदर शरीरवाली तड़प रही है।

५२२. पुरैनि—पुरइनि, कमल। चंदन पंकिल—चंदन के गाढ़े लेप से युक्त।

५२४. गुरज—गुंबज।

५२६. झझिया कौ सो घट—फूटी कौड़ियों से भरा हुआ घड़ा।

५३०. कृष्ण नंगी नहाती हुई गोपिकाओं के वस्त्र हरण करके ले गए थे।

५३५. मया—माया, दया। दया-दरिआउ—दया के सागर।

५३६. किंजल्क—पराग।

५३६. मोर-पखानि—मोरपंखों। पखान-समान—जड़ीभूत हो गई।

५४०. कुंभ निकुंभ और शुंभ निशुंभ का, जो बड़े बली राक्षस थे, चंडिका दुर्गा ने संहार किया था।

५४६. नायक ने नायिका के कपोलों को चूमा है जिससे उन पर पीक की रेखा लग गई है।

५४८. अनिल—हवा। अनल—अग्नि।

५५०. तरुणी की एँड़ियाँ इतनी लाल हैं कि उनकी झलक से वेणी पर के मणि भी लाल हो रहे हैं।

५५२. भ्रांति—मलती है।

५५५. राग—(१) अंगराग, (२) अ राग, प्रेम।

५५८. तारेस—तारेश, चंद्रमा।

५७१. सुमना—मालती।

५७३. प्रभात होने पर जब मुर्गा बोला तो नायिका ने समझा कि सिंह गरज रहा है। चरनायुध—मुर्गा। नखायुध—सिंह।

५७४. मधूक—महुआ।

५७६. आलोकनि—आँखों में।

५७८. चपला—बिजली (की रेखा के समान नायिका)। चंद—चंद्रमा (के समान मुख)। नायिका एकटक निश्चेष्ट होकर नायक को देख रही है।

५८३. सुकृत-हेतु—प्रेम-रूप पुण्य।

५८६. ओज-अनल—तेज-रूप अग्नि।

५८७. कालकूट-जुत बान—विष में बुझे हुए बाण।

५९२. मुकुर—दर्पण। नरलोक—मर्त्यलोक।

५९३. गुन-गौरि—उज्ज्वल गुणोंवाली। गुन गौरि तें अनूप—पार्वती से भी बढ़कर गुणोंवाली।

५९५. डाभ—दर्भ, कुश के काँटे।

६०३. चंचरीक—भौंरे।

६०४. प्रात-रबि-राग—प्रभातकालीन सूर्य की लालिमा।

६०६. कंकेलि—अशोक का वृक्ष।

६०७. जल...छाइ—आँखें जल-भरे बादलों की तरह बरसने लगीं। रही...छाइ—अंग कदंब की तरह कंटकित (रोमांच से) हो गए।

६०६. तोट—तोड़ा।

६१९. गंधरब गाम—रात में पथिक चलते चलते कहीं प्रकाश देखकर समझता है कि पास ही गाँव है, वहाँ जाकर विश्राम करें, किंतु ज्यों ज्यों आगे बढ़ते जाता है त्यों त्यों वह प्रकाश भी आगे बढ़ता दीखता है और फिर अंतर्धान हो जाता है। इसी को गंधर्वों का गाँव कहते हैं। अँगरेजी में इसे विलो-द-विस्प कहते हैं।

६२२. रंग-बाति—पं० कृष्णविहारी मिश्र ने इसका अर्थ 'सुगंधित द्रव्य की बनी बत्ती जिससे गात्रानुलेपन किया जाता है' किया है। परंतु इससे अर्थ ठीक नहीं बैठता। अर्थ की संगति तब बैठेगी जब इसका अर्थ नकली रत्न किया जा सके।

६४५. संधि—वय:संधि, जब कि बाल्यावस्था से युवावस्था में प्रवेश होता है। उदै सैल—मेरु पर्वत जहाँ से सूर्योदय का होना पाया जाता है। उदय-शैल पर दिन और रात्रि दोनों की संधि होती है।

६५३. कुरबक तरु—कटसरैया का पेड़।

६५६. परिहार—रोकनेवाले।

६५८. चुटकी की सैन—गुलाब की कली का चटकना मानों भौंरों को इशारे से बुलाने के लिये चुटकी बजाना है।

६५९. बकिनत्र—वृक्ष विशेष।

६६४. अरध छोटी—आधी से भी छोटी (संयोगावस्था में)। बिसाल—वियोगावस्था में रात बहुत लंबी मालूम पड़ती है।

६६६. तारे टूटते से तो दिखाई देते हैं, पर पृथ्वी पर पड़े हुए नहीं दिखाई देते।

६७५. संकु—बर्छी।

६७६. सायुज्य—समीपता, समता।

६७७. जीवन—पानी, ओप।

६७८. पून्यौ—प्रभात में नायक पास था इससे उसका मुख पूर्णिमा के समान खिल रहा था। संध्या के समय वह दूसरी नायिका के यहाँ चला गया है, इसलिये उसका मुख अमावास्या के चंद्रमा की तरह पूर्णतया निस्तेज है।

७००. बकी—बकासुर की बहन पूतना का एक नाम, जिसे कृष्ण ने स्तन-पान करके मार डाला।

७०२. आराम—उद्यान। आ राम—हे राम, आओ।

(४) रसनिधि-सतसई

१. लसत—शोभा देता है। सिंधुरबदन—हाथी के मुँहवाले गणेश। नखतेस—चंद्रमा। गणेशजी के सिर पर भी चंद्रमा का वास माना जाता है।

८. साँवरो—श्याम, कृष्ण।

९. विवछि गयौ—उलझ गया।

११. भागवत—भगवान् के भक्त, भक्तों का एक संप्रदाय। साखि—साखी।

१२. दरद कौं—दर्द के लिये, यातना को नाश करने के लिये।

१४. जिनके...परमानंद—कृष्ण-प्रेम के कारण।

१५. स्वयं प्रकास—जिसको प्रत्यक्ष दिखाने के लिये और प्रकाशों की आवश्यकता नहीं पड़ती।

१६. काल पच्छी से शरीर-खेत की रक्षा के लिये हरि का भजन कर। हरिया—(१) खेत की रखवाली करते समय किसान 'हरिया हरिया' करके पक्षियों को उड़ाते हैं, (२) 'हरि' 'हरि'।

२० लै—लय, लीन। लै लै—लेकर। लैलै—लैला के।

२२. करनी—कर्म। कर नीके कर—हाथों को अच्छी तरह (पकड़ो)।

२३. करतार—कर्ता, परमात्मा। कर तार—जैसे पुतलियों का तार सूत्रधार के हाथ में रहता है, उसी प्रकार।

३३. वारे—न्योछावर किए। वारे—लाभ।

३४. जाही—जिसी के। हरबर—जल्दी।

३७. कपटौ—काटो। बिगुरदाधार—(सत्यरूप) बिगुरदे (एक हथियार) की धार से।

४६. घटन में—घड़ों में। घट घट में—प्रत्येक हृदय में।

४७. आसिक—प्रेमी। महबूब—प्रेमिका। अलगरजी—बे परवाह।

४९. बसाइ—सुगंधित किया।

५०. फटिक—श्वेत मणि। स्फटिक पर जिस रंग की झाँईं पड़ती है, वह उसी रंग की झलकने लगती है।

५१. बास्यौ—सुगंधित किया। फुलेल—इत्र।

५२. आद—आदि, आरंभ।

५४. अनल—अग्नि। अनिल—वायु, बिना वायु के अग्नि जल नहीं सकती।

५५. मोहनवारौ—गूँथनेवाला। जोहनिहारौ—देखनेवाला, द्रष्टा।

५६. सप्त सुर—गाने के सात स्वर, सा रे ग म प ध नी।

५७. जर—जड़।

५८. पंचन—पाँचों इंद्रियों को। पंच में—पाँचों तत्त्वों में।

६०. जाग—जगह, स्थान।

६२. बासनवारौ—सुगंधित करनेवाला। पेरनेवारौ—पेरकर तेल निकालनेवाला।

६५. थावर—स्थावर, अचर सृष्टि। जंगम—चर सृष्टि।

६६. अँगेजत—सहता है, स्वीकार करता है।

८३. चिल्ला—प्रत्यंचा।

८७. बेदाना—जो दाना (समझदार) नहीं है। दाना—समझदार। बेदाना...अनार—समझदार आदमी बेदाना के नाम केवल अनार (बेदाना) का आदर करता है।

९०. सिहाइ—प्रसन्न होता है।

९४. मौन—मक्खन, घी।

९६. नेहनि—स्नेहियों को।

१०१. सु—वे। मार—कामदेव। सुमार—गिनती। सुमार—खासी मार।

१०३. बिघए—फँसाए।

१०४. मैन—मक्खन। मैन—कामदेव।

१०७. तावन—भट्ठी चढ़ाना।

११२. सतन—शरीरधारी। अतन—कामदेव।

११५. वहल—रथ। चका—चक्र। जुआ—जो घोड़े या बैल के कंधे पर रखा जाता है। बहलवान—गाड़ीवान।

११७. डरोई जाइ—डरा जाते हैं। दुरौई जाइ—छिप जाते हैं।

१२१. चिबुके—ठोड़ी में।

१२५. कजाक—कज्जाक, डाकू।

१२८. फरास—फर्राश, झाड़ू देनेवाले। बहारू—बुहारी, झाड़ू।

१३४. निकाइन तै—अच्छाइयों से। निकाइ—समूह।

१४१. अरगाइ—अलगाइ, चुप।

१४३. कहर—क्रोध।

१४७. जासिन—जमानत देनेवाला।

१४८. ओर वार—पारावार, समुद्र। अहोर—जिनसे कोई होड़ नहीं बाँध सकता।

१५२. सबी—चित्र। कैफ—साक्षात्कार। गजकि—वह चीज जो शराब पीने के बाद स्वाद बदलने के लिये खाई जाती है। चटनी, पकौड़ी इत्यादि। बेहैफ—शोक-रहित।

१५७. खोर—खोल, टोला। खोर—दोष।

१५८. काँध—कंधा देना।

१६१. बारि-बाड़, बाड़ा जिससे वृक्षों की पशुओं से रक्षा होती है।

१६२. रेहाइ—रहता है।

१७४. दृग तारनि—आँख के तारों में। मुख तारन चंद—चंद्रमा को तारनेवाला मुख।

१७६. मदन—(१) कामदेव, (२) नहीं है मद जिसमें।

१८३. बगर-तन—घर की तरफ।

१८६. बँसुरी—बाँसुरी। बसुरी—पृथ्वी। हे सखि बसुरी—हे सखि बस (नहीं चलता)।

१८७. कानन—कानों में। कानन—वन।

१९०. सुर-रसरी—स्वर रूपी रस्सी।

१९१. वंसी—जिससे मछलियाँ पकड़ी जाती हैं।

१९४. वैर—बदनामी।

२००. रंग चुचौहैं—जिनसे रंग चूता है, प्रेम चू पड़ता है। सुरंग—सुंदर रंग-युक्त, प्रेम-युक्त।

२०१. चनवै—झुकती है।

२०३. ओड़ना—बचाना।

२०९. हरवली—हरावल, नासीर फौज, आगे आगे चलनेवाली सेना। मवास—निवास-स्थान।

२११. मंहुक्कम—मजबूत, दृढ़ ।

२१५. नातवान—तैरनेवाले ।

२१६. मैन अमल—कामदेव का अधिकार, यौवन । पयानौ—प्रयाण, प्रस्थान ।

२२१. बरत—वह रस्सी जिस पर नट चलता हुआ अपना कौशल दिखाता है ।

२२८. तगा—तागा, डोरी ।

२२९. त्रपत न मानत—तृप्ति नहीं मानते । पान—पाणि, हाथ ।

२३०. बील—मंत्र ।

२३४. बटपरा—बटपार, बटोहियों को लूटनेवाले ठग ।

२३९. किलकिला—मछली पकड़नेवाला एक बड़ा पत्ती ।

२४१. बैरा रहीं—बिगड़ रही हैं ।

२४६. भात—भाता है, शोभा देता है ।

२४८. आड़ि छुटावति—अड़कर छुड़ा भागने का प्रयत्न करनेवाले ।

२५१. नेह...लगाइ—इसी कारण आँखों में आँसू भर आते हैं ।

२५२. बैकु—बहक ।

२५६. मुहिसल—तहसील वसूल करनेवाला ।

२५८. सतरँज-बाज—शतरंज-बाज, शतरंज खेलनेवाला ।

२६०. आँदू—रस्सी ।

२६३. ईठ—इष्ट ।

२६५. कितेब—छल । मकराज—मिकराज, कैंची ।

२६६. नेजा—भाला ।

२६७. लोइ—लावण्य ।

२७७. सुनेह—(१) सुंदर स्नेह, प्रेम (२) अच्छी चिकनाई, तेल । मझयावत—माझी का काम करते हैं ।

२८०. गैना—नाटा वैल। नहे—नथे हुए। घुरला—पगडंडी। नाह—नहीं।

२८३. झिलमैं—लोहे का वना हुआ एक प्रकार का झँझरीदार पहनावा जो लड़ाई में पहना जाता है। एक प्रकार का कवच।

२८६. घरिया—वह पात्र जिसमें रखकर सोना आँच में गलाया जाता है।

२८८. हलवी सीसा—हलब्बी (वेल्जियन) शोशा मोटा होता है और उसमें प्रतिबिंब सुंदर झलकता है।

२९२. अहटाइ—कष्ट देती है।

२९८. वामन अवतार में भगवान् ने बलि से तीन पग भूमि दान में माँगकर दो ही पग में त्रिभुवन नाप लिए और तीसरे पग के लिये स्थान ही न रहा।

३००. पैरे—सीढ़ियाँ।

३०२. सैफी—मंत्र-प्रयोग। कैफी—साचात्कार।

३०३. पलवो—अंजलि, चुल्लू।

३०९. वाइ—वहाँ।

३११. सूरती—(१) सुरती तमाखू। (२) सुरति, प्रेम।

३३७. अमोर—न मुड़नेवाले।

३३९. मेव—राजपूताने में बसनेवाली एक लुटेरी जाति। इसी से संभवतः राजपूताने के एक खंड का नाम मेवात पड़ा है। छेव—काटकर।

३४०. खुरी—खुदी, एक ही जगह जल्दी जल्दी खुर पटकना।

३४४. आँखैं देत—कह देते हैं।

३४७. बया—तौलनेवाला। मन—(१) चित्त, तौल का मन जो चालीस सेर का होता है।

३५५. नाखन बाज—बाज के नाखून।

३५७. श्रवत—बरसाते रहते हैं, देते रहते हैं। श्रवन—कान।

३६४. हरुये—हलका। मन—(१) चित्त, (२) चालीस सेर वजन का मन।

३६८. छबी-दान—छबिवाला।

३६९. मट की—मिट्टी की। मटकी—छोटा घड़ा।

३७०. बनवारी—वन में रहनेवाली। वारी—न्योछावर। बनवारी—वनमाली, कृष्ण। मन-वारी—मनवाली स्त्री।

३७१. घैर मथन—चवाव की बेतरह चर्चा, बदनामी।

३७३. छबि-चहले—शोभा की भीड़।

३७५. तबीब—वैद्य।

३७६. मरजी—इच्छा। मरजिया—मरने-जीने की परवा न करके डुबकी लगानेवाले।

३७७. वारन कौ—न्योछावर करने को। परेखौ—पछताव।

३७८. छिगुरी—छोटी उँगली, कनिष्ठिका। याते...श्रौर—प्रेम के कारण अलसाए हुए अधमुँदे नेत्रों से।

३७९. निरधारी होइ—निर्णय किया हो।

३८९. पगरै—पगली की सी चेष्टा करती है। रगरै—झगड़ती है।

३९२. ही—थी।

४०४. वार कै—कै बार, कितने समय। वारन—दरवाजों तक।

४११. हरिश्राए हैं—हरे हो गए हैं।

४१२. रुजू—उनकी श्रोर मुँह किए हुए, ढले हुए।

४१५. नैम—नियम।

४२७. श्राँखें जुड़ती हैं, कुटुंब टूटते हैं श्रौर दुर्जनों के हृदय में गाँठ पड़ती है।

४३२. कनकनै—टूटनेवाले।

४४२. सुमन—(१) सुंदर मन। (२) फूल।

४५०. मक्खियाँ तेल में पड़ते ही मर जाती हैं।

४७०. असनेही—जिनमें प्रेम का भाव नहीं है। लादे—स्नेहहीन लोगों के मन भार-रूप ही हैं, इसलिये 'लादे' कहा।

४७१. बिछलै जाइ—फिसल जायँ, कुचल जायँ।

४९४. कलानिधि—कला का खजाना (खोला) है। कलानिधि—चंद्रमा।

५०७. बिथर—भगाना, अलग करना।

५०८. तरवन—कर्ण-भूषण।

५२१. टिहुनी—कोहनी।

५२९. तरनि—तरणि, सूर्य।

५३०. करार—इकरार, प्रतिज्ञा। करार—किनारा, इकरार-रूपी किनारा।

५३८. बिसाहनी—सौदा। जगाती—चुंगी वसूल करनेवाला।

५४०. मुनि—अगस्त्य मुनि।

५४२. प्या—पिला।

५४३. का गद—क्या शक्ति।

५४६. आरकस—आरा चलानेवाले।

५५५. बरुनिका—वरुणी, पलकों पर के बाल।

५५७. मयान—म्यान।

५६१. लिख जोग—योग्य लिखी (यह पहले पत्र में लिखने का महावरा था), पत्र के द्वारा।

५६३. मेखला—योगी का वस्त्र जिसमें रंग बिरंगे कपड़ों के टुकड़े या रंग बिरंगे तागे लगे रहते हैं।

५६४. सासन—शासन, आज्ञा।

५७१. गरुश्रा—गले तक गहरा। गरुश्रा—गले (लग)।

५७२. जखोरा—ज़खीरा (अ०) संग्रह, ढेर, कोष।

५८६. घट—घटकर, कम।

५९२. विहित—जिसके लिये आज्ञा है।

५९७. गज—कपड़ा नापने का गज।

६००. अफरत—तृप्त होते हैं। सुरत—स्मृति से, स्मरण करके।

६०६. इतराजी—विरोध। इत राजी—यहाँ राजी।

६०८. अरात—बैरिन।

६१३. इसक—इश्क, प्रेम। मुसक—मुश्क, कस्तूरी। बोइ—सुगंध।

६१८. गाँठ गठीले—जिनमें गाँठें पड़ी हों।

६२१. गार—लेप। गार—गाली।

६२४. मैासर—मयस्सर।

६२५. व्योरौ—भेद, फर्क।

६२६. अमर-पख—पितृ-पच्छ (श्राद्ध), दुज—ब्राह्मण। काग—श्राद्ध में कौओं को बुलाकर ग्रास खिलाया जाता है।

६३४. करबो—एक घास, तुच्छ वस्तु।

६४३. कूबरो—टेढ़ा, वक्र।

६५२. हैफ—शोक।

६६१. विजयादशमी को नीलकंठ का दर्शन शुभ माना जाता है, इसलिये लोग ढूँढ़ ढूँढ़कर उसका दर्शन करते हैं।

६६२. चंदहि—चंद्रमा ही।

६६९. लगर सतूना—कोयल का बच्चा जिसे कौवा अपना बच्चा समझकर पालता है किंतु जो अंत में उलटे कौवे से वैर करता है।

६७२. मीत—(१) मित्र, (२) सूर्य।

६७३. अमृत सराबी—अमृतस्रावी, अमृत का स्रवण करनेवाला; चंद्रमा।

६७४. आम का बौर और फल अँबिया कहलाता है।

६७६. बेकसक कसाब—बेदर्द (निठुर) कसाई।

६७७. जबह—जिबह, हत्या। कसकाई—दुखी होता है।

६८०. आजजि—आजिजी, गरीबी, दीनता, विनय।

६८५. मधुसूदन—मधु नामक राक्षस को मारनेवाले। बिरद—यश।

६९०. गीधौ—गर्वित हुआ। गीध गति—जटायु की गति जिसे रामचंद्र ने मुक्ति दी थी। गीधे पतित—गर्वित पापी, हठ-पूर्वक पाप करनेवाला।

(५) राम-सतसई

१. अहिपतिधर—शेषनाग को धारण करनेवाला, क्षीरसागर।

२. नगधर—गिरिधारी, कृष्ण। बिपुंगवासन—गरुड़ है वाहन जिनका, विष्णु, कृष्ण। आसु—शीघ्र।

६. खेहै कै मोल—मिट्टी के मोल।

१०. महताबी—आतिशबाजी।

१२. पटीर—चंदन।

१४. दगै—जलाते हैं। धन-गात—स्त्री के शरीर को।

१५. बिसूलैं—शूल की तरह घाव करते हैं। रंध—रंध्र, छेद।

१६. विहसिन—हँसनेवाली।

१७. तरलाई—चंचलता। पारा, बिजली और युवतियों की आँखें चंचल होती हैं।

१८. बकुल—मौलसिरी।

१६. बे-हूनरी—बिना हुनर की, कला-हीन। सौसन—एक प्रकार का रंग।

२३. अनारपन—अनाड़ीपन।

२७. गुनहीं—गुण। गुनहीन—गुनाहियों को (आसक्तों को)।

३०. चारी—गुप्त बात को प्रकट कर देना। कँटारी—कंटकित, पुलकित।

३४. करि यारी—मित्रता करके। करियारी—काली।

३५. सोख धनी—गर्विष्ठा रमणी। गौनो—गमन। गौनो—द्विरागमन।

४४. तलवेली—किसी वस्तु की प्राप्ति की घोर उत्कंठा, बेचैनी। नटसाल—बरछी की नोक जो टूटकर घाव में पड़ी रह जाती है।

४५. उलहै—उत्साहित होता है।

५०. अनी—सेना।

५१. लाइ—(१) लगन, (२) अग्नि।

५५. लवलासीहु—प्रेम की लगावट।

५६. कसऽब—किसी प्रकार।

५७. बंधुर—सुंदर।

६४. दगादगी—दगाबाजी, धोखा।

६५. तूस—पशमीना। तुराई—गद्दा।

६९. ठोढ़ी और आम के निचले भाग का आकार बहुत समान होता है। बौराय—(१) बौर लगने पर, (२) बावला होकर।

७४. निगुनी—गुणहीना। निगुनी—बिना तागे की, अर्थात् छाती पर उपटी हुई।

७५. निदाघ—ग्रीष्म।

७७. बिबि (द्वि द्वि)—दो दो।

८१. लोटन—त्रिबली। चोट न—चोटों को।

८३. लहरि—नशा। दसी—डसी हुई।

८८. करहाट—कमल। हाटक—सोना।

६३. अँगिराय—अँगड़ाती है। सतराय कै—क्रोध प्रकट करके।

१०६. माधव—कृष्ण।

१०८. कलाधर की कला—चंद्रमा की कला, यहाँ पर नाखून का घाव। नाथ-नाथ—शिव।

११२. भौम बालहि—मंगल नक्षत्र जो पृथ्वी का पुत्र माना जाता है, यहाँ पर लाल बेंदी से अभिप्राय है। मंगल का भी रंग लाल होता है।

११५. निहारु—देख। निहारु—नीहार, ओस, पाला।

१२६. सुकवाय—सुकवाना, अचंभे में आना।

१३३. थरहरे—काँपते हुए।

१३४. सौंहैं—सम्मुख, सामने। सौंहैं—सौगंध।

१३८. परिरंभन—आलिंगन।

१४०. सनखौहैं—नख-क्षत-युक्त। अनखौहैं—रुष्ट।

१४२. सब बिधि...नाइ—काम शास्त्र के सिद्धांत और प्रयोग दोनों में प्रवीण।

१४८. पनस-फल—कटहल का फल जिस पर काँटे काँटे से उठे रहते हैं।

१५८. कजाकी (कज़्ज़ाकी)—डाकेजनी।

१६८. कोति—दिशा, तरफ। सूरदास ने इसे 'कोद' लिखा है।

१७८. कन—जरा, तनिक।

१८०. निचोल—कपड़ा। चोल रँग—लाल रंग।

१८२. कुसुम—यहाँ पर जंगली कुसुम जिसकी पत्तियाँ काँटेदार होती हैं। केदार—खेत। केदार—शिव अर्थात् कुच।

१८६. लांक—कमर। भरी आंकरी—अँकवार भरी, आलिंगन किया।

१९६. हिम-भानु—चंद्रमा। नलिन—कमल।

१९९. भीखन—भीषण। तैख—तेज़।

२००. वितान—चंदोवा। बितान—तना हुआ।

२०५. सिरी—श्री, शोभा।

२०८. सखीहि—सखी को, चित्र को।

२१०. बनक—बनाव, शृंगार, सजधज।

२११. छ मासे—छः माशे। उमंग के कारण उड़ी सी जा रही है, इसलिये तराजू पर उसका भार नहीं पड़ता।

२२०. नीम रजा—आधा राजी।

२२२. घेरु—(लोगों से) घिरा हुआ। पाटल—हाथ पर का गुलाब चूमकर नायक ने रति की इच्छा प्रकट की। गुलाब के दल की उपमा बहुधा अधरों से दी जाती है। नायिका ने हाथ बंद करके यह सूचित किया कि जब कमल बंद होने लगेंगे तब (संध्या समय) मिलूँगी। हाथों की उपमा कमल से दी जाती है। द्वौमिथ—दोनों, नायक और नायिका।

२३४. नार—गर्दन।

२३५. लोयननि—लोचनों, आँखों।

२३६. पसोपेस—आगा पीछा सोचना। कुन ससपंज—किंकर्तव्य-विमूढ़ता। मुकुताइ—छुड़ाकर। मुकुता—मुक्ता, मोती (आँसू)। कंज—कमल (नेत्र)।

२४३. सकारे—प्रातःकाल। बफारे—दवाओं की गरम भाप।

२५०. खुभी—चुभी हुई। खूठी—कान में पहनने का एक गहना। खुभी—लौंग के आकार का कान में पहनने का एक गहना। निसराए...न—निकाले नहीं निकलती।

२५३. सुबसीठि—चतुर दूती।

२५८. घरियारी—घड़ियाल, जो गजर बजाता है। गजर—समय की सूचना देने के लिये घंटे बजाना।

२६२. सौंध—सौध, महल।

२७४. प्रभंजन—आँधी। यहाँ पर वायु से तात्पर्य है। करत प्रभंजन—तोड़ते हैं। प्रभृत—कोयल। यदि प्रभृति का विगड़ा रूप मानें तो 'इत्यादि'।

२७८, सतरौंहैं—रुष्ट।

२८२. मलयज—चंदन। घनसार—कपूर। गजगैनि—गज-गामिनी।

२९२. एनी—मृग।

२९५. कड़े झमकड़े—कड़ों की झनझनाहट।

२९८. जालिमा—जुल्म करनेवाली।

२९९. गुर—बड़े। ससिसेखर—महादेव, यहाँ पर शिवलिंग।

३००. गुरु—(१) बृहस्पति, (२) बड़ी। सुर—(१) देवता। (२) नासिका-रंध्रों से निकलनेवाली साँस।

३०६. बनमाली—वन से माली (आ गए)। बनमाली—कृष्ण।

३१८. चिलक—चमक।

३१९. आरसमुखी—चंद्रमुखी। आरस—आलस्य।

३२५. भेद—रहस्य।

३२६. निलै— निलय, घर।

३२७. बन—जल।

३४४. उबीठि—अधिक व्यवहार के कारण अरुचिकर लग जाना।

३४५. परनाली—प्रणाली, नहर।

३४८. अर—हठ, आग्रह।

३५०. गड़ारे—जिसमें गड्ढे बहुत हों। निबुक—छुटकारा।

३५३. चोल—(पीतांबरी) चोला।

३५४. सरसिज-निसा—कमल (नायक के मुख) के लिये रात्रि (दुःखद) है। ससि—नायिका का चंद्रमुख।

३६४. कंबुक—शंख।

३८२. सारस—कमल।

३८४. पिय मन करत बरात—स्वामी का मन बरात को (जाने को) करता है अर्थात् बरात में जानेवाले हैं।

३८६. सर—तालाब (दर्पण)। ससि—मुख। कुज—मंगल (लाल बेंदी)। सनि—शनैश्चर (काली बेंदी)। मंगल का रंग लाल और शनैश्चर का नीला माना जाता है।

३८८. चौवारे—चतुर्द्वारि, वह छत जिसपर खंभों से चार दरवाजे से बने हों। अरी—अड़ी हुई। अरो—अड़ा हुआ।

३९४. ईछन—आँखें।

३९५. सुबरन—सुंदर वर्णवाले। रजत—चाँदी। सुबरन—सोना।

३९६. उनदोहैं—उनींदे।

४००. तेह—क्रोध।

४०१. गुनी—छः गुना। छिगुनी—कनिष्ठिका।

४०३. चरचारीहि—दोष ढूँढ़नेवालों (चर) और बदनामी (चारी) से।

४१०. लागे नैन नहिं—नींद न आई। लागे नैन—प्रेम में आँखें जुड़ीं।

४११. भारद—भार रूप। दारद—दर्द देनेवाला।

४१४. घरहाइन—बदनामी। चाइन—चुगलखोर स्त्रियों में।

४१६. बिसिख—बाण। झषकेत—कामदेव जिसकी पताका पर मछली का चिह्न है।

४१७. नवोढ़—नवोढ़ा, नई व्याही हुई।

४३३. हिय गहन—हृदय को ग्रहण किया है जिस प्रेमी ने।

४३४. हरितन हरित—हरी हरी वस्तुओं को। हरि-तन हरित—कृष्ण का हरा (श्याम) शरीर।

४३६. सनवा—सन। मनवा—कपास। परे—गिरे हुए।

४४८. भा—आभा, शोभा, चमक।

४५५. छलंक—छलाँग।

४५८. चरवाही—वेहयाई।

४६४. दावरी—दौड़ी।

४६५. सु-गरत—गर्त, गढ़ा।

४६७. सुकाहि—सूखता है।

४६८. सरदा—सरधा एक मीठा फल होता है।

४७०. मै—मय।

४७५. सद्य-रद-छद—दाँतों के ताजे घाव।

४८१. चामीकर—सोना।

४८२. चुभकी—डुबकी।

४८४. थारे (राजस्थानी)—तेरे।

४८५. गेंद—गेंदे का फूल।

४८८. बिरह-दहन—विरहाग्नि।

४८६. सुबुक—हलके। चिहुँटन—चुनने को।

४६३. छरी—छड़ी की तरह पतली।

४६४. धूमजात—बादल

४९७. सुमनसपति—देवताओं के स्वामी इंद्र।

५०२. कुंद मघा—बरसाती कुंद। कुंद जुही की तरह एक प्रकार का फूलों का वृक्ष होता है जिसकी कलियों से बहुधा दाँतों की उपमा दी जाती है। सुभा—शोभा। मोगरा—बड़े बेले का फूल।

५०३. लिंब—नीबू।

५०४. बारी—बालिका। बारी—वाटिका।

५१२. चंदचूड़हिं—शिव। नखन छद—नाखून के घाव। न खनहुँ—क्षण भर भी नहीं।

५२२. बरसाइत—जेठ की अमावस। इस दिन स्त्रियाँ बट-सावित्री की पूजा करती हैं। शुभ मुहूर्त। बरसाना—ब्रज के निकट एक गाँव है।

५२६. हायल—मूर्छित। छरकायल—खुले हुए, बिखरे हुए।

५२८. पूतरी—आँख की पुतली।

५३०. झवियनि—चाँदी या सोने की बहुत छोटी-छोटी कटोरियाँ जो बाजूबंद, जोशन, हुमेल आदि गहनों में रेशम या सूत में पिरोकर गूँथी जाती हैं। घोंरि—गुच्छा।

५३२. उत रत है—उधर प्रेम-मग्न होकर।

५४१. हिरकी—पास भेजी।

५४३. भानै—तोड़े।

५४४. बंधुजीव—बीरबहूटी।

५६३. बीती—दूसरी स्त्री की।

५६७. सकारहिं—प्रातःकाल ही।

५६८. निचलाई—समाप्त हुई।

५७१. तोम सर—बाणों का समूह।

५७२. जहूर—प्रकट। बिलूर फानूस—बिल्लौरी कांच का झाड़।

५७४. गंधवाह—सुगंधि का वहन करनेवाला, पवन।

५७७. बनी—सजी हुई।

५७८. नारंगी—कुच का प्रतीक। नायक ने नारंगी दलने से कुचमर्दन की इच्छा जनाई।

५८४. कुलंग—बाज की जाति का एक छोटा पक्षी।

५८५. परवाल—अधर का प्रतीक। नायक ने अधर-रस-पान की इच्छा प्रकट की। कच—बाल, संध्या की सूचना। कुच—घट। नायिका ने बालों को छूकर कुचों पर हाथ रखकर उत्तर दिया कि संध्या समय घड़ा लेकर (पनघट पर) आऊँगी।

६०३. गोरस—इंद्रियों का रस। गोरस—गव्य रस, दुग्ध इत्यादि का स्वाद।

६०५. बंजुल—अशोक।

६०६. निचले—निश्चल। पानिप—आभा, आब।

६१५. परसहु—छूकर भी।

६१६. असम—कामदेव।

६१७. रिजु—ऋजु, सरल।

६१९. लोयन—लोने, लावण्यमय। लोयन—लोचन।

६२३. बरसाना—ब्रज-मंडल का एक गाँव।

६२४. ईठि—इष्ट, मित्र, सजनी, सखी।

६२७. छरी—छली हुई।

६४५. माधव—वसंत। माधव—कृष्ण। माधव-पुंज—महुए के पेड़ों का समूह।

६४७. सिलीमुख—भ्रमर, बाण।

६५१. दौं—धौं, तो।

६७१. वझाय—फँसाकर।

६७३. नै—नय, न्याय, नीति।

६७८. छपे—छिपने पर, अस्त होने पर। छपाकर—चपाकर, चंद्रमा। कुहू—अमावस की रात।

६७९. वरहि—जलने ही की। अब तो रात-दिन जलने ही की बात रह गई।

६८४. नभचर लली—देव-कन्या। हरसोग—शोक को हरनेवाली। रली—क्रीड़ा।

६८६. वनजात—कमल। वन जात—वन जाते हुए। जलजात—कमल। जल जात—जल (आँसू) बहता है।

६८७. मंद—शनि। शनि का रंग श्याम माना जाता है।

६९१. निचोही—नीची। राज—शोभा देती है।

६९२. मनु हारि—मन हारकर। मनुहारि—मनाना।

७०३. छरी—छली हुई। अपछरी—अपसरा।

७०४. कूरम केतक पात—कछुआ और केतकी के पत्ते अर्थात् नायिका ने अभिसार-स्थान का संकेत किया कि जहाँ जल के किनारे केतकी के पेड़ हैं।

७०५. मोरी—मोर है जिसका शिरोभूषण।

७०६. ईठि आज...ठौर—प्रिय की दृष्टि को यहाँ आज एक और प्रिया (ईठि) दिखाई दी।

७०८. लोचन...कान लौं—कान तक पहुँचे हुए विशाल नेत्र। कान—कृष्ण। सहसान—मोर। मोर बादल को देख उतना सुख नहीं पाते जितना कृष्ण को देखकर पावे हैं।

७०९. नट मरकट—मदारी का बंदर।

७१०. तम—अंधकार (कृष्ण) चाँदनी—(राधा)।

७२४. लगी...आगि—अग्नि इसलिये नहीं जलती है कि न जलने से वह नववधू फिर फिर फूँकेगी तो मुझे उसके दर्शनों का लाभ होगा और यदि जल जाऊँगी तो वह अपना मुख हटा लेगी।

७२५. तरनि—तरणि, सूर्य। जोइ—देख।

(६) वृंद-सतसई

६. रागी—प्रेमी।

८. निबौरी—नीम का फल।

११. निपजै—जिसमें खूब फसल उगी हो। सलभ—टिड्डी।

२०. पिसुन—दुर्जन, चुगलखोर।

४३. बहेड़ा के पेड़ पर भूत का निवास माना जाता है, उसका एक नाम ही भूतवास है। कर्षफले भूतवासे कलिद्रुमे वहेडके।

४८. गुर—गुड़।

४६. धात—धातु। शरीर में सात धातुएँ मानी जाती हैं जो दूध पीने से वृद्धि पाती हैं। सेंहुड़ का चोप भी देखने में दूध के समान होता है, किंतु उसको खाने से मनुष्य मर जाता है।

५३. आरसी—दर्पण।

६१. करार—चैन, शांति।

८८. काथ—कत्था, खैर।

६१. कनक भखी—धतूरा पीनेवाले।

६२. लहर—नशा, खुमार।

१०२. चार—चाल, गति।

११६. कुलजा—कुलवती स्त्री। कुलटा—दुराचारिणी।

१२२. अरहट—रहँट।

१२३. भाजन—बर्तन।

१२६. जनार्दन—भक्त (जन) को पीड़ा देनेवाला। हर—नाशक। शंकर—मंगल करनेवाला।

१३३. नृप दुहनि—राजकुमारियों को, नृप-दुहिताओं को रुक्म एक राजा था, जिसने सोलह सौ राजकुमारियाँ बंदी कर रखी थीं। कृष्ण ने उसको मारकर इनको मुक्त किया और सब कुमारियों ने कृष्ण को ही स्वामी रूप से वरण किया।

१४०. विभै—वैभव, ऐश्वर्य।

१४१. बूँद किं तेल—तेल की बूँद से अभिप्राय है। अशुद्ध व्याकरण प्रयोग।

१४२. वद—बुरा।

१४७. बँध्यो—जिसमें पानी नहीं खींचा जाता। गँधीलो—गंदा।

१४९. खाँड—खाड़, खड्ड, गढ़ा।

१५४. प्रतीकार—रोक। शब्दार्थ इसका बदला होता है।

१५६. वनराइ—वृक्ष।

१५७. नग—पर्वत।

१५८. रसरी—रस्सी। करी—हाथी।

१५९. जलेस—सागर। कलेस—क्लेश, दुःख।

१६२. हरि—सिंह। असम—जो अपनी बराबरी का न हो।

१६४. भाँड—हँसी मजाक के लिये प्रसिद्ध हैं।

१६५. कावरि—भील। गोपी—कृष्ण की स्त्रियाँ। पथवान—पार्थ। रथवान भी पाठ मिलता है।

१६६. तोय—पानी।

१६७. हाथी के हजारों कर नहीं है एक ही सूँड़ (कर) के कारण वह करी कहाया।

१६८. देवल—देवालय, मंदिर।

१७१. अंजनगिर—सुरमे का पहाड़।

१७४. उमहै—उत्साहपूर्वक। पयोधर—स्तन।

१७६. बनजन—कमलों को।

१७६. निसप्रेही—निःस्पृह, जिसे कुछ चाह न हो।

१८२. उनयौ—झुका हुआ। पयोद—बादल।

१८७. साँचो—संचित की हुई। कन—अन्न।

१८८. सेयो—सेवित किया हुआ। सराय—सरे, बने। पयौधि—सागर।

१६१. सरस—अधिक।

२०१. काम—पहली पंक्ति में कार्य, दूसरी पंक्ति में काम-क्रीड़ा।

२०६. मुंडे की लिखावट में मात्राएँ नहीं लिखी जातीं, अभ्यास और अनुमान से पढ़ ली जाती है।

२०७. वैसै—वेंट।

२११. विष और अमृत एक ही समुद्र से निकले हैं।

२१४. पाँच—पंच-रत्न; लाल, नीलम, हीरा, मोती और पुखराज।

२१६. कुबानि—बुरी आदत।

२२२. अन्नपूर्णा जगत् को अन्न देती है परंतु पति की माँगी भिक्षा पर आधार रखती है।

२२४. बाफतौ—धूप-छाँह कपड़ा।

२२५. घूघा, घूक—उल्लू।

२३६. घन—घनसार, कपूर।

२४०. फनीन कौं—सर्पों को।

२४५. अंधे को बोलकर और बहरे को हाथ के इशारे से रास्ता बताया जाता है।

२४७. विफरै—फैलने पर।

२५८. गुन—बत्ती (रस्सी)।

२५६. कोटि—धनुष के किनारे। इसी कारण धनुष दो करोड़ का स्वामी हुआ।

२६२. गिरि सुर तरु न रख्यो उदधि मुनि अँचयो जिहिं बार—जब कुंभज ऋषि ने समुद्र का जल पी लिया तब पहाड़ और कल्प-वृक्ष उसकी रक्षा न कर सके, यद्यपि समुद्र ने उनकी रक्षा की थी।

२७५. तिन-समूह—तृण (घास) का ढेर।

२७६. ससा—खरगोश। अखेट—आखेट, शिकार।

२८६. कालयमन...मुचुकुंद उठाय—कालयमन कृष्ण का पीछा कर रहा था। कृष्ण उस गुफा में चले गए जहाँ मुचुकुंद चादर ओढ़े सो रहे थे। कालयमन ने समझा कृष्ण ही सो रहा है। इसलिये उसने चादर उठाई। मुचुकुंद ने उसे शाप देकर भस्म कर दिया।

२९६. पौराणिक मुनि सूत ने बलराम को प्रणाम नहीं किया, इसलिये बलदेवजी ने उनको कुश के आघात से मार डाला।

२९८. सूद्र—शंबुक नामक शूद्र।

३००. दधि—उदधि, समुद्र।

३०४. अपरापत—अप्राप्त, भविष्य, भाग्य।

३०६. मैनाक—पर्वतों के पहले पंख होते थे, यह पुराणों में लिखा है। इंद्र ने क्रोध करके सब पर्वतों के पंख काट डाले। परंतु मैनाक पर्वत समुद्र की शरण गया और पंख काटे जाने से बच गया।

३०८. ढंपन—अच्छादन, ढकना। बन—कपास, रुई।

३०९. पींजन—धुनना।

३१८. बिससि—विश्वास करके। जीवन—पानी।

३२७. काँगही—कंघी।

३५८. भोडर—अभ्रक।

३६१. अहि करंड—वह डलिया या पिटारी जिसमें साँप रखा जाता है।

३७१. कपट पुरुष—खेतों में काली और सफेद रंग की हाँड़ी उलट करके रखी जाती है जो दूर से आदमी सी जान पड़ती है।

३७५. करिसन—कृषि।

३७७. कुवखान—निंदा, विगर्हणा। दगला—रुईदार अँगरखा। अरगजो—केसर, चंदन, कपूर आदि के मेल से बना हुआ एक सुगंधित द्रव्य जो शरीर में लगाया जाता है।

३८२. घन—घने, बहुत।

३८५. ऊढ़े—उनए हुए।

३८७. विरतंत—वृत्तांत।

३८८. दुरद—द्विरद, हाथी।

३९८. कुरज—एक प्रकार का पत्ती जो हजारों कोस दूर उड़ जाता है, परंतु अपने अंडों को नहीं भूलता और अंत में उन्हीं के पास लौट आता है।

४११. धार—धाड़, डाका।

४१४. नारदी विद्या—लोक-रक्षण की दृष्टि से इधर की बातें उधर पहुँचाना जैसा नारद मुनि किया करते थे।

४१५. जिस ऋतु में अंगूर पकता है उसमें कौवे का मुँह फर जाता है।

४२२. गंगोदक—गंगा-जल।

४२३. नग—नगीना। कहते हैं, अँगूठी पर डाँक देने से नगीने की सुंदरता और भी बढ़ जाती है।

४२५. रतन दीप—जिस दिए में रत्नों से प्रकाश होता है।

४२७. महातम—माहात्म्य। महा तम—महा अंधकार। अदीत—आदित्य, सूर्य।

४३०. मानिक या लाल (रत्न) की चटक सोने पर जड़े जाकर ही खुलती है।

४३२. लहत...पोष—कछुए के अंडे चंद्रमा के प्रकाश में ही परिपक्व होते हैं।

४३६. बीर—वाली।

४३७. जीवन—जल।

४३८. गुन सनेह—स्नेह (प्रेम) का गुण। गुन सनेह—बत्ती और तेल।

४४१. मछली खाने से प्यास लगती है।

४४२. घन—बादल। घन—घना, बहुत।

४४३. गिरि तारे—लंका जाने के लिये सिंधु-बंधन के अवसर पर। सिला—अहल्या।

४४४. सेतबंध—पुल बाँधना।

४५२. उपकरन—उपकरण, सामग्री।

४५३. सुरभि—वसंत ऋतु।

४५४. भुक्त—खाए हुए। कपित्थ—कैथ।

४५५. नालेर—नारियल।

४५७. आदेस—नमस्कार, प्रणाम।

४६१. आफू—अफीम।

४६२. विनायक—विघ्ननाशक। मार्ग में गदहे का मिलना शुभ शकुन माना जाता है।

४६५. मुचलका—एक प्रकार की जमानत।

४६६. बास—निवास। बास—सुगंधि।

४७१. ऐराकी—ऐरावत, इंद्र का हाथी। परस—स्पर्श, संबंध।

४८०. कथा है कि एक गरीब पर पार्वतीजी को बहुत दया आई। महादेवजी से उन्होंने प्रार्थना की कि इसे धनी बना दो। महादेवजी ने कहा कि इसके भाग्य ही में नहीं है। हमारे देने से क्या होगा? पार्वतीजी ने कहा—आप जब उसे धन दे देंगे तो वह धनी कैसे न होगा। महादेवजी ने कहा—स्वयं देख लो। यह कहकर उन्होंने जिस मार्ग से वह जाता था उसी मार्ग पर बहुत सा धन डाल दिया

जिसमें वह उठा ले जाय। परंतु ज्योंही वह अभागा मनुष्य धन के निकट आया, त्योंही उसके मन में विचार आया कि हम कभी आँखें मूँदकर नहीं चले। देखें इसमें कैसा मालूम होता है। यह सोचकर वह आँख मूँदकर चलने लगा और धन उसकी दृष्टि में न पड़ा।

४९१. मसलत—परिश्रम।

५०४. रिजक—भोजन।

५१३. लट्ट पुट्ट—मिल-जुलकर। जट्ट मुट्ट—(यष्टि) लाठी और (मुष्टि) मुक्का।

५२०. छतना—छाता।

५३३. थाप—थप्पड़। जिय हानि—प्राणदंड।

५३६. छकानी—छः कानों में गई हुई। तीन आदमियों के बीच की।

५३७. धातु—स्वर्ण, सोना। लोगों का विश्वास है कि बाघिन का दूध सोने के पात्र के अतिरिक्त और किसी में नहीं ठहरता।

५५१. थिर—स्थिर, स्थावर। चर—जंगम सृष्टि। सोध—खोज।

५५३. जूथ बिछोही—अपने दल से बिछुड़ा हुआ।

५५८. किलकिला—एक पक्षी जो समुद्र के जीवों का शिकार करता है।

५५९. इलाज—उपाय।

५६०. दुरभर—कठिनता से भरा जानेवाला।

५६२. अरधंगी—अर्द्धांगी होने से आधे ही अन्न की आवश्यकता पड़ेगी। दार—स्त्री, पत्नी प्रभृति। कुमार—स्वामी कार्त्तिकेय का विवाह ही नहीं हुआ। इसलिये वे कुमार कहलाते हैं।

५६६. तंदुल—सुदामा चावल भेंट करने ले गया था। मुनि—दुर्वासा और उनके साथी ऋषिगण जिन्हें श्रीकृष्ण ने, पात्रस्थ चावल का एक कण खाकर, पूर्णतया तृप्त किया था।

५६७. ब्राह्मन—सुदामा। श्रीपति—लक्ष्मीनाथ, विष्णु के अवतार कृष्ण।

५७५. सालि—धान।

५७७. नृप कन्या—रुक्मिणी।

५७९. पारथ—पार्थ, अर्जुन। भारथ—भारत, महाभारत का युद्ध। छल—अर्जुन ने शिखंडी के पीछे से भीष्म पितामह पर वाण चलाए थे।

५८५. निहुरै—नम्र होता है।

५८६. अर्जुन—सहस्रार्जुन, सहस्रबाहु, हैहय कार्तवीर्य। जमदग्नि मुनि ने सहस्रबाहु का राजसी ठाट से अतिथि-सत्कार किया। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। जब उसे ज्ञात हुआ कि मुनि के पास कामधेनु है तो वह जमदग्नि को मारकर उसे ले चला। परशुराम ने उसे मार डाला और तपोबल से अपने पिता को जीवित किया।

५९५. हरवी—हल्की (बात)। गरुवे—भारी (व्यक्ति)।

५९७. भँभूरे—बवंडर।

६०५. कविराज—शुक्राचार्य।

६११. पिपीलिका—च्यूँटी।

६२१. हुलास—उल्लास, प्रसन्नता।

६२४. विक्रमादित्य बहुत प्रजावत्सल और विद्या-व्यसनी राजा प्रसिद्ध है।

६३१. पैसार—प्रवेश। निसार—बाहर निकलना।

६३७. लोपत—उल्लंघन करते।

६३८. वैसी बिरियाँ—वैसे समय में, विपत्ति-काल में।

६५५. सुरिंद—सुरेंद्र, इंद्र।

६६१. मनुहारि—मान।

६६६. जामदग्नि—जामदग्न्य, परशुराम।

६७०. स्रवन—श्रवण कुमार जो अपने अंधे माता पिता को काँवरी के दोनों पलड़ों में रखकर इधर उधर ले जाया करता था।

६७३. चंदेरीपति—शिशुपाल।

६७५. लच्छ, लछ—लक्षण, चिह्न।

६७७. हे—थे।

६८१. तिय—पूतना। परिहरी—त्याग दिया।

६८३. परनै—ब्याह में।

६८७. विकथा—सामान्य कहानी।

६९५. ओप—कांति।

७०६. संवत ससि (१), रस (६), वार (७), ससि (१) अर्थात् १७६१, अंक उलटे गिने जाते हैं।

(७) विक्रम-सतसई

१. स्यामा—राधिका। राधा गोरी थीं। श्यामा कहने से उनके वर्ण की ओर संकेत नहीं है। रूढ़ि से श्यामा का अर्थ केवल सुंदरी लिया गया है।

१२. पेरी—पेला हुआ, पीसा हुआ।

१४. साके—वश।

१५. रोर—कोलाहल, रौला, यहाँ पर आर्त्त की कराह।

१६. जाजरी—जर्जर, पानी खाई हुई।

१७. त्रन—तृण।

२९. सकात—डरता हूँ।

३१. जरतारी—जिस पर जरी का काम हो।

३३. सिताब—चमक या जल्दी। गुलफ—गुल्फ, एड़ी के ऊपर की गाँठ।

३७. तरल—चंचल। तरौना—कर्ण-भूषण। बिथुरे—फैले हुए। सुथरे—स्वच्छ।

३८. गरकाब—जलमग्न, डूबे हुए अर्थात् अंतरस्थ। सहाब—शहाब, गहरा लाल रंग।

४६. जावक—मेंहदी।

४६. पाटी—माँग के द्वारा बालों के दो हिस्से।

५५. रबिसुत—यम।

६१. खौर भौर—चंदन-चर्चित।

६३. आफताब—सूर्य। ताब—चमक। महताब—आतिशबाजी।

६५. सतलरी—सात लड़वाली माला।

७३. मिही—महीन, बारीक।

७६. सान—शान।

७७. भोगवती—ऐश्वर्यशालिनी।

८४. नोखी—अनोखी। अटपटी—बेतुकी, बेमेल।

८६. बनिन—बनी हुई स्त्रियों की।

६०. रजत—चाँदी। चलदल कौ पात—पीपल का पत्ता जो सदा हिलता ही रहता है।

६७. विधि बिधि करि—नाना प्रकार से।

१०५. गुलाल—रोरी, पाँवों की लाली के कारण रास्ता लाल दिखाई देता है।

११०. कंदुक—गेंद जिसमें रंग भरा रहता है और फेंकने में पिचकारी का सा काम देता है। रावरो (सं० राय+पुराई, प्रा० राय+उर+ई) छोटा महल।

११८. सकेलें लेत—इकट्ठा करती है।

११६. न जुरी—न जुड़ सकी, न टिक सकी।

१२४. अजिर—आँगन।

१२८. चक्र—चक्रवाक, चकवा।

१३०. मृगमाला—मृगों का समूह। अहेरी—शिकारी।

१३२. गुंमज—गुंबज।

१३३. कुंद—मंद। कुंदकली—चंपा की कली। कनिकी—छोटा टुकड़ा।

१३४. गाँस—रोक टोक, बंधन, प्रतिरोध।

१३७. खँगी—गड़ी, चुभी, धँसी।

१३८. आसव—मदिरा।

१४२. कल—चैन।

१४५. रंध्र गलिन—गलियों की खुली जगहों से।

१४७. ओलक—ओझल।

१५१. चौज—चोज, चमत्कारपूर्ण उक्ति।

१५६. अर बस—हठ वश।

१७४. अगाऊ—पहले ही।

१७६. नाखी—नष्ट की।

१८३. मूठ—जादू की मूठ।

१९२. कनियारे—तेज कनीवाले।

१९४. असनैकी—आम्नायक, वंशगत अधिकार से युक्त।

१९८. अगड़—अकड़, ऐंठ, दर्प।

२०५. मकर सऊ—मकर संक्रांति।

२१०. रसाल—आम का पेड़।

२१२. मैन—(मदन, मअन, मयन) कामदेव।

२२३. जाहि—चला जा रहा है।

२२४. उसिसवाँ—तकिया।

२३३. घुप करिए—चुप करिए।

२३७. धमारिन—होली। अतन—कामदेव।

२४२. लोद—लोध्र, यहाँ पर लोध की छड़ी। सतून—स्थूण, खंभा। उजवति—फेंकती है।

२४३. क्सोदर—पतली कमरवाली ।

२४५. गरक—गर्क, डूबी हुई । झपटनिवार—झपटनेवाली ।

२४६. नहल—नहर ।

२४७. उषन—उष्ण ।

२४९. वर साइति—शुभ मुहूर्त । बरसाइत—जेठ की अमावास्या । वर–पति । साइत–मुहूर्त । बरसाइत–बट-सावित्री का पूजन ।

२५५. खूँदै—कूदती है । रूँधै लेइ—घेरे लेती है ।

२६१. भाउन—भावन, सुंदर ।

२६३. दावन—जलाने ।

२६४. दावनगीर—दामनगीर, साथी, सखा ।

२६८. मरोरें—ऐंठ । इतराहट ।

२७५. जसन—जश्न, आनंदोत्सव । पान पान—नागवेल के पत्ते । पान—हाथ, पाणि ।

२७७. सुरही—एक प्रकार की सोलह चित्ती कौड़ियाँ ।

२८६. फौकै—डींग मारता है ।

२८८. बृष—वृष, दूसरी राशि । जब सूर्य वृष राशि में जाता है तब गरमी बहुत जोर से पड़ती है ।

२९९. वृषभानु-कुमारि—राधा । वृषभानु राधा के पिता थे ।

३०४. नेत—ठहराव, निश्चय, व्यवस्था ।

३११. पसरत—पसरते हैं, फैलते हैं, पिघलते हैं ।

३१६. मारतंड—मार्तंड, सूर्य ।

३१७. घाटौ—पाट दो, घटा सी उमड़ा दो ।

३२०. छतज—रक्त जो क्षत से निकलता है ।

३२४. दर की—दरवाजे की, उस घर की रहनेवाली ।

३४१. नूर—प्रकाश (यहाँ पर अपना गुण, दुर्गंध और चरपराहट) ।

३४३. चित-हित—हार्दिक प्रेम।

३४५. आन—औरों को। सु—सो, वह। आन—आकर।

३५१. औसु—आस।

३५५. सहूर—शऊर, अक्ल।

३६३. जेब—शोभा।

३६७. उकत—उक्ति।

३७०. नाहीं—नाह, स्वामी।

३७४. सकत—डरते हुए, शंका करते हुए। सकत—सकती।

३७५. जकि—डरी।

३७७. बंसी—मछली पकड़ने की वल्ली। गारा—चारा।

३८१. सौ जोर मुख—मुँहजोर।

३८३. फतूह—फतेह, विजय।

३८८. निनद—निनाद, शब्द।

३९०. गुले गुलाब—गुलाब का फूल। यहाँ पर गुलाब का शरबत।

४०२. गुह्यौ—गुथा हुआ। तामरस—कमल।

४१०. समोइ—मग्न होकर।

४३६. ग्रह—गृह, घर।

४४१. हिलकी—हिचकी। मिलकी—मिलनेवाले या मिलने के इच्छुक।

४४२. हटकी—मना की हुई।

४४६. नेह—प्रेम।

४५४. सीक—सीत्कार अर्थात् सी-सी शब्द करना।

४५५. बरजाइ—बलपूर्वक; पर यहाँ, बड़ी कठिनाई से।

४६०. उर-घर—वक्षस्थल।

४६२. बरोठै—बैठक में।

४६६. आगर—आगा।

४६९. निसारत—निशा-रति; रात्रि में रति होगी, यह बात कही।

४७१. फुरहरू—जाड़ा सूचित करने के लिए कँपकँपी लेना।

४७२. मित्र—सूर्य। मित्रहि—यार को, प्रेमिक को।

४७५. अमनैक—रोक-टोक न माननेवाले।

४७९. मित्र—(१) स्नेही, प्रेमी। (२) सूर्य।

४८०. हरदम—प्रत्येक बल से। अरदम—आड़ में से।

४८३. गत—गति, दशा। सारी—साड़ी।

४८८. ईछन—ईचण, आँखें।

४९३. उमहात—प्रसन्न होती है।

४९६. लुमरी—युवती। हुमरी—उभरे हुए।

४९७. लूमर—युवा, जवान। सुरेर—ऊँचे स्वर से।

५०६. अपत—अपत्र, पत्तों से रहित। जपत—जप्त।

५१६. रौदा—प्रत्यंचा, धनुष की डोरी।

५३७. भाग नगर—(१) भाग्य-रूपी नगर। (२) भागलपुर। काबिल—(१) योग्य। (२) काबुल। दिली—(१) हार्दिक। (२) दिल्ली। निपट कुमाऊँ—(१) बहुत दूर, अप्राप्य। (२) कुमाऊँ प्रदेश। मोरंग—(१) मोरँग, मेरा रंग। (२) नेपाल का पूर्वी प्रांत। रह्यो—(१) रह गया, उतर गया। (२) रहा, वास किया। बिहार—रति-क्रीड़ा। (२) बिहार प्रांत। सूरति (१) सुरत, सम्मिलन। (२) सूरत नगर।

५३८. बदी—भाग्य में लिखी हुई। बदी—खराब होती हुई, टलती। नदी सी—नदी की तरह बड़े वेग से उमड़ती हुई। नदी सी—मानो नदी में नहाई हो, इस प्रकार पसीने से तर हो गई।

५३९. बिगलित—टूटे फूटे।

५४०. आन—मुनादी। आनि—आकर।

५४१. ना फुरमा—आज्ञा न माननेवाला। फुरमान—आज्ञा।

५५२. अभिरामिनि—सुंदर।

५५५. सौहैं—सम्मुख। सोहैं—सौगंध।

५५९. वह माला सौत के हाथ की गुही हुई समझकर उसने उतार डाली।

५७०. जरूर—जोरावर या अवश्य। अरसी—दर्पण।

५७२. कोइन—(१) आँखों की कोएँ, (२) कोई, कुमुदिनी। रोचन—गोरोचन। रोचन—सुंदर लगनेवाला।

५७३. बिन गुन मन—बिना डोरी और मणियों (की माला)।

५७६. लीक—रास्ता, मार्ग (पुरानी पर-स्त्री-गमन की आदत)। लीक—लकीर।

५८१. मिचौहैं—अधमुँदे।

५९६. कलक्किन—मुर्गे। नीरजनी—कमलिनी।

६१३. बरही—मोर।

६१८. सिरात—समाप्त होती है। इतराति—गर्व करती है।

६१९. सटकारे—लंबे। कारे—काले। सरल—सीधे, जो घुँघराले न हों।

६२०. सगबगी—सराबोर। सौंधे—सुगंधि।

६२३. भा रद—कांति को हीन कर देती है।

६२५. जोषा—योषा, स्त्री।

६२६. गरक गुलाब सों—गुलाब से (मार्ग) भरमा दिया। नायक-नायिका के चलने से उनके पाँवों की अरुण आभा मार्ग पर पड़ी है, उसी से ऐसा मालूम पड़ता है।

६३१. सहूर—शहूर, सलीका।

६३९. दिय अलाप—गाया। हिंडोल—हिंडोला राग।

६५१. चुरी—चूड़ी। कर की—हाथ की। करकी—टूटी।

प्रतीपानुक्रमणिका

[पहला अंक सतसई का, दूसरा दोहे का और
तीसरा पृष्ठ का है।]

घ

ह

छूट

कलप-बिरिछ को चित्र लिखि कीन्हे बिनय हजार।
बित्त न पावइ ताहि सों तुलसी देखु बिचार ॥३१७॥
बैठि निसागम निलय महँ करै दीप की बात।
तुलसी देखु बिचार उर नहिँ तम नेक नसात ॥३१८॥
गृह सुंदरि पुनि निकट कबि आंगन अमृत-मूरि।
ते अति लघु तें लघु रहहिँ बिनु समझे अति दूरि ॥३१९॥
यह तन अनुपम अयन बर उपमा रहित सुचैन।
समुझ रहित रटि पचि मरै करत सकल अध्यैन ॥३२०॥
रसना सुत पहिचान बिनु कहहु न कवन भुलान।
जानै कोउ हरि-गुरु-कृपा उदित भए रबि-ग्यान ॥३२१॥
त्रिबिध भांति को सबद बर बिघट न लट परमान।
कारन अबिरल भल अपितु तुलसी अबिद भुलान ॥३२२॥
दिग-भ्रम जा बिधि होत है कौन भुलावत ताहि।
जानि परत गुरु-ग्यान तें सब जग संसय माहिँ ॥३२३॥
कारन चार बिचार बर बरन न अपर न आन।
सदा सोउ गुन-दोख-मय लखि न परत बिनु ग्यान ॥३२४॥
यह करतब सब ताहि को जेहि तें वह परमान।
तुलसी मरम न पाइहैं बिनु सद-गुरु-बर-दान ॥३२५॥
दिग-भ्रम-कारन चारि ते जानहिँ संत सुजान।
ते कैसे लखि पाइहैं जे वोहि बिषय भुलान ॥३२६॥
सुख-दुख-कारन सो भएउ रसना को सुत बीर।
तुलसी सो तब लखि परइ करै कृपा बर धीर ॥३२७॥
अपने खोदे कूप महँ गिरे जथा दुख होइ।
तुलसी सुखप्रद समुझि हिय रचत जगत सब कोइ ॥३२८॥
ता बिधि तें अपनो बिभव दुखद सुखद करतार।
तुलसी कोउ कोउ संत बर कीन्हें बिरचि बिचार ॥३२९॥

रसनाही के सुत ऊपर करत निरंतर प्रीति।
तेहि पाछे सब जग लगेउ समुझ न रीति अरीति ॥३३०॥
माया मन तें ईस भनि ब्रम्हा बिस्नु महेस।
सुर देवी औ ब्रम्ह लौं रसना-सुत उपदेस ॥३३१॥
बरन धार बारिधि अगम को गम करइ अपार।
जन-तुलसी सत-संग-बल पाए बिसद बिचार ॥३३२॥
गहि सु-बेल बिरलइ समुझि बहिगे अपर हजार।
कोटिन बूड़े खबर नहिं तुलसी कहहिं बिचार ॥३३३॥
स्रवन सुनत देखत नयन तुलत न बिबिध बिरोध।
कहहु केहि केहि मानिए केहि बिधि करिय प्रबोध ॥३३४॥
स्रवनात्मक ध्वन्यात्मक बरनात्मक बिधि तीन।
त्रिबिध सबद अनुभव अगम तुलसी कहहिं प्रबीन ॥३३५॥
कहत सुनत आदिहि बरन देखत बरन-बिहीन।
दृस्यमान चर-अचर-गन एकहि एक न लीन ॥३३६॥
पांच भेद चर-गन बिपुल तुलसी कहहिं बिचार।
नर पसु स्वेदज खग क्रमी बुध जन मत निरधार ॥३३७॥
अति बिरोध तिन महँ प्रबल प्रगट परत पहिचान।
अस्थावर गति अपर नहिँ तुलसी कहहिँ प्रमान ॥३३८॥
रोम रोम ब्रह्मांड प्रभु देखत तुलसीदास।
बिनु देखे कैसे कोऊ सुनि मानै बिसुआस ॥३३९॥
बेद कहत जहँ लगि जगत तेहि तें अलग न आन।
तेहि अधार बिवहरत लखु तुलसी परम प्रमान ॥३४०॥
सरखप सूझत जाहि कहँ ताहि सुमेरु असूझ।
कहेउ न सो समुझत अबुझ तुलसी बिगत बिबूझ ॥३४१॥
कहत अउर समुझत अउर गहत तजत कछु और।
कहे सुने समुझब नहीं तुलसी अति मति बौर ॥३४२॥

देखेउ करइ अदेख इव अनदेखेउ बिसुआस।
कठिन प्रबलता मोह की जल कह परम पियास ॥३४३॥
सोई सेमर सोइ सुआ सेवत पाइ बसंत।
तुलसी महिमा मोह की सुनत सराहत संत ॥३४४॥
सुनत स्रवन देखत नयन संसय समन समान।
तुलसी समता असम भौ कहत आन कहँ आन ॥३४५॥
वस हा भौ अरि हित अहित सोऽपि न समुझत हीन।
तुलसी दीन मलीन मति मानत परम प्रबीन ॥३४६॥
भटकत पद अद्वैतता अटकत ग्यान गुमान।
सटकत बितरन तें बिहरि फटकत तुख अभिमान ॥३४७॥
जो चाहत तेहि बिनु दुखित सुखित रहित तेहि होय।
तुलसी सो अतिसय अगम सुगम राम तें होय ॥३४८॥
मातु पिता निज बालकहिँ करहिँ इष्ट उपदेस।
सुनि मानै बिधि आपु जेहि निज सिर सहै कलेस ॥३४९॥
सब सों भलो मनाइबो भलो होन की आस।
करत गगन को गेंडुआ सो सठ तुलसीदास ॥३५०॥
बलि मिसु देखत देवता कर मिस मानव-देव।
मुए मारि अबिचार-रत स्वारथ-साधक एव ॥३५१॥
बिना बीज तरु एक भव साखा दल फल फूल।
को बरनै अतिसय अमित सब बिधि अकल अतूल ॥३५२॥
सुक पिक मुनि गन बुध बिबुध फल आस्रित अति दीन।
तुलसी ते सब बिधि रहित सो तरु तासु अधीन ॥३५३॥
को नहिँ सेवत आइ भव को न सेइ पछिताय।
तुलसी बादहिँ पचत है आपुहिँ आप नसाय ॥३५४॥
कहत बिबिध फल बिमल तेहि लहत न एक प्रमान।
भरम प्रतिष्ठा मानि मन तुलसी कथत भुलान ॥३५५॥

मृग-जल घट भरि बिबिध बिध सींचत नभ-तरु-मूल ।
तुलसी मन हरखित रहत बिनहिं लहे फल फूल ॥३५६॥
सोऽपि कहहिं हम कहँ लहेउ नभ-तरु को फल फूल ।
ते तुलसी तिन तें बिमल सुनि मानहिं मुद-मूल ॥३५७॥
तेऽपि तिनहिं जांचहिं विनय करि करि बार हजार ।
तुलसी गाडर के ढरन जानो जगत बिचार ॥३५८॥
ससि कर स्रग रचना किए अति सोभा सरसात ।
स्वरग सुमन अवतंस खल चाहत अचरज बात ॥३५९॥
तुलसी बोल न बूझई देखत देख न जोइ ।
तिन सठ को उपदेस का करब सयाने लोइ ॥३६०॥
जो न सुने तेहि का कहिय कहा सुनाइय ताहि ।
तुलसी तेहि उपदेसहीं तासु सरिस मति जाहि ॥३६१॥
कहत सकल घट राम-मय तौ खोजत केहि काज ।
तुलसी कहँ यह कुमति सुनि उर आवत अति लाज ॥३६२॥
अलख कहहिं देखन चहहिं ऐसो परम प्रबीन ।
तुलसी जग उपदेसहीं बनि बुध अबुध मलीन ॥३६३॥
हहरत हारत रहित बिद रहत धरे अभिमान ।
ते तुलसी गुरुआ बनहिं कहि इतिहास पुरान ॥३६४॥
निज नैनन देखत नहीं गही आंधरे बांह ।
कहत मोह बस तेहि अधम परम हमारे नाह ॥३६५॥
गगन-बाटिका सींचहीं भरि भरि सिंधु-तरंग ।
तुलसी मानहिं मोद मन ऐसे अधम अभंग ॥३६६॥
देखत करत रचना बिहरि रंग-रूप सम तूल ।
बिहँग बदन बिष्टा करत तातें भयो न तूल ॥३६७॥
चाह तिहारी आप तें मान न आनन आन ।
तुलसी करु पहिचान पति जातें अधिक न मान ॥३६८॥

आतम-बोध बिचार यह तुलसी कर उपकार।
कोउ कोउ राम-प्रसाद तें पावत पर-मति पार ॥३६९॥
जहां तोख तहँ राम हैं राम तोख नहिँ भेद।
तुलसी देखि गहत नहीं सहत बिबिध बिधि खेद ॥३७०॥
गो-धन गज-धन बाजि-धन और रतन-धन खान।
जब आवत संतोख धन सब धन धूरि समान ॥३७१॥
कुथि रटि अटत बिमूढ़ लट घट उदघटत न ग्यान।
तुलसी रटत हटत नहीं अतिसय गत अभिमान ॥३७२॥
भू भुजंग गत दाम भव कामन बिबिध विधान।
तो तन बरतत मान जत तत तुलसी परमान ॥३७३॥
भोडर सुक्ति बिभव पडिक मनि गति प्रगट लखात।
मनि भोडर अपि सुक्ति तें बिलग बिजानत तात ॥३७४॥
राम-चरन-पहिचान बिनु मिटी न मन की दौर।
जनम गँवाए बादही रटत पराए पौर ॥३७५॥
सुनै बरन मानै बरन बरन बिलग नहिँ ग्यान।
तुलसी सु-गुरु-प्रसाद-बल परै बरन पहिचान ॥३७६॥
बिटप बेलि गन बाग के माला-कार न जान।
तुलसी ता बिधि बिद बिना करता राम भुलान ॥३७७॥
करतबही सों करम है कह तुलसी परमान।
करनहार करता सोई भोगै करम निदान ॥३७८॥
तुलसी लट पद तें भटक अटक अपि तु नहिँ ग्यान।
ता तें गुरु-उपदेस बिनु भरमत फिरत भुलान ॥३७९॥
ज्यों बरधा बनिजार के फिरत घनेरे देस।
खांड़ भरे भुस खात हैं बिन गुरु के उपदेस ॥३८०॥
बुद्धिहिँ बारत अनय पद खऽपि न पदारथ लीन।
तुलसी ते रासभ सरिस निज मन गनहिँ प्रबीन ॥३८१॥

कहत बिबिध देखे बिना गहत अनेक न एक।
ते तुलसी सुनहा सरिस बानी बदहिँ अनेक ॥३८२॥
बिनु पाए परतीत अति करत जथारथ हेत।
तुलसी अबुध अकास इव भरि भरि मूठो लेत ॥३८३॥
बसन बारि बांधत बिहठि तुलसी कौन बिचारि।
हानि लाभ बिधि बोध बिनु होत नहीं निरधार ॥३८४॥
काम क्रोध मद लोभ की जब लगि मन में खान।
का पंडित का मूरखौ दोऊ एक समान ॥३८५॥
उत कुल की करनी तजी इत न भजे भगवान।
तुलसी अधबर के भए ज्यौं बधूर के पान ॥३८६॥
कीर सरिस बानी पढ़त चाखन चाहत खांड़।
मन राखत बैराग महँ घर महँ राखत रांड़ ॥३८७॥
राम - चरन परचे नहीं बिनु साधुन-पद नेह।
मूड़ मुड़ाए बादही भांड़ भए तजि गेह ॥३८८॥
काह भए बन बन फिरे जौ बनि आएउ नाहि।
बनते बनते बनि गएउ तुलसी घरही माहिँ ॥३८९॥
जो गति जानै बरन की तन-गति सो अनुमान।
बरन-बिंदु-कारन जथा तथा जानु नहिँ आन ॥३९०॥
बरन-जोग भौ नाम जग जानु भरम को मूल।
तुलसी करता है तुही जानि मानु जनि भूल ॥३९१॥
नाम जगत सम समुझु जग बस्तु न करु चित चैन।
बिंदु गए जिमि गैन तें रहत ऐन को ऐन ॥३९२॥
आपुहि ऐन बिचारु बिधि सिद्धि बिमल मति मान।
आन बासना बिंदु सम तुलसी परम प्रमान ॥३९३॥
धन धन कहे न होत कोउ समुझि देखु धनमान।
होत धनिक तुलसी कहत दुखित न रहत जहान ॥३९४॥

हिम की मूरति के हिए लगी नीर की प्यास।
लगत सवद्द गुरु तर निकर सोमै रही न आस ॥३९५॥
जाके उर बर बासना भई भास कछु आन।
तुलसी ताहि बिडंबना केहि बिधि कथहिँ प्रमान ॥३९६॥
रुज तन-भव परिचय विना भेखज कर किमि कोइ।
जानि परइ भेखज करइ सहज नास रुज होइ ॥३९७॥
मानस ब्याध कुचाह तव सतगुरु बैद समान।
जासु बचन अलबल अवसि होत सकल रुज हान ॥३९८॥
रुचि बाढ़इ सतसंग महँ नीति-छुधा अधिकाइ।
होत ग्यान बल पीन अल त्रिजिन बिपति मिटि जाइ ॥३९९॥
सुकुल पच्छ ससि स्वच्छ जिमि किसन पच्छ दुति-हीन।
बढ़त घटत बिधि भांति बिद तुलसी कहहिँ प्रबीन ॥४००॥
सत-संगति सित पच्छ सम असित असंत-प्रसंग।
जातु आपु कहँ चंद्र सम तुलसी बदत अभंग ॥४०१॥
तीरथ-पति सत-संग सम भगति देव-सरि जान।
बिधि उलटी गति राम की तरनि-सुता अनुमान ॥४०२॥
बर मेधा मानहु गिरा धीर धरम न्यग्रोध।
मिलन त्रिबेनी मल-हरनि तुलसी तजहु विरोध ॥४०३॥
समुझब सम मज्जन बिसद मल अनीति गइ धोइ।
अवसि मिलन संसय नहीं सहज राम-पद होइ ॥४०४॥
छमा बिमल बारानसी सुर-अपगा सम भक्ति।
ग्यान बिसेसर अति बिसद लसत दया सह सक्ति ॥४०५॥
बसत छमा गृह जासु मन बारानसी न दूरि।
बिलसति सुरसरि भगति जहँ तुलसी नय-क्रिय भूरि ॥४०६॥
सित कासी मगहर असित लोभ मोह मद काम।
हानि लाभ तुलसी समुझि बास करहु बसु जाम ॥४०७॥

गए पलटि आवै नहीं है सो करु पहिचान।
आज सोई सोइ कालिह है तुलसी भरम न मान ॥४०८॥
बरतमान आधीन दोउ भावी भूत बिचार।
तुलसी संसय मन न करु जो है सो निरुवार ॥४०९॥
मान-सरोबर मन मधुर राम सुजस सुचि नीर।
हरइ त्रिजिन बुधि बिसद अति बुध नय अगम सुधीर।४१०॥
अलंकार कबि-रीति-जुत भूखन दूखन प्रीति।
बारि-जात बरनन विविध तुलसी बिमल बिनीति ॥४११॥
बिनय बिचार सुहृद्यता सोइ पराग रस गंध।
कामादिक तेहि सर लसत तुलसी घाट प्रबंध ॥४१२॥
प्रेम उमगि कवितावली चली सरित सुचि सार।
राम बरा पुरि मिलन हित तुलसी हरख अपार ॥४१३॥
तरल तरंग सुछंद बर हरत द्वैत तरु मूल।
वैदिक लौकिक बिधि बिमल लसत बिसद बर कूल ॥४१४॥
संत-सभा बिमला नगरि सकल-सुमंगल-खानि।
तुलसी-उर सुर-सर सुता लसत सुथल अनुमानि ॥४१५॥
मुकत मुमुच्छु बर बिखयि स्रोता त्रिविध प्रकार।
ग्राम नगर पुर जुग सु-तट तुलसी कहहिं बिचार ॥४१६॥
बारानसी बिराग नहिं सैल-सुता-मन होय।
तिमि अवधहि सरजू न तज कहत सु-कबि सब कोय ॥४१७॥
कहब सुनब समुझब सो पुनि सुनि समुझाइब आन।
स्रम-हर घाट प्रबंध बर तुलसी परम प्रमान ॥४१८॥

पंचम सर्ग

जतन अनूपम जानु बर सकल-कला-गुन-धाम।
अबिनासी अव्यय अमल मैं यह तनु धरि राम ॥४१९॥
सदा प्रकासक रूप बर अस्त न अपर न आन।
अप्रमेय अद्वैत अज या तें दुरत न ग्यान ॥४२०॥
जानहिं हंस रसाल कहँ तुलसी संत न आन।
जाकी कृपा-कटाच्छ तें पाए पद निरवान ॥४२१॥
तजत सलिल अपि पुनि गहत घटत बढ़त नहिं रीति।
तुलसी यह गति उर निरखि करिय राम-पद-प्रीति ॥४२२॥
चुंबक आहन रीति जिमि संतन हरि सुख-धाम।
जानति रिच्छ-रसम सफरि तुलसी जानत राम ॥४२३॥
भरत हरत दरसत सबहि पुनि अदरस सब काहु।
तुलसी सु-गुरु-प्रसाद-बल होत परम पद लाहु ॥४२४॥
जथा प्रतच्छ सरूप बहु जानत है सब कोय।
तथा हि लय-गति को लखब असमंजस अति सोय ॥४२५॥
जथा सकल अप जात अपि रबिमंडल के माहिं।
मिलन तथा जिव राम पद होत तहां लय नाहिं ॥४२६॥
करम कोस सँग लै गयो तुलसी अपनी बानि।
जहां जाइ बिलसै तहां परै कहां पहिचानि ॥४२७॥
ज्यों धरनी महँ हेतु सब रहत जथा धरि देह।
त्यों तुलसी लय राम महँ मिलन कबहुँ नहिं एह ॥४२८॥
सोखक पोखक समुझ सुचि राम-प्रकास-सरूप।
जथा तथा बिभु देखिए जिमि आदरस अनूप ॥४२९॥
करम मिटाए मिटत नहिं तुलसी किए बिचार।
करतबही को फेर है या बिधि सार असार ॥४३०॥

एक किए है दूसरे बहुरि तीसरो अंग।
तुलसी कैसहु ना मिटै अतिसय करम तरंग ॥४३१॥
इन दोउन्ह तें रहित भौ कोउ न राम तजि ग्यान।
तुलसी यह गति जानिहैं कोउ कोउ संत सुजान ॥४३२॥
संतन को लै अभि-सदन समुझहिँ सुगति प्रवीन।
करम-बिपरजय कबहुँ नहिँ सदा राम-रस लीन ॥४३३॥
सदा एक-रस संत सिय निहचय निसिकर जान।
राम-दिवाकर दुख-हरन तुलसी सील-निधान ॥४३४॥
संतन की गति उरबिजा जानहु ससि परमान।
रमित रहत रस-मय सदा तुलसी रति नहिँ आन ॥४३५॥
जात-रूप जिमि अनल मिलि ललित होत तन ताय।
संत सीतकर सीय तिमि लसहिँ राम-पद पाय ॥४३६॥
आपुहि बाँधत आपु हठि कौन छुड़ावत ताहि।
सुख-दायक देखत सुनत तदपि सो मानत नाहिँ ॥४३७॥
जीन तार तें अधम गति उरध तीन गति जात।
तुलसी मकरी तंतु इव कबहुँ न करम नसात ॥४३८॥
जहां रहत तहँ सह सदा तुलसी तेरी बानि।
सुधरै बिधि-बस होइ जब सत-संगति पहिचानि ॥४३९॥
रवि रजनीस धरा तथा यह असथिर असथूल।
सूछम गुन को जीव कर तुलसी सो तन-मूल ॥४४०॥
आवत अप रबि तें जथा जात तथा रबि माहि।
जहँ तें प्रगट तहीं दुरत तुलसी जानत ताहि ॥४४१॥
प्रगट भए देखत सकल दुरत लखत कोइ कोइ।
तुलसी यह अतिसय अगम बिनु गुरु सुगम न होइ ॥४४२॥
या जग जे नय-हीन नर बरबस दुख-मग जाहिँ।
प्रगटत दुरत महा-दुखी कहँ लगि कहियत ताहि ॥४४३॥

सुख-दुख-मग अपने गहे मग केहु लगत न धाय।
तुलसी राम-प्रसाद बिन सो किमि जानो जाय ॥४४४॥
महि तें रवि रवि तें अवनि सपनेहुँ सुख कहुँ नाहिँ।
तुलसी तब लगि दुखित अति ससि-मग लहत न ताहि ॥४४५॥
संतन की गति सीत-कर लेस कलेस न होय।
सो सिय-पद सुखदा सदा जानु परम-पद सोय ॥४४६॥
तजत अमिय ससि जान जग तुलसी देखत रूप।
गहत नहीं सब कहँ विदित अतिसय अमल अनूप ॥४४७॥
ससि-कर सुखद सकल जगत को तेहि जानत नाहिँ।
कोक कमल कहँ दुखद कर जदपि दुखद नहिँ ताहि ॥४४८॥
बिन देखे समुझे सुने सोउ भव मिथ्या-वाद।
तुलसी गुरु गम कै लखै सहजहिं मिटै बिखाद ॥४४९॥
बरखि बिस्व हरखित करत हरत ताप अघ-प्यास।
तुलसी दोख न जलद कर जो जल जरै जवास ॥४५०॥
चंद्र देत अमि लेत बिख देखहु मनहिँ बिचार।
तुलसी तिमि सिय संत बर महिमा बिसद अपार ॥४५१॥
रसमि विदित रबि-रूप लखु सीत सीत-कर जान।
लसत जोग जस-कार भव तुलसी समुझु समान ॥४५२॥
लेत अवनि रबि अंसु कहँ देत अमिय अप-सार।
तुलसी सूछम को सदा रबि रजनीस अधार ॥४५३॥
भूमि भानु असथूल अप सकल चराचर-रूप।
तुलसी बिनु गुरु ना लहै यह मत अमल अनूप ॥४५४॥
तुलसी जे नय-लीन नर ते निसि-कर-तन-लीन।
अपर सकल रबि गत भए महा-कष्ट अति दीन ॥४५५॥
तुलसी कवनहुँ जोग तें सत-संगति जब होय।
राम-मिलन संसय नहीं कहहिँ सु-मति सब कोय ॥४५६॥

सेवक पद सुख-कर सदा दुख-द सेव्य-पद जान।
जथा बिभीखन रावनहि तुलसी समुझु प्रमान ॥४५७॥
सीत-उष्ण-कर-रूप सम निसि-दिन कर करतार।
तुलसी तिन कहँ एक नहिँ निरखहु करि निरधार ॥४५८॥
नहिँ नयनन्ह काहू लखेउ धरत नाम सब कोइ।
तातें साँचो है समुझु झूठ कबहुँ नहिँ होइ ॥४५९॥
बेद कहत सबको बिदित तुलसी अमिय-सुभाव।
करत पान अरु रुज हरत अबिरल अमल प्रभाव ॥४६०॥
गंध सीत अपि उष्णता सबहि बिदित जग जान।
महि बन अनल सो अनिल गत बिन देखे परमान ॥४६१॥
इन महँ चेतन अमल अल बिलखत तुलसीदास।
सो पद गुरु-उपदेस सुनि सहज होत परकास ॥४६२॥
येहि बिधि तें बर बोध यह गुरु-प्रसाद कोउ पाव।
हैं ते अल तिहुँ काल महँ तुलसी सहज प्रभाव ॥४६३॥
काक-सुता-सुत वा सुता मिलत जननि पितु धाय।
आदि-मध्य-अवसान गत चेतन सहज सुभाय ॥४६४॥
समता स्वारथ-हीन तें होत सु-बिसद बिवेक।
तुलसी यह नितही फबै जिनहिँ अनेक न एक ॥४६५॥
सब स्वारथ स्वारथ रटत तुलसी घटत न एक।
ज्ञान-रहित अज्ञान-रत कठिन कु-मन कर टेक ॥४६६॥
स्वारथ सो जानहु सदा जासों बिपति नसाय।
तुलसी गुरु-उपदेस बिनु सो किमि जानेउ जाय ॥४६७॥
कारज स्वारथ-हित करै कारन करै न होइ।
मनवा ऊख बिसेख तें तुलसी समझहु सोइ ॥४६८॥
कारन कारज जान तो सब काहू परमान।
तुलसी कारन कार जो सो तैं अपर न आन ॥४६९॥

बिन करता कारज नहीं जानत है सब कोइ।
गुरु-मुख स्रवन सुनत नहीं प्राप्त कवन बिधि होइ॥४७०॥
करता कारन कारजहु तुलसी गुरु परमान।
लोपत करता मोह-बस ऐसउ अबुध मलान॥४७१॥
अनिल सलिल बिधि जोग तें जथा वीचि बहु होइ।
करत करावत नहिँ कछुक करता कारन सोइ॥४७२॥
छेम-धरन करतार कर तुलसी-पति पर-धाम।
सो बरतर ता सम न कोउ सब बिधि पूरन-काम॥४७३॥
करता कारन सार-पद अव्यय अमल अभेद।
करम घटत अपि बढ़त है तुलसी जानत बेद॥४७४॥
स्वेद-ज जौन प्रकार तें आप करै कोउ नाहिँ।
भएउ प्रगट तेहि के सुनौ कौन बिलोकत ताहि॥४७५॥
भई बिखमता करम महँ समता किए न होइ।
तुलसी समता समुझ कर सकल मान मद धोइ॥४७६॥
सम-हित सहित समस्त जग सुहृद जानु सब काहु।
तुलसी यह मत धारु उर दिन प्रति अति सुख लाहु॥४७७॥
यह मन महँ निहचय धरहु है कोउ अपर न आन।
कासन करत बिरोध हठि तुलसी समुझु प्रमान॥४७८॥
महि जल अनल सो अनिल नभ तहाँ प्रगट तुव रूप।
जानि जाइ बर बोध तें अति सुभ अमल अनूप॥४७९॥
जो पै आकसमात तें उपजै बुद्धि बिसाल।
ना तौ अति छल हीन है गुरु-सेवन कछु काल॥४८०॥
कारज जुग जानहु हिए नित्य अनित्य समान।
गुरु-गम तें देखत सु-जन कह तुलसी परमान॥४८१॥
महि मयंक ग्रह-नाथ को आदि ग्यान भव भेद।
ता बिधि तेई जीव कहँ होत समुझ बिनु खेद॥४८२॥

परो फेर निज करम महँ भ्रम भव को यह हेत।
तुलसी कहत सु-जन सुनहु चेतन समुझ अचेत ॥४८३॥
नाम - कार दूखन नहीं तुलसी किए बिचार।
करमन की घटना समुझि ऐसे बरन उचार ॥४८४॥
सु-जन कु-जन महि गत जथा तथा भानु ससि माहिँ।
तुलसी जानत ही सुखी होत समुझ बिन नाहिँ ॥४८५॥
मातु-तात-भव रीति जिमि तिमि तुलसी गति तोरि।
मातु न तात न जातु तव है तेहि समुझ बहोरि ॥४८६॥
सरब सकल तैं है सदा बिसलेसित सब ठौर।
तुलसी जानहिँ सुहृद ए ते अति मति-सिर-मौर ॥४८७॥
अलंकार घटना कनक रूप नाम गुन तीन।
तुलसी राम-प्रसाद तें परखहिँ परम प्रबीन ॥४८८॥
एक पदारथ बिबिध गुन संग्या अगम अपार।
तुलसी सु-गुरु - प्रसाद तें पाए पद निरधार ॥४८९॥
गंधन मूल उपाधि बहु भूखन तन गन जान।
सोभा गुन तुलसी कहहिँ समुझहिँ सुमति-निधान ॥४९०॥
जैसो जहां उपाधि तहँ घटित पदारथ रूप।
तैसो वहां प्रभास मन गुन गन सुमति अनूप ॥४९१॥
जातु बस्तु असथिर सदा मिटत मिटाए नाहिँ।
रूप नाम प्रगटत तुरत समुझि बिलोकहु ताहि ॥४९२॥
पेखि रूप संग्या कहब गुन सु-बिबेक बिचार।
इतनोई उपदेस बर तुलसी किए बिचार ॥४९३॥
सदा सगुन सीता-रमन सुख-सागर बल-धाम।
जन तुलसी परखे परम पाए पद बिस्राम ॥४९४॥
सगुन पदारथ एक नित निरगुन अमित उपाधि।
तुलसी कहहिँ बिसेख तें समुझ सुगति सुठि साधि ॥४९५॥

जथा एक कहँ बेद गुन ता महँ को कछु नाहिँ।
तुलसी बरतत सकल है समुझत कोउ कोउ ताहिँ ॥४९६॥
तुलसी जानत साधु-जन उदय-अस्त-गत भेद।
बिन जाने कैसे मिटै बिविध जनन मन-खेद ॥४९७॥
संसय सोक स-मूल रुज देत अमित दुख ताहि।
अहि अनुगत सपने बिबिध जाइ पराय न जाहि ॥४९८॥
तुलसी सांचो सांप है जब लगि खुलैं न नैन।
सो तब लगि जब लगि नहीं सुनै सु-गुरु-बर बैन ॥४९९॥
पूरन परमारथ दरस परस न जौ लगि आस।
तौ लगि खन न अघात नर जौ लगि जल न प्रगास ॥५००॥
तौ लगि हम तें सब बड़ो जौ लगि है कछु चाह।
चाह रहित कह को अधिक पाय परम-पद थाह ॥५०१॥
कारन करता है अचल अपि अनादि अज-रूप।
तातें कारज बिपुल-तर तुलसी अमल अनूप ॥५०२॥
करता जानि न परत है बिन गुरु-बर-परसाद।
तुलसी निज सुख बिधि-रहित केहि बिधि मिटै बिखाद ॥५०३॥
मृन-मय घट जानत जगत बिन कुलाल नहिँ होइ।
तिमि तुलसी करता रहित करम करै कहु कोइ ॥५०४॥
तातें करता-ग्यान करु जा तें करम प्रधान।
तुलसी ना लखि पाइहौ किए अमित अनुमान ॥५०५॥
अनूमान साछी रहित होत नहीं परमान।
कह तुलसी परतच्छ जो सो कहु अपर को आन ॥५०६॥
मृद कारन करता सहित कारज किए अनेक।
जौं करता जानै नहीं तौ कहु कवन बिबेक ॥५०७॥
स्वरन-कार करता कनक कारन प्रगट लखाय।
अलंकार कारज सुख-द गुन सोभा सरसाय ॥५०८॥

चामीकर भूखन अमित करता करतब भेद।
तुलसी जे गुरु-गम-रहित ताहि रमित अति-खेद ॥५०९॥
तन निमित्त जहँ जो भयो तहँ सोई परमान।
जिन जाने माने तहां तुलसी कहहिँ सु-जान ॥५१०॥
मृत-मय भाजन बिविध बिधि करता मन भव-रूप।
तुलसी जाने ते सुख-द गुरु-गम-ग्यान अनूप ॥५११॥
सब देखत मृत भाजनहि कोउ कोउ लखत कुलाल।
जाके मन के रूप बहु भाजन बिलघु बिसाल ॥५१२॥
एकै रूप कुलाल को माटी एक अनूप।
भाजन अमित बिसाल लघु तौ करता मन-रूप ॥५१३॥
जहां रहत बरनत तहां तुलसी नित्य सरूप।
भूत न भावी ताहि कह अतिसय अमल अनूप ॥५१४॥
स्वास समीर प्रतच्छ अप स्वच्छादर्स लखात।
तुलसी राम-प्रसाद बिन अबिगति जानि न जात ॥५१५॥
तुलसी तुल रहि जात है जुग-तन अचल उपाधि।
यह गति तेहि लखि परत जेहि भई सुमति सुठि साधि ॥५१६॥
करता कारन काल के जोग करम मत जान।
पुनः काल करता दुरत कारन रहत प्रमान ॥५१७॥

षष्ठ सर्ग

जल थल तन गत है सदा तैं तुलसी तिहुँ काल।
जनम मरन समुझे बिना भासत समन बिसाल ॥५१८॥
तैं तुलसी करता सदा कारन सबद न आन।
कारज संग्या सुख-दुख-द बिनु गुरु तेहि किमु जान ॥५१९॥

कारज-रत करता समुझि सुख दुख भोगत सोइ।
तुलसी स्त्री-गुरुदेव बिन दुख-प्रद दूरि न होइ ॥५२०॥
कारन सबद सरूप है संग्या गुन भव जान।
करता सुर-गुरु ते सुखद तुलसी अपर न आन ॥५२१॥
गंध बिभावरि नीर रस सलिल अनल गत ग्यान।
बायु बेग कहँ बिनु लखे बुध-जन कहहिं प्रमान ॥५२२॥
अनुस्वार अच्छर रहित जानत हैं सब कोइ।
कह तुलसी जहँ लगि बरन तासु रहित नहिं होइ ॥५२३॥
आदिहु अंतहु है सोई तुलसी और न आन।
बिनु देखे समुझे बिना किमि कोउ करै प्रमान ॥५२४॥
रहित बिंदु सब बरन तें रेफ रहित सब जान।
तुलसी स्वर-संजोग तें होत बरन पद मान ॥५२५॥
अनुस्वार सूछम जथा जथा बरन असथूल।
जो सूछम असथूल सो तुलसी कबहुँ न भूल ॥५२६॥
अनिल अनल पुनि सलिल रज तन गत तन तव होइ।
बहुरि सो रज गत जल अनल मरुत सहित रबि सोइ ॥५२७॥
औरो भेद सिधांत यह निरखु सु-मति करि सोइ।
तुलसी सुत भव जोग बिनु पितु संग्या नहिँ होइ ॥५२८॥
संग्या कह तव गुन समुझ सुनब सबद परमान।
देखब रूप बिसेख है तुलसी बेद बखान ॥५२९॥
होत पिता तें पुत्र जिमि जानत को कहु नाहिँ।
जौ लगि सुत परसो नहीं पितु पद लहइ न ताहि ॥५३०॥
तिमि बरनहिँ तें बरन कर संग्या बरन सँजोग।
तुलसी होइ न बरन कर जौ लगि बरन बियोग ॥५३१॥
तुलसी देखहु सकल कहँ एहि बिधि सुत आधीन।
पितु-पद परखि सु-दृढ़ भएउ कोउ कोउ परम प्रबीन ॥५३२॥

गह देखो सुत-पद सकल भएउ पिता-पद लोप।
तुलसी सो जानै सोई जासु अमोलिक चोप ॥५३३॥
ख्यात सुअन तिहुँ लोक महँ महा-प्रबल अति सोइ।
जो कोउ तेहि पाछे करै सो पुनि आगे होइ ॥५३४॥
तुलसी होत नहीं कछुक सुअन रहित व्यवहार।
ताही तें अगरज भएउ सब बिधि तेहि प्रचार ॥५३५॥
सुअन देखि भूले सकल भए अति परम अधीन।
तुलसी जेहि समुझाइए सो मन करत मलीन ॥५३६॥
मानत सो साँचो हिए सुनत सुनावत बादि।
तुलसी ते समुझत नहीं जो पद अमल अनादि ॥५३७॥
जाहि कहत हैं सकल सो जेहि कहतब सो ऐन।
तुलसी ताहि समुझि हिए अजहुँ करै चित चैन ॥५३८॥
तुलसी जो है सो नहीं कहत आन सब कोइ।
एहि बिधि परम बिडंबना कहहु न काको होइ ॥५३९॥
गुरु करिबो सिद्धांत यह होइ जथारथ बोध।
अनुचित उचित लखाइ उर तुलसी मिटत बिरोध ॥५४०॥
सत-संगति को फल यही संसय रहइ न लेस।
ह्वै असथिर सुचि सरल चित पावै पुनि न कलेस ॥५४१॥
जौं मरिबो पद सबनि को जहँ लगि साधु असाधु।
कवन हेतु उपदेस गुरु सत-संगति भव बाधु ॥५४२॥
जौं भावी कछु है नहीं झूठो गुरु सत-संग।
ऐसि कुमति तें छूट गुरु संतन को परसंग ॥५४३॥
जौं लौं लखि नाहीं परत तुलसी पर-पद आप।
तौ लगि मोह-बिबस सकल कहत पूत कहँ बाप ॥५४४॥
जहँ लगि संख्या बरन-भव जासु कहे तें होइ।
ते तुलसी सो है स-बल आन कहां कहु कोइ ॥५४५॥

अपने नैननि देखि जे चलहिँ सु-मति वर लोग।
तिनहिँ न बिपति बिखाद रुज तुलसी सुमति सु-जोग ॥५४६॥
मृगा गगन-चर ग्यान बिनु करत नहीं पहिचान।
पर बस सठ हठि तजत सुख तुलसी फिरत भुलान ॥५४७॥
कहा कहौं तेहि तोहि को जेहि उपदेसहु तात।
तुलसी कहत सु-दुख सहत समुझ रहित हित-बात ।५४८॥
बिनु काटे तरु-वर जथा मिटै कौन बिधि छाहिँ।
त्यों तुलसी उपदेस बिनु निहसंसय कोउ नाहिँ ॥५४९॥
अपनो करतब आपु लखि सुनि गुनि आपु विचार।
तौ तोहि को दुखदा कहा सुखदा सुमति अधार ॥५५०॥
ब्राह्मन वर विद्या-विनय सुरुति-विवेक-निधान।
पथ-रति अनय-अतीत मति सहित दया स्रुति-मान ॥५५१॥
बिनय छत्र सिर जासु के प्रति पद पर-उपकार।
तुलसी सो छत्री सही रहित सकल-व्यभिचार ॥५५२॥
वैस्य विनय मगु पगु धरै हरै कटुक वर वैन।
सदय सदा सुचि रुचि सरल ताहि अचल सुख ऐन ॥५५३॥
सूद्र छुद्र पथ परिहरै हृदय विप्र - पद मान।
तुलसी मन समता सु-मति सकल जीव सम जान ॥५५४॥
हेतु बरन वर सुचि रहनि रस निरास सुख-सार।
चाह न काम-सुरा न रम तुलसी सु-दृढ़ विचार ॥५५५॥
जथा लाभ संतोख-रत गृह मग वन सम रीति।
ते तुलसी सुख-मय सदा जिन तन बिभव बिनीति ॥५५६॥
रहै जहां बिचरै तहां कमी कहूं कछु नाहिँ।
तुलसी तहँ आनंद सँग जात जथा रूग छाहिँ ॥५५७॥
करत तरक जेहि की सदा सो मन दुख-दातार।
तुलसी जैा समुझै नहीं तो तेहि तजइ विचार ॥५५८॥

कहत सुनत समुझत लखत तेहि तें बिपति न जाइ।
तुलसी सब तें बिलग है जौ लगि नहिँ ठहराइ ॥५५९॥
सुनत कोटि कोटिन कहत कौड़ो हाथ न एक।
देखत सकल पुरान स्रुति तापर रहित बिबेक ॥५६०॥
समुझत है संतोख धन या तें अधिक न आन।
गहत नहीं ता तें कहत तुलसी अबुध मलान ॥५६१॥
कहा होत देखे सुने अरु समुझे सब रीति।
तुलसी जौ लगि होत नहिँ सुखद राम-पद प्रीति ॥५६२॥
कोटिन साधन के किए अंतर मल नहिँ जाइ।
तुलसी जौ लगि सकल गुन सहित न करम नसाइ ॥५६३॥
चाह बनी जौ लगि सकल तौ लगि साधन सार।
ता महँ अमित कलेस-कर तुलसी देखु बिचार ॥५६४॥
चाह किए दुखिया सकल ब्रह्मादिक सब कोइ।
निहचलता तुलसी कठिन राम कृपा बस होइ ॥५६५॥
अपनो करम न आपु कहँ भलो मंद जेहि काल।
तब जानब तुलसी भई अतिसय बुद्धि बिसाल ॥५६६॥
तुलसी जौ लौं लखि परत देह प्रान कै भेद।
तौ लगि कैसे कै मिटइ करम-जनित बहु खेद ॥५६७॥
जोइ प्रान सो देह है प्रान देह नहिँ दोय।
तुलसी जो लखि पाइहै सो निरदय नहिँ होय ॥५६८॥
तुलसी तैं झूठो भयो करि झूठे संग प्रीति।
है सांचो है सांच जब गहै राम की रीति ॥५६९॥
झूठी रचना सांच है रचत नहीं अलसात।
बरजेहू झगरत बिहठि नेकु न बूझत बात ॥५७०॥
करम खरी कर मोह थल अंक चराचर जाल।
भरत हरत भरि हरि गनत जगत ज्योतिसी काल ॥५७१॥

कहत काल किल सकल बुध ताकर यह व्यवहार।
उतपति-थिति-लय होत है सकल तासु अनुहार ॥५७२॥
अंकुर किसलय दल विपुल साखा-जुत वर मूल।
फूलि परत रितु अनुहरत तुलसी सकल सतूल ॥५७३॥
कहतब करतब सकल तेहि जाहि रहित नहिँ आन।
जान न मान न आन विधि अनूमान अभिमान ॥५७४॥
हानि लाभ जय बिजय विधि ज्ञान दान सनमान।
खान पान सुचि रुचि अरुचि तुलसी विदित विधान ॥५७५॥
सालक पालक सम विखम भरम मगन गति ज्ञान।
अट घट लट नट नादि जहँ तुलसी रहित न जान ॥५७६॥
कठिन करम-करनी कथन करता कारक काम।
काय-कष्ट-कारन करम होत काल सह साम ॥५७७॥
चित रत वित व्यवहार विधि अगम सुगम जय मीच।
धीर धरम धारन हरन तुलसी परत न वीच ॥५७८॥
खरब आतमा बोध वर खर विनु कबहुँ न होइ।
तुलसी खसम-बिहीन जे ते खर-तर नहिँ सोइ ॥५७९॥
सबद रूप बिबरन विसद तासु जोग भव नाम।
करता नर बहु जाति तेहि संग्या सब गुन-धाम ॥५८०॥
नाम जाति गुन देखिकै भएउ प्रबल उर भर्म।
तुलसी गुरु उपदेस विनु जानि सकै को मर्म ॥५८१॥
अपन करम बर मानि कै आपु बँधेउ सब कोइ।
कारज-रत करता भएउ आपु न समुझत सोइ ॥५८२॥
करता कारन को लखै कारज अगम प्रभाव।
जो जहँ सो तहँ तहँ हरख तुलसी सहज सुभाव ॥५८३॥
तुलसी बिनु गुरु को लखे बरतमान बिपरीत।
कहु केहि कारन तें भएउ सूर उसन ससि सीत ॥५८४॥

करता कारन करम तें पर परमातम ग्यान।
होव न विनु उपदेस गुरु जौ पढ़ वेद पुरान ॥५८५॥
प्रथम ग्यान समुझै हिए विधि निखेद व्यवहार।
उचितानुचितहिं हेरि हिय करतव करइ सँभार ॥५८६॥
जब मन महँ ठहराइ विधि स्त्री-गुरु-वर-परसाद।
एहि विधि परमातम लखै तुलसी मिटइ विखाद ॥५८७॥
वरवस करत विरोध हठि होन चहत अक-हीन।
गहि गति वक वृक स्वान इव तुलसी परम प्रवीन ॥५८८॥
आक करम भेखज विदित लखत नहीं मति-हीन।
तुलसी सठ अक-वस विहठि दिन दिन दीन मलीन ॥५८९॥
करता ही तें करम-जुग सो गुन-दोख सरूप।
करत भोग करतव जथा होइ रंक किन भूप ॥५९०॥
वेद पुराणहु सास्त्र जत तत वुधि-वल अनुमान।
निज कर करि करि है वहुरि कह तुलसी परिमान ॥५९१॥
विविध प्रकार कथन करै जाहि जथा भौ भान।
तुलसी सु-गुरु प्रसाद-वल कोइ कोइ कहइ प्रमान ॥५९२॥
उर डर अतिलघु होन की भौ लघु सुरति भुलानि।
स्वरन-लाहु लखि परत नहिं लखत लोह की हानि ॥५९३॥
नयन-दोख निज कहत नहिं विविध वनावत वात।
सहत जानि तुलसी विपति तदपि न नेक लजात ॥५९४॥
करत चातुरी मोह-वस लखत न निज-हित-हान।
सुक मरकट इव गहत हठ तुलसी परम-सुजान ॥५९५॥
दुखिया सकल प्रकार सठ समुझि परत तेहि नाहि।
लखत न कंटक मीन जिमि असन भखत भ्रम माहिं ॥५९६॥
तुलसी निज मन-कासना चहत सून कहँ सेइ।
वचन गाय सव के विविध कहहु पयस को देइ ॥५९७॥

बातहि बातहि बनि पड़ै बातहि बात नसाय।
बातहि आदिहि दीप भौ बातहि अंत बुताय ॥५९८॥
बातहि तें बनि आवही बातहि तें बन जात।
बातहि तें बरबर मिलत बातहिँ तें बैरात ॥५९९॥
बात बिना अतिसय बिकल बातहि तें हरखात।
बनत बात बर बात तें करत बात बर घात ॥६००॥
तुलसी जाने बात बिनु बिगरत हर एक बात।
अनजाने दुख बात के जानि परे कुसलात ॥६०१॥
प्रेम बैर अरु पुन्य अघ जस अपजस जय हान।
बात बीज इन सबन को तुलसी कहहिँ सुजान ॥६०२॥
वंचक-बिधि-रत नय-रहित बिधि हिंसा अति लीन।
तुलसी जग महँ बिहित बर नरक निसेनी तीन ॥६०३॥
सदा भजन गुरु साधु द्विज जीव-दया सम जान।
सुख-द सु-नय-रत सत्य-व्रत सरग सप्त सोपान ॥६०४॥
जे नर जग गुन-दोख-जुत तुलसी बदत विचार।
कबहुँ सुखी कबहूँ दुखी उदय-अस्त-व्यवहार ॥६०५॥
कारज जुग के जुगल तम काल अचल बलवान।
त्रिबिधि बिबल तें ते हठहि तुलसी कहहि प्रमान ॥६०६॥
अनुभव अमल अनूप गुरु कछुक सास्त्र-गति होइ।
बचइ काल-क्रम-दोख तें कहहिँ सु-बुध सब कोइ ॥६०७॥
सब बिधि पूरन धाम बर राम अपर नहिँ आन।
जाके कृपा-कटाच्छ तें होत हिए दृढ़ ग्यान ॥६०८॥
सो स्वामी सो तर सखा सो बर-सुख-दातार।
तात मात आपद-हरन सो असमय-आधार ॥६०९॥
सुख-द दुख-द कारन कठिन जानत को तेहि नाहिँ।
जानेहु पर बिनु गुरु-कृपा करतब बनत न काहि ॥६१०॥

तुलसी सकल प्रधान है बेद-बिदित सुख-धाम ।
ता महँ समुझब कठिन अति जुगल भेद गुन नाम ॥६११॥
नाम कहत सुख होत है नाम कहत दुख जात ।
नाम कहत दुख जात दुरि नाम कहत सुख-खात ॥६१२॥
नाम कहत बैकुंठ सुख नाम कहत अघ खान ।
तुलसी ता तें उर समुझि करहु नाम पहिचान ॥६१३॥
चारो चौदह अष्ट-दस रस समुझे भरि पूरि ।
नाम भेद समुझे विना सकल समुझ महँ धूरि ॥६१४॥
वार दिबस निसि मास सित असित बरख परमान ।
उत्तर दक्खिन आस रवि भेद सकल महँ जान ॥६१५॥
करम सुभासुभ मित्र अरि रोदन हसन बखान ।
और भेद अति अमित है कहँ लगि कहिय प्रमान ॥६१६॥
जहँ लगि जन देखब सुनब समुझब कहब सु-रीत ।
भेद विना कछु है नहीं तुलसी वदहिँ विनीत ॥६१७॥
भेद याहि विधि नाम महँ बिनु गुरु जान न कोय ।
तुलसी कहहिँ विनीत वर जो विरंचि सिव होय ॥६१८॥

सप्तम सर्ग

तिनहिँ पढ़े तिनहीं सुने तिनहिँ सुमति-परगास ।
जिन आसा पाछे करी गहि अवलंब निरास ॥६१९॥
तव लगि जोगी जगत-गुरु जव लगि रहै निरास ।
जव आसा मन में जगी जग गुरु जोगी दास ॥६२०॥
हित पुनीत स्वारथ सवहिँ अहित असुचि बिनु चाड़ ।
निज मुख मानिक सम दसन भूमि परत भौ हाड़ ॥६२१॥

निज गुन घटत न नाग-नग हरखि परिहरत कोल।
गुंजा प्रभु भूखन करे ता तें बढ़इ न मोल ॥६२२॥
देइ कुसुम करि वास तिल परिहरि खरि रस लेत।
स्वारथ-हित भू-तल भरे मन मेचक तन सेत ॥६२३॥
अँसुअन पथिक निरास तें तट भुँइ सजल सरूप।
तुलसी किन वंचे नहीं इन मरुथल के कूप ॥६२४॥
तुलसी मित्र महा सुखद सवहि मित्र की चाड़।
निकट भए बिलसत सकल एक छपाकर छाड़ ॥६२५॥
मित्र-कोप वर तर सुखद अनहित मृदुल कराल।
द्रुम-दल सिसिर सुखात सब सह निदाघ अति लाल ॥६२६॥
खल नर गुन मानै नहीं मेटहिँ दाता-ओप।
जिमि जल तुलसी देत रवि जलद करत तेहि लोप ॥६२७॥
बरखत हरखत लोग सब करखत लखत न कोइ।
तुलसी भूपति भानु-सम प्रजा-भाग-वस होइ ॥६२८॥
समय परे सु-पुरुख नरहि लघु करि गनिय न कोइ।
नायक पीपर-बीज-सम बचै तो तरु-वर होइ ॥६२९॥
बड़े राम-रत जगत में कै पर-हित चित जाहि।
प्रेम-पैज निबही जिन्हें बड़े सो सवही चाहि ॥६३०॥
माली-भानु-कृसानु-सम नीति-निपुन महिपाल।
प्रजा-भाग वस होहिंगे कबहिँ कबहिँ कलिकाल ॥६३१॥
तुलसी संतन तें सुने संतत यहै विचार।
तन धन चंचल अचल जग जुग जुग पर-उपकार ॥६३२॥
ऊंचहिँ आपद विभव वर नीचहिँ दत्त न होइ।
हानि वृद्धि द्विजराज कहँ नहिँ तारा-गन कोइ ॥६३३॥
बड़े रतहिँ लघु के गुनहिँ तुलसी लघुहि न हेत।
गुंजा तें मुकुता अरुन गुंजा होत न स्वेत ॥६३४॥

होहिँ बड़े लघु समय सह तौ लघु सकहिँ न काढ़ि।
चंद दूबरो कूबरो तऊ नखत तें बाढ़ि ॥६३५॥
उरग तुरग नारी नृपति नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहब नित इन्हहिँ न पलटत बार ॥६३६॥
दुरजन आपु समान करि को राखइ हित-लागि।
तपत तोय सह जाहि पुनि पलटि बुतावत आगि ॥६३७॥
मंत्र तंत्र तंत्री त्रिया पुरुख अस्त्र धन पाठ।
प्रति गुन जोग बियोग तें तुरत जाहिँ ये आठ ॥६३८॥
नीच निचाई नहिँ तजइ जौं पावइ सत-संग।
तुलसी चंदन बिटप बसि बिनु बिख भै न भुअंग ॥६३९॥
दुरजन दरपन सम सदा करि देखो हिय दौर।
सनमुख की गति और है बिमुख भए कछु और ॥६४०॥
मित्र क अवगुन मित्र जो पर पहँ भाखत नाहिँ।
कूप छांह जिमि आपनी राखत आपुहि माहिँ ॥६४१॥
तुलसी सो समरथ सु-मति सुकृती साधु सुजान।
जौ बिचारि ब्यवहरइ जग खरच लाभ अनुमान ॥६४२॥
सिख्य सखा सेवक सचिव सु-तिय सिखावन सांच।
समुझि करिय पुनि परिहरिय पर-मन-रंजन पांच ॥६४३॥
तूठहिँ निज रुचि काज करि रूठहिँ काज बिगारि।
तिया तनय सेवक सखा मन के कंटक चारि ॥६४४॥
नगर नारि भोजन सचिव सेवक सखा अगार।
सरस परिहरे रंग रस निरस बिखाद बिकार ॥६४५॥
दीरघ-रोगी दारिदी कटु-बच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान तउ तुरत त्यागिबे जोग ॥६४६॥
घाय लगे लोहा ललकि खैंचि लेइ नइ नीचु।
समरथ पापी सों बयर जानि बेसाही मीचु ॥६४७॥

तुलसी स्वारथ सामुहो परमारथ तन पीठि।
अंध कहे दुख पाइहै डिठिआरे केहि डीठि ॥६४८॥
अन-समुझे अनु-सोचनो अवसि समुझिए आपु।
तुलसी आपन समुझ विनु पल पल पर परितापु ॥६४९॥
कूप खनहिँ मंदिर जरत लावहिँ धारि बबूर।
बोए लव चह समय बिनु कुमति-सिरोमनि कूर ॥६५०॥
निडर अनय करि अन-कुसल बीसबाहु सम होय।
गयो गयो कह सुमति सब भयो कुमति कह कोय ॥६५१॥
बहु सुत बहु रुचि बहु बचन बहु अचार ब्यवहार।
इनको भलो मनाइबो यह अग्यान अपार ॥६५२॥
अपजस जोग कि जानकी मनि चोरी की कान्ह।
तुलसी लोग रिझाइबो करसि कातिबो नान्ह ॥६५३॥
माँगि मधुकरी खात जे सोवत पाय पसारि।
पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी ताते बाढ़ी रारि ॥६५४॥
लही आँखि कब आँधरे बाँझ पूत कब पाय।
कब कोढ़ो काया लही जग बहराइच जाय ॥६५५॥
या जग की विपरीत गति काहि कहौं समुझाय।
जल जल गौ झख बाधि गौ जन तुलसी मुसकाय ॥६५६॥
कै जुझिबो कै बूझिबो दान कि काय-कलेस।
चारि चारु परलोक-पथ जथा-जोग उपदेस ॥६५७॥
बुध किसान सर बेद निज मतेँ खेत सब सींच।
तुलसी कृखि-गति जानिबो उत्तम मध्यम नीच ॥६५८॥
सहि कु-बोल साँसति सकल पाय अनट अपमान।
तुलसी धरम न परिहरिय कहि करि गए सु-जान ॥६५९॥
अनहित ज्यौं पर-हित किए आपन हित तम जान।
तुलसी चारु बिचार मति करिय काज सम मान ॥६६०॥

मिथ्या माहुर सु-जन कहँ खलहिँ गरल सम साँच।
तुलसी परसि पराइ जिमि पारद पावक आँच ॥६६१॥
तुलसी खल बानी बिमल सुनि समुझब हिय हेरि।
राम - राज - बाधक भई मंद मंथरा चेरि ॥६६२॥
दान दयादिक जुद्ध के बीर धीर नहिँ आन।
तुलसी कहहिँ बिनीत इति ते नर बर परमान ॥६६३॥
तुलसी साथी बिपति के बिद्या बिनय बिबेक।
साहस सु - करित सत्य - ब्रत राम - भरोसो एक ॥६६४॥
तुलसी असमय के सखा साहस धरम बिचार।
सु-करित सील स्वभाव रिजु राम-चरन-आधार ॥६६५॥
बिद्या बिनय बिबेक रति रीति जासु उर होइ।
राम-परायन सो सदा आपद ताहि न कोइ ॥६६६॥
बिनु प्रपंच वरु भीख भलि नहिँ फल किए कलेस।
बावन बलि सों लीन्ह छलि दीन्ह सबहि उपदेस ॥६६७॥
बिबुध-काज बावन बलिहिँ छलो भलो जिय जानि।
प्रभुता तजि बस भे तदपि मन तें गइ न गलानि ॥६६८॥
बड़े बड़े तें छल करहिँ जनम कनौड़े होहिँ।
तुलसी स्त्री-पति-सिर लसै बलि बावन गति सोहिँ ॥६६९॥
खल उपकार बिकार फल तुलसी जान जहान।
मेढक मर्कट बनिक बक कथा सत्य उपखान ॥६७०॥
जो मूरख उपदेस के होते जोग जहान।
दुरजोधन कहँ बोधि किन आए स्याम सुजान ॥६७१॥
हित पर बढ़त बिरोध जब अन-हित पर अनुराग।
राम बिमुख बिधि बाम गति सगुन अघाय अभाग ॥६७२॥
साहसही सिख कोप-बस किए कठिन परिपाक।
सठ संकट-भाजन भएउ हठि कु-जाति कपि काक ॥६७३॥

मारि सौंह करि खोज लै करि मत सब बिन त्रास।
मुए नीच बिन मीच तें ये इनके विस्वास ॥६७४॥
रीझ आपनी बूझ पर खीझ बिचार विहीन।
ते उपदेस न मानहीं मोह-महोदधि-मीन ॥६७५॥
समुझि सु-नीति कु-नीति-रत जागतही रह सोइ।
उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ ॥६७६॥
परमारथ-पथ-मत समुझि लसत बिखय लपटान।
उतरि चिता तें अध-जरी मानहुँ सती परान ॥६७७॥
तजत अमिय उपदेस गुरु भजत बिखय-बिख-पान।
चंद किरन धोखे पयस चाटत जिमि सठ स्वान ॥६७८॥
सुर-सदनन तीरथ पुरिन निपटि कु-चाल कु-साज।
मनहुँ मवासे मारि कलि राजत सहित समाज ॥६७९॥
चोर चतुर बटपार नट प्रभु-प्रिय भडुआ भंड।
सब भच्छक परमारथी कलि सु-पंथ पाखंड ॥६८०॥
गोंड गवांर नृपाल कलि जनम महा-महि-पाल।
साम न दान न भेद कलि केवल दंड कराल ॥६८१॥
काल तोपची तुपक महि दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु गोला पुहुमी-पाल ॥६८२॥
राग रोख गुन दोख को साखी हृदय-सरोज।
तुलसी बिकसत मित्र लखि सकुचत देखि मनोज ॥६८३॥
बैर सनेह सयानपहिँ तुलसी जे नहिँ जान।
ते कि प्रेम-मग पग धरत पसु बिनु पूछ बिखान ॥६८४॥
राम-दास पहँ जाय के जो नर कथहि सयान।
तुलसी अपनी खांड़ महँ खाक मिलावहिँ स्वान ॥६८५॥
त्रिबिधि एक-बिधि प्रभु-अगुन प्रजहि सवांरहिँ राउ।
कर तें होत कृपाण को कठिन घोर घन-घाउ ॥६८६॥

काल बिलोकत ईस-रुख भानु काल अनुहार।
रबिहिँ राहु राजहिँ प्रजा बुध व्यवहरहिँ बिचार ॥६८७॥
जथा अमल पावन पवन पाय सु-संग कु-संग।
गहत सु-बास कु-बास तिमि काल महीस-प्रसंग ॥६८८॥
भलउ चलत पथ पोच भय नृप नियोग नय नेम।
कु-तिय सु-भूखन भूखियत लोह नेवारित हेम ॥६८९॥
सुधा कु-नाज सु-नाज फल आम असन सम जान।
सु-प्रभु प्रजा-हित लेहिँ कर सामादिक अनुमान ॥६९०॥
पाके पकए बिटप दल उत्तम मध्यम नीच।
फल नर लहहिँ नरेस तिमि करि बिचार मन बीच ॥६९१॥
धरनि-धेनु चरि धरम-तिनु प्रजा-सु-बत्स पिन्हाइ।
हाथ कछू नहिँ लागिहै किए गोठ की गाय ॥६९२॥
कंट कंट है परत गिरि साखा सहस खजूरि।
गरहिँ कु-नृप करि करि कु-नय सो कुचाल भुवि भूरि ॥६९३॥
भूमि रुचिर रावन-सभा अंगद-पद महिपाल।
धर्म-राम नय-सीय-बल अचल होइ तिहुँ काल ॥६९४॥
प्रीति राम-पद नीति-रत धरम-प्रतीत सुभाय।
प्रभुहि न प्रभुता परिहरै कबहुँ बचन-मन-काय ॥६९५॥
करके कर मन के मनहिँ बचन बचन गुन जानि।
भूपहिँ भूलि न परिहरहिँ बिजय-बिभूति सयानि ॥६९६॥
गोली बान सु-मंत्र सर समुझि उलटि गति देख।
उत्तम मध्यम नीच प्रभु-बचन बिचारि बिसेख ॥६९७॥
सत्रु सयाने सलिल इव राख सीस रिपु नाव।
बूड़त लखि डगमगत अति चपरि चहूँ दिसि धाव ॥६९८॥
रैयत राज-समाज घर तन धन धरम सु-बाहु।
सत्य सु-सचिवहिँ सौंपि सुख बिलसहिँ नित नर-नाहु ॥६९९॥

रसना मंत्री दसन जन तोख पोख सब काज।
प्रभु कै सेन पदादिका बालक राज समाज ॥७००॥
लकड़ी डौवा करछुली सरस काज अनुहारि।
सु-प्रभु जो नाहिँन परिहरइ सेवक सखा बिचारि ॥७०१॥
प्रभु समीप छोटे बड़े निबल होहिँ बलवान।
तुलसी प्रगट बिलोकिए कर अँगुली अनुमान ॥७०२॥
तुलसी भल बर तरु बढ़त निज मूलहिँ अनुकूल।
सकल भांति सब कहँ सुखद दलन सहित फल फूल ॥७०३॥
स-धन स-गुन स-धरम सगन स-बल सु-साईं महीप।
तुलसी जे अभिमान बिन ते त्रिभुवन के दीप ॥७०४॥
साधन समय सु-सिद्ध लहि उभय मूल अनुकूल।
तुलसी तीनौ समय सम ते महि मंगल-मूल ॥७०५॥
रामायन अनुहरत सिख जग भै भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै कलि कुचालि परतीति ॥७०६॥
सु-हित सुखद गुन-जुत सदा काल-जोग दुख-होय।
घर धन जारत अनल जिमि त्यागे सुख नहिँ कोय ॥७०७॥
तुलसी सर-बर खंभ जिमि तिमि चेतन घट माहिँ।
सूख न तपनहुँ तनक सों समुझ सु-बुध-जन ताहि ॥७०८॥
तुलसी झगड़ा बड़न के बीच परहु जनि धाय।
लड़ैँ लोह पाहन दोऊ बीच रुई जरि जाय ॥७०९॥
अरथ आदि इन परिहरहु तुलसी सहित बिचार।
अंत गहन सब कहँ सुने संतन मत-सुख-सार ॥७१०॥
गहु उकार बिबिचार पद मा फल हानि बिमूल।
अहो जान तुलसी जतन बिन जाने इव सूल ॥७११॥
नीच निरावहिँ निरस तरु तुलसी सींचहिँ ऊख।
पोखत पयद समान सब बिखय ऊख के रूख ॥७१२॥

लोक बेदहूं लौं दगौ नाम भले को पोच।
धरम-राज जम गाज पवि कहत सकोच न सोच ॥७१३॥
तुलसी देवल देव के लागे लाख करोरि।
काग अभागे हगि भरैं महिमा भई न थोरि ॥७१४॥
भलो कहहि जाने बिना बिन जाने अपवाद।
ते नर गावँर जानि जिय करब न हरख बिखाद ॥७१५॥
तन-धन महिमा धरम जेहि जा कहँ सह अभिमान।
तुलसी जियत बिडंबना परिनामहु गति जान ॥७१६॥
बड़े बिबुध दरबार तें भूमि भूप-दरबार।
जापक पूजक देखियत सहत निरादर-भार ॥७१७॥
खग मृग मीत पुनीत किय बनहुँ राम नय-पाल।
कुनय बालि रावन घरहिँ सुखद बंधु किय काल ॥७१८॥
राम-लखन विजयो भए वनहुँ गरीब-नेवाज।
मुखर बालि-रावन गए घरही सहित समाज ॥७१९॥
ठाढो द्वार न दै सकहिँ तुलसी जे नर नीच।
निदरहिँ बलि हरिचंद कहँ का किय करन दधीच ॥७२०॥
तुलसी निज कीरति चहहिँ पर की कीरति खोय।
तिनके मुँह मसि लागिहै मिटिहि न मरिहैं धोय ॥७२१॥
नीच चंग-सम जानिबो सुनि लखि तुलसी-दास।
ढीलि देत महि गिरि परत खैंचत चढ़त अकास ॥७२२॥
सह-बासी काची भखहिँ पुर-जन पाक प्रबीन।
काल-छेप केहि बिधि करहिँ तुलसी खग मृग मीन ॥७२३॥
वड़े पाप बाढ़े किए छोटे करत लजात।
तुलसी ता पर सुख चहत बिधि पर बहुत रिसात ॥७२४॥
सुमति निबारहिँ परिहरहिँ दल सुमनहु संग्राम।
स-कुल गए तनु बिन भए साखी जादव काम ॥७२५॥

कलह न जानब छोट करि कठिन परम परिनाम ।
लगत अनल लघु नीच घर जरत धनिक-धन-धाम ॥७२६॥
जूझे तें भल बूझिबो भली जीति तें हारि ।
डहके ते डहकाइबो भलो जो करिय बिचारि ॥७२७॥
तुलसी तीनि प्रकार तें हित अनहित पहिचानि ।
परबस परे परोस बसि परे मामला जान ॥७२८॥
दुरजन बदन कमान सम बचन बिमुंचत तीर ।
सज्जन उर बेधव नहीं छमा सनाह सरीर ॥७२९॥
कौरव पांडव जानिबो क्रोध छमा को सीम ।
पांचहिँ मारि न सौ सके सबै निपाते भीम ॥७३०॥
जो मधु दीन्हे तें मरे माहुर देउ न ताउ ।
जग जिति हारे परसु-धर हारि जिते रघु-राउ ॥७३१॥
रोस न रसना खोलिए बरु खोलिय तरवारि ।
सुनत मधुर परिनाम हित बोलिय बचन विचारि ॥७३२॥
तुलसी मीठो अमिय तें मांगी मिलै जो मीच ।
सुधा सुधाकर समय बिन कालकूट तें नीच ॥७३३॥
पाही खेती लगनबटि रिन कुब्याज मग-खेतु ।
बैर बड़े सों आपने कियो पांच दुख हेतु ॥७३४॥
रीझि खीझि गुरु देत सिख सखा सु-साहिब साधु ।
तोरि खाय फल होय भल तरु काटे अपराधु ॥७३५॥
चढ़े बधूरहि चंग ज्यों ग्यान ज्यों सोक-समाज ।
करम धरम सुख संपदा तिमि जानिबो कुराज ॥७३६॥
पेट न फूटत बिन कहे कहे न लागत ढेर ।
बोलब बचन बिचार-जुत समुझि सु-फेर कु-फेर ॥७३७॥
प्रीति सगाई सकल बिधि बनिज उपाय अनेक ।
कल-बल-छल कलि-मल-मलिन डहकत एकहि एक ॥७३८॥

दंभ सहित कलि धरम सब छल समेत ब्यवहार।
स्वारथ सहित सनेह सब रुचि अनुहरत अचार ॥७३९॥
धातु-बाद निरुपाधि बर सद-गुरु लाभ सुमीत।
देव-दरस कलिकाल महँ पोथिन दुरे सभीत ॥७४०॥
फोरहिँ सिल लोढ़ा सदन लागे अढुक पहार।
कायर कूर कपूत कलि घर घर सरिस डहार ॥७४१॥
जौ जगदीस तो अति भलो जौ महीस तौ भाग।
जनम जनम तुलसी चहत राम-चरन-अनुराग ॥७४२॥
का भाखा का संसकृत भाव चाहिए सांच।
काम जो आवै कामरी का लै करिय कमाच ॥७४३॥
बरन बिसद मुकता सरिस अरथ सूत्र-सम-तूल।
सतसैया जग बर बिसद गुन सोभा-सुख-मूल ॥७४४॥
भूप कहहिँ लघु गुनिन कहँ गुनी कहहिँ लघु भूप।
महि गिरि पर गत लखत जिमि तुलसी खरब सरूप ॥७४५॥
बर माला वाला सुमति उर धारै जुत नेह।
सुख सोभा सरसाय नित लहै राम-पति-गेह ॥७४६॥
दोहा चारु विचारु चलु परिहरि बाद-बिबाद।
सुकृत सीम स्वारथ अवधि परमारथ मरजाद ॥७४७॥

---

(२) बिहारी-सतसई

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झांईं परैं स्यामु हरित-दुति होइ॥ १ ॥
अपने अँग कै जानि कै जोवन-नृपति प्रवीन।
स्तन मन नैन नितंब कौ बड़ौ इजाफा कीन॥ २ ॥
अर तैं टरत न बर-परे दई मरक मनु मैन।
होड़ाहोड़ी बढ़ि चले चितु चतुराई नैन॥ ३ ॥
औरै ओप कनीनिकनु गनी घनी सिरताज।
मनौं धनी के नेह की बनीं छनीं पट लाज॥ ४ ॥
सनि कज्जल चख-झख-लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यौं न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेसु सबु देहु॥ ५ ॥
सालति है नटसाल सी क्यौं हूं निकसति नाहिँ।
मनमथ-नेजा-नोक सी खुभी खुभी जिय माहिँ॥ ६ ॥
जुवति जोन्ह मैं मिलि गई नैंक न होति लखाइ।
सौंधे कैं डोरैं लगी अली चली सँग जाइ॥ ७ ॥
हौं रीझी लखि रीझिहौ छबिहिँ छबीले लाल।
सोनजुही सी होति दुति मिलत मालती माल॥ ८ ॥
बहके सब जिय की कहत ठौरु कुठौरु लखैं न।
छिन औरै छिन और से ए छबि छाके नैन॥ ९ ॥
फिरि फिरि चितु उतहीं रहतु टुटी लाज की लाव।
अंग-अंग-छबि-झौंर मैं भयौ भौंर की नाव॥ १० ॥
नीकी दई अनाकनी फीकी परी गुहारि।
तज्यौ मनौ तारन-बिरदु बारक बारनु तारि॥ ११ ॥

चितई ललचौहैं चखनु डटि घूँघट-पट माँह।
छल सौं चली छुवाइकै छिनकु छबीली छाँह ॥ १२ ॥
जोग-जुगति सिखए सबै मनौ महामुनि मैन।
चाहत पिय-अद्वैतता काननु सेवत नैन ॥ १३ ॥
खरी पातरी कान की कौन बहाऊ बानि।
आक-कली न रली करै अली अली जिय जानि ॥ १४ ॥
पिय-बिछुरन कौ दुसह्यु दुखु हरषु जात प्यौसार।
दुरजोधन लौं देखियति तजत प्रान इहि बार ॥ १५ ॥
झीनैं पट मैं झुलमुली झलकति ओप अपार।
सुरतरु की मनु सिंधु मैं लसति सपल्लव डार ॥ १६ ॥
डारे ठोड़ी-गाड़ गहि नैन-बटोही मारि।
चिलक-चौंध मैं रूप-ठग हांसी-फांसी डारि ॥ १७ ॥
कीनैं हूं कोरिक जतन अब कहि काढ़ै कौनु।
भो मन मोहन-रूपु मिलि पानी मैं को लौनु ॥ १८ ॥
लग्यो सुमनु ह्वैहै सफलु आतप-रोसु निवारि।
बारी बारी आपनी सींचि सुहृदता-बारि ॥ १९ ॥
अजौं तर्‌यौना हीं रह्यौ स्रुति सेवत इक-रंग।
नाक-बास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतनु कैं संग ॥ २० ॥
जम-करि-मुँह तरहरि पर्‌यो इहिं धरहरि चित लाउ।
बिषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ ॥ २१ ॥
पलनु पीक अंजनु अधर धरे महावरु भाल।
आजु मिले सु भली करी भले बने हौ लाल ॥ २२ ॥
लाज गरब आलस उमग भरे नैन मुसकात।
राति रमी रति देति कहि औरै प्रभा प्रभात ॥ २३ ॥
पति रति की बतियां कहीं सखी लखी मुसकाइ।
कै कै सबै टलाटलीं अलीं चलीं सुखु पाइ ॥ २४ ॥

तो पर वारौं उरबसी सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन कै उर बसी ह्वै उरबसी समान॥ २५॥
कुच-गिरि चढ़ि अति थकित ह्वै चली डीठि मुँह-चाड़।
फिरि न टरी परियै रही गिरी चिबुक की गाड़॥ २६॥
बेधक अनियारे नयन बेधत करि न निषेधु।
बरबट बेधतु मो हियौ तो नासा कौ बेधु॥ २७॥
लीनैं सुहुँ दीठि न लगै यौं कहि दीनौ ईठि।
दूनी है लागन लगी दियैं दिठौना दीठि॥ २८॥
चितवनि रूखे दृगनु की हांसी बिनु मुसकानि।
मानु जनायौ मानिनी जानि लियौ पिय जानि॥ २९॥
सब ही त्यौं समुहाति छिनु चलति सबनु दै पीठि।
वाही त्यौं ठहराति यह कबिलनवी लौं दीठि॥ ३०॥
कौन भांति रहिहै बिरदु अब देखिबी मुरारि।
बीधे मोसौं आइ कै गीधे गीधहिँ तारि॥ ३१॥
कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं नैननु हीं सब बात॥ ३२॥
वाही की चित चटपटी धरत अटपटे पाइ।
लपट बुझावत बिरह की कपट भरेऊ आइ॥ ३३॥
लखि गुरुजन बिच कमल सौं सीसु छुवायौ स्याम।
हरि सनमुख करि आरसी हियैं लगाई बाम॥ ३४॥
पाइ महावरु दैंन कौं नाइनि बैठी आइ।
फिरि फिरि जानि महावरी एड़ी मीड़ति जाइ॥ ३५॥
तोहीं निरमोही लग्यौ मो ही इहैं सुभाउ।
अन आऐं आवै नहीं आऐं आवतु आउ॥ ३६॥
नेहु न नैननु कौं कछू उपजी बड़ी बलाइ।
नीर भरे नित प्रति रहैं तऊ न प्यास बुझाइ॥ ३७॥

नहि परागु नहिँ मधुर मधु नहिँ विकासु इहिँ काल।
अली कली ही सौं बँध्यौ आगैं कौन हवाल॥ ३८॥
लाल तुम्हारे बिरह की अगनि अनूप अपार।
सरसै बरसैं नीर हूं झर हूं मिटै न झार॥ ३९॥
देह दुलहिया की बढ़ै ज्यौं ज्यौं जोवन-जोति।
त्यौं त्यौं लखि सौत्यैं सबैं बदन मलिन दुति होति॥ ४०॥
जगतु जनायौ जिहिँ सकलु सो हरि जान्यौ नांहि।
ज्यों आंखिनु सब देखियै आँखि न देखी जांहि॥ ४१॥
मंगलु बिंदु सुरंगु मुखु ससि केसरि आड़ गुरु।
इक नारी लहि संगु रसमय किय लोचन-जगत॥ ४२॥
पिय तिय सौं हँसि कै कह्यौ लखैं दिठौना दीन।
चंदमुखी मुखचंदु तैं भली चंद समु कीन॥ ४३॥
कौंहर सी एड़ीनु की लाली देखि सुभाइ।
पाइ महावरु देइ को आपु भई बे-पाइ॥ ४४॥
खेलन सिखए अलि भलैं चतुर अहेरी मार।
कानन-चारी नैन-मृग नागर नरनु सिकार॥ ४५॥
रस-सिँगार - मंजनु किए कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु रंजनु हूं बिना खंजनु गंजनु नैन॥ ४६॥
साजे मोहन - मोह कौं मोहीं करत कुचैन।
कहा करौं उलटे परे टोने लोने नैन॥ ४७॥
याकैं उर औरै कछू लगी बिरह की लाइ।
पजरै नीर गुलाब कैं पिय की बात बुझाइ॥ ४८॥
कहा लेहुगे खेल पैं तजौ अटपटी बात।
नैंक हँसौंहीं हैं भई भौंहैं सौंहैं खात॥ ४९॥
डारी सारी नील की ओट अचूक चुकै न।
मो मन मृगु करबर गहैं अहे अहेरी नैन॥ ५०॥

दीरघ साँस न लेहि दुख सुख साईंहिं न भूलि।
दई दई क्यों करतु है दई दई सु कबूलि ॥ ५१ ॥
बैठि रही अति सघन बन पैठि सदन-तन मांह।
देखि दुपहरी जेठ की छाँहौं चाहति छांह ॥ ५२ ॥
हा हा बदनु उघारि दृग सफल करैं सब कोइ।
रोज सरोजनु कैं परै हँसी ससी की होइ ॥ ५३ ॥
होमति सुखु करि कामना तुमहिं मिलन की लाल।
ज्वालमुखी सी जरति लखि लगनि-अगनि की ज्वाल ॥ ५४ ॥
सायक-सम मायक नयन रँगे त्रिविध रँग गात।
झखौ बिलखि दुरि जात जल लखि जलजात लजात ॥ ५५ ॥
मरी डरी कि टरी बिथा कहा खरी चलि चाहि।
रही कराहि कराहि अति अब मुँह आहि न आहि ॥ ५६ ॥
कहा भयौ जौ बीछुरे मो मनु तो मन साथ।
उड़ी जाउ कित हूं तऊ गुड़ी उड़ाइक-हाथ ॥ ५७ ॥
लखि लोने लोइननु कैं कोइनु होइ न आजु।
कौनु गरीबु निवाजिबौ कित तूठ्यौ रविराजु ॥ ५८ ॥
सीतलताऽरु सुबास कौ घटै न महिमा-मूरु।
पीनसवारैं जौ तज्यौ सोरा जानि कपूरु ॥ ५९ ॥
कागद पर लिखत न बनत कहत सँदेसु लजात।
कहिहै सबु तेरौ हियौ मेरे हिय की बात ॥ ६० ॥
बंधु भए का दीन के को तारयौ रघुराइ।
तूठे तूठे फिरत हौ झूठे बिरद कहाइ ॥ ६१ ॥
जब जब वै सुधि कीजियै तब तब सब सुधि जाहिं।
आंखिनु आंखि लगी रहैं आंखैं लागति नाहिं ॥ ६२ ॥
कौन सुनै कासौं कहौं सुरति बिसारी नाह।
बदाबदी ज्यौं लेत हैं ए बदरा बदराह ॥ ६३ ॥

मैं हो जान्यौ लोइननु जुरत वाढ़िहै जोति।
को हो जानतु दीठि कौं दीठि किरकिटी होति ॥ ६४ ॥
गहकि गांसु औरै गहे रहे अधकहे बैन।
देखि खिसौंहैं पिय-नयन किए रिसौंहैं नैन ॥ ६५ ॥
मैं तोसौं कै वा कह्यौ तू जिन इन्हैं पत्याइ।
लगालगी करि लोइननु उर मैं लाई लाइ ॥ ६६ ॥
बर जीते सर मैन के ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनानु तैं हरि नीके ए नैन ॥ ६७ ॥
थोरैं ही गुन रीझते बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह मनौ भए आजकाल्हि के दानि ॥ ६८ ॥
अंग अंग नग जगमगत दीपसिखा सी देह।
दिया बढ़ाएँ हूं रहै बड़ौ उज्यारौ गेह ॥ ६९ ॥
छुटी न सिसुता की झलक झलक्यौ जोवनु अंग।
दीपति देह दुहूनु मिलि दिपति ताफता-रंग ॥ ७० ॥
कब कौ टेरतु दीन रट होत न स्याम सहाइ।
तुमहूं लागी जगत-गुरु जग-नाइक जग-बाइ ॥ ७१ ॥
सकुचि न रहियै स्याम सुनि ए सतरौंहैं बैन।
देत रचौंहौं चित्त कहे नेह-नचौंहैं नैन ॥ ७२ ॥
पत्रा हीं तिथि पाइयै वा घर कैं चहुँ पास।
नित प्रति पून्यौई रहै आनन - ओप - उजास ॥ ७३ ॥
बसि सकोच दसबदन बस सांचु दिखावति बाल।
सिय लौं सोधति तिय तनहिं लगनि-अगनि की ज्वाल ॥ ७४ ॥
जौ न जुगति पिय मिलन की धूरि मुकति-मुँह दीन।
जौ लहियै सँग सजन तौ धरक नरक हूँ की न ॥ ७५ ॥
चमक तमक हांसी ससक मसक झपट लपटानि।
ए जिहिं रति सो रति मुकति और मुकति अति हानि ॥ ७६ ॥

मोहूं सौं तजि मोहु, दृग चले लागि उहिँ गैल।
छिनकु छ्वाइ छबि-गुर-डरी छले छबीलैँ छैल ॥ ७७ ॥
कंज-नयनि मंजनु किए बैठी ब्यौरति बार।
कच-अँगुरी-बिच दीठि दै चितवति नंदकुमार ॥ ७८ ॥
पावक सो नयननु लगै जावकु लाग्यौ भाल।
मुकुरु होहुगे नैंक मैं मुकुरु बिलोकौ लाल ॥ ७९ ॥
रहति न रन जयसाहि-मुख लखि लाखनु की फौज।
जाँचि निराखरऊ चलै लै लाखनु की मौज ॥ ८० ॥
दियौ सु सीस चढ़ाइ लै आछी भाँति अएरि।
जापैं सुखु चाहतु लियौ ताके दुखहिँ न फेरि ॥ ८१ ॥
तरिवन-कनकु कपोल-दुति बिच बीच ही बिकान।
लाल लाल चमकतिं चुनीं चौका-चीन्ह-समान ॥ ८२ ॥
मोहि दयौ मेरौ भयौ रहतु जु मिलि जिय साथ।
सो मनु बाँधि न सौंपिए पिय सौतिनि कैं हाथ ॥ ८३ ॥
कुंज-भवनु तजि भवन कौं चलियै नंदकिसोर।
फूलति कली गुलाब की चटकाहट चहुँ ओर ॥ ८४ ॥
कहति न देवर की कुबत कुल-तिय कलह डराति।
पंजर-गत मंजार-ढिँग सुक ज्यौं सूकति जाति ॥ ८५ ॥
औरै भाँति भएऽब ए चौसरु चंदनु चंदु।
पति बिनु अति पारतु बिपति मारतु मारुतु मंदु ॥ ८६ ॥
चलन न पावतु निगम-मगु जगु उपज्यौ अति त्रासु।
कुच-उतंग गिरिवर गह्यौ मैना मैनु मवासु ॥ ८७ ॥
त्रिबली नाभि दिखाइ कर सिर ढकि सकुचि समाहि।
गली अली की ओट कै चली भली बिधि चाहि ॥ ८८ ॥
देखत बुरै कपूर ज्यौं उपै जाइ जिन लाल।
छिन छिन जाति परी खरी छीन छबीली बाल ॥ ८९ ॥